डॉ. कपिलदेव द्विवेदी

वैदिक साहित्य एवं संस्कृति

डॉ. कपिलदेव द्विवेदी

वैदिक साहित्य एवं संस्कृति

वैदिक साहित्य एवं संस्कृति

लेखक
पद्मश्री डॉ० कपिलदेव द्विवेदी
निदेशक
विश्वभारती अनुसंधान परिषद्
ज्ञानपुर (भदोही)

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

समर्पण :

इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः
पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः ।

(ऋग्वेद १०.१४.१५)

— कपिलदेव द्विवेदी आचार्य

प्राक्कथन

वेद भारतीय संस्कृति की आत्मा हैं । ये मानवजाति के लिए प्रकाश-स्तम्भ हैं । विश्व को संस्कृति का ज्ञान देने का श्रेय वेदों को है । वेद ही विश्व-शान्ति, विश्व-बन्धुत्व और विश्व-कल्याण के प्रथम उद्घोषक हैं । वेदों की ज्योति ने ही आर्यजाति की समुन्नति का मार्ग प्रशस्त किया था । वेद ज्ञान के अथाह भंडार हैं । इनमें ज्ञान और विज्ञान की सभी विधाओं का सूत्ररूप में उल्लेख है । अतएव मनु का कथन है कि '**सर्वज्ञानमयो हि सः** ' (मनु० २.७) । यह वास्तविकता की अभिव्यक्ति है ।

आचार्य यास्क का यह कथन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि '**न ह्येषु प्रत्यक्षमस्ति अनृषेरतपसो वा**' (निरुक्त १३.१२) अर्थात् जो ऋषि या तपस्वी नहीं है, उसको मंत्रों के गूढ अर्थ का ज्ञान नहीं हो सकता है । सबसे अधिक गूढ अर्थ वाले देवता-वाचक शब्द हैं । जैसे - अग्नि, इन्द्र, मरुत् , अश्विनौ, सोम, मित्र, वरुण, आदि । इन पर जितना गहन चिन्तन किया जाता है, उतना ही रहस्यात्मक अर्थ स्पष्ट होता है । वेदरूपी ज्ञान-महोदधि में आप जितनी गहराई में जायेंगे, उतने ही बहुमूल्य रत्न आपको प्राप्त होंगे । एक ही अग्नि शब्द सामान्य अग्नि से लेकर विद्युत् , सूर्य, जीवात्मा, परमात्मा, सौर ऊर्जा, नाभिकीय ऊर्जा, भूगर्भीय ऊर्जा आदि का बोधक है । प्रकरण के अनुसार वह अर्थ लिया जाएगा ।

प्रस्तुत ग्रन्थ प्रबुद्ध वेदप्रेमी पाठकों को दृष्टि में रखकर लिखा गया है । इसका उद्देश्य है - संक्षेप में समग्र वैदिक वाङ्मय का दिग्दर्शन कराना । साथ ही सांस्कृतिक पक्ष को भी प्रस्तुत करना । इसके लिए सूत्रशैली को अपनाया गया है । प्रयत्न किया गया है कि कोई उपयोगी तथ्य छूटने न पावे । यह भी प्रयत्न किया गया है कि नवीनतम अनुसंधानों को इसमें समाविष्ट किया जाए । भारतीय और पाश्चात्त्य विद्वानों ने वैदिक वाङ्मय की जो महनीय सेवा की है, उसका भी विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है ।

प्रस्तुत ग्रन्थ १३ अध्यायों में विभक्त है । इसमें वेद, ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक, उपनिषद् और ६ वेदांगों का विस्तृत विवेचन किया गया है । प्रस्तावना में वेद -संबन्धी विविध विषयों का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । इसमें वेदों का महत्त्व, वेदों का रचनाकाल, वेदों की विविध व्याख्या - पद्धतियाँ , वेदों की अपौरुषेयता आदि का विवेचन है । भारतीय विद्वानों के विचारों के साथ ही पाश्चात्त्य विद्वानों के मतों का भी यथास्थान उल्लेख किया गया है ।

प्रारम्भ के ६ अध्यायों में वेद, ब्राह्मण, आरण्यक , उपनिषद् और वेदांगों के विषय में सर्वांगीण विवेचन प्रस्तुत किया गया है । प्रत्येक वेद के विवेचन के अन्त में महत्त्वपूर्ण सूक्त, मंत्र और सूक्तियों का भी उल्लेख किया गया है ।

अध्याय ७ और ८ में वैदिक संस्कृति का स्वरूप प्रदर्शित किया गया है । इसमें भूगोल, सामाजिक जीवन, आर्थिक स्थिति और राजनीतिक अवस्था का परिचय दिया गया है । अध्याय ९ में वैदिक देवों के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है । प्रत्येक देव की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख है । अध्याय १० में वैदिक यज्ञ-प्रक्रिया का महत्त्व, आध्यात्मिक स्वरूप और विविध यागों एवं इष्टियों के क्रियाकलाप का विवेचन है ।

अन्त के तीन अध्याय परिशिष्ट के रूप में हैं । अध्याय ११ में संक्षेप में वैदिक व्याकरण की प्रमुख विशेषताएँ दी गई हैं । स्वर-संबन्धी नियम विशेष रूप से दिए हैं । संहितापाठ से पदपाठ बनाना और पदपाठ से संहितापाठ बनाने की विधि समझाई गई है। अध्याय १२ इस ग्रन्थ का महत्त्वपूर्ण अंश है । वेदों मे आचारशिक्षा, नीतिशिक्षा आदि ही नहीं है, अपितु कुछ महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक तथ्य भी सूत्ररूप में विद्यमान हैं । उसके निदर्शनार्थ कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्यों का संकलन प्रस्तुत किया गया है । अध्याय १३ में वेदों में विद्यमान काव्य-सौन्दर्य के कुछ उदाहरण दिए गए हैं ।

इस ग्रन्थ में लेखक का प्रयत्न रहा है कि ' **गागर में सागर**' इस सूक्ति का सफल प्रयोग प्रदर्शित किया जाए । लेखक को इस कार्य में कितनी सफलता मिली है, इसका निर्णय पाठकों पर निर्भर है । आशा है यह ग्रन्थ वेदप्रेमी पाठकों की जिज्ञासाओं को पूर्ण करने में सफल होगा । इस ग्रन्थ के द्वारा लेखक की कामना है कि सामान्य जनता की भी वेदों के प्रति अभिरुचि जागृत हो ।

ग्रन्थ के विषय में आवश्यक संशोधन आदि के परामर्श सधन्यवाद स्वीकार किए जायेंगे ।

ज्ञानपुर (भदोही)
१६.०७.२००० ई०
(गुरुपूर्णिमा, २०५७ वि०)

— **डॉ० कपिलदेव द्विवेदी**

संकेत-सूची

संकेत	पूर्ण रूप
अ०	अध्याय
अ०, अथर्व०	अथर्ववेद संहिता
अथर्वपरि०	अथर्वपरिशिष्ट
अष्टा०	अष्टाध्यायी
आ०	आह्निक
आपि०शिक्षा	आपिशलि-शिक्षा
आर०	आरण्यक
आर्च०	आर्चज्योतिष
ई०	ईसवीय सन्
ई०पू०	ईसापूर्व
ईश०	ईश उपनिषद्
उत्तर०	उत्तरभाग
उप०	उपनिषद्
ऋग्०	ऋग्वेद संहिता
ऐत०आर०	ऐतरेय आरण्यक
ऐत०, ऐत०ब्रा०	ऐतरेय ब्राह्मण
कठ०	कठ उपनिषद्
का०	काण्ड
काठक०	काठक संहिता
कात्या० श्रौत०	कात्यायन श्रौतसूत्र
कूर्म०	कूर्म पुराण
केन०	केन उपनिषद्
कौ० अर्थ०	कौटिलीय अर्थशास्त्र
कौषी० उप०	कौषीतकि उपनिषद्
कौषी० ब्रा०	कौषीतकि ब्राह्मण
गृह्य०	गृह्यसूत्र
गो०, गोपथ०	गोपथ ब्राह्मण
चिकित्सा०	चिकित्सास्थान
छा०उप०, छान्दो० उप०	छान्दोग्यउपनिषद्
जैमि०उप० ब्रा०	जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण
जैमि० ब्रा०	जैमिनीय ब्राह्मण
ज्यो०	ज्योतिष
तां०, तांड्य०	तांड्य ब्राह्मण
तैत्ति० आर०	तैत्तिरीय आरण्यक
तैत्ति० उप०	तैत्तिरीय उपनिषद्
तैत्ति० ब्रा०	तैत्तिरीय ब्राह्मण
तैत्ति० सं०	तैत्तिरीय संहिता
नि०	निरुक्त
न्याय०	न्याय दर्शन
P.	Page
PP.	Pages
पाणिनि०	पाणिनिकालीन भारतवर्ष
पार० गृ०	पारस्कर गृह्यसूत्र
पा० शिक्षा	पाणिनीय शिक्षा
पु०	पुराण
पुं०	पुंलिंग
पूर्व०	पूर्वमीमांसा
पूर्व०	पूर्वभाग
पृ०	पृष्ठ
प्रपा०	प्रपाठक
बृह० उप०	बृहदारण्यक उपनिषद्
ब्रा०	ब्राह्मण

भा०	भाष्य
म०	मंडल
मनु०	मनुस्मृति
महा०	महाभारत
महा०	महाभाष्य
मी०सूत्र, मीमांसा०	मीमांसासूत्र
मैत्रा०	मैत्रायणी संहिता
मैत्रा०आर०	मैत्रायणी आरण्यक
मैत्रा०उप०	मैत्रायणी उपनिषद्
यजु०	यजुर्वेद संहिता
याजुष०	याजुष ज्योतिष
लाट्या० श्रौत०	लाट्यायन श्रौतसूत्र
Litt.	Literature
वेदांग	वेदांग ज्योतिष
Vol.	Volume
शत०, शत० ब्रा०	शतपथ ब्राह्मण
शां०, शांखा०	शांखायन ब्राह्मण
शांखा० श्रौत०	शांखायन श्रौतसूत्र
शान्ति०	शान्तिपर्व, महाभारत
श्रौत०	श्रौतसूत्र
श्वेता०,श्वेताश्व०	श्वेताश्वतर उपनिषद्
षड्०	षड्विंश ब्राह्मण
सं०	संहिता
साम०	सामवेद संहिता
Skt.	Sanskrit
हरिवंश०	हरिवंश पुराण
Hist.	History

विषय -सूची

(सूचना - अंक पृष्ठबोधक हैं)

अध्याय १

प्रस्तावना १-४३

वैदिक साहित्य-समीक्षा

अध्याय २

वैदिक संहिताएँ ४४-१११

(ख) वैदिक राजनीतिक अवस्था

अध्याय ९

वैदिक देवों का स्वरूप २९४-३०८

अध्याय १०

वैदिक यज्ञ-मीमांसा ३०९-३१८

परिशिष्ट

अध्याय ११

वैदिक व्याकरण, स्वरप्रक्रिया, पदपाठ ३१९-३३०

वैदिक व्याकरण

अध्याय १२

वेदों में विज्ञान के सूत्र ३३१-३४१

अध्याय १

प्रस्तावना

१. वेद का अर्थ

वेद शब्द ज्ञानार्थक विद् धातु (विद ज्ञाने) से घञ् (अ) प्रत्यय करने पर बनता है । इसका आशय है - ज्ञान । अतः वेद शब्द का अर्थ होता है - ज्ञान की राशि या ज्ञान का संग्रह-ग्रन्थ । प्राचीन ऋषियों ने जो ज्ञान अपनी आर्ष दृष्टि से प्राप्त किया था , उसका संग्रह वेदों में है । संस्कृत व्याकरण के अनुसार वेद शब्द चार धातुओं से विभिन्न अर्थों में बनता है ।

१. विद सत्तायाम् (होना, दिवादि.), २. विद ज्ञाने (जानना, अदादि.), ३. विद विचारणे (विचारना, रुधादि.), ४. विद्लृ लाभे (प्राप्त करना, तुदादि.) । इसके लिए कारिका है -

सत्तायां विद्यते ज्ञाने, वेत्ति विन्त्ते विचारणे ।
विन्दति विन्दते प्राप्तौ, श्यन्लुक्श्नम्शेष्विदं क्रमात् ।।

इन अर्थों का समन्वय करते हुए ऋक्प्रातिशाख्य की व्याख्या में विष्णुमित्र ने वेद का अर्थ किया है —

विद्यन्ते ज्ञायन्ते लभ्यन्ते एभिर्धर्मादि-पुरुषार्था इति वेदाः । विष्णुमित्र

अर्थात् वेद शब्द का भावार्थ होता है - (१) जिन ग्रन्थों के द्वारा धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी पुरुषार्थ-चतुष्टय के अस्तित्व का बोध होता है, (२) इनसे पुरुषार्थ - चतुष्टय का ज्ञान प्राप्त होता है, (३) इनसे पुरुषार्थ-चतुष्टय की प्राप्ति होती है, (४) इनमें पुरुषार्थ-चतुष्टय का विवेचन किया गया है । इस प्रकार वेद पुरुषार्थ-चतुष्टय के सर्वांगीण विवेचन करने वाले ग्रन्थ हैं ।

आचार्य सायण ने वेद शब्द की एक अन्य व्याख्या की है :

इष्टप्राप्त्यनिष्ट-परिहारयोरलौकिकम् उपायं यो ग्रन्थो वेदयति, स वेदः ।

तैत्तिरीय संहिता-भाष्य की भूमिका

अर्थात् जो ग्रन्थ इष्ट-प्राप्ति और अनिष्ट-निवारण का आलौकिक उपाय बताता है, उसे वेद कहते हैं । दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि जो उन्नति और प्रगति का मार्ग बताता है तथा दुष्कर्मों से होने वाले कुपरिणामों से बचने का उपाय बताता है, उसे वेद कहते हैं ।

श्रुति, निगम, आगम, त्रयी, छन्दस् , आम्नाय, स्वाध्याय : वेदों के अर्थ में इन शब्दों का भी प्रयोग होता है ।

(१) श्रुति : वेदों को श्रुति भी कहते हैं । इसका कारण यह है कि इन्हें गुरु-शिष्य-परंपरा से श्रवण के द्वारा सुरक्षित रखा गया है । गुरु परम्परागत पद्धति से वेदों के मंत्रों को शिष्यों को पढ़ाते थे और शिष्य श्रवणमात्र से स्मरण करते थे । इसमें इस बात पर विशेष बल दिया जाता था कि शिष्य मंत्रों के स्मरण में स्वर और उच्चारण-संबन्धी कोई भी त्रुटि न हो होने दें । श्रुति शब्द व्यापक है । यह वेदों के साथ ही ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों के लिए भी प्रयुक्त होता है । अतएव ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों के उद्धरणों को 'इति श्रुतिः' कहकर उद्धृत किया जाता है ।

(२) निगम : वेदों के लिए निगम शब्द का भी प्रयोग होता है । निगम का अर्थ सार्थक या अर्थबोधक है । वेदों को साभिप्राय, सुसंगत और गंभीर अर्थ बताने के कारण 'निगम' कहा जाता था ।

(३) आगम : आगम शब्द का प्रयोग वेद और शास्त्र दोनों के लिए होता है ।

(४) त्रयी : त्रयी शब्द का प्रयोग वेदों के लिए होता है । वेदत्रयी का अर्थ है - तीन वेद, ऋक् , यजुः और साम वेद । मीमांसादर्शन में त्रयी शब्द तीन प्रकार की रचना का द्योतक है और इसके अन्तर्गत चारों वेदों को रखा गया है । पद्यात्मक रचना ऋक् है, गद्यात्मक रचना यजुः और गीतात्मक रचना साम है । (मीमांसा सूत्र २.१.३५-३७) । इस प्रकार अथर्ववेद भी त्रयी के अन्तर्गत है ।

(५) छन्दस् : चारों वेदों के लिए छन्दस् शब्द का प्रयोग होता है । पाणिनि ने **'बहुलं छन्दसि'** (अष्टा० २.४.३९, ७३, ७६) सूत्रों के द्वारा वेदों को छन्दस् कहा है । छन्दस् शब्द **'छदि संवरणे'** चुरादिगणी से बनता है । इसका अर्थ है - ढकना या आच्छादित करना । अपने मनोभावों या विचारों को एक क्रमबद्ध रूप से पद्य में बद्ध किया जाता है, अतः पद्यात्मक रचना को 'छन्द' कहा जाता है । इसी अभिप्राय से यास्क ने निरुक्त में **'छन्दांसि छादनात् '** कहा है ।

(६) आम्नाय : वेदों के अर्थ में आम्नाय शब्द का भी प्रयोग होता है । आम्नाय शब्द 'म्ना अभ्यासे' भ्वादिगणी से बनता है । यह वेदों के प्रतिदिन अभ्यास या स्वाध्याय पर बल देता है । दण्डी ने 'दशकुमारचरित में वेदों के लिए आम्नाय का प्रयोग करते हुए कहा है - अधीती चर्तुषु आम्नायेषु' (पृ० १२०) अर्थात् चारों वेदों का ज्ञाता । श्रुति के तुल्य आम्नाय शब्द भी ब्राह्मणग्रन्थों और उपनिषदों का भी वाचक है ।

(७) स्वाध्याय : शतपथ ब्राह्मण (११.५.६.३) में वेदों के लिए स्वाध्याय शब्द का प्रयोग हुआ है । **'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः'** अर्थात् वेदों का अध्ययन करना चाहिए । उपनिषदों में भी वेदों के अर्थ में स्वाध्याय शब्द का प्रयोग है । **'स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्'** (तैत्ति० उप० १.११.१) अर्थात् वेदों के अध्ययन और प्रचार में प्रमाद न करे । स्वाध्याय शब्द स्व अर्थात् आत्मा के विषय में मनन-चिन्तन तथा प्रतिदिन अभ्यास पर बल देता है ।

२. वेदों का महत्त्व

अनेक दृष्टियों से वेदों को महत्त्वपूर्ण माना गया है ।[1] संकेतरूप में कुछ तथ्य दिए जा रहे हैं :

धार्मिक महत्त्व : वेद आर्यधर्म की आधारशिला हैं । धर्म के मूलतत्त्वों को जानने के एकमात्र साधन वेद हैं ।

वेदोऽखिलो धर्ममूलम् । मनु० २.६

मनु ने वेदों को सारे ज्ञानों का आधार मानकर उन्हें **'सर्वज्ञानमय'** कहा है, अर्थात् वेदों में सभी प्रकार के ज्ञान और विज्ञान के सूत्र विद्यमान हैं । वेदों में मानवमात्र के कर्तव्यों का निर्देश है ।

यः कश्चित् कस्यचिद् धर्मो, मनुना परिकीर्तितः ।
स सर्वोऽभिहितो वेदे, सर्वज्ञानमयो हि सः ।। मनु० २.७

महर्षि पतंजलि ने महाभाष्य के प्रारम्भ में ब्राह्मण का अनिवार्य कर्तव्य बताया है कि वह निःस्वार्थभाव से वेदांगों के सहित वेदों का अध्ययन करे ।

ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च ।
महा०आह्निक १

मनु ने वेदाध्ययन पर इतना अधिक बल दिया है कि ब्राह्मण के लिए वेदाध्ययन ही परम तप है । जो ब्राह्मण वेदाध्ययन न करके अन्य शास्त्रों में रुचि रखता है, वह इस जन्म में ही सपरिवार शूद्र की कोटि में है ।

वेदमेव सदाऽभ्यस्येत् , तपस्तप्यन् द्विजोत्तमः ।
वेदाभ्यासो हि विप्रस्य, तपः परमिहोच्यते ।। मनु० २.१६६
योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः । मनु० २.१६८

सांस्कृतिक महत्त्व : वेद भारतीय संस्कृति के मूल स्रोत हैं । भारतीय संस्कृति का यथार्थ ज्ञान वेदों और वैदिक वाङ्मय से ही प्राप्त होता है । प्राचीन समय में वस्तुओं के नाम आदि तथा मानव के कर्तव्यों का निर्धारण वेदों से ही किया गया था ।

सर्वेषां तु स नामानि, कर्मणि च पृथक् पृथक् ।
वेदशब्देभ्य एवादौ, पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ।। मनु० १.२१

लोकमान्य तिलक ने वेदों की प्रामाणिकता को मानना ही आर्यत्व एवं हिन्दुत्व का मुख्य लक्षण बताया है – **'प्रामाण्यबुद्धिर्वेदेषु '** ।

आर्यों का यज्ञ पर अटूट विश्वास, एक देव को मानते हुए भी अनेक देवों की सत्ता मानना, निष्काम भाव से कर्म करना, ईश्वर की सर्वव्यापकता, ज्ञान और कर्म मार्ग का समन्वय, भौतिकवाद के प्रति अनास्था, पुनर्जन्म में विश्वास, जीवन का लक्ष्य मोक्ष आदि का वास्तविक ज्ञान वैदिक साहित्य से ही होता है ।

---

१. विस्तृत विवरण के लिए देखें - लेखककृत ' संस्कृत -निबन्ध-शतकम्' में 'वेदानां महत्त्वम्' निबन्ध । पृष्ठ १ से ४

शास्त्रीय महत्त्व : 'सर्वज्ञानमयो हि सः' कहकर मनु ने वेदों को सभी विद्याओं का स्रोत बताया है । वेदों में दार्शनिक सिद्धान्त, राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, अध्यात्म, मनोविज्ञान, आयुर्वेद, गणित, भौतिकी, रसायनशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, जन्तुविज्ञान, प्रोद्योगिकी, वृष्टिविज्ञान, भूगर्भविज्ञान, अर्थशास्त्र, नाट्यशास्त्र, काव्यशास्त्र, कामशास्त्र और विविध कलाओं का सैकड़ों मन्त्रों में वर्णन है ।[१] वेदों के अध्यात्म और दार्शनिक तत्त्वों को लेकर ही विविध उपनिषदों और दर्शनशास्त्रों की सृष्टि हुई है ।

आचार-संहिता : वेद मानवमात्र के कर्तव्य-बोध के लिए सबसे प्रामाणिक धर्मग्रन्थ हैं । इनमें कर्तव्याकर्तव्य का यथास्थान विस्तृत वर्णन और प्रतिपादन है । इनमें गुरु-शिष्य, पिता-पुत्र, पति-पत्नी, माता-पिता, समाज और व्यक्ति, राष्ट्र और राष्ट्रीयता, विश्वबन्धुत्व, परोपकार, उद्योग, दान-पुण्य, सत्कर्म एवं अतिथि-सत्कार आदि का विस्तृत विवरण मिलता है ।

सामाजिक महत्त्व : प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति तथा समाज का विशद चित्रण वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है । ऋग्वेद और अथर्ववेद में तत्कालीन समाज और सभ्यता का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है । यजुर्वेद (अध्याय ३०, मंत्र ५ से २२) में ५० से अधिक व्यवसायों का उल्लेख मिलता है । व्यवसायों से संबद्ध जातियों के नाम तथा उनके कर्मों का भी वर्णन है ।[२] संक्षेप में ब्राह्मण आदि के कर्तव्यों का वर्णन किया गया है कि ब्राह्मण का कर्तव्य है ज्ञानार्जन, क्षत्रिय का रक्षा-कार्य, वैश्य का व्यापार-वाणिज्य और शूद्र का शिल्प एवं श्रमसाध्य कार्य ।

ब्रह्मणे ब्राह्मणम्, क्षत्राय राजन्यम् , मरुद्भ्यो वैश्यम् ,
तपसे शूद्रम् । यजु० ३०.५

आर्थिक महत्त्व : वेदों में प्राचीन अर्थव्यवस्था का विशद चित्रण प्राप्त होता है । वेदों में कृषि, आदान-प्रदान की व्यवस्था, व्यापार और वाणिज्य का स्वरूप, विविध धातुएँ, नाप-तोल के साधन, प्रचलित मुद्राएँ, विविध शिल्प, अन्न वस्त्र आदि का क्रय-विक्रय, ऋणदान आदि से संबद्ध सामग्री प्राप्त होती है ।[३] व्यापार में सफलता के लिए दो गुणों की आवश्यकता बताई गयी है । **१. चरित :** चरित्र की शुद्धि एवं व्यवहार-कुशलता । **२. उत्थित :** श्रम, दृढ़ निश्चय और उत्साह । अर्थशास्त्र का मूलमंत्र है - आदान-प्रदान, लेन-देन । यजुर्वेद के एक मंत्र में इसका सुन्दर प्रतिपादन है ।

(क) शुनं नो अस्तु चरितमुत्थितं च । अथर्व० ३.१५.४
(ख) देहि मे ददामि ते, नि मे धेहि नि ते दधे ।
निहारं च हरासि मे, निहारं नि हराणि ते ।। यजु० ३.५०

---

१. विज्ञान-विषयक सामग्री के लिए देखें - लेखक - कृत 'वेदों में विज्ञान' ग्रन्थ ।

२. शिल्प एवं विविधवृत्तियों के विवरण के लिए देखें - लेखक - कृत 'अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन' पृ० १५८-१७८

३. विस्तृत विवरण के लिए देखें - लेखक - कृत "अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन' पृ० १२३-१९३

राजनीतिक महत्त्व : वेदों में राजनीतिशास्त्र से संबद्ध सामग्री बहुलता से उपलब्ध है ।[1] इनमें विशेष उल्लेखनीय विषय हैं – राज्य की उत्पत्ति के सिद्धान्त, राज्य का स्वरूप उद्देश्य और कार्य, राज्य के विविध अंग, राजा का निर्वाचन, राजा के कर्तव्य, संविधान और विधिनिर्माण, विविध शासन-प्रणालियाँ, राज्य के संचालक, सभा, समिति, विदथ, संसद् आदि संस्थाएँ, न्याय और दण्डविधान, गुप्तचर-व्यवस्था, सैन्य व्यवस्था, अर्थव्यवस्था , कर-निर्धारण, शस्त्रास्त्र आदि । प्रजा के कर्तव्य आदि का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि वह राष्ट्र की रक्षा के लिए सदा जागरूक रहे ।

वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः स्याम । यजु० ९.२३

प्रजातंत्रीय राज्यशासन सर्वोत्तम है ।

महते जानराज्याय० । यजु० ९.४०

राजा का निर्वाचन होता था ।

विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु । अथर्व० ६.८७.१

त्वां विशो वृणतां राज्याय । अथर्व० ३.४.२

सभा, समिति और संसद् की स्थापना ।

सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ० । अथर्व० ७.१२.१

सप्त संसदः । अथर्व० २०.११०.२

ऐतिहासिक महत्त्व : वेदों में ऐतिहासिक महत्त्व की सामग्री भी प्राप्त होती है । जैसे – नदियों के नाम, इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि० (ऋग्० १०.७५.५)। दाशराज्ञ युद्ध (ऋग्० ७.८३.६ से ९ । ७.१८.१-२५), दश राजानः समिता अयज्यवः० (ऋग्० ७.८३.७) । पंचजनाः (ऋग्० १०.५३.४), तुर्वशं यदुम् (ऋग्० ९.६१.२) । विभिन्न जातियों के नाम (यजु० ३०.५ से २२) ।

भाषावैज्ञानिक महत्त्व : संसार के सभी विद्वानों ने स्वीकार किया है कि विश्व वाङ्मय में ऋग्वेद ही सबसे प्राचीन ग्रन्थ है । भाषावैज्ञानिक अध्ययन के लिए वेदों को ही आधार माना जाता है । इनसे ही तुलनात्मक अध्ययन करके तुलनात्मक भाषाविज्ञान का विकास हुआ है । वैदिक भाषा का ग्रीक, लेटिन, अवेस्ता आदि से तुलनात्मक अध्ययन करके भाषाओं के विकास की परम्परा का स्पष्ट ज्ञान होता है ।

काव्यशास्त्रीय एवं साहित्यिक महत्त्व : वेदों में अनुप्रास, यमक, रूपक, अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का अनेक मंत्रों में प्रयोग प्राप्त होता है । जैसे - यमक का प्रयोग, कविभिर्निर्मितां मिताम् (अथर्व० ९.३.१९) । ऋग्वेद के उषःसूक्त में उषा का एक अत्यन्त सुन्दरी युवती और पत्नी के रूप में चित्रण है । उदय होती हुई उषा एक सुन्दरी के तुल्य अपने वस्त्रों को चारों ओर फैलाती है ।

अव स्यूमेव चिन्वती मघोन्युषा याति स्वसरस्य पत्नी ।
स्वर्जनन्ती सुभगा सुदंसा आन्ताद् दिवः पप्रथ आ पृथिव्याः ।।

ऋग्० ३.६१.४

---

१. विस्तृत विवरण के लिए देखें - लेखक कृत 'वेदों में राजनीतिशास्त्र' ग्रन्थ ।

उषा का एक प्रेमिका के रूप में वर्णन करते हुए कहा गया है कि वह सूर्यरूपी पति से मिलने के लिए मुस्कराती हुई और अपने वक्षःस्थल को अनावृत करती हुई सूर्य की ओर जाती है ।

कन्येव तन्वा शाशदानाँ एषि देवि देवमियक्षमाणम् ।
संस्मयमाना युवतिः पुरस्ताद् आविर्वक्षांसि कृणुते विभाती ।।

ऋग्० १.१२३.१०

वेदों में वैज्ञानिक तत्त्व : वेदों में भौतिकी, रसायनशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, जन्तुविज्ञान, गणितशास्त्र, पर्यावरण, वृष्टिविज्ञान, भूगर्भविज्ञान, आयुर्वेद आदि की दृष्टि से सहस्रों मन्त्र विद्यमान हैं ।[१] श्री मधुसूदन ओझा, गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, मोतीलाल शास्त्री, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल आदि विद्वानों ने वेदों में विद्यमान वैज्ञानिक तत्त्वों की ओर ध्यान आकृष्ट किया है । डा० वी०के० वर्मा (विलासपुर) ने भौतिक विज्ञान की दृष्टि से वेदों का अध्ययन किया है ।[२] महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वेदों को सभी सत्य विद्याओं का स्रोत बताया है ।[३] डा० डी०डी० मेहता और आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री ने वेदों में विविध विज्ञानों का विस्तृत वर्णन किया है ।[४] डा० वी०जी० रेले ने वैदिक देवों को जीवविज्ञान के तत्त्वों के रूप में प्रतिपादित किया है ।[५]

वेदों का शास्त्रीय महत्त्व : शतपथ ब्राह्मण में ऋग्, यजुः, साम और अथर्व इन चारों वेदों के अध्ययन का अनन्त पुण्य बताया गया है । सारी पृथ्वी के दान से भी बढ़कर प्रतिदिन वेद के अध्ययन का महत्त्व बताया है । इससे योगक्षेम, प्राण, ऐश्वर्य, अन्नसमृद्धि आदि की प्राप्ति का उल्लेख किया है ।

यावन्तं ह वा इमां पृथिवीं वित्तेन पूर्णां ददत् लोकं जयति, त्रिस्तावन्तं जयति, भूयांसं चाक्षय्यम् , य एवं विद्वान् अहरहः स्वाध्यायमधीते । तस्मात् स्वाध्यायोऽध्येतव्यः । शत०ब्रा० ११.५.६.३ से ७

---

१. विस्तृत विवरण के देखें लेखककृत 'वेदों में विज्ञान' ग्रन्थ ।
२. डा० वी०के० वर्मा, वैदिक सृष्टि-उत्पत्ति-रहस्य (दो भाग), विलासपुर
३. स्वामी दयानन्द सरस्वतीकृत - 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' ग्रन्थ ।
4. (a) Positive Sciences in the Vedas, *Dr. D.D. Mehta.* 1974
   (b) Science in the Vedas, *Acharya V.N. Shastri.* 1970
5. The Vedic Gods, as Figures of Biology, *Dr. V.G. Rele*, 1931

३. वैदिक साहित्य का विभाजन

वैदिक साहित्य को सुविधा की दृष्टि से चार भागों में बाँटा जाता है : (१) वेदों की संहिताएँ, (२) ब्राह्मण ग्रन्थ, (३) आरण्यक ग्रन्थ, (४) उपनिषद् ।

वैदिक संहिताएँ : वेदों की चार संहिताएँ हैं : ऋग्वेद संहिता, यजुर्वेद संहिता, सामवेद संहिता और अथर्ववेद संहिता । संहिता का अर्थ है - परः संनिकर्षः संहिता (अष्टा० १.४.१०९) पदों का संधि आदि के द्वारा समन्वित रूप । व्याकरण की दृष्टि से प्रयोग के योग्य पद-समूह को संहिता कहा जाता है । इस दृष्टि से मंत्रभाग को संहिता कहते हैं ।

चार ऋत्विक् : चार वेदों के अनुसार यज्ञ में चार ऋत्विक् (ऋत्विज्) होते हैं : होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा । होता यज्ञ में ऋग्वेद की ऋचाओं का पाठ करता है, अतएव ऋग्वेद को होतृवेद भी कहते हैं । अध्वर्यु यजुर्वेद के मंत्रों का पाठ करता है । यही यज्ञ भी करता है और यज्ञ में घृत आदि की आहुति देता है । उद्गाता सामवेद के मंत्रों का गान करता है । ब्रह्मा यज्ञ का संचालन करता है, वही यज्ञ का अधिष्ठाता और निर्देशक होता है । ऋग्वेद के एक मंत्र में चारों ऋत्विजों के कर्मों का निर्देश है ।

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान्, गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु ।
ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां यज्ञस्य मात्रां विमिमीत उ त्वः ।।

ऋग्० १०.७१.११

वैदिक वाङ्मय का द्विविध विभाजन : वर्ण्य विषय की दृष्टि से समस्त वैदिक वाङ्मय को दो भागों में बाँटा जाता है : १. कर्मकाण्ड, २. ज्ञानकांड । वेदों और ब्राह्मण ग्रन्थों को कर्मकाण्ड के अन्तर्गत रखा जाता है, क्योंकि इनमें विविध यज्ञों के कर्मकाण्ड की पूरी प्रक्रिया दी गयी है । वेदों में यज्ञिय कर्मकाण्ड से संबद्ध मंत्र हैं और ब्राह्मण ग्रन्थों में उनकी विस्तृत व्याख्या है । ज्ञानकांड के अन्तर्गत आरण्यक ग्रन्थ और उपनिषदें हैं । आरण्यक ग्रन्थों में यज्ञिय क्रियाकलाप की आध्यात्मिक एवं दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत की गयी है । इसी आध्यात्मिक व्याख्या को आधार बनाकर उपनिषदों की सृष्टि हुई है । उपनिषदों में आध्यात्मिक और दार्शनिक तत्त्वों की समीक्षा की गयी है । इनमें ब्रह्म, ईश्वर, जीव, प्रकृति, मोक्ष आदि का वर्णन है । अतएव आरण्यक और उपनिषदों को ज्ञानकांड कहा जाता है ।

वेदांग : वेदों के ज्ञान के लिए सहायक ग्रन्थों को वेदांग कहा गया है । ये वेदों के व्याकरण, यज्ञों के कालनिर्धारण, शब्दों के निर्वचन, मंत्रों की पद्यात्मक रचना, यज्ञिय क्रियाकलाप का सांगोपांग विवेचन एवं मंत्रों के उच्चारण आदि विषयों से संबद्ध हैं । वेदांग ६ हैं : १. शिक्षा, २. व्याकरण, ३. छन्द, ४. निरुक्त, ५. ज्योतिष, ६. कल्प ।

शिक्षा व्याकरणं छन्दो निरुक्तं ज्योतिषं तथा ।
कल्पश्चेति षडङ्गानि वेदस्याहुर्मनीषिणः ।।

ये वेदांग सामान्यतया सूत्रशैली में लिखे गए हैं । इनका विवेचन आगे किया जायेगा ।

४. वेदों के संरक्षण के उपाय (अष्ट-विकृतियाँ)

अष्ट विकृतियाँ : वेद के मंत्रों के उच्चारण में तथा उनकी सुरक्षा में कोई अन्तर न आने पावे, इसके लिए अनेक उपाय अपनाए गए थे। इन उपायों को विकृतियाँ कहते थे। इनमें मंत्रों के पदों को घुमा-फिरा कर अनेक प्रकार से उच्चारण किया जाता था। ये विकृतियाँ ८ हैं। इनके नाम हैं : १. जटा-पाठ, २. माला, ३. शिखा, ४. रेखा, ५. ध्वज, ६. दण्ड, ७. रथ, ८. घन। इनमें घनपाठ सबसे कठिन और बड़ा होता है।

जटा माला शिखा रेखा, ध्वजो दण्डो रथो घनः।
अष्टौ विकृतयः प्रोक्ताः, क्रमपूर्वा महर्षिभिः।

तीन अन्य पाठ : उपरोक्त आठ विकृतियों के अतिरिक्त तीन पाठ और हैं : संहितापाठ, पदपाठ और क्रमपाठ।

वेदों की सुरक्षा के इन उपायों में से छह प्रकार मुख्य थे। तदनुसार यहाँ इनके उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं। **१. संहिता पाठ :** इसमें मंत्र अपने मूल रूप में रहता है। **२. पदपाठ :** इसमें मंत्र के प्रत्येक पद को पृथक् करके पढ़ा जाता है। यदि कोई संधि है तो उस संधि को तोड़ दिया जाता है। प्रत्येक पद अपने स्वतंत्ररूप में रहेगा। यदि संहितापाठ के चार पदों को कखगघ कहेंगे तो पदपाठ में इन्हें क ख ग घ कहेंगे। **३. क्रमपाठ :** इसमें पदों का यह क्रम रहता है : कख, खग, गघ। **४. जटापाठ :** इसमें पदों का यह क्रम रहता है : कख, खक, कख। खग, गख, खग। **५. शिखापाठ :** इसमें पदों का यह क्रम रहता है : कख, खक, कखग। खग, गख, खगघ। **६. घनपाठ :** इसमें पदों का यह क्रम रहता है : कख, खक, कखग , गखक, कखग। उदाहरण के रूप में यहाँ संहितापाठ और पदपाठ आदि दिए जा रहे हैं।

१. **संहितापाठ** : ओषधयः सं वदन्ते सोमेन सह राज्ञा। (ऋग्० १०.९७.२२)

२. **पदपाठ** : ओषधयः। सम्। वदन्ते। सोमेन। सह। राज्ञा।

३. **क्रमपाठ** : ओषधयः सम्। सं वदन्ते। वदन्ते सोमेन। सोमेन सह। सह राज्ञा। राज्ञेति राज्ञा।

४. **जटापाठ** : ओषधयः सम्, सम् ओषधयः, ओषधय सम्। सं वदन्ते, वदन्ते सम् , सं वदन्ते। इत्यादि।

५. **शिखापाठ** : ओषधयः सम् , सम् ओषधयः , ओषधयः सम् , वदन्ते। सं वदन्ते, वदन्ते सम् , सं वदन्ते, सोमेन। इत्यादि।

६. **घनपाठ** : ओषधयः सम् , सम् ओषधयः, ओषधयः सं वदन्ते। वदन्ते सम् ओषधयः।ओषधयः सं वदन्ते। इत्यादि।

इन अष्ट विकृतियों का लाभ यह हुआ कि सहस्रों वर्ष बीतने पर भी संहिताओं के मंत्रों में आज तक कोई प्रक्षेप, परिवर्तन आदि नहीं हुआ है। सभी मंत्र मूलरूप में अविकल सुरक्षित रहे हैं। इसके लिए सारा संसार वेदपाठी विद्वानों का ऋणी है और रहेगा। उनके प्रति जितनी कृतज्ञता प्रकट की जाए, कम है।

५. वैदिक वाङ्मय - सारणी

(१) ऋग्वेद-संहिता

(क) **शाखा** : १. शाकल, २. बाष्कल ।

(ख) **ब्राह्मण** : १. ऐतरेय, २. कौषीतकि (शांखायन) ब्राह्मण ।

(ग) **आरण्यक** : १. ऐतरेय, २. शांखायन आरण्यक ।

(घ) **उपनिषद्** : १. ऐतरेय, २. कौषीतकि, ३. बाष्कल मंत्रोपनिषद् ।

(ङ) **कल्पसूत्र** : (**श्रौतसूत्र**) १. आश्वलायन, २. शांखायन श्रौतसूत्र ।
(**गृह्यसूत्र**) १. आश्वलायन, २. शांखायन , ३. कौषीतकि (शाम्बव्य) गृह्यसूत्र ।(**अमुद्रित**) शौनक, भारवीय, शाकल्य, पैंगि, पराशर, बह्वृच, ऐतरेय गृह्यसूत्र ।

(२) (क) शुक्ल यजुर्वेद - संहिता

(क) **शाखा** : ,माध्यन्दिन (वाजसनेयि), २. काण्व ।

(ख) **ब्राह्मण** : शतपथ ब्राह्मण ।

(ग) **आरण्यक** : बृहदारण्यक ।

(घ) **उपनिषद्** : १. ईशोपनिषद्, २. बृहदारण्यक उपनिषद् ।

(ङ) **कल्पसूत्र** : (**श्रौतसूत्र**) कात्यायन श्रौतसूत्र । (**गृह्यसूत्र**) पारस्कर गृह्यसूत्र ।
(**शुल्बसूत्र**) १. बौधायन, २. मानव, ३. आपस्तम्ब, ४. कात्यायन, ५. मैत्रायणीय, ६. हिरण्यकेशि (सत्याषाढ), ७. वाराह शुल्बसूत्र ।

(ख) कृष्ण यजुर्वेद-संहिता

(क) **शाखा** : १. तैत्तिरीय, २. मैत्रायणीय, ३. कठ (काठक), ४. कपिष्ठल-कठ ।

(ख) **ब्राह्मण** : तैत्तिरीय ब्राह्मण ।

(ग) **आरण्यक** : तैत्तिरीय आरण्यक ।

(घ) **उपनिषद्** : १. तैत्तिरीय, २. कठ, ३. श्वेताश्वतर, ४. मैत्रायणी (मैत्री), ५. महानारायण उपनिषद् ।

(ङ) **कल्पसूत्र** : (**श्रौतसूत्र**) १. बौधायन, २. वाधूल, ३. मानव, ४. भारद्वाज, ५. आपस्तम्ब, ६. काठक, ७. सत्याषाढ, ८. वाराह, ९. वैखानस श्रौतसूत्र ।
(**गृह्यसूत्र**) १. बौधायन, २. मानव, ३. भारद्वाज, ४. आपस्तम्ब, ५. काठक, ६. आग्निवेश्य, ७. हिरण्यकेशि, ८. वाराह, ९. वैखानस, १०. चारायणीय, ११. बैजवाप गृह्यसूत्र ।
(**शुल्बसूत्र**) शुक्ल-यजुर्वेद-वत् ।

(ग) सामवेद-संहिता

(क) **शाखा :** १. कौथुम, २. राणायनीय, ३. जैमिनीय ।
(ख) **ब्राह्मण :** (**कौथुमीय**) १. तांड्य महाब्राह्मण (पंचविंश या प्रौढ) । २. षड्विंश ब्राह्मण (एवं अद्भुत ब्राह्मण), ३. सामविधान, ४. आर्षेय, ५. मंत्र (या उपनिषद्), ६. देवताध्याय, ७. वंश, ८. संहितोपनिषद् ब्राह्मण ।
(**जैमिनीय**) १. जैमिनीय (आर्षेय), २. जैमिनीय तलवकार, ३. जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण ।
(ग) **आरण्यक :** x
(घ) **उपनिषद् :** १. छान्दोग्य, २. केन उपनिषद् ।
(ङ) **कल्पसूत्र :** (**श्रौतसूत्र**) १. आर्षेय (या मशक) कल्पसूत्र, २. क्षुद्र कल्पसूत्र, ३. जैमिनीय श्रौतसूत्र, ४. लाट्यायन श्रौतसूत्र, ५. द्राह्यायण श्रौतसूत्र, ६. निदान सूत्र, ७. उपनिदान सूत्र ।
(**गृह्यसूत्र**) : १. गोभिल, २. कौथुम, ३. खादिर, ४. द्राह्यायण, ५. जैमिनीय गृह्यसूत्र । (**अप्रकशित**), ६. गौतम, ७. छान्दोग्य, ८. छन्दोग गृह्यसूत्र ।

(घ) अथर्ववेद संहिता

(क) **शाखा :** १. शौनक, २. पैप्पलाद ।
(ख) **ब्राह्मण :** गोपथ ब्राह्मण ।
(ग) **आरण्यक :** x
(घ) **उपनिषद् :** १. प्रश्न, २. मुण्डक, ३. माण्डूक्य उपनिषद् ।
(ङ) **कल्पसूत्र :** (**श्रौतसूत्र**) वैतान श्रौतसूत्र ।
(**गृह्यसूत्र**) कौशिक सूत्र ।

धर्मसूत्र (सभी वेदों से संबद्ध)

(क) **प्राचीन :** १. गौतम धर्मसूत्र, २. बौधायन धर्मसूत्र, ३. आपस्तम्ब धर्मसूत्र।
(ख) **गौण :** १. वासिष्ठ (वसिष्ठ) धर्मसूत्र, २. हारीत, ३. हिरण्यकेशि, ४. शंखलिखित, ५. वैखानस, ६. विष्णु धर्मसूत्र ।
(ग) **अन्य धर्मसूत्रकार :** १. अत्रि, २. उशनस्, ३. कण्व, ४. कश्यप, ५. गार्ग्य, ६. च्यवन, ७. जातूकर्ण्य, ८. देवल, ९. पैठीनसि, १०. बृहस्पति, ११. भारद्वाज, १२. सुमन्तु ।

वेदों के उपवेद

चारों वेदों के ये उपवेद माने जाते हैं :

१. ऋग्वेद : आयुर्वेद । **२. यजुर्वेद :** धनुर्वेद । **३. सामवेद :** गान्धर्ववेद ।
४. अथर्ववेद : १. इतिहास, २. पुराण, ३. स्थापत्य, ४. सर्पवेद, ५. पिशाचवेद, ६. असुरवेद ।

६. वेद अपौरुषेय हैं या पौरुषेय

वेदों के विषय में प्रश्न उठाया गया है कि ये किसी पुरुष या ऋषि के द्वारा बनाये गए हैं या ईश्वरीय ज्ञान हैं, अतः अपौरुषेय हैं । भारतीय दर्शनों में इस विषय पर बहुत विचार हुआ है । उसकी संक्षिप्त रूपरेखा दी जा रही है ।

वेद अपौरुषेय हैं : वेदों का रचयिता कोई व्यक्तिविशेष या ऋषि नहीं है । सृष्टि के आदि में परमात्मा ने जिस प्रकार लोकानुग्रह के लिए सूर्य, चन्द्र, जल, वायु आदि दिए हैं, उसी प्रकार मानवमात्र के मार्गदर्शनार्थ वेदों का ज्ञान परमसिद्ध ऋषियों को दिया । उन्होंने उस ज्ञान का प्रसार किया । जिस-जिस ऋषि ने जिन मंत्रों का साक्षात्कार और प्रचार किया, उस मंत्र के साथ उसका नाम स्मृतिचिह्न के रूप में रखा गया है ।

ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, शतपथ ब्राह्मण एवं बृहदारण्यक उपनिषद् आदि में वर्णन प्राप्त होता है कि चारों वेद उस परमात्मा से ही प्राप्त हुए हैं । उसने ही अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा ऋषियों को क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद का ज्ञान दिया । ऋग्वेद और यजुर्वेद का कथन है कि उस विराट् पुरुष से ऋक्, यजुः, साम और छन्द (अथर्ववेद) उत्पन्न हुए ।[१] अथर्ववेद का कथन है कि चारों वेद विश्व के आधार भूत ईश्वर (स्कम्भ) से प्रादुर्भूत हुए ।[२] शतपथ ब्राह्मण और बृहदारण्यक उपनिषद् का कथन है कि ये चारों वेद उस ब्रह्म के श्वास-रूप हैं ।[३] श्वेताश्वतर उपनिषद् का कथन है कि सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा उत्पन्न हुए और परमात्मा ने उनके लिए वेदों का ज्ञान प्रकट किया।[४]

मनु को भी अपौरुषेयत्व अभिमत है, अतः उन्होंने कहा है कि परमात्मा ने अग्नि, वायु और सूर्य के द्वारा नित्य ऋक् , यजुः और सामवेद को प्रकट किया ।[५]

---

१. तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ।।
ऋग्० १०.९०.९ । यजु० ३१.७ । अ० १९.६.१३

२. यस्माद् ऋचो अपातक्षन् ,. यजुर्यस्मादपाकषन् ।
सामानि यस्य लोमानि - अथर्वाङ्गिरसो मुखम्० । अथर्व० १०.७.२०

३. एवं वा अरे अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यद्
ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो अथर्वाङ्गिरसः।
शत०ब्रा० १४.५.४.१० । बृहदा०उप० ४.५.११

४. यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं, यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।
श्वेताश्व० उप० ६.१८

५. अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् ।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थम् ऋग्यजुःसामलक्षणम् ।। मनु० १.२३

शतपथ ब्राह्मण और बृहदारण्यक उपनिषद् में एक महत्त्वपूर्ण बात यह कही गयी है कि जिस प्रकार सारे जलों का आधार समुद्र है, उसी प्रकार सारे ज्ञान का आधार वाग्ब्रह्म है । सारे वेदों का ज्ञान उस वाग्ब्रह्म से ही प्रदुर्भूत हुआ है, अर्थात् ज्ञान का आदिस्रोत ब्रह्म है । सृष्टि के आदि में उस सर्वज्ञ ब्रह्म से ही वेदज्ञानरूपी सरिता प्रवाहित हुई है ।[६]

ऋग्वेद भी वेदों की नित्यता और अपौरुषेयता का प्रतिपादन करता है । ऋग्वेद का कथन है कि वेदरूपी वाणी विभिन्न रूपों वाली है और नित्य है ।

वाचा विरूपनित्यया । ऋग्० ८.७५.६

निरुक्तकार आचार्य यास्क का कथन है कि ऋषियों ने वेदों का प्रातिभ चक्षु से साक्षात्कार किया । वे वेदों के वस्तुतः कर्ता नहीं हैं ।

साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः । निरुक्त १.२०

इसीलिए ऋषि की व्याख्या की गयी है - 'ऋषिर्दर्शनात्' अर्थात् ऋषियों ने मंत्रों का दर्शन किया है ।

मीमांसादर्शन और वेदान्त दर्शन अपौरुषेयत्व के समर्थक है । मीमांसदर्शन में अपौरुषेयत्व मत की समीक्षा भी की गयी है और प्रश्नोत्तर के रूप में पक्ष-विपक्ष की युक्तियों का संकलन भी किया गया है ।

पूर्वपक्ष में कहा गया है कि :

१. वेद मनुष्यकृत हैं, जैसे कालिदास आदि के गन्थ ।[७]

२. इसमें अनित्य व्यक्तियों के नाम आदि मिलते हैं । जैसे - ' बबरः प्रावाहणिरकामयत' (तैत्ति० सं० ७.१.१०.२) अर्थात् प्रवहण के पुत्र बबर ने कामना की ।[८]

इसका उत्तर देते हुए कहा गया है कि वेद अनादि और अपौरुषेय हैं । कठ, कुथुम, तित्तिरि आदि ऋषियों से ये पूर्व में विद्यमान थे, अतः प्रवचन-कर्ता अर्थात् इन शाखाओं के प्रचार के कारण इन संहिताओं को काठक, कौथुम एवं तैत्तिरीय आदि संहिता कहते हैं ।

आख्या प्रवचनात् । मी० सूत्र १.१.३०

दूसरे प्रश्न के विषय में कहा गया है कि बबर आदि शब्द किसी व्यक्ति के वाचक नहीं है । यहाँ प्रवहण अर्थात् वायु के पुत्र का संकेत है और उसकी 'भर-भर' ध्वनि के लिए बबर शब्द हैं ।

परं तु श्रुति सामान्य-मात्रम् । मी०सूत्र १.१.३१

---

६. यथा सर्वासाम् अपां समुद्र एकायनम् ... एवं सर्वेषां वेदानां वागेकायनम् ।
बृहदा० ४.५.१२ । शत०ब्रा० १४.५.४.११

७. वेदांश्चैके संनिकर्षं पुरुषाख्या । मीमांसासूत्र १.१.२७

८. अनित्यदर्शनाच्च । मीमांसा० १.१.२८

वेदान्त दर्शन और सांख्यदर्शन भी वेदों के स्वतःप्रामाण्य और अपौरुषेयत्व के समर्थक हैं । वेदान्त परमात्मा को वेदज्ञान का कारण या आधार मानता है । सांख्यदर्शन का कथन है कि वेद अपनी शक्ति पर निर्भर हैं । उनके प्रतिपादित विषयों के लिए किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं है , अतः वे स्वतःप्रमाण हैं ।

शास्त्रयोनित्वात् । ब्रह्मसूत्र १.१.२

निजशक्त्यभिव्यक्तः स्वतः प्रामाण्यम् । सांख्यसूत्र ५.५१

महाभारत का कथन है कि वेद नित्य हैं । प्रलय होने पर वे अन्तर्धान हो जाते हैं । पुनः नई सृष्टि होने पर ऋषिगण अपने प्रातिभ चक्षु से उन वेदों का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं ।

युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः ।
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाता स्वयंभुवा ।। महा०वनपर्व

न्याय और वैशेषिक दर्शन ईश्वर को वेद का प्रणेता मानते हैं । उनका कथन है कि वेदों में सार्थक ज्ञान की बातें कही गई हैं । इसलिए इनका कर्ता कोई ज्ञानवान् या सर्वज्ञ होना चाहिए । परमात्मा ही सर्वोत्कृष्ट या ज्ञानवान् है, अतः वह सर्वज्ञ पुरुष वेदों का कर्ता है । उसने पश्यन्ती या मध्यमा वाणी का आश्रय लेकर ऋषियों के हृदय में वेदों का ज्ञान प्रकट कर दिया । उन्होंने वैखरी वाणी का आश्रय लेकर अपने शिष्यों और प्रशिष्यों को यह वेदज्ञान दिया । इस प्रकार वेदों का प्रचार हुआ ।

बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे । वैशेषिक० ६.१.१

नैयायिक और वैशेषिक दर्शन वाले वेदों को पौरुषेय कहते हुए पुरुष शब्द से ईश्वर का ग्रहण करते हैं और प्रकारान्तर से अपौरुषेय या ईश्वरीय वाणी मानते हैं । ईश्वर आप्त (प्रामाणिक व्यक्ति) है, अतः आप्त वाक्य होने के कारण वेद प्रामाणिक हैं, यही वैशेषिक दर्शन भी कहता है कि ईश्वरीय वाक्य होने के कारण वेद प्रामाणिक है ।

मन्त्रायुर्वेद-प्रामाण्यवच्च तत् प्रामाण्यम्, आप्तप्रामाण्यात् ।

न्याय० २.१.६८

तद्वचनाद् आम्नायस्य । वैशेषिक सूत्र १.१.३

इस प्रकार न्याय और वैशेषिक का पौरुषेयत्व ईश्वरीय ज्ञान ही हुआ ।

तृतीय मत है कि ऋषिगण वेदों के मंत्रों के कर्ता हैं और वेदों में मंत्रों के साथ यथास्थान उनके नाम का निर्देश है । साथ ही वे यह भी स्वीकार करते हैं कि ऋषियों को जो ज्ञान प्राप्त हुआ, वह ईश्वर के अनुग्रह से ही हुआ है । आदि ज्ञानदाता परमात्मा या ईश्वर ही है , वही ज्ञान का आदि-स्रोत है । ऋग्वेद, तैत्तिरीय ब्राह्मण, जैमिनीय ब्राह्मण आदि में ऋषियों के लिए 'मन्त्रकृत्' और 'मन्त्रपति' शब्दों का प्रयोग मिलता है । जैमिनीय ब्राह्मण में मन्त्रकृत् नारियों का भी उल्लेख मिलता है । तैत्तिरीय ब्राह्मण का कथन है कि ऋषियों ने तपस्या और श्रम से दैवी वाणी (वेद) का अन्वेषण किया । हम

उसकी आराधना करते हैं । तैत्तिरीय ब्राह्मण में ही अन्यत्र मन्त्रकृत् और मन्त्रपति ऋषियों को नमस्कार किया है ।

(क) ऋषे मन्त्रकृतां स्तोमैः । ऋग्० ९.११४.२

(ख) यामृषयो मन्त्रकृतो मनीषिणः अन्वैच्छन् देवास्तपसा श्रमेण । तां दैवीं वाचं हविषा यजामहे० । तैत्ति० ब्रा० २.७.७

(ग) नम ऋषिभ्यो मन्त्रकृद्भ्यो मन्त्रपतिभ्यः । तैत्ति०ब्रा० ४.१.१

(घ) स्त्रियो मन्त्रकृतः । जैमि० ब्रा० २.२२०

उपयुक्त तीनों मत यह मानते हैं कि मनुष्य को सर्वप्रथम ज्ञान परमात्मा से ही प्राप्त हुआ है । ज्ञान ईश्वरीय है । ऋषियों ने अपनी प्रतिभा से उस ज्ञान को ग्रहण किया। यह है - ईश्वरीय ज्ञान (Divine Knowledge) । ऋषिगण अपनी उच्च साधना में ऐसा ईश्वरीय संकेत, निर्देश या मंत्र प्राप्त करते रहते हैं । योगदर्शन के शब्दों में ऋषियों को जब ऋतंभरा प्रज्ञा प्राप्त हो जाती है तो वे ईश्वरीय संकेत (मंत्र) प्राप्त करते रहते हैं । ये ईश्वरीय संकेत सार्वजनीन या सर्वलोककल्याणार्थ होते हैं । इसी को ऋषिगण स्थूल वैखरी वाणी का प्रयोग करके मंत्र का रूप देते हैं । ऋषियों द्वारा ईश्वरीय संकेतों को ग्रहण कराना 'मन्त्र-दर्शन' है और ऋषित्व है । उसको स्थूल रूप में या व्यक्तवाणी में प्रकट करना ही 'मन्त्रकर्तृत्व' है । इसी दृष्टि से ऋषियों को कहीं मन्त्रद्रष्टा कहा गया है और कहीं मन्त्रकर्ता । भाव एक ही है, केवल शब्दों का अन्तर है । इसी आधार पर मंत्रों में पद-परिवर्तन, क्रम-परिवर्तन आदि मिलते हैं । इसी आधार पर चारों वेदों के शाखाभेद हुए हैं ।

७. मंत्र सार्थक हैं या निरर्थक

आचार्य यास्क ने निरुक्त (१.१५) में एक रोचक प्रसंग उठाया है कि वेदों के मंत्र सार्थक हैं या निरर्थक । कौत्स का मत प्रस्तुत किया है कि वेदमंत्र निरर्थक हैं । इसके लिए ७ तर्क दिये गए हैं । तत्पश्चात् आचार्य यास्क ने सिद्धान्त पक्ष रखा है कि मंत्र सार्थक हैं । ये तर्क और उत्तर संक्षेप में ये हैं :

पूर्वपक्ष : मंत्र निरर्थक हैं । उसके ये कारण हैं : **अनर्थका हि मन्त्राः**, (निरुक्त १.१५) ।

(१) वेदमंत्रों का पदक्रम नियत है, शब्द भी नियत हैं । यदि मंत्र सार्थक होते तो उनका क्रम बदला जा सकता था और एक शब्द के स्थान पर दूसरा पर्यायवाची शब्द रखा जा सकता था । परन्तु ऐसा संभव नहीं है । जैसे -अग्निम् ईले पुरोहितम् (ऋग्० १.१.१) में न क्रम बदल सकते हैं - ईले अग्निम् और न अग्निम् के स्थान पर वह्निम् रख सकते हैं, अतः मंत्र निरर्थक हैं ।

(२) मंत्रों का विनियोग ब्राह्मण ग्रन्थों के वाक्यों से किया जाता है । जैसे - 'उरु प्रथस्व' (यजु० १.२२) का विनियोग शतपथ ब्राह्मण के वाक्य (२.५.२०) के द्वारा

किया जाता है कि 'इति प्रथयति' इसको फैलावो । यदि मंत्र सार्थक होता तो ब्राह्मण ग्रन्थ के वाक्य द्वारा विनियोग की क्या आवश्यकता थी ?

(३) मंत्रों का अर्थ युक्तिसंगत नहीं है । 'ओषधे, त्रायस्व एनम्' (यजु० ४.१) हे ओषधि, तू बालक की उस्तरे से रक्षा कर । ओषधि (कुश या दूर्वा) स्वयं निर्जीव है, वह बालक की क्या रक्षा करेगी ? **(अनुपपन्नार्था मन्त्राः)**

(४) वैदिक मंत्रों में परस्पर विरोध है । रुद्र के विषय में एक मंत्र में कहा गया है कि – 'एक एव रुद्रोऽवतस्थे न द्वितीयः' (तैत्ति० सं० १.८.६.१) अर्थात् रुद्र एक ही है, दूसरा नहीं । दूसरे स्थान पर कहा गया है कि – 'असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम् ' (यजु० १६.५४) अर्थात् पृथ्वी पर असंख्य रुद्र हैं । इससे ज्ञात होता है कि मंत्रों में परस्पर विरोधी अर्थों का वर्णन है । **(विप्रतिषिद्धार्था मन्त्राः)**

(५) मंत्रों में अनावश्यक निर्देश हैं । जैसे – 'अग्नये समिध्यमानाय अनुब्रूहि' (तैत्ति० सं० ६.३.७.१) अर्थात् जलती हुई अग्नि से कहो । होता को अपने कर्म का ज्ञान है, उसे अनावश्यक रूप से संप्रेषण (आदेश) दिया जाता है ।

(६) मंत्रों में एक ही पदार्थ का नाना रूप में वर्णन है । जैसे – अदितिः सर्वम् । अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षम् (ऋग्० १.८९.१०) अर्थात् अदिति ही सब कुछ है । अदिति ही द्युलोक है, अदिति ही अन्तरिक्ष है । एक ही पदार्थ द्युलोक और अन्तरिक्ष कैसे हो सकता है ?

(७) मंत्रों के पदों का अर्थ स्पष्ट नहीं है **(अविस्पष्टार्था मन्त्राः)** जैसे – इन शब्दों का अर्थ स्पष्ट नहीं है – अम्यक् (ऋग्० १.१६९.३) । यादृश्मिन् (ऋग्० ५.४४.८) । जारयायि (ऋग्० ६.१२.४) । काणुका (ऋग्० ८.७७.४) । जर्भरी, तुर्फरी, पर्फरीका (ऋग्० १०.१०६.६) ।

यास्क का सिद्धान्त पक्ष : आचार्य यास्क ने पूर्वपक्ष में उठाए गए उपर्युक्त प्रश्नों का उत्तर बहुत सुन्दरता से दिया है । यास्क का मन्तव्य है कि मंत्र सार्थक हैं, जैसे लोकभाषा के शब्द, **(अर्थवन्तः शब्दसाम्यात्,** निरुक्त १.१६) । प्रश्नों के क्रमशः उत्तर ये हैं :

(१) लौकिक भाषा में भी निश्चित क्रम वाले प्रयोग मिलते हैं, जैसे – इन्द्राग्नी, पितापुत्रौ । इनमें क्रम नहीं बदला जा सकता है ।

(२) मंत्रों का विनियोग ब्राह्मण ग्रन्थों के वाक्यों से किया जाता है, यह विनियोग 'उदितानुवाद' है अर्थात् कथित का स्पष्टीकरणमात्र है ।

(३) 'ओषधि रक्षा करे' यह अनुचित नहीं है । इसमें व्यक्ति की यह भावना निहित है कि उस्तरे से बालक को कोई हानि न पहुँचे । यह वाक्य भावनात्मक प्रयोग है ।

(४) रुद्र एक होते हुए भी अनेक हैं । रुद्र एक महाशक्तिशाली देवता है । उसकी शक्ति का विस्तार ही अनन्तता है । यह रूपकात्मक वर्णन है ।

(५) मंत्रों में निर्देश अनावश्यक नहीं हैं । लोकव्यवहार में भी ऐसा होता है । अभिवादन के समय अपना नाम लेते हैं, यद्यपि वह व्यक्ति आपका नाम पहले से जानता

है । जानते हुए को भी मधुपर्क देते समय कहा जाता है कि – मधुपर्क लीजिए ।

(६) एक ही पदार्थ का नानारूप में वर्णन लोक में भी होता है । अदिति की सर्वव्यापकता को बताने के लिए उसे सब कुछ कहा गया है । अदिति ही द्युलोक, अन्तरिक्ष आदि सभी रूपों में है । जैसे – लोकभाषा में कहते हैं – जल जीवन है, जल में सारे रस हैं ।

(७) मंत्रों के अर्थ अस्पष्ट नहीं है । कोशग्रन्थों आदि से उनका अर्थ जानना चाहिए । अतएव शिक्षित और अशिक्षित में अन्तर होता है । ज्ञानी-अज्ञानी में यही अन्तर है । यास्क ने चुटकी लेते हुए कहा है कि यदि कोई अंधा व्यक्ति ठूंठ से ठोकर खाकर गिर पड़ता है तो यह ठूंठ का दोष नहीं है, यह पुरुष का दोष है । अर्थ अस्पष्ट है तो यह आपके अल्पज्ञान का फल है ।

नैष स्थाणोरपराधो यदेनमन्धो न पश्यति । पुरुषापराधः स भवति ।

निरुक्त १.१६

अस्पष्टार्थ पदों के अर्थ ये हैं : १. अम्यक् = प्राप्नोति (प्राप्त होता है) । **२. यादृश्मिन्** = यादृशे (जिस प्रकार के कार्य में) । **३. जारयायि** = स्तूयते (स्तुति किया जाता है, स्तुत्यर्थक जृ धातु का रूप है) । **४. काणुका** = कान्तानि (मनोरम सोमरसपूर्ण पात्रों को) । **५. जर्भरी** = भर्तारौ (भरण करने वाले) । **६. तुर्फरी** = हन्तारौ (शत्रुओं के नाशक) । **७. पर्फरीका** = शत्रूणां विदारयितारौ (शत्रुओं को छिन्न-भिन्न करने वाले) ।

८. वेदों की विभिन्न व्याख्या-पद्धतियाँ

वेदों के गूढ़ अर्थों को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न आचार्यों ने विभिन्न पद्धतियाँ अपनाई हैं । इनका संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है ।

(१) आचार्य यास्क : आचार्य यास्क प्रथम आचार्य हैं, जिन्होंने वेदों की व्याख्या के लिए आवश्यक नियमों का निर्देश किया है । प्रायः सभी परवर्ती आचार्यों ने यास्क के निर्देशों का पालन किया है । वेदों की व्याख्या करते समय इन नियमों का पालन करना चाहिए :

(क) मंत्रों की व्याख्या प्रकरण के अनुसार ही करनी चाहिए, पृथक् से नहीं ।[१]

(ख) मंत्रों की व्याख्या परम्परागत पद्धति के ज्ञान से करनी चाहिए । साथ ही उसमें तर्क या युक्तिसंगतता होनी चाहिए , अर्थात् वेदार्थ में परंपरागत अर्थ का ज्ञान आवश्यक है । वह युक्तिसंगत होना चाहिए ।[२]

(ग) वेदों में कुछ गूढ अर्थ छिपे हुए हैं, उन्हें आर्षदृष्टि (सूक्ष्म दृष्टि) से या कठिन परिश्रम से जाना जा सकता है ।[३]

---

१. न तु पृथक्त्वेन मन्त्रा निर्वक्तव्याः । प्रकरणश एव तु निर्वक्तव्याः । निरुक्त १३.१२
२. अयं मन्त्रार्थचिन्ताऽभ्यूहोऽभ्यूढः । अपि श्रुतितोऽपि तर्कतः। नि० १३.१२
३. न ह्येषु प्रत्यक्षमस्ति, अनृषेरतपसो वा । निरुक्त १३.१२

(घ) मंत्रों के तीन प्रकार के अर्थ होते हैं – १. आधिभौतिक (प्राकृतिक), २. आधिदैविक (देवविशेष से संबद्ध), ३. आध्यात्मिक (परमात्मा या जीवात्मा से संबद्ध) ।[1]

(ङ) मुख्य रूप से मंत्रों का प्रतिपाद्य एक परमात्मा ही है । विभिन्न गुणों और कर्मों के आधार पर उसके ही अन्य देवतावाचक नाम हैं ।[2] अर्थात् अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण आदि नाम उस परमात्मा के ही हैं । उसकी विभिन्न शक्तियों के वाचक ये नाम हैं ।[3]

(च) परंपरागत अर्थ का ज्ञान आवश्यक है ।[4] परंपरागत अर्थ जानने वाले को 'पारोवर्यवित्' कहते थे ।

(छ) वेदार्थ बहुत गूढ है, अतः वेद की व्याख्या में बहुत सावधानी अपेक्षित है । प्रयत्नपूर्वक गूढ अर्थ को स्पष्ट करना चाहिए ।[5]

आचार्य यास्क (लगभग ७०० ई०पू०) ने अपने समय में प्रचलित सभी व्याख्या-पद्धतियों का उल्लेख किया है । इनमें वैयाकरण (इति वैयाकरणाः, व्याकरण के अनुसार व्याख्या करने वाले), याज्ञिक (यज्ञप्रक्रिया वाले), ऐतिहासिक (इतिहास मानने वाले), नैरुक्त (निरुक्त प्रक्रिया वाले, आधिदैवत अर्थ मुख्यतः मानने वाले), आध्यात्मिक व्याख्या वाले (परिव्राजक) आदि मुख्य हैं । सायण, उव्वट, महीधर आदि ने इन्हीं पद्धतियों का आश्रय लिया है । इनकी व्याख्या के केन्द्र में प्रधानरूप से यज्ञिय-प्रक्रिया रही है ।

(२) आचार्य सायण : वेदों की व्याख्या करने वाले आचार्यों में आचार्य सायण का स्थान अग्रगण्य है । वे अकेले ऐसे आचार्य हैं, जिन्होंने सभी वेदों तथा ब्राह्मण-ग्रन्थों आदि की भी व्याख्या की है । उन्होंने परम्परागत शैली को अपनाया है तथा यज्ञ-प्रक्रिया को सर्वत्र प्रधानता दी है । उन्होंने ब्राह्मण-ग्रन्थों और सूत्रग्रन्थों आदि को आधार बनाया है । निरुक्त की व्याख्या को भी अपनाया है । स्थान-स्थान पर आध्यात्मिक और दार्शनिक व्याख्या भी की है । वे वेदों में इतिहास मानते हैं । वेदों को अपौरुषेय और नित्य मानते हैं । लौकिक इतिहास मानने के कारण स्वामी दयानन्द जी ने इनकी कटु आलोचना की है । पाश्चात्त्य विद्वानों का आक्षेप है कि परवर्ती शंकराचार्य

---

१. तास्त्रिविधा ऋचः । परोक्षकृताः, प्रत्यक्षकृताः, आध्यात्मिक्यश्च । नि० ७.१
२. माहाभाग्याद् देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते । नि० ७.४
३. तासां माहाभाग्याद् एकस्या अपि बहूनि नामधेयानि भवन्ति । नि० ७.५
४. परोवर्यवित्सु तु खलु वेदितृषु भूयोविद्यः प्रशस्यो भवति । नि० १.१६
५. गम्भीरपदार्थो वेदः । निरुक्त के टीकाकार दुर्गाचार्य ।

आदि द्वारा प्रतिपादित अद्वैत-सिद्धान्त आदि का वेदों की व्याख्या में उल्लेख काल-विपर्यस्तता दोष (Anachronism) है ।

प्रो० रुडोल्फ रोठ ने सायण की बहुत आलोचना की है और कई दोष निकाले हैं, परन्तु मैक्समूलर, विल्सन, गेल्डनर आदि विद्वान् सायण के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं और मानते हैं कि सायण के भाष्य के आधार पर ही वैदिक वाङ्मय में उनकी गति हो सकी है । वस्तुतः पाश्चात्त्य जगत् को वेदों का ज्ञान देने वाले आचार्य सायण ही हैं ।

(३) स्वामी दयानन्द सरस्वती : आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती आधुनिक युग में वेदों के पुनरुद्धारक माने जाते हैं । उन्होंने नैरुक्त-प्रक्रिया का आश्रय लेकर वेदों की नई व्याख्या प्रस्तुत की है । उन्होंने शुक्ल यजुर्वेद संपूर्ण की संस्कृत और हिन्दी में व्याख्या की है । ऋग्वेद की व्याख्या मंडल ७ के ८० सूक्त तक ही कर सके । असामयिक निधन से ऋग्वेद-भाष्य पूरा नहीं हो सका । महर्षि दयानन्द के मन्तव्य एवं भाष्य की मुख्य विशेषताएँ ये हैं : १. वेद ईश्वरीय ज्ञान है । उसमें सभी विद्याओं के सूत्र विद्यमान हैं । (२) वेद अपौरुषेय हैं, किसी ऋषि आदि की कृति नहीं हैं । ऋषियों ने मंत्रों का साक्षात्कार किया है और उनका प्रचार किया है, अतः वे विभिन्न मंत्रों के ऋषि कहे जाते हैं । (३) वेदों में नित्य इतिहास है, लौकिक इतिहास नहीं । (४) वेदों के मंत्र केवल यज्ञ-विषयक नहीं है, अपितु इनके विविध उपयोग हैं । (५) वेदों में विभिन्न देवों के नाम रूढ या व्यक्ति-विशेष के वाचक न होकर यौगिक हैं । देववाचक शब्द विभिन्न गुणों के बोधक हैं, अतः उन गुणों से युक्त राजा, विद्वान्, सेनापति आदि भी उनके अर्थ हो सकते हैं । (६) वेदों में विविध विज्ञानों से संबद्ध सूत्र उपलब्ध हैं । (७) वेदों में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं नैतिक विषयों का भी समावेश है । (८) वेदों में केवल धार्मिक शिक्षा ही नहीं है, अपितु भौतिक विज्ञान, आयुर्वेद, गणितशास्त्र एवं अन्य विज्ञानों से संबद्ध सूत्र विद्यमान हैं । (९) वेद धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूपी पुरुषार्थ-चतुष्टय के प्रतिपादक हैं । (१०) वेदों का यथार्थ ज्ञान नैरुक्त-प्रक्रिया के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है ।

कुछ विद्वानों ने स्वामी दयानन्द के भाष्य पर अर्थ में खींचातानी, स्वरप्रक्रिया का उचित ध्यान न रखना तथा एक ही मंत्र का विभिन्न स्थलों पर भिन्न-भिन्न अर्थ करना आदि दोष बताए हैं । इन आक्षेपों के उत्तर भी उनके समर्थकों द्वारा दिए गए हैं ।

(४) पं० मधुसूदन ओझा : महामहोपाध्याय पं० मधुसूदन ओझा वेदों की वैज्ञानिक व्याख्या करने वालों में अग्रगण्य हैं । उनका लन्दन में संस्कृत में दिया गया एक व्याख्यान बहुत प्रसिद्ध है - "अति नूत्नं, नहि नहि अतिप्रत्नं रहस्यम्' अर्थात् अति नवीन रहस्य, नहीं, अपितु यह अति प्राचीन रहस्य है । इस प्रकार उन्होंने वैदिक विज्ञान को अति प्राचीन रहस्य बताया है । यद्यपि उन्होंने किसी वेद या ब्राह्मण ग्रन्थ पर भाष्य

नहीं लिखा है , परन्तु संस्कृत में १०० से अधिक ग्रन्थ लिखे हैं । इनमें उन्होंने वैदिक परिभाषाओं को स्पष्ट किया है, जिससे वेदार्थ-ज्ञान सरल हो सके । उनकी शिष्य-परंपरा में विशेष उल्लेखनीय हैं - पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी और मोतीलाल शर्मा । पं० गिरिधर शर्मा जी ने ओझा जी के विचारों का सुन्दर प्रतिपादन अपने ग्रन्थ 'वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति' में किया है । श्री मोतीलाल शर्मा ने एक उच्चकोटि का ग्रन्थ 'दिग्देशकालमीमांसा' लिखा है ।

(५) डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : महामनीषी डा० अग्रवाल श्री ओझा जी की व्याख्या-पद्धति के अनुयायी हैं । आपने वेदविद्या, वेदरश्मि, उरुज्योति आदि ग्रन्थ हिन्दी में लिखे हैं और इंग्लिश् में " Vision in Long Darkness", Thousand syllabled speech, Vedic Lectures आदि ग्रन्थों के द्वारा वेदों की आध्यात्मिक और वैज्ञानिक व्याख्या की है । इनके द्वारा व्याख्यात कुछ विशेष वैदिक सन्दर्भ ये हैं : नासदीय सूक्त, सुपर्ण, हिरण्यगर्भ, इन्द्र, अग्नि, गायत्री, अज एकपाद्, गौरी, पुरुष प्रजापति, सोम, अंगिरस् अग्नि, सविता, मेधतत्त्व, अश्वत्थ, विराट् और वामन, काल, अमृत, गुहा, ऋत, सत्य, ज्योति, पूर्ण कुम्भ, प्रजापति-विद्या, सरस्वती । ये पं० रामदत्त शुक्ल (लखनऊ) को अपना वेद-गुरु मानते थे । उनकी प्रेरणा से ही ये वेद और पुराणों के गहन अध्ययन में प्रवृत्त हुए थे । लेखक को इन दोनों मनीषियों का शिष्य होने का गौरव प्राप्त है ।

(६) योगी अरविन्द : श्री अरविन्द घोष क्रान्तिकारी जीवन बिताने के बाद अरविन्द आश्रम, पांडिचेरी में योगसाधना में प्रवृत्त हुए । इन्होंने The secret of the Veda, Hymns to the mystic Fire, On the Veda " आदि ग्रन्थ वेदों पर लिखे हैं । इन्होंने स्वामी दयानन्द के इन विचारों की पुष्टि की है कि 'सर्वज्ञानमयो हि सः' (मनु० २.७) अर्थात् वेदों में सभी ज्ञान-विज्ञान के सूत्र विद्यमान हैं । इनकी दृष्टि रहस्यवादी है । ये वेदों में अध्यात्मविद्या के गूढ रहस्यों की उपस्थिति मानते हैं । वेद आध्यात्मिक अनुभूतियों के कोश हैं । उन्होंने कुछ शब्दों की व्याख्या इस प्रकार की है : १. इन्द्र प्रबुद्ध मन का देवता है, वृत्र अज्ञान या अविद्या का प्रतीक है । २. ऋत आध्यात्मिक सत्य है । ३. घृत घी ही नहीं, अपितु ज्ञान के प्रकाश का द्योतक है । ४. वैदिक देवता विश्वव्यापी शक्तियाँ हैं । ५. सरस्वती आन्तरिक ज्ञान को प्रबुद्ध करने वाली शक्ति का नाम है । इस प्रकार श्री अरविन्द ने वेदों की आध्यात्मिक एवं रहस्यवादी व्याख्या की है ।

(७) श्री सातवलेकर : वेदमूर्ति श्री पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर आधुनिक युग के सायण हैं । उन्होंने चारों वेदों, तैत्तिरीय संहिता, मैत्रायणी संहिता, काठक संहिता, दैवत संहिता आदि के विशुद्ध संस्करण निकाले हैं और चारों वेदों का हिन्दी में 'सुबोध भाष्य' प्रकाशित किया है । इनमें 'अथर्ववेद, सुबोध भाष्य' (५ खंडों में प्रकाशित) इनके

प्रकांड पाण्डित्य का द्योतक है। ये स्वामी दयानन्द के समर्थक हैं। इन्होंने अपने भाष्य में सायण का भी अनुसरण किया है। इनके ग्रन्थ हिन्दी, मराठी और गुजराती तीनों भाषाओं में प्रकाशित हुए हैं। ये राष्ट्रवादी दृष्टिकोण के समर्थक हैं। इन्होंने राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने के लिए अनेक लघु ग्रन्थ लिखे हैं। इनके ग्रन्थों की संख्या १०० से अधिक है। १०२ वर्ष की आयु प्राप्त करने वाले श्री सातवलेकर साक्षात् वेदमूर्ति थे। इन्होंने सारा जीवन ही वेदानुशीलन में बिताया था। ये वेदों को आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना का प्रेरणास्रोत मानते थे।

(८) डा० आनन्द कुमार स्वामी : डा० स्वामी आधुनिक कलाविद् थे। उन्होंने 'A New approach to the Vedas' ग्रन्थ लिखा है। इसमें उन्होंने वेदों को सिद्धों की वाणी कहा है। उनका कथन है कि वेदों का अर्थ समझने में ईसाई और अन्य सन्तों की वाणी तथा अध्यात्मप्रवण दान्ते आदि कवियों की अनुभूतियों से भी सहायता लेनी चाहिए। सिद्धों की वाणी में प्रायः समानता पाई जाती है। उन्होंने ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया था, अतः उन्होंने ईसाई सन्तों की वाणी से वैदिक ऋषियों की वाणी का तुलनात्मक अध्ययन करने पर बल दिया है।

(९) डा० विष्णुकुमार वर्मा : डा० वर्मा ने 'वैदिक सृष्टि-उत्पत्तिरहस्य' नामक ग्रन्थ दो भागों में लिखा है। उन्होंने वैदिक विचारधारा का आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। उन्होंने वृत्र, अग्नि, इन्द्र, हिरण्यगर्भ, मातरिश्वा, अंगिरस्, मरुद्गण आदि ऋग्वेदीय नामों को वैज्ञानिक दृष्टि से प्रतीक मानते हुए सृष्टि की उत्पत्ति, गुरुत्वाकर्षण, काल, स्थान, महाविस्फोट (Big Bang theory) आदि का विवेचन किया है। उन्होंने बताया है कि यह महाविस्फोट इन्द्र (परमात्मा) के द्वारा वज्र-संचालन के कारण हुआ था। इन्द्र का वज्र-संचालन ऊर्जाओं के नियोजित संघर्षण का द्योतक है। वेदों की यह परिकल्पना आधुनिक विज्ञान को अभी तक अज्ञात है। डा० वर्मा ने वैदिक शब्दावली की विज्ञानपरक व्याख्या प्रस्तुत की है।

(१०) पाश्चात्त्य पद्धति : पाश्चात्त्य विद्वानों ने वेदार्थ के अनुशीलन के लिए तुलनात्मक भाषाशास्त्र और इतिहास की आवश्यकता पर बल दिया है। इस पद्धति को ऐतिहासिक पद्धति (Historical Method) कहते हैं। इसके मूल में यह भावना निहित है कि भारोपीय भाषा-परिवार एक है। संस्कृत, लेटिन, ग्रीक, जर्मन, इंग्लिश् आदि एक ही भारोपीय भाषा से निकले हैं। समस्त भारोपीय आर्य-परिवार के व्यक्ति प्रारम्भ में एक ही स्थान पर रहते थे। मूल भारोपीय भाषा एक ही थी। धीरे-धीरे आर्य-परिवार के संगठन विभिन्न स्थानों पर गए। वे अपने साथ मूल धार्मिक भावनाओं को भी लेते गए। अतः उनके कर्मकांड, धार्मिक मान्यताओं एवं संस्कृतियों में मूलरूप से एकता है। इस एकत्व को आधार मानकर देवशास्त्र, कर्मकाण्ड आदि की तुलनात्मक व्याख्या की जा सकती है। इस मान्यता को अपनाकर प्रो० रुडोल्फ रोठ आदि विद्वानों ने वेदों की

व्याख्या करने का प्रयत्न किया है । यह पद्धति सैद्धान्तिक रूप से सर्वथा ग्राह्य है । भाषाविज्ञान के आधार पर अनेक वैदिक देवों का इतिहास ज्ञात होता है । कुछ ऐतिहासिक तथ्य भी ज्ञात होते हैं । परन्तु इतने मात्र से वेदार्थ स्पष्ट होना संभव नहीं है । इस पद्धति के कुछ प्रमुख दोष ये हैं :

(१) इस पद्धति से केवल देववाचक आदि कुछ शब्दों का स्पष्टीकरण होता है, अन्य का नहीं । ऐसे शब्द १० प्रतिशत से अधिक नहीं है । शेष के लिए मार्ग अवरुद्ध है । (२) इस पद्धति से कर्मकांड का ज्ञान और उसकी पद्धति का विवरण अज्ञेय है । इसके लिए परंपरागत पद्धति का ज्ञान अपेक्षित है । (३) इस पद्धति में भारतीय दृष्टिकोण की पूर्ण उपेक्षा की गयी है । (४) इसमें वेदार्थ की गहराई में जाने का प्रयत्न नहीं किया गया है । (५) वेदमंत्रों के आध्यात्मिक और दार्शनिक अर्थ की उपेक्षा की गयी है । (६) वेदों में निहित उदात्त भावनाओं का इस पद्धति के द्वारा उद्घाटन नहीं होता है । (७) इस पद्धति के द्वारा मंत्रों के अर्थ का अनर्थ किया गया है और मनगढ़न्त अर्थ दिए गए हैं । (८) यह पद्धति पूर्वाग्रह से प्रेरित है और भारतीय संस्कृति को दूषित करने का प्रयत्न है । (९) इसमें ईसाई धर्म के महत्त्व और वैदिक धर्म की हीनता के प्रचार का प्रयत्न किया गया है । (१०) दुबोध स्थलों के लिए हास्यास्पद पाठभेद प्रस्तुत किए गए हैं । अतः वेदार्थ के लिए यह पद्धति स्वीकार्य नहीं है ।

९. वेद और भारतीय विद्वान्

वैदिक वाङ्मय के संरक्षण, भाष्य एवं व्याख्या के निमित्त प्राचीनकाल में तथा आधुनिक समय में विशेष प्रयत्न हुआ है । उसका संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है । इस विषय में विशेष उल्लेखनीय तथ्य यह है कि वैदिक वाङ्मय की उन्नति में आधुनिक समय में राजा राममोहन राय द्वारा स्थापित **'ब्रह्मसमाज'** और स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित **'आर्यसमाज'** ने विशेष सक्रिय कार्य किया है । ब्रह्मसमाज का ध्यान भारतीय गौरव की रक्षा के लिए उपनिषदों की ओर रहा है और आर्यसमाज ने वैदिक साहित्य पर विशेष बल दिया है । वर्तमान समय में वैदिक साहित्य पर जो कुछ कार्य हुआ है और हो रहा है, उसमें आर्यसमाज का स्थान अग्रगण्य है ।

प्राचीन आचार्य

वेदों के गूढ अभिप्राय समझने के लिए कई विधियाँ अपनाई गयीं । इनमें मुख्य ये हैं : १. पदपाठ, २. ब्राह्मणग्रन्थ, ३. आरण्यक, ४. उपनिषद् , ५. वेदांग ।

१. पदपाठ : वेदार्थ को समझने के लिए मंत्रों के विभिन्न पदों को पृथक्-पृथक् स्वरसहित रखना । इससे संज्ञा, क्रिया, उपसर्ग आदि का ठीक-ठीक बोध होता है तथा प्रत्येक पद का अर्थ समझने में सुविधा होती है ।

२. ब्राह्मणग्रन्थ : ये वेदों के व्याख्या ग्रन्थ हैं । इनमें यह प्रतिपादित किया गया है कि यज्ञ की किस विधि के लिए किस मन्त्र का प्रयोग होगा तथा यज्ञविधि का क्या क्रम होगा । ब्राह्मणग्रन्थों में मंत्रों की आध्यात्मिक व्याख्या भी की गयी है ।

३. आरण्यकग्रन्थ : ये वेदों के आध्यात्मिक अर्थ के प्रतिपादक आधार ग्रन्थ हैं ।

४. उपनिषद् : उपनिषदों में वेदों की आध्यात्मिक व्याख्या है । ये भारतीय दर्शन के पूर्वरूप हैं ।

५. वेदांग : वेदों के अर्थों के स्पष्ट ज्ञान और प्रयोग के लिए ६ वेदांग ग्रन्थ बनाए गए । ये व्याकरण, छन्द, निर्वचन, विनियोग और यज्ञादि के मुहूर्तों का स्पष्टीकरण करते हैं । इनका विवरण आगे दिया गया है ।

पदकार या पदपाठकार

१. शाकल्य : आचार्य शाकल्य ने ऋग्वेद का पदपाठ किया है । ब्रह्माण्ड पुराण में इनको प्रथम शाखाप्रवर्तक कहा गया है । इनके साथ ही रथीतर, बाष्कलि और भरद्वाज को भी शाखाप्रवर्तक कहा गया है ।

शाकल्यः प्रथमस्तेषां तस्मादन्यो रथीतरः ।
बाष्कलिश्च भरद्वाज इति शाखाप्रवर्तकाः ।। ३२

ब्रह्माण्डपुराण, पूर्वभाग, द्वितीय पाद अ० ३४

यास्क ने निरुक्त में कहीं-कहीं शाकल्य के पदपाठ को अस्वीकार भी किया है, (निरुक्त ५.२१ । ६.२८ आदि) ।

२. रावण : आचार्य रावण ने भी ऋग्वेद का पदपाठ प्रस्तुत किया है । कुछ स्थलों पर शाकल्य से पदपाठ भिन्न है । रावण ने ऋग्वेद पर भाष्य भी किया था ।

३. आत्रेय : इन्होंने तैत्तिरीय संहिता का पदपाठ किया है । इनका उल्लेख भट्टभास्कर के भाष्य में तथा बौधायन गृह्यसूत्र (३.९.७) में मिलता है ।

४. गार्ग्य : इन्होंने सामवेद का पदपाठ किया है ।

पदकारों में भी कहीं-कहीं बहुत मतभेद हैं । जैसे -मेहनास्ति (ऋग्० ५.३९.१) में शाकल्य ने 'मेहना' को एक पद माना है और गार्ग्य ने 'म, इह, न' तीन पद माने हैं । यास्क ने दोनों का मत दिया है, (निरुक्त ४.४) ।

प्राचीन वेदभाष्यकार

१. ऋग्वेदसंहिता भाष्य

१. स्कन्दस्वामी : (६२५ ई० के लगभग) । ऋग्वेद का सबसे प्राचीन भाष्य स्कन्दस्वामी का ही उपलब्ध है । ऋग्वेद के भाष्य में वेंकटमाधव ने लिखा है कि स्कन्दस्वामी, नारायण और उद्‌गीथ आचार्यों ने मिलकर ऋग्वेद का भाष्य किया था ।

स्कन्दस्वामी नारायण उद्‌गीथ इति ते क्रमात् ।
चक्रुः सहैकम् ऋग्भाष्यं, पदवाक्यार्थगोचरम् ।।

स्कन्दस्वामी का भाष्य ऋग्वेद के चतुर्थ अष्टक तक मिलता है । शेष भाग नारायण और उद्‌गीथ ने किया है । स्कन्दस्वामी ने यास्क के निरुक्त पर भी टीका लिखी है ।

२. नारायण : उक्त श्लोक के आधार पर माना जाता है कि नारायण ने स्कन्दस्वामी के भाष्य में सहायता की थी । 'क्रमात्' से ज्ञात होता है कि चतुर्थ अष्टक के बाद के अंश पर इन्होंने ऋग्वेद का भाष्य किया है ।

३. उद्गीथ : आचार्य उद्गीथ ने भी स्कन्दस्वामी के भाष्य में सहायता की थी । इन्होंने ऋग्वेद के अन्तिम भाग पर भाष्य लिखा है । इस प्रकार कहा जा सकता है कि - स्कन्दस्वामी ने ऋग्वेद के चतुर्थ अष्टक तक, नारायण ने ऋग्वेद के मध्यभाग और उद्गीथ ने अन्तिम भाग पर भाष्य लिखा है ।

४. माधवभट्ट : (षष्ठ शती ई०) ये स्कन्दस्वामी (७वीं शती), वेंकट माधव (१०वीं शती) और सायण (१४वीं शती) से पूर्ववर्ती हैं । स्कन्दस्वामी, वेंकटमाधव और सायण ने इनके भाष्य का अनुसरण किया है । इनका ऋग्वेद के प्रथम अष्टक का भाष्य मद्रास विश्वविद्यालय ने प्रकाशित किया है । इन्होंने ऋग्वेद के विषय में ११ अनुक्रमणियाँ लिखी थीं, जो शब्दकोश के रूप में थीं । इनमें से नामानुक्रमणी और आख्यातानुक्रमणी प्रकाशित हैं । इनकी अन्य अनुक्रमणियों में निर्वचनानुक्रमणी, छन्दोऽनुक्रमणी और स्वरानुक्रमणी थीं, जो अभी तक अप्राप्य हैं ।

५. वेंकट माधव : (१०५० से ११५० ई० के मध्य) इन्होंने पूरे ऋग्वेद का भाष्य लिखा है । इन्होंने प्रथम अध्याय के अन्त में अपना परिचय दिया है । तदनुसार इनके पितामह - माधव, पिता - वेंकटाचार्य, मातामह (नाना) - भवगोल, माता- सुन्दरी, गोत्र - कौशिक, निवासस्थान -चोल देश (आंध्रप्रान्त) । इनका भाष्य अत्यन्त संक्षिप्त और सुबोध है । इनका भाष्य डा० लक्ष्मणस्वरूप ने संपादित कर ४ भागों में प्रकाशित किया है । इसके प्रकाशक मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली हैं ।

६. धानुष्क यज्वा : (१५०० ई० के लगभग) । ये वेदत्रयी के भाष्यकार के रूप में प्रसिद्ध हैं । इन्हें 'त्रिवेदी भाष्यकार' कहा गया है । किन तीन वेदों पर इनका भाष्य था, यह अज्ञात है । इनका भाष्य उपलब्ध नहीं है ।

७. आनन्दतीर्थ : (१२५५ से १३३५ वि० संवत् , १३ वीं शती ई०) । इनका दूसरा नाम 'मध्व' है । इन्होंने माध्व वैष्णव संप्रदाय चलाया है । इन्होंने ऋग्वेद के कुछ चुने हुए ४० सूक्तों का पद्यात्मक भाष्य किया है ।

८. आत्मानन्द : (१४वीं शती ई०) । इन्होंने ऋग्वेद के 'अस्य वामीय' सूक्त पर अपना भाष्य लिखा है । इनका भाष्य अध्यात्म-परक है ।

९. सायण : (१४वीं शती ई०) ये विजयनगर के संस्थापक महाराज बुक्क और महाराज हरिहर के अमात्य एवं सेनानी थे । २४ वर्ष दोनों राजाओं के सांनिध्य में रहकर इन्होंने अपने बड़े भाई माधव के आदेशानुसार वेदभाष्य किया और अपने भाई के नाम को अमर करने के लिए भाष्य का नाम 'माधवीय वेदार्थप्रकाश' रखा ।

'इति सायणाचार्यविरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे ....
प्रथमं मण्डलम्' ।

सायण ने ऋग्वेद सहित ५ वैदिक संहिताओं, ११ ब्राह्मण ग्रन्थों और २ आरण्यकों पर पांडित्यपूर्ण भाष्य लिखा है । इन ग्रन्थों के लेखन का क्रम यह रहा है : **५ संहिताएँ :**

१. तैत्तिरीय संहिता , २. ऋग्वेद संहिता, ३. सामवेद संहिता, ४. काण्व संहिता (शुक्ल यजु०), ५. अथर्ववेद संहिता । **११ ब्राह्मण ग्रन्थ :** ६. तैत्तिरीय ब्रा०, ७. ऐतरेय, ८. तांड्य महाब्राह्मण, ९. षड्विंश, १०. सामविधान, ११. आर्षेय, १२. देवताध्याय, १३. उपनिषद ब्रा० , १४. संहितोपनिषद् , १५. वंश ब्राह्मण , १६. शतपथ ब्राह्मण । **२. आरण्यक :** १७. तैत्तिरीय आरण्यक, १८. ऐतरेय आरण्यक ।

वैदिक वाङ्मय के उद्धारकों में आचार्य सायण का नाम सर्वोपरि है । इतने विशाल साहित्य की रचना सायण के अद्भुत अध्यवसाय का फल है । सायण के भाष्य से ही पाश्चात्त्य जगत् को वेदों का प्रकाश प्राप्त हुआ है । पाश्चात्त्य जगत् सायण के ऋण से उऋण नहीं हो सकता है । सायण के प्रेरणास्रोत अग्रज माधव और आश्रयदाता वेदभक्त महाराज बुक्क भी वेदों के उद्धारार्थ सदा स्मरणीय हैं ।

२. शुक्ल यजुर्वेद-संहिता-भाष्य

(क) माध्यन्दिन-संहिता

शुक्ल यजुर्वेद – माध्यंदिन संहिता के दो प्रमुख भाष्यकार हैं :

१. उव्वट या उवट : यह नाम उव्वट और उवट दोनों प्रकार से लिखा जाता है । यजुर्वेद भाष्य के अन्त में इन्होंने अपना परिचय दिया है । ये आनन्दपुर निवासी वज्रट के पुत्र थे । राजा भोज के शासनकाल में इन्होंने वेदभाष्य किया, (महीं भोजे प्रशासति) । अतः इनका समय ११ वीं शती ई० है । इन्होंने यजुर्वेद–भाष्य के अतिरिक्त ये ग्रन्थ लिखे हैं :

१. ऋक्प्रातिशाख्य की टीका, २. यजुःप्रातिशाख्य की टीका, ३. ऋक्सर्वानुक्रमणी पर भाष्य, ४. ईशोपनिषद् पर भाष्य । ये ग्रन्थ प्रकाशित हैं ।

२. महीधर : ये काशी निवासी नागर ब्राह्मण थे । इन्होंने यजुर्वेद भाष्य का नाम 'वेददीप' रखा है । इन्होंने यजुर्वेद पर उव्वट के भाष्य को ही आधार बनाया है और उसका विस्तार किया है । इन्होंने संबद्ध अंशों पर शतपथ ब्राह्मण आदि के अंश प्रमाण रूप में उद्धृत किए हैं । इनका समय १६वीं शती ई० का उत्तरार्ध है । इन्होंने एक तन्त्रग्रन्थ 'मन्त्रमहोदधि' (१५८८ ई०) भी लिखा है ।

(ख) काण्वसंहिता-भाष्य

शुक्ल यजुर्वेद की काण्व-संहिता के भाष्यकार ये हैं :

१. हलायुध : सायण से पूर्ववर्ती हलायुध ने काण्वसंहिता पर अपना भाष्य लिखा है । इस भाष्य का नाम 'ब्राह्मणसर्वस्व' है । ये बंगाल के नरेश राजा लक्ष्मणसेन (११७० ई० से १२०० ई०) के धर्माधिकारी थे, अतः इनका समय १२वीं शती ई० है । इन्होंने कुछ अन्य ग्रन्थ भी लिखे हैं : मीमांसासर्वस्व, वैष्णवसर्वस्व, शैवसर्वस्व, पण्डित–सर्वस्व आदि ।

२. सायण : सायण ने माध्यंदिन संहिता पर भाष्य न लिखकर काण्वसंहिता पर अपना भाष्य लिखा है ।

३. अनन्ताचार्य : (१६वीं शती ई०) इन्होंने काण्वसंहिता के उत्तरार्ध (अध्याय

२१ से ४०) पर भाष्य लिखा है । इनके भाष्य पर महीधर की छाया स्पष्ट है । अतः ये महीधर से परवर्ती हैं ।

४. आनन्दबोध भट्टोपाध्याय : इन्होंने भी काण्वसंहिता का भाष्य किया है । इनका भाष्य अध्याय ३१ से ४० प्रकाशित हुआ है । शेष अप्रकाशित है ।

(ग) कृष्ण यजुर्वेद, तैत्तिरीय-संहिता-भाष्य

१. कुण्डिन : इन्होंने तैत्तिरीय संहिता की वृत्ति लिखी थी ।

२. भवस्वामी : इन्होंने भी तैत्तिरीय संहिता पर अपना भाष्य लिखा था । केवल उद्धरणों से इनके भाष्य का पता चलता है ।

३. गुहदेव : (८वीं या ९वीं शती ई०) इन्होंने तैत्तिरीय संहिता का भाष्य लिखा था । देवराज यज्वा ने अपने निघण्टु भाष्य में इन्हें भाष्यकार कहा है ।

४. क्षुर : आचार्य क्षुर ने भी तैत्तिरीय संहिता पर भाष्य लिखा था । उद्धरणों में क्षुर का नाम भट्ट भास्कर से पहले आया है । अन्य विवरण अज्ञात है ।

५. भट्टभास्कर : (११वीं शती ई०) इन्होंने तैत्तिरीय संहिता पर 'ज्ञानयज्ञ' नामक भाष्य लिखा है । इनके भाष्य में मंत्रों का केवल यज्ञपरक ही अर्थ नहीं है । अपितु अध्यात्म और अधिदैव-परक अर्थ भी दिए गए हैं । ये सायण से पूर्ववर्ती हैं । इनका भाष्य प्राप्य है ।

६. सायण : सायण ने सर्वप्रथम अपना भाष्य तैत्तिरीय संहिता पर ही लिखा था । तदनन्तर ऋग्वेद आदि का भाष्य लिखा ।

३. सामवेद - संहिता - भाष्य

सामवेद के भाष्यकार के रूप में इन आचार्यों का पता चलता है ।

१. माधव : (६०० ई० के लगभग) ये सामेवद के प्रथम भाष्यकार हैं । इन्होंने संपूर्ण सामवेद का भाष्य लिखा है । भाष्य का नाम 'विवरण' है ।

२. गुणविष्णु : (१२वीं शती ई० का उत्तरार्ध) । इन्होंने सामवेद की कौथुम शाखा पर 'छान्दोग्य-मन्त्रभाष्य' लिखा है । यह प्रकाशित हो चुका है । सायण ने भी इनके भाष्य से सहायता ली है । इनके दो अन्य ग्रन्थ भी प्राप्त होते हैं : (क) मंत्र-ब्राह्मण-भाष्य, (ख) पारस्कर गृह्यसूत्र -भाष्य ।

३. भरतस्वामी : (१४वीं शती ई० पूर्वार्ध) । इन्होंने संपूर्ण सामवेद पर भाष्य लिखा था । यह अभी अप्रकाशित है । ग्रन्थ के प्रारम्भ में दिए श्लाकों से इनका यह परिचय मिलता है - पिता - नारायण, माता-यज्ञदा, गोत्र-काश्यप । श्रीरंग मन्दिर में रहकर होयसलवंशी राजा रामनाथ के राज्यकाल में सामवेद का भाष्य किया । इन्होंने सामवेद के ब्राह्मणों पर भी भाष्य लिखा है ।

४. अथर्ववेद-संहिता-भाष्य

सायण : अथर्ववेद पर केवल सायण का ही भाष्य प्राप्त होता है । सायण ने पूरे अथर्ववेद पर भाष्य लिखा था, परन्तु प्रकाशित ग्रन्थों में केवल १२ कांडों (१ से ४, ६ से ८, ११,१७ से २० कांड) का ही भाष्य मिलता है ।

ब्राह्मणग्रन्थों के भाष्य

चारों वेदों के तुल्य विभिन्न शाखाओं के ब्राह्मणों पर भी भाष्य हुए हैं । इनमें प्रमुख भाष्यों का विवरण दिया जा रहा है :

(क) शतपथ ब्राह्मण

(१) नीलकण्ठ : महाभारत के टीकाकार नीलकण्ठ ने 'काण्व शतपथ-ब्राह्मण' पर भाष्य लिखा था । नीलकंठ ने महाभारत वनपर्व (अध्याय १६२ श्लोक ११) की टीका में स्वयं इसका उल्लेख किया है । यह भाष्य अप्राप्य है ।

(२) हरिस्वामी : (षष्ठशती ई०) । हरिस्वामी ने पूरे 'माध्यन्दिन शतपथ ब्राह्मण' पर भाष्य लिखा था । यह अपूर्ण प्राप्य है । इनके पिता नाग स्वामी थे । ये अवन्ती के राजा विक्रम के धर्माध्यक्ष थे । इन्होंने अपने भाष्य का निर्माणकाल ३७४० कलिवर्ष (अर्थात् ५३८ ई०) दिया है । अतः इनका समय षष्ठ शती ई० होता है ।

(ख) ऐतरेय ब्राह्मण

(३) गोविन्द स्वामी : (लगभग १०वीं० शती ई०) । इन्होंने ऐतरेय ब्राह्मण पर भाष्य किया है । 'बौधायनीय-धर्म-विवरण' ग्रन्थ भी संभवतः इनका ही है ।

(४) षड्गुरुशिष्य : (१२वीं शती ई० उत्तरार्ध) । इन्होंने ऐतरेय ब्राह्मण, ऐतरेय आरण्यक, आश्वलायन श्रौतसूत्र एवं गृह्यसूत्र तथा सर्वानुक्रमणी की टीकाएँ लिखी हैं । ऐतरेय ब्राह्मण की टीका अधूरी छपी है । इनकी कात्यायन की सर्वानुक्रमणी की व्याख्या 'वेदार्थदीपिका' बहुत विख्यात है ।

(५) सायण : इनकी ऐतरेय ब्राह्मण की टीका पूना से प्रकाशित है ।

(ग) तैत्तिरीय ब्राह्मण

(६) भवस्वामी : इन्होंने तैत्तिरीय ब्राह्मण पर भाष्य लिखा था । तैत्तिरीय संहिता पर भी इनके भाष्य का उल्लेख मिलता है ।

(७) भट्टभास्कर : इन्होंने तैत्तिरीय संहिता और तैत्तिरीय ब्राह्मण दोनों पर भाष्य लिखा है ।

(८) आचार्य सायण : इनका तैत्तिरीय ब्राह्मण पर भी भाष्य है ।

(घ) सामवेदीय ब्राह्मण

(९) जयस्वामी : तांड्य ब्राह्मण पर भाष्य लिखा है ।

(१०) गुणविष्णु : मंत्रब्राह्मण पर भाष्य लिखा है ।

(११) भास्कर मिश्र : आर्षेय ब्राह्मण पर भाष्य लिखा है ।

(१२) भरतस्वामी : सामाविधान ब्राह्मण पर भाष्य लिखा है ।

(१३) द्विजराज भट्ट : संहितोपनिषद् ब्राह्मण पर भाष्य लिखा है ।

(१४) आचार्य सायण : तांड्य (पंचविंश) ब्राह्मण, षड्विंश, सामविधान, आर्षेय, देवताध्याय, उपनिषद् ब्रा०, संहितोपनिषद् ब्रा० और वंश ब्राह्मणों पर भाष्य लिखा है ।

अन्य भारतीय आचार्य

(१) ऋग्वेद

(क) ऋग्वेद संहिता : (१) आचार्य सायण : आचार्य सायण ने संपूर्ण ऋग्वेद का परम्परागत ढंग से संस्कृत में भाष्य किया है । यह भाष्य तिलक विद्यापीठ पूना ने ५ भागों में छापा है । **(२) वेंकट माधव :** संपूर्ण ऋग्वेद का सरल एवं संक्षिप्त भाष्य संस्कृत में किया है । डा० लक्ष्मणस्वरूप ने इसे संपादित कर ४ भागों में प्रकाशित किया है । **(३) स्वामी दयानन्द :** इन्होंने नैरुक्त प्रक्रिया विधि से ऋग्वेद के ७ मंडलों (सूक्त ८० तक) का संस्कृत और हिन्दी में भाष्य किया है । अकाल मृत्यु के कारण यह कार्य अधूरा रहा । **पं० आर्यमुनि** ने इस अवशिष्ट भाग को पूर्ण किया । **(४) विश्वबन्धु :** ने ऋग्वेद संहिता ४ भाष्यों सहित ८ भागों में विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध-संस्थान, होशियारपुर से प्रकाशित किया है । **(५) श्रीपाद दामोदर सातवलेकर :** ने ऋग्वेदसंहिता का भूमिका और परिशिष्टों के साथ सुन्दर संस्करण निकाला है ।

(ख) ऋग्वेद के अनुवाद : इन विद्वानों ने संपूर्ण ऋग्वेद का भारतीय भाषाओं में अनुवाद प्रकाशित किया है : **(१) रमेशचन्द्र दत्त** ने बंगला में, **(२) सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव** ने मराठी में, **(३) जयदेव विद्यालंकार** ने हिन्दी में, **(४) रामगोविन्द त्रिवेदी** ने हिन्दी में, **(५) कोल्हट और पटवर्धन** ने ८ भागों में मराठी में प्रकाशित किया है । **(६) सातवलेकर** ने पाँच भागों में 'ऋग्वेद का सुबोधभाष्य' भी छापा है । इन्होंने तीन भागों में 'दैवतसंहिता' - देवों के अनुसार ऋग्वेद के मंत्रों का संकलन भी प्रकाशित किया है । **(७) श्रीराम शर्मा** ने संपूर्ण ऋग्वेद का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया है । **(८) डा० स्वामी सत्यप्रकाश** ने पूरे ऋग्वेद का अंग्रेजी में अनुवाद किया है ।

(ग) ऋग्वेद-विषयक अन्य ग्रन्थ : (१) सायण ने ऐतरेय ब्राह्मण और ऐतरेय आरण्यक का भाष्य किया है तथा ऋग्वेद -भाष्य-भूमिका लिखी है । **(२) सत्यव्रत सामश्रमी** ने ऐतरेय ब्राह्मण और ऐतरेयारण्यक सायण-भाष्य-सहित संपादित किया है । उन्होंने 'ऐतरेयालोचन' भी लिखा है । **(३) डा० मंगलदेव शास्त्री** ने 'ऋग्वेद-प्रातिशाख्य' संपादित किया है और अंग्रेजी में भूमिका दी है । **(४) गोविन्द और अनृत** ने शांखायन श्रौतसूत्र की टीका लिखी है । **(५) राजेन्द्रलाल मित्र** ने आश्वलायन श्रौतसूत्र का संपादन किया है । **(६) अविनाशचन्द्र दास** ने

'Rigvedic India' ग्रन्थ लिखा है । (७) **महेशचन्द्र राय तत्त्वनिधि** ने 'ऋग्वेदेर समालोचना' बंगला में प्रकाशित की है ।(८) **नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ ने** 'ऋग्वेदालोचन' में ऋग्वेदीय विषयों की सुन्दर आलोचना की है । (९) **कपालि शास्त्री** ने ऋग्वेद 'सिद्धांजन' भाष्य-सहित दो भागों में प्रकाशित किया है । (१०) **स्वामी दयानन्द** ने 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' संस्कृत और हिन्दी में प्रकाशित की है । इसमें ऋग्वेद के महत्त्व पर सुन्दर प्रकाश डाला है । (११) **स्वामी विश्वेश्वरानन्द** ने चारों वेदों की पदसूची लाहौर से प्रकाशित की थी । (१२) **लॉ** (N.N. Law) ने Age of the Rigveda लिखा है । (१३) **प्रो० घाटे** ने Lectures on Rigveda ने लिखा है । (१४) **डा० पी० एल० भार्गव** ने Rigvedic Geography of India लिखा है । (१५) **डा० मंगलदेव शास्त्री** ने 'ऐतरेयारण्यक-पर्यालोचनम्' लिखा है तथा ऐतरेय और कौषीतकि ब्राह्मण का संपादन किया है । (१६) **पं० बलदेव उपाध्याय** ने चतुर्वेद-भाष्य-भूमिका-संग्रह (सायणाचार्य) प्रकाशित किया है । (१७) **रामगोविन्द त्रिवेदी** ने गंगा का 'वेदांक' निकाला था । (१८) **शंकर पांडुरंग पंडित** ने ऋग्वेद की व्याख्या 'वेदार्थयत्न' (तृतीय मंडल तक) मराठी और अंग्रेजी में की है । (१९) **डा० हरिदत्त शास्त्री** ने ऋग्वेद भाष्य-भूमिका (सायण) की व्याख्या लिखी है ।

(२) यजुर्वेद (शुक्ल एवं कृष्ण)

(क) यजुर्वेद संहिता : (१) **उव्वट और महीधर** ने शुक्ल यजुर्वेद का संस्कृत में भाष्य लिखा है । यह अत्यन्त प्रसिद्ध भाष्य है । (२) **सायण** ने काण्वसंहिता तथा तैत्तिरीय संहिता का भाष्य लिखा है । (३) **दुर्गादास लाहिड़ी** ने शुक्ल यजुर्वेद (महीधर-भाष्य-सहित) और कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता (९ भागों में) छपी हैं । (४) **सातवलेकर :** श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ने शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयि और काण्व संहिताएँ तथा कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय, मैत्रायणी और काठक संहिताएँ बड़े परिश्रम से प्रकाशित की हैं । इनमें सुन्दर भूमिका और परिशिष्ट भी हैं । इन्होंने यजुर्वेद का 'सुबोधभाष्य' भी हिन्दी में प्रकाशित किया है । (५) **स्वामी दयानन्द** ने नैरुक्त प्रक्रिया का आश्रय लेकर संपूर्ण शुक्ल यजुर्वेद का संस्कृत और हिन्दी में भाष्य किया है । यह उच्चकोटि का प्रामाणिक भाष्य है । (६) **जयदेव विद्यालंकार** ने शुक्ल यजुर्वेद का हिन्दी भाष्य किया है । (७) **श्रीराम शर्मा** ने भी शुक्ल यजुर्वेद का हिन्दी भाष्य किया है । (८) **श्रीधर पाठक** ने शुक्ल यजुर्वेद का मराठी में अनुवाद किया है । (९) **सत्यव्रत सामश्रमी** ने शुक्ल यजुर्वेद का बंगला में अनुवाद किया है । (१०) **ज्वालाप्रसाद मिश्र** ने शुक्ल यजुर्वेद का हिन्दी भाष्य किया है ।

(ख) यजुर्वेदीय अन्य ग्रन्थ : (१) **आचार्य सायण** ने तैत्तिरीय ब्राह्मण और आरण्यक पर महत्त्वपूर्ण भाष्य लिखा है । (२) **भट्ट भास्कर** ने तैत्तिरीय ब्रा० पर भाष्य लिखा है । (३) **सत्यव्रत सामश्रमी** ने सायण-भाष्य-सहित शतपथ ब्राह्मण प्रकाशित किया है । (४) **गंगाप्रसाद उपाध्याय** ने संपूर्ण शतपथ-ब्राह्मण का हिन्दी अनुवाद किया है । डा० स्वामी सत्यप्रकाश ने इस पर विस्तृत भूमिका लिखकर इसे प्रकाशित

किया है । (५) **उव्वट** ने कात्यायन के शुक्ल यजुःप्रातिशाख्य पर अपना भाष्य लिखा है । (६) **कर्क, जयराम, गदाधर और हरिहर** ने पारस्कर गृह्यसूत्र पर भाष्य लिखा है ।

(३) सामवेद

(क) सामवेद-संहिता : (१) सायण ने सामवेद का पूरा भाष्य लिखा है । (२) **सातवलेकर** ने सामवेद संहिता का भूमिका आदि के साथ शुद्ध संस्करण निकाला है । इन्होंने सामवेद का हिन्दी-अर्थ-सहित संस्करण भी प्रकाशित किया है । (३) **दुर्गादास लाहिड़ी** ने सायणभाष्य-सहित सामवेद प्रकाशित किया है ।

(ख) सामवेद के अनुवाद : सामवेद के निम्नलिखित अनुवाद प्राप्त होते हैं : (१) **सत्यव्रत सामश्रमी** - बंगला अनुवाद । (२) **तुलसीराम स्वामी** - हिन्दी भाष्य, स्वामी दयानन्द की पद्धति पर । (३) **जयदेव विद्यालंकार** - हिन्दी-भाष्य । (४) **श्रीराम शर्मा** - हिन्दी भाष्य । (५) **वीरेन्द्र शास्त्री** - हिन्दी अनुवाद । (६) **डा० रामनाथ वेदालंकार** - संस्कृत-हिन्दी भाष्य ।

(ग) सामवेदीय अन्य ग्रन्थ : (१) सायण ने सामवेदीय इन ब्राह्मणों का भाष्य लिखा है - तांड्य (पंचविंश), षड्विंश, सामविधान, आर्षेय, देवताध्याय, उपनिषद् ब्रा०, संहितोपनिषद् ब्रा०, वंश ब्राह्मण । (२) **सत्यव्रत सामश्रमी** ने इन ग्रन्थों का संपादन और बंगला में अनुवाद किया है -वंश ब्राह्मण, देवताध्याय ब्राह्मण, मंत्र ब्राह्मण एवं गोभिल गृह्यसूत्र । (३) **पुष्पर्षि लक्ष्मण शास्त्री द्रविड** ने सामप्रातिशाख्य (पुष्पसूत्र) प्रकाशित किया है । (४) **आनन्दचन्द्र** ने लाट्यायन श्रौतसूत्र , अग्निस्वामी के भाष्य-सहित, प्रकाशित किया है । (५) **चन्द्रकान्त तर्कालंकार** ने गोभिल गृह्यसूत्र प्रकाशित किया है । (६) **डा० रघुवीर** ने जैमिनीय ब्राह्मण का संपादन किया है । (७) **प्रो० बी० आर० शर्मा** ने जैमिनीय आर्षेय ब्राह्मण, जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण, देवताध्याय ब्राह्मण, वंश ब्राह्मण, षड्विंश ब्राह्मण और सामविधान ब्राह्मण का संपादन किया है ।

(४) अथर्ववेद

(क) अथर्ववेद संहिता : (१) दुर्गादास लाहिड़ी ने सायण-भाष्य-सहित अथर्ववेद (शौनक शाखा) ५ भागों में प्रकाशित किया है । । (२) **शंकर पांडुरंग पंडित** ने भी अथर्ववेद का सायण-भाष्य-सहित संस्करण ४ भागों में निकाला था (बंबई १८९८ ई०) । यह बहुत शुद्ध संस्करण है । (३) **सातवलेकर** ने अथर्ववेद संहिता (शौनकीय) १९४३ ई० में प्रकाशित की । इन्होंने 'अथर्ववेद का सुबोध-भाष्य' ५ भागों में प्रकाशित किया है । इसमें मन्त्रार्थ के अतिरिक्त विशद हिन्दी-व्याख्या है । यह अथर्ववेद का सर्वोत्तम व्याख्या ग्रन्थ है । यह श्री सातवलेकर के अगाध वेदज्ञान और अथक परिश्रम का परिचायक है । (४) **क्षेमकरण त्रिवेदी** ने संपूर्ण अथर्ववेद का संस्कृत-हिन्दी-भाष्य किया है । (५) **जयदेव विद्यालंकार** ने भी संपूर्ण अथर्ववेद

का हिन्दी-भाष्य किया है । (६) **श्रीराम शर्मा** ने भी इसे हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित किया है । (७) **विश्वबन्धु** ने सायण -भाष्य-सहित अथर्ववेद ५ भागों में निकाला है । (८) **डा० रघुवीर** ने अथर्ववेद (पैप्पलाद संहिता) प्रकाशित की है ।

(ख) अथर्ववेदीय अन्य ग्रन्थ : निम्नलिखित विद्वानों ने अन्य अथर्ववेदीय ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं : (१) **विश्वबन्धु** : अथर्ववेदीय प्रातिशाख्य और अथर्ववेदीय बृहत्सर्वानुक्रमणी, (२) **भगवद्दत्त** : अथर्ववेदीय पंचपटलिका और माण्डूकी शिक्षा, (३) **क्षेमकरण त्रिवेदी** : गोपथ ब्राह्मण (हिन्दी-अनुवाद-सहित), (४) **राजेन्द्रलाल मित्र** : गोपथ ब्राह्मण, (५) **डा० विजयपाल शास्त्री** : गोपथ ब्राह्मण ।

विविध

(१) **चारों वेद-संहिताएँ** : वैदिक मंत्रालय, अजमेर ने छापी हैं । निम्नलिखित विद्वानों ने ये ग्रन्थ लिखे हैं : (२) **डा० लक्ष्मणसरूप** : निरुक्त का संपादन और अंग्रेजी-अनुवाद । (३) **चन्द्रमणि विद्यालंकार** : निरुक्त का हिन्दी-भाष्य । (४) **सत्यव्रत सामश्रमी** : निरुक्त (४ भाग), निरुक्तालोचन, त्रयी-चतुष्टय । (५) **चिन्तामणि विनायक वैद्य** : History of Sanskrit Literature (Vedic Period) (६) **भगवद्दत्त** : वैदिक वाङ्मय का इतिहास (३ भाग), वेदविद्या-निदर्शन । (७) **डा० मंगलदेव शास्त्री** : ऋक्प्रातिशाख्य (संपादित), भारतीय संस्कृति का विकास ।(८) **डा० सूर्यकान्त** : अथर्वप्रातिशाख्य (संपादित), वैदिककोश, वैदिक देवशास्त्र, वैदिक धर्म एवं दर्शन । (९) **विश्वबन्धु** : वैदिक पदानुक्रमकोश (१६भाग) (संपादित), वेदसार, शब्दार्थ-पारिजात । (१०) **बालगंगाधर तिलक** : Arctic home in the Vedas, Orion । (११) **हंसराज** : वैदिककोश । (१२) **सम्पूर्णानन्द** : आर्यों का आदिदेश, व्रात्यकांड । (१३) **रामगोविन्द त्रिवेदी** : वैदिक सहित्य, गंगा का वेदांक (संपादित) । (१४) **डा० वासुदेवशरण अग्रवाल** : वेदविद्या, वेदरश्मि, उरु ज्योति, पृथ्वीपुत्र, Vision in Long Darkness, Thousand syllabled speech, Vedic Lectures, (१५) **पं० बलदेव उपाध्याय** : वैदिक साहित्य और संस्कृति, सायण और माधव, वेदभाष्य-भूमिका-संग्रह (संपादित) । (१६) **सातवलेकर** : वैदिक व्याख्यानमाला (४८ व्याख्यान-ग्रन्थ, ४ भागों में, हिन्दी, मराठी, गुजराती में), वेदामृत, अथर्ववेद सुबोध भाष्य (५ भाग, हिन्दी, मराठी, गुजराती में) , उपनिषद् -भाष्य-ग्रन्थमाला (९ उपनिषदों का हिन्दी भाष्य) । (१७) **आर०सी० मजूमदार** : Vedic Age (१८) **स्वामी हरिप्रसाद (वैदिक मुनि)** : स्वाध्यायसंहिता । (१९) **शिवशंकर काव्यतीर्थ** : वेदार्थनिर्णय, वैदिक विज्ञान । (२०) **पं० भीमसेन शर्मा** : संस्कार-चन्द्रिका ।

(२१) **स्वामी दर्शनानन्द** : उपनिषद्-भाष्य, वैदिक निबन्ध । (२२) **गुरुदत्त विद्यार्थी** : The Terminology of the Vedas । (२३) **प्रियरत्न आर्ष (स्वामी ब्रह्ममुनि)** : यम-पितृ-परिचय, वैदिक मनोविज्ञान, अथर्ववेदीय चिकित्साशास्त्र । (२४) **अरविन्द घोष** : The Secret of the Veda । (२५) **पी०एल० भार्गव** : India in the Vedic Age,Rigvedic Geography of India । (२६) **डा० रामगोपाल** : India of Vedic Kalpasutras, वैदिक व्याकरण, (२७) **डा० मुंशीराम शर्मा** : वैदिक साहित्य और संस्कृति । (२८) **भारती कृष्णतीर्थ (जगद्गुरु)** : Vedic Mathematics । (२९) **गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी** : वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति. (३०) **डा० दांडेकर** : Vedic Bibliography (३१) **डा० सत्यप्रकाश** : Founders of Sciences in Ancient India, वैज्ञानिक विकास की भारतीय परंपरा, वेदों पर अश्लीलता का व्यर्थ आक्षेप । (३२) **जयदेव शर्मा** : क्या वेद में इतिहास है ? (३३) **रघुनन्दन शर्मा** : वैदिक-संपत्ति । (३४) **क.रमबेलकर** : Atharvavedic Civilisation । (३५) **लॉ (N.N. Law)** Age of the Vedas.

(३६) **स्वामी प्रत्यगात्मानन्द** : वेद व विज्ञान । (३७) **डा० कपिलदेव द्विवेदी** : अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन, वैदिक मनोविज्ञान, वेदों में नारी, वेदों में राजनीति-शास्त्र, वेदों में आयुर्वेद, वेदों में विज्ञान, The Essence of the Vedas, A Cultural Study of the Atharvaveda, वेदामृतम् (२५ भाग) । (३८) **वाचस्पति गैरोला** : वैदिक साहित्य और संस्कृति । (३९) **हरिशंकर जोशी** - वैदिक विश्वदर्शन । (४०) **कुन्दन लाल शर्मा** : वैदिक वाङ्मय का बृहद् इतिहास (७ भागों में) । (४१) **रामकुमार राय** : वैदिक माइथोलाजी, वैदिक इन्डेक्स और ओरिजिनल संस्कृत टेक्स्ट के हिन्दी अनुवाद । (४२) **डा० मातृदत्त त्रिवेदी** : अथर्ववेद, एक साहित्यिक अध्ययन । (४३) **आद्यादत्त ठाकुर** : वेदों में भारतीय संस्कृति । (४४) **डा० ओमप्रकाश पांडेय** : वैदिक सहित्य और संस्कृति का स्वरूप, वैदिक खिल-सूक्त-परिशीलन, सामवेदीय ब्राह्मणों का परिशीलन । (४५) **डा० विष्णुकान्त वर्मा** : वैदिक सृष्टि-उत्पत्ति-रहस्य (२ भाग) । (४६) **युधिष्ठिर मीमांसक** : वैदिक छन्द, वैदिक स्वरमीमांसा । (४७) **वीरसेन वेदश्रमी** : वैदिक-सम्पदा । (४८) **कर्पूरचन्द्र कुलिश** - वेदविज्ञान । (४९) **डा० बलराज शर्मा** : वेदों में विज्ञान । (५०) **डा० रामेश्वरदयालु गुप्त** - वैदिक वाङ्मय में विज्ञान । (५१) **शिवनारायण उपाध्याय** : वेदों की वैज्ञानिक अवधारणा । (५२) **वैद्यनाथ शास्त्री** : Science in the Vedas । (५३) **कृष्ण जी** : Science and Technology in Vedas । (५४) **वी०पी० वर्तक** : Scientific knowledge in Vedas. (५५) **डा० गयाचरण त्रिपाठी** - वैदिक देवता ।

१०. वेद और पाश्चात्य विद्वान्

भारतीय वाङ्मय की ओर पाश्चात्य विद्वानों का ध्यान आकृष्ट करने का श्रेय सर विलियम जोन्स (Sir William Jones, 1746-1794) को है । ये कलकत्ता उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश थे । संस्कृत, अरबी, फारसी आदि के विद्वान् थे । इन्होंने भारोपीय परिवार की भाषाओं संस्कृत, ग्रीक, लेटिन आदि में कतिपय समानताएँ देखीं और तुलनात्मक भाषाशास्त्र की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया । इन्होंने 'रायल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल' की स्थापना की । तदनन्तर कोलब्रुक (H.T. Colebrooke) ने १८०५ ई० में 'एशियाटिक रिसर्चेज' में 'On the Vedas ' वेद-विषयक लेख लिखकर पाश्चात्य जगत् का ध्यान वेदों की ओर आकृष्ट किया । तदनन्तर जर्मनी, फ्रांस, ब्रिटेन, हालैंड आदि के विद्वान् वेदों की ओर आकृष्ट हुए । फ्रांस के प्रो० बर्नफ (Professor Eugene Burnouf) ने कई योग्य संस्कृत प्रेमी विद्वान् तैयार किए, इनमें मैक्समूलर, रोठ और ह्विटनी मुख्य हैं ।

पाश्चात्य विद्वानों ने बड़ी तत्परता से वैदिक वाङ्मय की आराधना की है, उसकी जितनी प्रशंसा की जाय, कम है । कई विद्वानों ने अपना संपूर्ण जीवन ही इसमें लगा दिया है । इन्होंने वेद के सभी अंगों पर ठोस कार्य किया है । यहाँ उसकी संक्षिप्त रूपरेखा दी जा रही है ।

(१) ऋग्वेद

(क) ऋग्वेद संहिता : (१) फ्रीड्रिश रोज़ेन (Friedrich Rosen) ने सर्वप्रथम ऋग्वेद का संपादन प्रारम्भ किया था और केवल प्रथम अष्टक मूल पाठ, लेटिन अनुवाद के साथ, १८३८ ई० में प्रकाशित किया । उसकी अकालमृत्यु के कारण यह कार्य रुक गया । **(२) मैक्समूलर** (Max Muller) ने सर्वप्रथम सायण-भाष्य-सहित ऋग्वेद का संपादन किया । यह कार्य २७ वर्षों (१८४९ से १८७५ ई०) के घोर परिश्रम के बाद पूर्ण हुआ । यह ३ सहस्र से अधिक पृष्ठों का ग्रन्थ है । इसमें कई सौ पृष्ठों की भूमिका और टिप्पणी है । यह मैक्समूलर के कठिन अध्यवसाय का परिचायक है । **(३) थियोडोर आउफ्रेख्त** (Theodor Aufrecht) ने रोमन लिपि में ऋग्वेद संहिता संपूर्ण १८६१- ६३ ई० में प्रकाशित की । इसका द्वितीय संस्करण १८७७ ई० में प्रकाशित हुआ । पाश्चात्य विद्वानों में यह संस्करण बहुत प्रचलित है ।

(ख) ऋग्वेद के अनुवाद : (१) विल्सन (H. H. Wilson) ने सर्वप्रथम पूरे ऋग्वेद का अंग्रजी में अनुवाद १८५० ई० में प्रकाशित किया । यह सायण-भाष्य पर आश्रित है । विल्सन सायण के प्रबल समर्थकों में थे । **(२) ग्रासमान** (H. Grassmann) ने दो भागों में संपूर्ण ऋग्वेद का जर्मन भाषा में पद्यानुवाद किया है । यह १८७६-७७ ई० में प्रकाशित हुआ । ग्रासमान प्रो० रोठ के शिष्य थे । इन्होंने रोठ की

स्वतंत्र तुलनात्मक पद्धति को अपनाया है । ये सायण-विरोधी वर्ग के व्यक्ति हैं । भाषाविज्ञान में इनका 'ग्रासमान-नियम' बहुत प्रसिद्ध है ।**(३) लुड्विग** (A. Ludwig): इन्होंने मध्यममार्ग का अवलम्बन करते हुए सम्पूर्ण ऋग्वेद का ६ भागों में जर्मन भाषा में अनुवाद किया है । जो १८७६-१८८८ ई० में प्रकाशित हुआ । **(४) प्रो० ग्रिफिथ** (R.T.H. Griffith) ने सायण भाष्य का समुचित उपयोग करते हुए सम्पूर्ण ऋग्वेद का अंग्रेजी में पद्यानुवाद किया है । साथ ही आवश्यक टिप्पणियाँ भी दी हैं । यह १८८९-१८९२ ई० में प्रकाशित हुआ । चारों वेदों का अंग्रेजी में पद्यानुवार का श्रेय श्री ग्रिफिथ महोदय को है । ये वाराणसी में संस्कृत विश्वविद्यालय (क्वींस कालेज) के पूर्व प्राचार्य थे । **(५) प्रो० ओल्डेनबर्ग** (H. Oldenberg) ने संपूर्ण ऋग्वेद का महाभाष्य जर्मन भाषा में (१९०९ से १९१२ ई० में) दो भागों में प्रकाशित किया है । इसमें वैदिक समालोचना की पराकाष्ठा है । यह ऋग्वेद पर सर्वोत्तम भाष्य माना जाता है । ओल्डेनबर्ग का वैदिक समालोचना में वही स्थान है, जो वेदान्त में शंकराचार्य का । **(६) लांग्ल्वा** (S.A. Langlois) : ने संपूर्ण ऋग्वेद का चार भागों में फ्रेंच भाषा में अनुवाद (१८४८-१८५१ ई० में) प्रकाशित किया । यह कई दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है ।

कतिपय पाश्चात्त्य विद्वानों ने ऋग्वेद के कुछ विशिष्ट अंशों का आलोचनात्मक अध्ययन एवं अनुवाद किया है । इनमें विशेष उल्लेखनीय ये हैं : **(१) रुडोल्फ रोठ** (Rudolph Roth) , **(२) गेल्डनर** (Karl F. Geldner) और **केगी** (Adolf Kaegi), ७० सूक्तों का अनुवाद, **(३) रोअर** (Roer), **(४) हिलेब्रांट** (A. Hillebrandt) ।

(ग) ऋग्वेदीय संकलन : कुछ विद्वानों ने ऋग्वेद के प्रसिद्ध सूक्तों के अनुवाद एवं व्याख्या-सहित छात्रोपयोगी संकलन निकाले हैं, जिनमें विशेष उल्लेखनीय ये हैं : **(१) मैक्समूलर** - Vedic Hymns, **(२) ओल्डेनबर्ग** -Vedic Hymns, **(३) मैकडॉनल** (A.A. Macdonell) - A Vedic Reader for Students, Hymns from the Ṛgveda, **(४) थॉमस** (E.J. Thomas)- Vedic Hymns ५. **पीटर्सन** (Peter Peterson) Hymns from the Ṛgveda ।

(घ) ऋग्वेदीय ब्राह्मण : (१) प्रो० हाउग (M.Haug) ने ऐतरेयब्राह्मण का संपादन तथा अंग्रेजी-अनुवाद १९९३ ई० में दो भागों में प्रकाशित किया । **(२) आउफ्रेख्त** (T. Aufrecht) ने ऐतरेय ब्राह्मण का सर्वश्रेष्ठ संस्करण रोमन अक्षरों में सायण-भाष्य के कुछ अंशों तथा अनेक सूचियों के साथ १८७९ में प्रकाशित किया । **(३) प्रो० लिन्डनर** (B. Lindner) ने कौषीतकि ब्राह्मण १८८७ में संपादित कर प्रकाशित किया । **(४) डा० कीथ** (A.B. Keith) ने ऐतरेय और कौषीतकि दोनों ब्राह्मणों का अंग्रेजी अनुवाद १९३० में प्रकाशित किया । इसमें १०० से अधिक पृष्ठों की विद्वत्तापूर्ण भूमिका भी है । प्रो० कीथ ने ही शांखायन आरण्यक का भी अंग्रेजी अनुवाद किया है ।

(ङ) ऋग्वेदीय सूत्रगन्थ : (१) स्टेन्त्सलर (A.F. Stenzler) ने आश्वलायन गृह्यसूत्र दो भागों में प्रकाशित किया है । **(२) हिलेब्रांट** : ने शांखायन श्रौतसूत्र का संपादन किया है ।

(२) यजुर्वेद

(क) शुक्ल यजुर्वेद

(क) यजुर्वेदीय संहिता : (१) वेबर (Albrecht Weber) ने शुक्ल यजुर्वेद संहिता का महीधर-भाष्य-सहित देवनागरी अक्षरों में सुन्दर संस्करण १८४९-१८५२ ई० में प्रकाशित किया था । श्री वेबर ने ही शुक्ल यजुर्वेद की काण्व शाखा का भी संस्करण १८५२ ई० में प्रकाशित किया । **(२) प्रो० ग्रिफिथ** : ने शुक्ल यजुर्वेद (माध्यन्दिन, वाजसनेयि शाखा) का अंग्रेजी में पद्यानुवाद बनारस से १८९९ ई० में प्रकाशित किया था ।

(ख) यजुर्वेदीय ब्राह्मण : (१) वेबर ने शतपथ ब्राह्मण का १८५५ ई० में सर्वप्रथम आलोचनात्मक संस्करण प्रकाशित किया था । इसमें सायण, हरिस्वामी और द्विवेदगंग की टीकाएँ भी हैं । **(२) कैलेंड** (W. Caland) ने शतपथ ब्राह्मण (कण्वशाखीय) अंग्रेजी में प्रस्तावना के साथ १९२६ ई० में प्रकाशित किया । **(३) ईग्लिग** (J. Eggeling) ने शतपथ ब्राह्मण का अंग्रेजी अनुवाद बृहद् भूमिका-सहित 'सेक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट सीरीज़' में ५ भागों में प्रकाशित किया था ।

(ग) यजुर्वेदीय सूत्रग्रन्थ : (१) वेबर ने कात्यायन श्रौतसूत्र १८५९ ई० में प्रकाशित किया । **(२) स्टेन्त्सलर** ने पारस्कर गृह्यसूत्र का संपादन किया था ।

(ख) कृष्ण यजुर्वेद

(क) कृष्ण यजुर्वेदीय संहिताएँ : (१) वेबर (Weber) ने कृष्ण यजुर्वेदीय **तैत्तिरीय-संहिता** को रोमन अक्षरों में संपादित कर अनेक टिप्पणियों सहित १८७१-१८७२ में 'इन्डिशे स्टुडिएन' रिसर्च जर्नल में प्रकाशित किया । वेबर ने ही मैत्रायणी-संहिता का भी संस्करण १८४७ ई० में निकाला था । **(२) श्रेडर** (L.V. Schroeder) ने कृष्ण यजुर्वेदीय **मैत्रायणी-संहिता** ४ भागों में १८८१-८६ ई० में प्रकाशित की । श्रेडर ने ही **काठक-संहिता** भी ४ भागों में १९१० ई० में प्रकाशित की । **(३) डा० कीथ** (Keith) के तैत्तिरीय संहिता का अंग्रेजी-अनुवाद 'हार्वर्ड ओरियन्टल सीरीज़ (भाग १८ और १९, १९१४) में प्रकाशित हुआ । इसमें २०० पृष्ठ की विद्वत्तापूर्ण भूमिका भी है ।

(ख) कृष्ण यजुर्वेदीय सूत्रग्रन्थ : (१) कैलेन्ड (W. Caland) ने **बौधायन श्रौतसूत्र** का संस्करण (१९०४-१९२०) में प्रकाशित किया है । इन्होंने ही **बौधायन धर्मसूत्र, बौधायन गृह्यसूत्र, काठक गृह्यसूत्र, वाधूल सूत्र** और **वैखानस गृह्यसूत्र** का भी संस्करण निकाला है । **(२) विन्टरनित्स** (M. Winternitz) ने

आपस्तम्ब गृह्यसूत्र का संस्करण निकाला है । (३) **गार्बे** (R. Garbe) ने आपस्तम्ब श्रौतसूत्र का संस्करण दो भागों में (१८८१-१९०३ ई) प्रकाशित किया है। (४) **क्नाउएर** (F. Knauer) ने **मानव श्रौतसूत्र** प्रकाशित किया है।

(३) सामवेद

(क) सामवेद संहिता : (१) स्टेवेन्सन (J. Stevenson) ने सामवेद राणायनीय शाखा का संस्करण, अंग्रेजी-अनुवाद के साथ, तैयार किया था। उसे विल्सन ने १८४३ ई० में छपवाया था। (२) **बेन्फे** (T. Benfey) ने कौथुम शाखा के सामवेद का संस्करण, जर्मन अनुवाद के साथ, १८४८ ई० में प्रकाशित किया। (३) **कैलेन्ड** (W. Caland) ने जैमिनीय शाखा की सामवेद संहिता का संस्करण रोमन अक्षरों में १९०७ ई० में छपवाया था। यह अतिशुद्ध संस्करण है। इसमें विस्तृत भूमिका भी है। (४) **ग्रिफिथ** का सामवेद का अंग्रेजी पद्यानुवाद १८९९ ई० में बनारस से प्रकाशित हुआ था।

(ख) सामवेदीय ब्राह्मण : (१) वेबर ने **अद्‌भुत ब्राह्मण** का संस्करण, जर्मन अनुवाद-सहित, १८५८ ई० में प्रकाशित किया था। वेबर ने **वंशब्राह्मण** का भी संपादन किया था। (२) **बर्नेल** (A.C. Burnell) ने कई सामवेदीय ब्राह्मणों का संपादन किया। इनमें मुख्य ये हैं : **सामविधान ब्राह्मण , देवताध्याय ब्राह्मण, वंश ब्राह्मण, संहितोपनिषद् ब्राह्मण, आर्षेय ब्राह्मण** । ये १८७३ से १८७७ तक छपे हैं। (३) **एर्टल** (H. Oertel) ने **जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण** का अंग्रेजी अनुवाद और संपादन किया है। (४) **कैलेन्ड** ने **जैमिनीय ब्राह्मण** का जर्मन-अनुवाद किया है तथा **आर्षेय ब्राह्मण** और **जैमिनीय गृह्यसूत्र** का संपादन किया है। (५) **प्रो० स्टेन कोनो** (Sten Konow) ने **सामविधान ब्राह्मण** का अनुवाद १८९३ ई० में प्रकाशित किया। (६) **गास्ट्रा** (D. Gaastra) ने जैमिनीय गृह्यसूत्र का डच भाषा में अनुवाद १९०६ में किया। इन्होंने ने ही जैमिनीय श्रौतसूत्र का भी संपादन किया था।

(४) अथर्ववेद

(क) अथर्ववेद संहिता : रोठ और ह्विटनी (Rudolph Roth, W.D. Whitney) ने **अथर्ववेद संहिता (शौनकीय शाखा)** का सर्वप्रथम संपादन किया और १८५६ ई० में उसे प्रकाशित किया । (२) **ब्लूमफील्ड और गार्बे** (M. Bloomfield, R. Garbe) ने अथर्ववेद (पैप्पलादशाखा) की एक अतिजीर्ण, काश्मीर से शारदा लिपि में प्राप्त, प्रति से फोटो-प्रति तीन बड़ी जिल्दों में १९०१ ई० में छपवाईं। (३) **कैलेन्ड** ने अथर्ववेद-संहिता का एक आलोचनात्मक संस्करण उट्रिच (हालेंड) से प्रकाशित किया है। (४) **ग्रिफिथ** ने अथर्ववेद का अंग्रेजी में पद्यानुवाद वाराणसी

से १८९५ - १८९८ में छपवाया था । (५) **ह्विट्नी और लानमान** (W.D. Whitney, C.R. Lanman) ने अथर्ववेद का अंग्रेजी में अनुवाद, १५० पृष्ठ की भूमिका तथा विविध टिप्पणियों से युक्त, १९०५ ई० में दो भागों में प्रकाशित किया । यह एक हजार से अधिक पृष्ठ का ग्रन्थ है । (६) **ब्लूमफील्ड** ने पैप्पलाद संहिता का अंग्रेजी में अनुवाद १९०१ ई० में प्रकाशित किया था ।

(ख) अथर्ववेदीय ब्राह्मण आदि : (१) गास्ट्रा (D. Gaastra) ने **गोपथ ब्राह्मण** का एक सुन्दर संस्करण १९१९ ई० में प्रकाशित किया । (२) **ब्लूमफील्ड** ने अथर्ववेदीय **कौशिक सूत्र** १८९० ई० में प्रकाशित किया । इन्होंनें 'The Atharvaveda and Gopatha Brahmana' ग्रन्थ भी लिखा है । डा० सूर्यकान्त ने इसका हिन्दी अनुवाद चौखंबा से १९६४ में प्रकाशित किया है ।

(५) विविध

यहाँ पर पाश्चात्त्य विद्वानों द्वारा संपदित या लिखित कोशग्रन्थ, वेदांग, इतिहास, संस्कृति आदि विषयक ग्रन्थ संक्षेप में दिए जा रहे हैं :

(क) कोश ग्रन्थ : (१) रोठ और बॉट्लिंग्क (R. Roth, Otto Bohtlingk) ने २० वर्ष के घोर परिश्रम के बाद **संस्कृत-जर्मन-महाकोश** (Sanskrit Worterbuch) १० हजार पृष्ठों में, ७ विशाल भागों में, सेंट पीटर्सबर्ग नगर से १८५५-१८७५ ई० में प्रकाशित किया । इसे **सेंट पीटर्सबर्ग डिक्शनरी** भी कहते हैं । इसमें वैदिक और लौकिक संस्कृत के सभी शब्दों का संग्रह है । साथ ही अर्थों के साथ सन्दर्भ अंश भी स्थान निर्देश-सहित संकलित हैं । वैदिक अंश के संग्रह का श्रेय रोठ को है और लौकिक संस्कृत के अंश का श्रेय बॉटलिंग्क को है । इसमें संस्कृत शब्दों का जर्मन भाषा में अर्थ दिया गया है । (२) **ग्रासमान** (H. Grassmann) ने '**ऋग्वेदिक कोश**' १८७३-७५ में प्रकाशित किया है । इसमें मुख्यतः ऋग्वेद के शब्दों का संकलन है । (३) **हिलेब्राण्ट** ने Vedic Dictionary (**वैदिक कोश**) तीन भागों में प्रकाशित किया है । (४) **मैकडॉनल और कीथ** ने **Vedic Index** (वैदिक कोश) दो भागों में प्रकाशित किया है । यह वेदार्थ के ज्ञान के लिए अत्युपयोगी है । यह वैदिक संस्कृति का छोटा विश्वकोश है ।

(ख) व्याकरण : (१) ह्विटनी (W.D. Whitney) ने Sanskrit Grammar (संस्कृत व्याकरण) लिखा है । इसमें वैदिक और लौकिक संस्कृत दोनों का व्याकरण है । (२) **मैकडॉनल** ने वैदिक व्याकरण पर दो ग्रन्थ लिखे हैं : (क) Vedic Grammar, (ख) Vedic Grammar for students । मैकडॉनल ने 'Sanskrit Grammar for Students' में लौकिक संस्कृत का व्याकरण दिया है । मैकडॉनल वस्तुतः वैदिक संस्कृत के पाणिनि हैं । (३) **वाकरनागेल** (J. Wackernagel) ने वैदिक व्याकरण पर जर्मन भाषा में अत्यन्त प्रौढ व्याकरण लिखा है । यह अपने विषय

का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ माना जाता है ।

(ग) वैदिक छन्द : (१) वेबर ने सर्वप्रथम वैदिक छन्दों पर 'इन्डिशे स्टुडिएन' में विस्तृत विचार किया है । **(२) आर्नोल्ड** (E.V. Arnold) ने वैदिक छन्दों पर 'Vedic Metre' ग्रन्थ लिखा है ।

(घ) वैदिक सूचियाँ : (१) ब्लूमफील्ड ने **Vedic Concordance** (मंत्र-महासूची) नामक विशाल गन्थ ११०२ पृष्ठों में १९०६ में प्रकाशित किया । इसमें चारों वेदों के प्रत्येक मंत्र के प्रत्येक पाद (चरण) की सूची तथा उनके पाठभेद दिए हैं । इनका दूसरा ग्रन्थ Rigveda Repetition (ऋग्वेद में पुनरावृत्ति) है । **(२) कर्नल जैकब** : (G. A. Jacob) ने **'उपनिषद् - वाक्य-कोश'** (Concordance) ग्रन्थ १८९१ ई० में प्रकाशित किया है । **(३) लुई रेनू** (Louis Renou) ने फ्रेंच भाषा में Bibliographie Vedique (वैदिक वाङ्मय की ग्रन्थ सूची) ९ भागों में १९३१ ई० में प्रकाशित की । इसमें वैदिक साहित्य पर प्रकाशित सभी ग्रन्थों का विस्तृत वर्णन है ।

(ङ) वैदिक देवता-विज्ञान : इस विषय पर पाश्चात्य विद्वानों ने तुलनात्मक और ऐतिहासिक दृष्टि से विचार किया है । इस विषय पर मैक्समूलर, हिलेब्राण्ट और मैकडानल ने कई ग्रन्थ लिखे हैं ।**(१) हिलेब्राण्ट** (A. Hillebrandt) ने' **Vedische Mythologie**' (वैदिक देवशास्त्र) ग्रन्थ तीन भागों में जर्मन भाषा में (१८९१-१८९२ ई० में) प्रकाशित किया था । **(२) मैकडॉनल** ने 'Vedic Mythology ' (वैदिक देवशास्त्र) ग्रन्थ १८९७ में प्रकाशित किया था । यह ग्रन्थ विषय-विवेचन की दृष्टि से उत्तम है । **(३) कीथ** (Keith) ने 'Religion and Philosophy of the Veda and Upanisads' ग्रन्थ में दो भागों में वैदिक धर्म और दर्शन की सुन्दर मीमांसा की है ।

(च) वैदिक साहित्य का इतिहास : इस विषय पर निम्नलिखित पुस्तकें विशेष उल्लेखनीय हैं : **(१) मैक्समूलर** : History of the Ancient Sanskrit Literature (१८५९), **(२) वेबर** : History of Inidan Literature (१८८२), यह मूलरूप में जर्मन भाषा में था । इसका अंग्रेजी अनुवाद निकल चुका है । **(३) मैकडॉनल** : History of Sanskrit Literature (१९००) । इसका हिन्दी अनुवाद 'संस्कृत सहित्य का इतिहास' निकल चुका है । **(४) विन्टरनित्स** (M. Winternitz) : ने तीन भागों में ' History of Indian Literature ' (भारतीय सहित्य का इतिहास) निकाला था । मूल ग्रन्थ जर्मन भाषा में है । इसका अंग्रेजी अनुवाद निकला है । इसके भाग १ का हिन्दी अनुवाद भी निकला है । **(५) कीथ** (A.B. Keith) : ने 'History of Sanskrit Literature ' (१९४१) लिखा है । इसका हिन्दी अनुवाद भी हुआ है । **(६) रुडोल्फ रोठ** ने जर्मन भाषा में 'वैदिक साहित्य और उसका इतिहास' (१८४९) लिखा है ।

(छ) विविध : अन्य विशेष उल्लेखनीय ग्रन्थ ये हैं : **(१) पिशेल, गेल्डनर** (R.Pischel, K.F. Geldner) - वैदिक शब्दों का अर्थ एवं इतिहास (जर्मन भाषा में) । **(२) लुई रेनु** (Louis Renou) - वेदों में परोक्षभूत का स्थान (फ्रेंच में) । **(३) एलिज़ारेनकोवा** (Elizarenkova) - ऋग्वेद में लुङ् लकार का प्रयोग (रूसी भाषा में) । **(४) शेफ्टेलोवित्स** (Scheftelowitz) - ऋग्वेद के खिल सूक्त (जर्मन में, १९०६) । **(५) रुडोल्फ रोठ** (Rudolph Roth) - निरुक्त (१८४६) । **(६) त्सिम्मेर** (H. Zimmer) - ऋग्वेदकालीन समाज (जर्मन में, १८९७), **(७) स्टेन कोनो** (Sten Konow) Aryan Gods of the mitani people । **(८) ब्लूमफील्ड** - The Religion of the Veda (वैदिक धर्म, १९०८) । **(९) गोंड** (J. Gonda) - ने वैदिक विषयों पर कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित किए हैं : Stylistic Repetitions in the Veda (वेदों में शैली-विज्ञानात्मक पुनरुक्तियाँ), Vision of the Vedic Poets (वैदिक कवियों का दर्शन), Aspectual Function of the Rigvedic Present and Aorist (ऋग्वेद में लट् और लुङ् की प्रयोग-मीमांसा), Epithets in Rigveda (ऋग्वेद में विशेषण-प्रयोग) । **(१०) ग्रिसवोल्ड** (H.D. Griswold) - The Religion of the Rigveda (१९२३) और **फार्कुहर** (Farquhar) - Crown of Hinduism (१९१५) । ये दोनों ग्रन्थ पक्षपातपूर्ण और ईसाई-भावना से ओतप्रोत हैं । इसी श्रेणी में **श्रीमती स्टेवेन्सन** (Mrs. Stevenson)- Rites of Twice-bron (१९२०), **क्लेटन** (R.V. Clayton) - Rigveda and Rigvedic Religion (१९१३) ग्रन्थ हैं । इनमें भारतीय धर्म को तुच्छ और ईसाई धर्म को श्रेष्ठ प्रदर्शित करने का निन्दनीय प्रयास है ।

११. वेदों का रचनाकाल

रचनाकाल-निर्धारण में कठिनाइयाँ : वेदों के रचनाकाल के विषय में कोई निश्चित मत प्रकट करना प्रायः असंभव है । इसमें कुछ मौलिक कठिनाइयाँ हैं : (१) प्रामाणिक अन्तःसाक्ष्य और बहिःसाक्ष्य का सर्वथा अभाव । (२) प्राचीन वैदिक ग्रन्थों में तिथि, संवत्सर आदि के उल्लेख का अभाव। (३) वेदों को अपौरुषेय मानना । (४) वेदों के उल्लेख से युक्त परवर्ती वैदिक साहित्य के रचनाकाल की अनिश्चितता । (५) ज्योतिष-संबन्धी तथा भौगोलिक उल्लेखों की अस्पष्टता । (६) भारतीय और पाश्चात्त्य विद्वानों के दृष्टिकोण में मौलिक अन्तर होना । (७) वेदों में ऐतिहासिक तत्त्वों को मानना या न मानना ।

इसका परिणाम यह हुआ कि वेदों के रचनाकाल के विषय में परस्पर विरोधी तिथियाँ प्रस्तुत की गई हैं । एक ओर भारतीय विद्वान् वेदों को अपौरुषेय मानते हैं और उनका समय सृष्टि का प्रारम्भ - लाखों वर्ष पूर्व - मानते हैं, दूसरी ओर पाश्चात्त्य विद्वान् उन्हें ऐतिहासिक ग्रन्थ मानते हुए उनका समय ईसवीय सन् के समीप लाना चाहते हैं ।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित प्रतीत होता है कि वेदों के रचनाकाल के विषय में जितने मत प्रस्तुत किये गए हैं, वे सभी शत-प्रतिशत आनुमानिक और काल्पनिक हैं । पुष्ट प्रमाणों के अभाव में सहस्रों वर्षों के अन्तर को समन्वित करना प्रायः असंभव है ।

पूर्वसीमा - सृष्टि का प्रारम्भ ।

अपर सीमा : महावीर और गौतम बुद्ध ने वैदिक कर्मकांड में पशुबलि विषय को लेकर उसका खंडन किया है । इससे सिद्ध होता है कि वैदिक साहित्य का अन्तिम अंग सूत्रसाहित्य, मुख्यतया कर्मकांड के प्रतिपादक श्रौत और गृह्यसूत्र, उनसे पूर्व विद्यमान थे । इस आधार पर महावीर और बुद्ध से पूर्व ६०० ई०पू० के लगभग वैदिक साहित्य की अपर सीमा मानी जाती है । १९०७ ई० में डा० ह्यूगो विंकलर (Hugo Winckler) ने एशिया माइनर (वर्तमान टर्की) के बोगाज़कोई (Boghazkoi) स्थान से एक सन्धिपत्र वाला शिलालेख खुदाई में प्राप्त किया । यह शिलालेख १,४०० ई० पूर्व का है । इसमें मितानी (Mitani) और हिटाइट (Hittiti) नरेशों के बीच हुई सन्धि का उल्लेख है । इसमें दोनों जातियों के इष्ट देवों के साथ ही साक्षी रूप में मितानी देवों में मित्र, वरुण, इन्द्र और नासत्यौ (अश्विनी देव) देवों का उल्लेख है । इन देवों को वैदिक देवता मानते हुए सिद्ध किया जाता है कि वैदिक साहित्य की, मुख्यतया मूल चारों वेदों की, रचना १,४०० ई० पू० से पहले हो चुकी थी ।

विभिन्न मत : इस विषय में प्राप्त मुख्य मत ये हैं :

मत-प्रतिपादक	आधार	रचना-काल
१. स्वामी दयानन्द सरस्वती	वेद-मंत्र	सृष्टि का प्रारम्भ[१]
२. दीनानाथ शास्त्री चुलेट	ज्योतिष	(अब से) ३ लाख वर्ष पूर्व[२]
३. अविनाशचन्द्र दास	भूगर्भ	२५ हजार वर्ष ई०पूर्व[३]
४. नारायण भवनराव पावगी	भूगर्भ,ज्योतिष	७ हजार वर्ष ई०पूर्व
५. बालगंगाधर तिलक	ज्योतिष	६ हजार वर्ष ई०पूर्व[४]
६. डा० आर०जी० भंडारकर	वेदमंत्र	६ हजार वर्ष ई०पूर्व[५]
७. शंकर बालकृष्ण दीक्षित	ज्योतिष	३,५०० ई० पू०[६]
८. एच.याकोबी (H.Jacobi)	ज्योतिष	साढे चार से ढाई हजार ई०पू०[७]
९. विन्टरनित्स (M. Winternitz)	मितानी शिलालेख	२५०० ई०पू०[८]
१०. मैक्समूलर (Max Muller)	बौद्धसाहित्य	१२०० ई०पू०[९]

इनमें से कुछ मुख्य मतों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है :

(१) श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती : आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वेदों आदि के सन्दर्भों के द्वारा प्रतिपादित किया है कि वेदों का उद्भव परमात्मा से सृष्टि के प्रारम्भ में हुआ । उसने अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद और सूर्य से सामवेद को प्रकट किया । उससे ही अथर्ववेद भी प्रकट हुआ ।

१ .देखें, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, स्वामी दयानन्द, पृष्ठ ९ से २६

२. देखें, उनका ग्रन्थ - वेदकालनिर्णय । ३. ऋग्वेदिक इंडिया, कलकत्ता १९२२ ।

४. देखें, orion (ओरायन) ग्रन्थ । ५. मंत्र 'असुर्या नाम ते लोकाः' यजु० ४०.३ ।

६. देखें, उनका ग्रन्थ, भारतीय ज्योतिःशास्त्र, पूना, १८९६, पृ० १३६-१४०

७. *Winternitz*, Hist. of Indian Literature, भाग १, पृ० २९४-३००

८. वही, पृष्ठ २९०-३१० ९. वही, पृ० २९२-२९४

(क) तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ।। यजु० ३१.७

(ख) यस्माद् ऋचो .. यजुः.. सामानि ... अथर्वाङ्गिरसः० । अथर्व० १०.७.२०

(ग) अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात् सामवेदः । शत०ब्रा० ११.५.८.३

(घ) अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् ।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थम् ऋग्यजुःसामलक्षणम् । मनु० १.२३

श्री रघुनन्दन शर्मा ने भी इसी मत का समर्थन किया है ।[१] भारतीय पंचांग के अनुसार २०००ई० में सृष्टिसंवत् १,९५,५८,८५,१०१ तथा कलिसंवत् ५१०१ है । इसमें सत्ययुग - १७,२८,००० वर्ष, त्रेता - १२,९६,००० वर्ष , द्वापर - ८,६४,००० वर्ष, कलियुग - ४,३२,००० वर्ष मान वाले पूर्ववर्ती ६ मन्वन्तर संमिलित हैं ।[२] इस समय सप्तम वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है । ६ बीते मन्वन्तर हैं - १. स्वायंभुव, २. स्वारोचिष, ३. उत्तम , ४. तामस, ५. रैवत, ६. चाक्षुष ।

(२) श्री अविनाशचन्द्र दास : श्री दास ने ऋग्वेद में प्राप्त भूगोल एवं भूगर्भ-संबन्धी साक्ष्य के आधार पर ऋग्वेद का रचनाकाल २५ हजार वर्ष ई० पूर्व माना है । ऋग्वेद के एक मन्त्र में वर्णन है कि सरस्वती नदी पर्वत (हिमालय) से निकलकर समुद्र में मिलती है ।[३] पुरातत्त्व की गणना के अनुसार यह समुद्र राजस्थान में था । अब उस सरस्वती नदी और राजस्थान के समुद्र का लोप हो गया है । यह घटना २५ हजार वर्ष ई०पू० की है । उस समय दोनों की सत्ता थी । अतः ऋग्वेद इससे पूर्व बन चुका था ।

(३) श्री बालगंगाधर तिलक : श्री तिलक ने ज्योतिष-गणना के आधार पर ऋग्वेद का रचनाकाल ६ हजार ई०पूर्व से ४ हजार ई०पू० माना है । उन्होंने विभिन्न नक्षत्रों में वसन्त-संपात (Vernal Equinox, वर्नल इक्विनोक्स) के आधार पर यह तिथि निर्धारित की है । उन्होंने वैदिक काल को चार भागों में विभक्त किया है और विभिन्न स्तरों में वैदिक साहित्य के अंगों का उल्लेख किया है ।

काल	**ई०पू० समय**	**दृष्ट या प्रणीत ग्रन्थ**
१. अदिति काल	६०००-४०००	निविद् मंत्र (गद्य-पद्यात्मक, यज्ञिय विधिवाक्ययुक्त) ।
२. मृगशिरा काल	४०००-२५००	ऋग्वेद के अधिकांश सूक्त ।
३. कृत्तिका काल	२५००-१४००	चारों वेदों का संकलन, तैत्तिरीय संहिता और कुछ ब्राह्मण ग्रन्थ ।
४. सूत्र-काल (अन्तिम काल)	१४००-५००	सूत्र-ग्रन्थ और दर्शन-ग्रन्थ ।

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि वैदिक मंत्रों की रचना ६००० ई०पू० में प्रारम्भ हो गयी थी, किन्तु उनका परिष्कार, संकलन और संहिता-रूप २५०० ई०पू० से १४०० ई०पू०के मध्य हुआ है ।

---

१. वैदिक सम्पत्ति, वेदों का समय, पृष्ठ० ९०-१३०   २. मनु० १.७० । १.६२-६३

३. एकाचेतत् सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात् । ऋग्० ७.९५.२

It was at this time that the Samhitas were probably compiled into systematic books and attempts made to ascertain the meaning of the oldest hymns and formulae." (The Orion, Page 207)

श्री तिलक का निष्कर्ष है कि यदि वेदों का रचनाकाल ४००० ई०पू० भी मान लिया जाए तो पाश्चात्त्य और भारतीय विद्वानों के परस्पर विरोधी मतों का सामंजस्य हो जायेगा। इस प्रकार उन्होंने ४००० ई०पू० को वेदों का रचनाकाल मानने पर बल दिया है।

" We can thus satisfactorily account for all the opinions and traditions current about the age of the Vedas amongst ancient and modern scholars in India and in Europe, if we place the Vedic period at about 4,000 B.C., in strict accordance with the astronomical references and facts recorded in the ancient literature of India." The Orion P. 220"

गणना का प्रकार : श्री तिलक और श्री शंकर बालकृष्ण दीक्षित की गणना का आधार एक ही है। नक्षत्रों की संख्या २७ है। सूर्य का संक्रमण - वृत्त या राशिचक्र(Zodiac) ३६० डिग्री का है। सभी नक्षत्रों की पारस्परिक दूरी समान नहीं है, तथापि उसको समान मानकर ३६० डिग्री को २७ से भाग देने पर १३+१/३ डिग्री प्रत्येक नक्षत्र की दूरी सिद्ध होती है। प्रत्येक नक्षत्र अपने स्थान से समयानुसार पीछे हटता रहता है। एक नक्षत्र को एक डिग्री पीछे हटने में ७२ वर्ष लगते हैं। इस प्रकार एक नक्षत्र को १३+१/३ डिग्री पीछे हटने में (अर्थात् दूसरे नक्षत्र के स्थान पर पहुँचने में) ७२ x १३+१/३ =९६० वर्ष लगते हैं।

श्री दीक्षित ने शतपथब्राह्मण का एक महत्त्वपूर्ण अंश उद्धृत किया है, जिससे ज्ञात होता है कि शतपथ ब्राह्मण के रचनाकाल में कृत्तिकाएँ ठीक पूर्वीय बिन्दु पर उदय होती थीं।[1] आजकल वसन्त-संपात (Vernal Eqninox) पूर्वा भाद्रपदा के चतुर्थ चरण में होता है। इस प्रकार ज्ञात होता है कि कृत्तिका नक्षत्र (कृत्तिकाएँ) अपने स्थान से ४+३/४ नक्षत्र (भरणी, अश्विनी, रेवती), उत्तरा भाद्रपदा होते हुए पीछे हट आया है। ९६० को ४ +३/४ से गुणा करने पर अर्थात् ९६० x ४ + ३/४ = ४५६० वर्ष पहले कृत्तिका में (शतपथ ब्राह्मण काल में) वसन्त-संपात हुआ होगा, अर्थात् अब से लगभग २५०० ई०पू० शतपथ ब्राह्मण की रचना हुई होगी।

श्री तिलक इसी गणना को आधार मानकर ऋग्वेद में प्राप्त कुछ मन्त्रों के आधार पर वसन्त-संपात मृगशिरा नक्षत्र में मानते हैं और फिर आगे बढ़कर पुनर्वसु तक ले जाते हैं।[2] मृगशिरा से कृत्तिका दो नक्षत्र पहले है। एक नक्षत्र की दूरी पीछे हटने में ९६० वर्ष (लगभग एक हजार वर्ष) लगते हैं। मृगशिरा में वसन्त-संपात मानने पर ऋग्वेद का रचनाकाल ४५६०+१९२०=६४८० वर्ष (लगभग ६५०० वर्ष) पूर्व, अर्थात् लगभग ४५०० वर्ष ई०पू० होता है। यदि पुनर्वसु में वसन्त-संपात मानें तो लगभग दो हजार वर्ष और बढ़ जायेंगे, अर्थात् ६५०० ई०पू०। इसको श्री तिलक ने सुविधा के लिए ६००० ई०पू० मान लिया है।

१. एक द्वे त्रीणि चत्वारीति वा अन्यानि नक्षत्राणि, अथैता एव भूयिष्ठा यत् कृत्तिकाः, तद् भूमानमेव एतदुपैति, तस्मात् कृत्तिकास्वादधीत। एता ह वै प्राच्यै दिशो न च्यवन्ते, सर्वाणि ह वा अन्यानि नक्षत्राणि प्राच्यै दिशश्च्यवन्ते। शत० ब्रा० २.१.२.२ और ३

२. (क)वि शृंगिणमभिनच्छुष्णमिन्द्रः। ऋग्० १.३३.१२
(ख)तदध त्यं मायिनं मृगं तमु त्वं माययावधीः। ऋग्० १.८०.७
(ग) शिरो न्वस्य राविषम्०। ऋग्० १०.८६.५

(४) श्री शंकर बालकृष्ण दीक्षित : श्री दीक्षित ने उपर्युक्त रूप से शतपथ ब्राह्मण का समय २५०० ई०पू० मानकर चारों वेदों की रचना के लिए २५०x ४ = १००० वर्ष का समय मानकर ऋग्वेद का रचनाकाल ३५०० ई०पू० माना है ।

(५) श्री याकोबी : प्रसिद्ध जर्मन वैदिक विद्वान् श्री याकोबी ने भी ज्योतिष को आधार माना है । उन्होंने ध्रुव तारा को अपना लक्ष्य बनाया है । विवाह-संस्कार में 'ध्रुवं पश्य' विधि है'। ध्रुव तारा भी अपने स्थान से पीछे हटता है । उस आधार पर विचार करके उन्होंने ऋग्वेद का समय ४५०० ई०पू० माना है । श्री तिलक और याकोबी दूरस्थ होते हुए भी ज्योतिष की गणना के आधार पर लगभग एक ही निष्कर्ष पर पहुँचे हैं, यह आश्चर्य की बात है ।

(६) श्री मैक्समूलर : श्री मैक्समूलर ने गौतम बुद्ध के आविर्भाव को अपना आधार माना है । बुद्ध ने वैदिकी हिंसा का खंडन किया है, अत: वैदिक काल बुद्ध के जन्म से पूर्व होना चाहिए । इस आधार पर उन्होंने वैदिक काल को चार भागों में विभक्त किया है :

(क) १२०० ई०पू० से १००० ई०पू० । यह छन्द:काल है । इसमें निविद् आदि स्फुट वैदिक मन्त्रों की रचनाएँ हुईं ।

(ख) १००० ई०पू० से ८०० ई०पू० । यह मन्त्र-काल है । इसमें वैदिक संहिताओं की रचना हुई और उनका संकलन हुआ ।

(ग) ८०० ई०पू० से ६०० ई०पू० । यह ब्राह्मणकाल है । इसमें ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना हुई ।

(घ) ६०० ई० पू० से ४०० ई०पू० । यह सूत्रकाल है । इसमें श्रौतसूत्रों, गृह्यसूत्रों आदि की रचना हुई ।

कुछ समय तक यह मत अत्यन्त प्रचलित रहा, किन्तु बाद में स्वयं मैक्समूलर ने इस मत को अमान्य कर दिया । १४०० ई०पू० के बोगाज़कोई के शिलालेख की प्राप्ति के बाद यह मत सर्वथा निरस्त हो गया ।

(७) श्री विन्टरनित्स : अपने इतिहास में विन्टरनित्स ने सभी मतों की विस्तृत आलोचना के बाद अपना समन्वयात्मक मत दिया है कि वैदिक काल २५०० ई०पू० से ५०० ई०पू० तक माना जा सकता है ।[1] इस प्रकार ऋग्वेद का समय २५०० ई०पू० है ।

निष्कर्ष

श्री स्वामी दयानन्द जी आदि ने वेदों का रचनाकाल लाखों वर्ष पूर्व माना है । यह शास्त्रीय दृष्टि से उचित होने पर भी व्यावहारिक दृष्टि से उपयोगी नहीं है, क्योंकि लाखों वर्षों का, इतना ही नहीं अपितु आज से १० हजार वर्ष पूर्व का भी, कोई प्रामाणिक सुसंबद्ध इतिहास नहीं मिलता है, जिसके आधार पर कुछ निश्चित कहा जा सके ।

प्रो० मैक्समूलर के मत की चर्चा की जा चुकी है । बोगाज़कोई के शिलालेख की प्राप्ति से उनका मत निरस्त हो चुका है । प्रो० विन्टरनित्स समन्वयवादी हैं । उन्होंने बोगाज़कोई के शिलालेख के आधार पर १४०० ई०पू० को अवरसीमा मानकर वैदिक

1. History of Indian Literature. Vol. I PP. 290-310

संहिताओं के लिए एक सहस्र और जोड़कर ऋग्वेद का समय २५०० ई०पू० माना है तथा वैदिक-साहित्य की समाप्ति महावीर और बुद्ध से पूर्व अर्थात् ७५० ई०पू० से ५०० ई०पू० के मध्य माना है । इस मन्तव्य में घोर विसंगति के दोषों का निराकरण हो जाता है । किन्तु पूर्व सीमा २५०० ई०पू० ही हो, इसके लिए कोई ठोस प्रमाण या आधार नहीं है ।

यहाँ पर एक ऐतिहासिक तथ्य भी ध्यान देने योग्य है । अथर्ववेद के अन्त में खिल सूक्तों के रूप में दस सूक्त (१२७ से १३६) कुन्ताप सूक्त हैं । इनमें राजा परीक्षित् (परिक्षित्) का बहुत गुणगान है । राजा परीक्षित् का वर्तमान काल के रूप में वर्णन है । यथा,

जाया पतिं वि पृच्छति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः । अथर्व० २०.१२७.९

जनः स भद्रमेधति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः । अथर्व० २०.१२७.१०

कुन्ताप सूक्तों में प्रतीप और प्रातिसुत्वन का उल्लेख है ।[१] रैप्सन का मत है कि प्रातिसुत्वन परीक्षित् का पौत्र था और प्रतीप प्रपौत्र ।[२] जनमेजय परीक्षित् का पुत्र था । शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख है कि जनमेजय ने अश्वमेध यज्ञ किया था ।[३] परीक्षित् अर्जुन का पौत्र और अभिमन्यु का पुत्र था । इस प्रकार अर्जुन से आगे की ५ पीढ़ी का वर्णन प्राप्त होता है । अर्जुन > अभिमन्यु > परीक्षित् > जनमेजय > प्रातिसुत्वन > प्रतीप । प्रो० लुई रेनु ने पुराणों के आधार पर महाभारत के युद्ध का समय १५०० ई०पू० और परीक्षित् का समय १४०० ई०पू० माना है ।[४] कुन्ताप सूक्तों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि अथर्ववेद का संपादन परीक्षित् के समय में हुआ था । इस प्रकार अथर्ववेद का समय १४०० ई०पू० मानना उचित है । उससे पूर्व अन्य वेदों की रचना के लिए कम से कम २ हजार वर्ष और समझने चाहिएँ ।

श्री लोकमान्य तिलक, श्री दीक्षित और प्रो० याकोबी के मत प्रायः समान आधार पर हैं और उनके द्वारा निर्धारित तिथियाँ भी प्रायः समान हैं । इनके मत निराधार न होकर साधार हैं । इनकी युक्तियाँ और प्रमाण तथ्यों पर निर्भर हैं । ज्योतिष-संबन्धी गणनाओं को पुष्ट प्रमाणों के अभाव में काल्पनिक, अतिशयोक्तिपूर्ण या मनगढ़न्त कहना अशोभनीय है । वैदिक संहिताओं, ब्राह्मणग्रन्थों, आरण्यकों, उपनिषदों, श्रौत गृह्य आदि सूत्रों एवं अन्य वेदांगों के लिए लगभग ३ हजार वर्ष का समय अपेक्षित है । अतः सुविधा एवं व्यावहारिक दृष्टि से वैदिक साहित्य का समय ४ सहस्र ई०पू० से लेकर लगभग १ सहस्र ई०पू० तक रखा जा सकता है ।

अन्य पुष्ट प्रमाणों के अभाव में इस विषय में इससे अधिक कुछ कहना संभव नहीं है ।

---

१. प्रतीपं प्रातिसुत्वनम् । अ० २०.१२९.२
2. The Cambridge History of India, Vol. I, P. 107
३. शत०ब्रा० १३.५.४.१ से ३ ।
4. The Civilization of Ancient India, *Louis Renou*. P. 174

वैदिक साहित्य - समीक्षा

अध्याय – २

वैदिक संहिताएँ

(क) ऋग्वेद - संहिता

१. ऋक् का अर्थ

ऋच् या ऋक् का अर्थ है – स्तुतिपरक मन्त्र, 'ऋच्यते स्तूयतेऽनया इति ऋक्' । जिन मंत्रों के द्वारा देवों की स्तुति की जाती है, उन्हें ऋक् (ऋच् या ऋचा) कहते हैं । ऋग्वेद में विभिन्न देवों की स्तुति वाले मंत्र हैं, अतः इसे ऋग्वेद कहते हैं । इन मंत्रों के द्वारा देवों का आह्वान किया जाता है । ऐसी ऋचाओं के संग्रह के कारण इसे ऋग्वेद-संहिता कहते हैं । '**संहिता**' शब्द संकलन या संग्रह का बोधक है ।

'**संहिता**' शब्द का पारिभाषिक अर्थ है – '**परः संनिकर्षः संहिता**' (अष्टा० १.४.१०९) अर्थात् वर्णों के अत्यन्त सांनिध्य को संहिता कहते हैं । पदपाठ में मंत्र के एक-एक पद को पृथक् करके पढ़ते हैं और संहितापाठ में संधि आदि के द्वारा समन्वित रूप का प्रयोग करते हैं । यहाँ पर संहिता शब्द का प्रयोग संकलन या संग्रह अर्थ में समझना चाहिए ।

ऋक् आदि की दार्शनिक व्याख्या : ब्राह्मण ग्रन्थों में ऋक् , यजुः और साम शब्दों की आध्यात्मिक और दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत की गई है । ऋक् भूलोक है (अग्नि देवता-प्रधान), यजुः अन्तरिक्ष लोक है (वायु देवता-प्रधान) और साम द्युलोक है (सूर्य देवता-प्रधान) ।[१] अतएव अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद और सूर्य से सामवेद की उत्पत्ति बताई गई है । इस प्रकार तीन वेदों में तीनों लोकों का समावेश है । यजुर्वेद ने इसकी दूसरी व्याख्या की है । ऋग्वेद वाक्तत्त्व (ज्ञानतत्त्व या विचारतत्त्व) का संकलन है । यजुर्वेद मनस्तत्त्व (चिन्तन, कर्मपक्ष, कर्मकांड, संकल्प) का संग्रह है तथा सामवेद प्राणतत्त्व (आन्तरिक ऊर्जा, संगीत, समन्वय) का संग्रह है । इन तीनों तत्त्वों के समन्वय से ब्रह्म की प्राप्ति होती है ।

---

१. अयं (भू-) लोक ऋग्वेदः । (षड्विंश ब्रा० १.५) । वायुरेव यजुः । (शत०ब्रा० १०.३.५.२)
तस्माद् एष (आदित्यः) एव साम । (जैमि०उप० ब्रा० १.१२.५)
साम वा असौ द्युलोकः । (तांड्य ब्रा० ४.३.५)

ऋचं वाचं प्र पद्ये, मनो यजुः प्र पद्ये, साम प्राणं प्र पद्ये । यजु० ३६.१

ब्राह्मण ग्रन्थों में ऋक् के अन्य दार्शनिक अर्थ दिए हैं[1] : ब्रह्म, वाक् (वाणी), प्राण, अमृत, वीर्य आदि। इसका अभिप्राय यह है कि ऋग्वेद में ब्रह्मप्राप्ति, वाक्तत्त्व या शब्द ब्रह्म की प्राप्ति, प्राण या तेजस्विता की प्राप्ति, अमरत्व के साधन तथा ब्रह्मचर्य के द्वारा ओजस्विता आदि का वर्णन है ।

२. वेदों के प्रतिनिधि होता आदि

यज्ञ में चारों वेदों के प्रतिनिधि के रूप में चार ऋत्विज् होते हैं । ऋग्वेद में इन चारों ऋत्विजों के कर्तव्यों का निर्देश है ।

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान्
गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु ।
ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां
यज्ञस्य मात्रां विमिमीत उ त्वः । ऋग्० १०.७१.११

यज्ञ में चार ऋत्विज् ये होते हैं : १. होता, २. उद्गाता, ३. अध्वर्यु, ४. ब्रह्मा ।

१. होता : यह ऋग्वेद का प्रतिनिधि करता है और यज्ञ में ऋग्वेद के मंत्रों का पाठ करता है । ऐसी देवस्तुति वाली ऋचाओं का पारिभाषिक नाम 'शस्त्र' है । इसका लक्षण है - 'अप्रगीत-मन्त्र-साध्या स्तुतिः शस्त्रम्' । अर्थात् गान-रहित देवस्तुति-परक मंत्रों को 'शस्त्र' कहते हैं । **२. उद्गाता :** यह सामवेद का प्रतिनिधित्व करता है । यह यज्ञ में देवस्तुति में सामवेद के मंत्रों का गान करता है । **३. अध्वर्यु :** इसका संबन्ध यजुर्वेद से है । यह यज्ञ के विविध कर्मों का निष्पादक है । यह प्रमुख ऋत्विज् है । यज्ञ में घृत की आहुति देना आदि इसका ही कार्य है । **४. ब्रह्मा :** यह अथर्ववेद का प्रतिनिधित्व करता है । यह यज्ञ का अधिष्ठाता और संचालक होता है । इसके निर्देशानुसार ही अन्य ऋत्विज् कार्य करते हैं । यह चतुर्वेदवित् होता है । यह त्रुटियों का परिमार्जन, निर्देशन, यज्ञिय विधि की व्याख्या आदि करता है । त्रुटियों आदि के संशोधन के कारण इसको यज्ञ का भिषक् (भिषज् , वैद्य) कहा जाता है ।

भेषजकृतो ह वा एष यज्ञो यत्रैवंविद् ब्रह्मा भवति । छान्दो०उप० ४.१७.८

३. ऋग्वेद का महत्त्व

चारों वेदों में ऋग्वेद सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और आदरणीय माना जाता है । इसके महत्त्व के कुछ विशेष कारण ये हैं : १. ऋग्वेद सबसे प्राचीन है । भारतीय और पाश्चात्त्य सभी विद्वान् इसको विश्व का सबसे प्राचीन ग्रन्थ मानते हैं । २. भाव, भाषा और छन्द की दृष्टि से यह सबसे प्राचीन है । ३. इसमें अधिकांश देव इन्द्र, विष्णु, मरुत् आदि

---

१. ब्रह्म वा ऋक् (कौषी०ब्रा० ७.१०) । वाग् ऋक् (जैमि०उप० ब्रा० ४.२३.४) । प्राणो वा ऋक् । (शत०ब्रा० ७.५.२.१२) । अमृतं वा ऋक् (कौषी०ब्रा० ७.१०) वीर्यं वै देवता - ऋचः । (शत० १.७.२.२०) ।

प्राकृतिक तत्त्वों के प्रतिनिधि हैं। ये पंचतत्त्वों अग्नि, वायु आदि तथा सूर्य, मेघ, विद्युत् आदि का प्रतिनिधित्व करते हैं। ४. सभी वेदों और ब्राह्मणग्रन्थों आदि में ऋग्वेद का ही नाम सर्वप्रथम लिया गया है।[1] ५. तैत्तिरीय संहिता का कथन है कि जो कार्य साम और यजुः के द्वारा किया जाता है, वह शिथिल होता है और जो ऋक् के द्वारा किया जाता है, वह दृढ़ और पुष्ट होता है।[2] ६. यह चारों वेदों में सबसे विशालकाय ग्रन्थ है।

४. ऋग्वेद की शाखाएँ

महर्षि पतंजलि (१५०ई०पू०) ने महाभाष्य में ऋग्वेद की २१ शाखाओं का उल्लेख किया है। 'एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्' (महा० आह्निक १)। इनमें से केवल ५ शाखाओं का मुख्य रूप से उल्लेख मिलता है। शेष के नाम भी संदिग्ध हैं।[3]

'चरणव्यूह' के अनुसार प्रमुख ५ शाखाएँ ये हैं – १. शाकल, २. बाष्कल, ३. आश्वलायन, ४. शांखायन, ५. माण्डूकायन।

१. शाकल : संप्रति ऋग्वेद की यही शाखा प्रचलित है। यही शाखा उपलब्ध है। इसी के अनुसार आगे वर्ण्य-विषय, मंत्रसंख्या आदि दिए गए हैं।

२. बाष्कल : यह शाखा उपलब्ध नहीं है। शाकल शाखा में १०१७ सूक्त हैं, परन्तु बाष्कल शाखा में १०२५ सूक्त थे, अर्थात् ८ सूक्त अधिक थे। इन ८ सूक्तों को भी शाकल शाखा में समाविष्ट कर लिया गया है। एक 'संज्ञान सूक्त' को ऋग्वेद के अन्त में ले लिया है और शेष ७ सूक्तों को 'बालखिल्य' सूक्तों में प्रथम ७ सूक्तों में स्थान दिया गया है।

३. आश्वलायन : यह संहिता और इसका ब्राह्मण सम्प्रति उपलब्ध नहीं है। इस शाखा के श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्र ही उपलब्ध हैं।

४. शांखायन : यह शाखा उपलब्ध नहीं है। इसके ब्राह्मण, आरण्यक, श्रौत और गृह्यसूत्र ही प्राप्य हैं।

५. माण्डूकायन : यह शाखा संप्रति अप्राप्य है।

५. ऋग्वेद का विभाजन

ऋग्वेद-संहिता का विभाजन दो प्रकार से किया गया है : १. अष्टक, अध्याय, वर्ग और मंत्र। २. मंडल, अनुवाक, सूक्त और मंत्र।

१. अष्टक क्रम : इसमें पूरे ऋग्वेद को ८ समान भागों में बाँटा गया है, इन्हें 'अष्टक' कहते हैं। यह विभाजन संख्या और गणना की दृष्टि से सुन्दर है। प्रत्येक अष्टक

---

१. तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत।। ऋग्० १०.९०.९ । यजु० ३१.७

२. यद् वै यज्ञस्य साम्ना यजुषा क्रियते शिथिलं तद्, यद् ऋचा तद् दृढम्। तैत्ति०सं० ६.५.१०.३

३. (क) भगवद्दत्त, वैदिक वाङ्मय का इतिहास, भाग १ पृ० ७७ से १३२
(ख) रामगोविन्द त्रिवेदी, वैदिक साहित्य, पृ० ६३-६४

को ८ अध्यायों में बाँटा गया है । अतः पूरे ऋग्वेद में ८ x ८ = ६४ अध्याय हैं । प्रत्येक अध्याय में वर्गों की संख्या भिन्न है, यह संख्या २५ से ४९ तक है । प्रत्येक वर्ग में मंत्रों की संख्या प्रायः ५ है । अष्टकों में वर्गों की संख्या भी भिन्न है । यह २२१ से लेकर ३१३ तक है । इस प्रकार ऋग्वेद में बालखिल्य सूक्तों को भी संमिलित करते हुए ८ अष्टक, ६४ अध्याय, २०२४ वर्ग और १०, ५५२ मंत्र हैं । इसमें बालखिल्य सूक्तों सहित १०२८ सूक्त हैं और ३,९७,२५६ अक्षर हैं ।

२. मण्डल-क्रम : यह विभाजन अधिक सुसंगत और उपयुक्त है । इसमें पूरे ऋग्वेद को ऋषि और देवता के अनुसार १० मंडलों में विभक्त किया गया है । इसमें बालखिल्य के ११ सूक्तों के ८० मंत्रों को संमिलित करते हुए ८५ अनुवाक, १०२८ सूक्त और १०, ५५२ मंत्र हैं । इस विभाजन में सन्दर्भ-निर्देश में अनुवाक की संख्या छोड़ दी जाती है । सन्दर्भ में मंडल-संख्या, सूक्त-संख्या और मंत्र-संख्या ही देते हैं । जैसे -

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान् । ऋग्० १०.७१.११

इसका अभिप्राय यह है कि यह मंत्र ऋग्वेद के दशम (१०) मंडल के ७१वें सूक्त का ११वाँ मंत्र है । इसी प्रकार सर्वत्र मंडल, सूक्त और मंत्र की संख्या दी जाती है ।

६. मंत्र-द्रष्टा ऋषि

सुविधा के लिए ऋग्वेद के मंडल, सूक्त, मंत्र-संख्या और संबद्ध ऋषियों की सारणी दी जा रही है । ऋषि-नाम का अभिप्राय है कि इस मंडल में इन ऋषियों के द्वारा दृष्ट मंत्र हैं ।

मंडल	सूक्तसंख्या	मंत्रसंख्या	ऋषिनाम
१	१९१	२००६	मधुच्छन्दाः, मेधातिथि, दीर्घतमाः, अगस्त्य, गोतम, पराशर आदि ।
२	४३	४२९	गृत्समद एवं उनके वंशज
३	६२	६१७	विश्वामित्र एवं उनके वंशज
४	५८	५८९	वामदेव एवं उनके वंशज
५	८७	७२७	अत्रि एवं उनके वंशज
६	७५	७६५	भरद्वाज एवं उनके वंशज
७	१०४	८४१	वशिष्ठ एवं उनके वंशज
८	१०३	१७१६	कण्व, भृगु, अंगिरस् एवं वंशज
९	११४	११०८	ऋषिगण, विषय-पवमान सोम
१०	१९१	१७५४	त्रित, विमद, इन्द्र, श्रद्धा कामायनी, इन्द्राणी, शची, उर्वशी आदि ।
योग	**१०२८**	**१०,५५२**	

७. मंत्र-द्रष्टा ऋषिकाएँ

ऋग्वेद में २४ और अथर्ववेद में ५ मंत्रद्रष्टा ऋषिकाओं का उल्लेख है । ऋग्वेद में इन २४ ऋषिकाओं द्वारा दृष्ट मंत्र २२४ हैं और अथर्ववेद में ५ ऋषिकाओं द्वारा दृष्ट मंत्र १९८ हैं । इस प्रकार दोनों वेदों में ऋषिकाओं द्वारा दृष्ट मंत्रों की संख्या ४२२ है ।

ऋग्वेद में ऋषिकाएँ, दृष्टमंत्रों की संख्या और सन्दर्भ सूक्त इस प्रकार हैं :

(क) ऋग्वेद (२२४ मंत्र)

ऋषिका	मंत्रसंख्या	सन्दर्भ	ऋषिका	मंत्रसंख्या	सन्दर्भ
१. सूर्य सावित्री	४७	१०.८५	२. घोषा काक्षीवती	२८	१०.३९ । १०.४०
३. सिकता निवावरी	२०	९.८६	४. इन्द्राणी	१७	१०.८६ । १०.१४५
५. यमी वैवस्वती	११	१०.१०	६. दक्षिणा प्राजापत्या	११	१०.१०७
		१०.१५४	८. वाक् आम्भृणी	८	१०.१२५
७. अदिति	१०	१०.७२ । ४.१८	१०. जुहू ब्रह्मजाया	७	१०.१०९
९. अपाला आत्रेयी	७	८.९१	१२. विश्ववारा आत्रेयी	६	५.२८
११. अगस्त्यस्वसा	६	१०.६०	१४. सरमा देवशुनी	६	१०.१०८
१३. उर्वशी	६	१०.९५	१६. पौलोमी शची	६	१०.१५९
१५. शिखण्डिन्यौ अप्सरसौ	६	९.१०४	१८. श्रद्धा कामायनी	५	१०.१५१
१७. देवजामयः	५	१०.१५३	२०. सार्पराज्ञी	३	१०.१८९
१९. नदी	४	३.३३	२२. शश्वती आंगिरसी	१	८.१
२१. गोधा	१	१०.१३४	२४. रोमशा ब्रह्मवादिनी	१	१.१२६
२३. वसुक्रपत्नी	१	१०.२८			

(ख) अथर्ववेद (१९८ मंत्र)

ऋषिका	मंत्रसंख्या	सन्दर्भ	ऋषिका	मंत्रसंख्या	सन्दर्भ
१. सूर्या सावित्री	१३९	१४.१,२	२. मातृनामा	४०	२.२ ।४.२० । ८.६
३. इन्द्राणी	११	२०.१२६	४. देवजामयः	५	२०.९३
५. सर्पराज्ञी	३	२०.४८			

८. ऋग्वेद में छन्दोविधान

ऋग्वेद में कुल २० छन्दों का प्रयोग हुआ है । इनमें से केवल ७ छन्दों का ही मुख्य रूप से उपयोग हुआ है । ये हैं : १. गायत्री (२४ अक्षर), २. उष्णिक् (२८ अक्षर), ३. अनुष्टुप् (३२ अक्षर), ४. बृहती (३६ अक्षर), ५. पङ्क्ति (४० अक्षर), ६. त्रिष्टुप् (४४ अक्षर), ७. जगती (४८ अक्षर) । इनमें भी ४ छन्दों के मंत्रों की संख्या अधिक है । ये हैं : त्रिष्टुप् , गायत्री, जगती और अनुष्टुप् । शेष तीन के मंत्रों की संख्या है : १ पंक्ति - ४९८, २. उष्णिक् -३९८ और ३. बृहती -३७१ ।[1] बालखिल्य-सहित ऋग्वेद के कुल मंत्रों की संख्या १०,५५२ है तथा इनके अक्षरों की गणना - ३,९७,२६५ (तीन लाख, सत्तानवे हजार, दो सौ पैंसठ) है । मुख्य रूप से प्रयुक्त ७ छन्दों का विवरण इस प्रकार है :

१. विस्तृत विवरण के लिए देखें : ऋग्वेद संहिता, सातवलेकर पृष्ठ ७६८

छन्दनाम	अक्षर	मंत्रसंख्या	अक्षर-संख्या
१.	त्रिष्टुप् (४४)	४२५८	१,८७,३१२
२.	गायत्री (२४)	२४५६	५८,९३८
३.	जगती (४८)	१३५३	६४,९४४
४.	अनुष्टुप् (३२)	८६०	२७,५२०
५.	पंक्ति (४०)	४९८	
६.	उष्णिक् (२८)	३९८	
७.	बृहती (३६)	३७१	

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि ऋग्वेद के ८० प्रतिशत मंत्र उपर्युक्त प्रथम चार छन्दों में ही हैं और इन चार छन्दों का ही ऋग्वेद में प्राधान्य है ।

उक्त सात छन्दों के अतिरिक्त ऋग्वेद में प्रयुक्त अन्य छन्द ये हैं :

	छन्दनाम	अक्षर	मंत्र	छन्दनाम	अक्षर	मंत्र
८.	अतिजगती	५२	१७	९. शक्वरी	५६	१९
१०.	अतिशक्वरी	६०	१०	११. अष्टि	६४	७
१२.	अत्यष्टि	६८	८२	१३. धृति	७२	२
१४.	अतिधृति	७६	१	१५. द्विपदा गायत्री	१६	३
१६.	द्विपदा विराट्	२०	१३९	१७. द्विपदा त्रिष्टुप्	२२	१४
१८.	द्विपदा जगती	२४	१	१९. एकपदा विराट्	१०	५
२०.	एकपदा त्रिष्टुप्	११	१			

इस प्रकार अधिक प्रयुक्त छन्द ७ और कम प्रयुक्त १३ छन्द हैं ।

९. ऋग्वेद का मौलिक अंश

पाश्चात्त्य विद्वानों ने विचार व्यक्त किया है कि ऋग्वेद का कुछ अंश मौलिक है और कुछ अंश परकालीन है । उनका मन्तव्य है :

१. ऋग्वेद के मौलिक अंश में मंडल २ से ७ तक ही हैं । इन्हें 'वंश-मंडल' भी कहते हैं । इनमें से प्रत्येक मंडल में एक ही ऋषि के वंशजों द्वारा दृष्ट मंत्रों का संकलन है ।

२. मंडल २ से ७ तक का क्रम सूक्त-संख्या पर निर्भर है । मंडल २ से ७ तक प्रायः सभी मंडलों में सूक्तों की संख्या बढ़ती गयी है ।

३. मंडल ८ को स्पष्ट रूप से किसी एक ऋषि के वंश का मंडल नहीं कहा जा सकता है । इसमें कई ऋषियों (कण्व, भृगु, अंगिरस् आदि) के वंशज हैं । मंडल १ और ८ में कण्व ऋषि के वंशजों के द्वारा दृष्ट मंत्रों की पर्याप्त संख्या है । इनमें भाव और भाषा का साम्य भी देखने को मिलता है । इस प्रकार के लगभग ४० सूक्तों में भाव-साम्य दृष्टिगोचर होता है ।

४. नवम मंडल की अपनी विशेषता है । इसमें पवमान (पवित्र) सोम से संबद्ध सभी मंत्रों का संकलन है । इसमें मंडल २ से ७ तक के ऋषियों के द्वारा दृष्ट मंत्र भी संगृहीत हैं । सोम-विषयक मंत्र चाहे किसी भी ऋषि द्वारा दृष्ट हो, इसमें संगृहीत है ।

इस मंडल में सूक्तों के विन्यास का आधार मुख्यरूप से छन्द है । तदनुसार ही सूक्तों का क्रम रखा गया है ।

५. मंडल १ बाद में मूल-ग्रन्थ में जोड़ा गया है । इसमें विविध ऋषियों के द्वारा दृष्ट मंत्रों का संकलन है । इसमें कुछ ऋषि-परिवार ही विशिष्ट रूप से लिए गए हैं ।

६. मंडल १० बाद में जोड़ा गया है । इसमें भाषा, व्याकरण एवं छन्द की दृष्टि से विशिष्ट शब्दावली, नवीन भाव, दार्शनिक तत्त्व तथा अन्य नवीन सामग्री के संकलन के कारण नवीनता है । विशेष उल्लेखनीय है कि मंडल १ और १० में सूक्तों की संख्या समान अर्थात् १९१ ही है । इन दोनों मंडलों में मंत्रों की संख्या अन्य सभी मंडलों से अधिक है ।

पाश्चात्त्य मत की समीक्षा : आपाततः पाश्चात्त्य मत बहुत रुचिकर एवं ग्राह्य प्रतीत होता है । यदि ऋग्वेद-संहिता के संकलन में अपनाए गए सिद्धान्तों को पहले समझ लिया जाता तो इस प्रकार की कल्पना निरर्थक प्रतीत होती । मौलिक अंश और परकालीन अंश का निर्णय करने के लिए आवश्यक है कि उनके द्रष्टा ऋषियों का स्थितिकाल आगे-पीछे हो । यदि द्रष्टा एक ही ऋषि है तो उसके दृष्ट मंत्रों में से कुछ को प्राचीन और कुछ को नवीन या परकालीन कैसे कह सकते हैं ? भाषा-साम्य और भाव-साम्य होने पर भी कुछ को मौलिक और कुछ को प्रक्षिप्त कहना असंगत है । मंडल १ और ८ में अनेक सूक्तों के द्रष्टा कण्ववंशी ही हैं । मंडल ९ में तो सभी ऋषियों का संकलन है । मंडल १० में भी अंगिरावंशज (सूक्त ४२ से ४४,४७,६७,६८,७१), वामदेववंशज (सूक्त ५४ से ५६), विश्वामित्र (सूक्त १६७) आदि के दृष्ट सूक्त और मंत्र हैं । एतदर्थ आवश्यक है कि मंत्रों के संकलन में अपनाए गए सिद्धान्तों को समझ लिया जाए ।

वेदों का विभाजन : यह माना जाता है कि पहले सभी वेद एक संहिता के रूप में थे । दुर्गाचार्य ने निरुक्त की वृत्ति में उल्लेख किया है कि वेदों की यह संहिता अधिक भारी थी एवं कष्टसाध्य थी, अतः सुबोध बनाने के उद्देश्य से व्यास (वेदव्यास, कृष्ण द्वैपायन) जी ने इसका विभाजन चार वेदों के रूप में किया ।[1] इस पृथक्करण (व्यास) के कारण व्यास का 'वेदव्यास' नाम पड़ा ।[2]

वेदों को स्वरूप-भेद के आधार पर तीन भागों में बाँटा गया है । मीमांसादर्शन में जैमिनि ने इसका स्पष्टीकरण किया है । ये तीन भेद हैं : पद्य, गद्य और गीति (गान) । जिन मंत्रों में अर्थ के आधार पर पाद (चरण) की व्यवस्था है और पद्यात्मक हैं, उन्हें ऋक् (ऋच्) या ऋचा कहा गया । ऐसे संकलन को ऋग्वेद कहते हैं । जिन ऋचाओं का गान होता है और जो गीतिरूप हैं, उन्हें साम कहते हैं । ऐसे मंत्रों के संकलन को सामवेद कहा जाता है । जो पद्य और गान से रहित हैं, अर्थात् गद्यरूप हैं, उन्हें यजुष् (यजुः) कहते हैं । ऐसे मंत्रों का संकलन यजुर्वेद है । अथर्ववेद में पद्य और गद्य दोनों का संकलन है, अतः वह इसी तीन भेद के अन्तर्गत आता है ।

---

१. वेदं तावद् एकं सन्तम् अतिमहत्त्वाद् दुरध्येयम् अनेकशाखाभेदेन समाम्नासिषुः। सुखग्रहणाय व्यासेन समाम्नातवन्तः । दुर्गाचार्य, निरुक्त १.२०

२. विव्यास वेदान् यस्मात् स वेदव्यास इति स्मृतः । महाभारत

तेषामृग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था । जैमिनीय सूत्र २.१.३५
गीतिषु सामाख्या । जै०सू० २.१.३६
शेषे यजुःशब्दः। जै०सू० २.१.३७

इस भेदत्रय के कारण वेदों को वेदत्रयी कहते हैं । वेदत्रयी का भाव है – वेदों की त्रिविध रचना, पद्य (ऋक्), गीति (साम), गद्य (यजुः) ।

ऋग्वेद-संकलन के कुछ नीति-तत्त्व या सिद्धान्त (Criteria)

ऋग्वेद के संकलन में अपनाए गए कुछ सिद्धान्त ये हैं :

(१) ऋषि-परिवारों से संबद्ध सूक्तों एवं मंत्रों का पहले संग्रह कर लिया जाय । इस दृष्टि से मंडल २ से ७ तक का संग्रह किया गया । इनमें केवल एक ही ऋषि-वंश है । मंडल ८ में कण्व, भृगु आदि द्वारा दृष्ट मंत्र अधिक हैं, अतः उसमें कई ऋषि-वंशों का संकलन है ।

(२) एक ऋषि द्वारा दृष्ट मंत्रों को यथासंभव एक ही स्थान पर रखा जाए ।

(३) विषय की एकता पर ध्यान रखा जाय ।

(४) सोम (पवमान सोम) -विषयक सूक्तों एवं मंत्रों की संख्या बहुत अधिक है, अतः उन्हें एकत्र रखा जाए । भले ही वे सूक्त किसी भी ऋषि द्वारा दृष्ट हों ।

(५) सूक्तों के क्रम-विन्यास में देवों को यथासंभव इस क्रम से रखा जाय – अग्नि, इन्द्र, विश्वेदेवाः, मरुतः, अश्विनौ, मित्रावरुणौ आदि ।

(६) छन्दों के क्रम-विन्यास में प्रायः यह क्रम रखा जाय – गायत्री, त्रिष्टुप् (त्रिष्टुभ्), जगती, अनुष्टुप् (अनुष्टुभ्) और पंक्ति । ये छन्द ही पूरे ऋग्वेद में मुख्य हैं ।

(७) ऋषि-परिवारों से जो सूक्त बच जाएँ, उन्हें ग्रन्थ के आदि या अन्त में स्थान दिया जाए । इस प्रकार के मंडल हैं – एक और दस । इनमें भी यह ध्यान रखा जाए कि जिन ऋषियों या ऋषि-वंशजों के सूक्त अधिक हैं, उन्हें मंडल १ में स्थान दिया जाए । साथ ही यह भी ध्यान रखा जाय कि आदि और अन्त के मंडलों में सूक्तों की संख्या प्रायः समान हो । इस दृष्टि से दोनों मंडलों में सूक्तों की संख्या १९१ है । प्रथम मंडल में इन ऋषियों या इनके वंशजों को स्थान दिया गया है : मधुच्छन्दा : (सूक्त १ से ११), मेधातिथि काण्व (१२ से २३), हिरण्यस्तूप आंगिरस (३१ से ३५), कण्व या कण्ववंशी (३६-५०), सव्य आंगिरस (५१-५७), गोतम या गोतमवंशी (५८-६४, ७४-९३), कुत्स आंगिरस (९४-११५), दीर्घतमस् और वंशज (११६-१२६, १४०-१६४), अगस्त्य (१६५-१९१) । प्रथम मंडल में सूक्त १६४ विज्ञान आदि की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है ।

(८) ग्रन्थ के अन्त में उन ऋषियों को स्थान दिया जाए, जिनके सूक्तों या मंत्रों की संख्या कम हो । अतएव दशम मंडल में ऋषियों की संख्या अधिक है । साथ ही बीच-बीच में ऋषिकाओं को भी स्थान दिया गया है । दशम मंडल ऋग्वेद का नवनीत है । इसमें कुछ उच्च दार्शनिक, आध्यात्मिक और वैज्ञानिक भाव वाले सूक्त हैं । जैसे – मनोविज्ञान (सूक्त ५८,१६४), भाषाविज्ञान (७१), सृष्टि-उत्पत्ति (७२, ८१, १२१),

पुरुषसूक्त (९०), आयुर्वेद (९७,१६१), वीररस (१०३), दान (११७), अध्यात्म (१२३), वाक्सूक्त (१२५), नासदीय सूक्त (१२९), श्रद्धासूक्त (१५१), संज्ञानसूक्त (१९१)। दशम मंडल में भी वंशमंडलों के कई ऋषियों के वंशजों के सूक्त हैं। जैसे- अंगिरावंशज (सूक्त ४२-४४,११७,१२८,१६४,१७२-१७४, १९१), विश्वामित्र-वंशज (१६०-१६७), भृगुवंशी (१७१)।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि पाश्चात्त्य विद्वानों का यह कथन सर्वथा असंगत है कि कुछ अंश प्राचीन हैं और कुछ अर्वाचीन।

११. ऋग्वेद का वर्ण्य-विषय

ऋग्वेद में आर्य-संस्कृति का विशद निरूपण हुआ है। इसमें सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षिक, नैतिक व्यवस्था का चित्रण मिलता है। साथ ही इसमें आध्यात्मिक, दार्शनिक, कलात्मक एवं वैज्ञानिक तथ्यों का भी यथास्थान निरूपण हुआ है। ऋग्वेद में मुख्यरूप से विभिन्न देवों की स्तुति है और उनसे यश, विद्या, श्रीवृद्धि आदि की प्रार्थनाएँ की गई हैं। कुछ नैतिक विषयों को स्पष्ट करने के लिए आख्यानों का भी आश्रय लिया गया है। अनेक स्थलों पर मनोविज्ञान, सृष्टि-उत्पत्ति, आयुर्वेद, भाषाविज्ञान, ज्योतिष आदि से संबद्ध सामग्री भी प्रचुर मात्रा में मिलती है। काव्य और कलात्मकता की दृष्टि से भी अनेक सुन्दर प्रसंग प्राप्त होते हैं। आध्यात्मिक और दार्शनिक भाव तो पद-पद पर प्राप्य हैं।

यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि वेदों में 'देव' शब्द प्रतिपाद्य विषय या वर्ण्यविषय (Subject Matter) के अर्थ में आता है, न कि देवता (Gods) के अर्थ में। पाश्चात्त्य विद्वानों ने भ्रमवश ऋग्वेद में देव या देवता का अर्थ कोई 'देवता' लिया है।

ऋग्वेद में अग्नि ऊर्जा (Energy) का प्रतीक है। ऋग्वेद के अग्निसूक्तों में ऊर्जा के विविध उपयोग आदि का वर्णन है। सोम सृष्टि का आधार है। सोम के आधार पर ही सृष्टि की रचना हुई है। सोम तीनों लोकों में विद्यमान है। सोम का अर्थ केवल सोमरस ही नहीं है। यज्ञों में सोमपान का विधान है। सोमरस देवों को भी अर्पित किया जाता है। वरुण न्याय का देवता है। वह समस्त सृष्टि का नियामक है। मित्र-वरुण दो महान् ऊर्जाएँ हैं। ये वर्षा से लेकर सूर्यकिरणों के प्रसार के आधार हैं। अश्विनौ ये युगलदेव हैं। ये सदा साथ रहते हैं। दोनों की सत्ता अविच्छिन्न हैं, अतः इन्हें न केवल प्राण और अपान के रूप में देवों का वैद्य कहा जाता है, अपितु ये दो धनात्मक (Positive) और ऋणात्मक (Negative) शक्तियाँ हैं, जिनके संयोग से ऊर्जा (Energy) की उत्पत्ति होती है। मरुत् देव विश्व की महाशक्तियों में हैं। ये वर्षा के कारक हैं। ये विभिन्न गैसों (Gases) के रूप में वर्णित हैं। ये विद्युत्-चुम्बकीय-तरंगों (Electromagnetic waves) का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसी प्रकार वाग्देवी (वाक्तत्त्व), श्रद्धा, इडा, सरस्वती आदि देवियाँ मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक और भाषावैज्ञानिक तथ्यों का निरूपण करती हैं।

हिरण्यगर्भ, नासदीय एवं पुरुष आदि सूक्त सृष्टि-प्रक्रिया का विवेचन प्रस्तुत करते हैं । ऋग्वेद में राजनीति से संबद्ध अनेक सूक्त हैं, जिनमें सभा, समिति आदि के कर्तव्य, राज्यसंचालन, अधिकारियों के कर्तव्य तथा युद्ध-संचालन आदि का वर्णन है । इस प्रकार ऋग्वेद विविध विषयों का रत्नाकर है । आचारशिक्षा, नीतिशिक्षा, धर्मशिक्षा तथा कर्तव्योपदेश आदि का वर्णन पग-पग पर प्राप्य है । इस विषय का विस्तृत विवेचन 'संस्कृति-खंड' में किया गया है ।

१२. ऋग्वेद के कुछ महत्त्वपूर्ण सूक्त

(१) पुरुषसूक्त (ऋग्० १०.९०) : यह सूक्त चारों वेदों में आया है । इसमें पुरुष (परमात्मा) के विराट् रूप का वर्णन किया गया है और उसी से समस्त विश्व की सृष्टि का वर्णन है । इसमें पुरुष को सहस्रों सिर, पैर आदि से युक्त बताया गया है । उससे चराचर जगत् की सृष्टि तथा चारों वेदों की उत्पत्ति कही गयी है । सर्वप्रथम चतुर्वर्ण-व्यवस्था का इसमें ही उल्लेख है । चारों वर्णों को विराट् पुरुष का मुख आदि अंग बताया गया है । यज्ञ-प्रक्रिया को सृष्टि का प्रथम धर्म कहा गया है । पुरुष (परमात्मा) को ही सृष्टि का सर्वस्व, वर्तमान, भूत और भविष्य बताया गया है ।

(क) पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भव्यम् । ऋग्० १०.९०.२

(ख) ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् , बाहू राजन्यः कृतः ।

ऊरू तदस्य यद् वैश्यः, पद्भ्यां शूद्रो अजायत ।। ऋग्० १०.९०.१२

यह सूक्त अपनी उदात्त भावना, दार्शनिकता, भाव-गांभीर्य और अन्तर्दृष्टि के लिए विख्यात है ।

(२) नासदीय सूक्त (ऋग्० १०.१२९) : यह सूक्त वैदिक ऋषियों के प्रातिभ ज्ञान और अलौकिक दार्शनिक चिन्तन का परिचायक है । इस सूक्त में सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व की स्थिति का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उस समय न असत् था और न सत् , न रात्रि थी और न दिन । सृष्टि का सूचक कोई चिह्न नहीं था । सबसे पहले काम (संकल्प, ईक्षण) उत्पन्न हुआ । यही संकल्प सृष्टि के नाना रूपों में अभिव्यक्त हुआ । उस समय केवल एक ही तत्त्व था, जो अपनी नैसर्गिक शक्ति से जीवित था । इस सूक्त में प्रतिभा की शक्ति से अद्वैत तत्त्व की शाश्वत स्थिति की अनुभूति की गई है ।

आनीदवातं स्वधया तदेकं, तस्माद् हान्यन्न परः किंचनास ।। ऋग्० १०.१२९.२

(३) हिरण्यगर्भ सूक्त (ऋग्० १.१२१) : इस सूक्त में उदात्त दार्शनिक भावों की अभिव्यक्ति करते हुए क अर्थात् प्रजापति का महत्त्व वर्णित है । ९ मंत्रों में 'कस्मै देवाय हविषा विधेम' अर्थात् ऐसे प्रजापति देव को हम अपनी स्तुति अर्पित करते हैं, यह कहा गया है । वह प्रजापति सृष्टि के प्रारम्भ में हिरण्यगर्भ (सुवर्ण का पिंड, ब्रह्मांड) के रूप में प्रकट हुआ । वही सृष्टि का नियामक हुआ । वही सभी प्रकार की शक्ति का स्रोत है । वही त्रिलोक का धर्ता है । उसी की कृपा से वैभव की प्राप्ति होती है और सर्वत्र विजयश्री मिलती है । उसकी छाया अमरत्व है और अकृपा मृत्यु ।

(क) हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । ऋग्० १०.१२१.१

(ख) य आत्मदा बलदा .... यस्य च्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः । ऋग्० १०.१२१.२

(४) अस्य वामीय सूक्त (ऋग्० १.१६४) : यह ऋग्वेद के प्रथम मंडल का दीर्घतमा (दीर्घतमस्) ऋषि द्वारा दृष्ट अतिमहत्त्वपूर्ण सूक्त है। इसमें ५२ मंत्रों में दर्शन, अध्यात्म, मनोविज्ञान, भाषाविज्ञान, ज्योतिष और भौतिक विज्ञान से संबद्ध अनेक तथ्यों का वर्णन है। भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने इस सूक्त को अत्यन्त क्लिष्ट और दुर्बोध माना है। इसमें इन विषयों से संबद्ध ये मंत्र हैं : **१. दर्शन एवं अध्यात्म** (१,२० से २२, ३०, ३८,४४,४६)। **२. मनोविज्ञान** (१८)। **३. भाषाविज्ञान** (१०,४१,४२,४५,४९)। **४. ज्योतिष** (११ से १५, ४८)। **५. भौतिक विज्ञान** (२,३,४३,५१)। **६. वेदमंत्रों में दिव्य शक्ति** (३९) **७. छन्दों का महत्त्व** (२३)। इस सूक्त में ही एकेश्वरवाद का प्रतिपादक मंत्र 'एकं सद् विप्रा०' आया है। त्रैतवाद का प्रतिपादक 'द्वा सुपर्णा० मंत्र है। इसमें यज्ञ को विश्व का केन्द्र प्रतिपादित किया गया है।

(क) **इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहु-रथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।**
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति-अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ।। मं० ४६

(ख) **द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया, समानं वृक्षं परिषस्वजाते।**
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति-अनश्नन् अन्यो अभि चाकशीति। मंत्र २०

(ग) **अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः।** मं० ३५

(५) श्रद्धा सूक्त (ऋग्० १०.१५१) : इस सूक्त में यद्यपि ५ ही मंत्र हैं, परन्तु भावगाम्भीर्य और विचारों की उदात्तता के कारण यह सूक्त अत्यन्त आदरणीय माना जाता है। मंत्र में श्रद्धा की परिभाषा दी गयी है - किसी कार्य में अतिशय हार्दिक संकल्प से अभिनिवेश या प्रवृत्ति श्रद्धा है, (हृदय्यया आकूत्या)। यह श्रद्धा ही जीवन को पवित्र बनाती है और महान् लक्ष्यों को प्राप्त कराती है। वेदों में उच्च लक्ष्य की प्राप्ति के लिए ऋत और सत्य के साथ श्रद्धा को आवश्यक बताया गया है, (ऋग्० ९.११३)। श्रद्धा से ही ब्रह्मप्राप्ति संभव है। वाक्सूक्त (ऋग्० १०.१२५.४) में भी श्रद्धा को ब्रह्मप्राप्ति का साधन बताया गया है। श्रद्धा काम (संकल्प) की पुत्री है, अतः उसे कामायनी कहते हैं। इस सूक्त को आधार बनाकर ही श्री जयशंकर प्रसाद ने विश्वश्रेष्ठ अमर कृति 'कामायनी' की रचना की है। सूक्त में प्रार्थना है कि वह श्रद्धा हमारे हृदय में स्थापित हो।

(क) **श्रद्धां हृदय्ययाकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु।** मं० ४
(ख) **श्रद्धे श्रद्धापयेह नः।** मंत्र ५
(ग) **ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया०।** ऋग्० ९.११३.२
(घ) **ऋतं वदन्, सत्यं वदन्, श्रद्धां वदन्।** ऋग्० ९.११३.४
(ङ) **श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि।** ऋग्० १०.१२५.४
(च) **श्रद्धया सत्यमाप्यते।** यजु० १९.३०

(६) वाक्सूक्त (ऋग्० १०.१२५) : ऋग्वेद के अतिमहत्त्वपूर्ण सूक्तों में वाक्सूक्त है। इस सूक्त के ८ मंत्रों में वाक्तत्त्व, शब्दब्रह्म, शब्दतत्त्व या वाग्देवी का ब्रह्म के रूप में वर्णन किया गया है। वाक्तत्त्व सर्वत्र व्याप्त है। यह इन्द्र, अग्नि, सोम, मित्र, वरुण आदि की ऊर्जा का स्रोत है। यह राष्ट्रनिर्मात्री शक्ति है। वाक्तत्त्व ही प्रतिभा

है । इसकी कृपा से ही मनुष्य, ऋषि, मुनि, सिद्ध, योगी और मेधावी होते हैं । यह वायु के तुल्य सर्वत्र गतिशील है और सृष्टि की निर्माता है । आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के भाषाविज्ञान के प्रोफेसर सईस (Sayce) ने "Science of Language" (भाग १ पृष्ठ १) ग्रन्थ में भाषाशास्त्रियों का ध्यान इस सूक्त की ओर आकृष्ट किया है और लिखा है कि "इन मंत्रों में वैदिक ऋषि का वाक्तत्त्व के विषय में जो वक्तव्य है, वह बहुत ही गंभीर विचारपूर्ण, भाषाविज्ञान की दृष्टि से सत्य तथा बहुत ही दूरदर्शितापूर्ण है ।" पूरा सूक्त उत्तम पुरुष में 'वाक् आम्भृणी' ऋषि द्वारा आत्मविवेचन के रूप में प्रस्तुत किया गया है । इस सूक्त के अतिप्रसिद्ध मंत्र ये हैं :

(क) **अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम्० ।** मंत्र ३

(ख) **अहमेव स्वयमिदं वदामि, जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः ।**
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि, तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ।। मंत्र ५

(ग) **अहमेव वात इस प्र वामि - आरभमाणा भुवनानि विश्वा ।** मंत्र ८

(७) **संज्ञान सूक्त** (ऋग्० १०.१९१) : इस सूक्त के ४ मंत्रों में सामाजिक सौहार्द, सांमनस्य, सह-अस्तित्व, ऐकमत्य और संगठन का उपदेश दिया गया है । यह सूक्त सामाजिक, राष्ट्रीय और आर्थिक चिन्तन में समवेत-स्वर या समन्वय की भावना का प्रतिपादक है । विश्व स्तर पर इस सूक्त को संगठन के लिए उदधृत किया जाता है । हम मिलकर चलें, मिलकर बोलें । हमारे हृदयों में एकता हो । हमारे मन और चित्त समान हों, जिससे हम सह-अस्तित्व का पालन कर सकें । स्मरणीय मंत्र हैं :

(क) **सं गच्छध्वं सं वदध्वं, सं वो मनांसि जानताम् ।** मंत्र २

(ख) **समानो मन्त्रः समितिः समानी, समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।** मंत्र ३

(ग) **समानी व आकूतिः, समाना हृदयानि वः ।**
समानमस्तु वो मनो, यथा वः सुसहासति ।। मंत्र ४

(८) **दानस्तुति सूक्त** (ऋग्० १०.१०७ और ११७) : ऋग्वेद के इन सूक्तों में दान की महिमा का गुणगान है । वैदिक संस्कृति में त्याग और दान इन दो गुणों को सर्वोच्च स्थान दिया गया है । इन सूक्तों में कहा गया है कि दानी अमर हो जाता है । उसके यहाँ अर्थसंकट कभी नहीं होता । वह समाज और राष्ट्र में सर्वत्र पूजा जाता है । उसे सूर्यलोक और स्वर्ग में भी उच्च स्थान प्राप्त होता है । दानी को ही सन्त, महात्मा, ऋषि और ब्रह्मा कहा जाता है । जो मित्र आदि की सहायता नहीं करता, उन्हें धन नहीं देता, वह महापापी होता है । जो भिक्षुक को अन्न नहीं देते हैं, उनकी श्री नष्ट हो जाती है । वह मित्र नहीं, जो मित्र को धन-दान न दे । "केवलाघो भवति केवलादी" अकेला खाने वाला अकेला ही पापी होता है । उसका धन उसके लिए ही विपत्ति है । कुछ स्मरणीय मंत्र ये हैं :

(क) **न भोजा मम्रुर्न न्यर्थमीयुः० ।** ऋग्० १०.१०७.८

(ख) **उच्चा दिवि दक्षिणावन्तो अस्थुः ।** ऋग्० १०.१०७.२

(ग) न स सखा यो न ददाति सख्ये० । ऋग्० १०.११७.४

(घ) मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः, सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य । नार्यमणं पुष्यति नो सखायं, केवलाघो भवति केवलादी ।। ऋग्० १०.११७.६

(९) अक्षसूक्त (ऋग्० १०.३४) : इस सूक्त के १४ मंत्रों में अक्ष (द्यूत, जुआ खेलना) की कड़े शब्दों में निन्दा की गयी है । यह सामाजिक कुरीति है । जुआ खेलना स्वयं को और अपने परिवार को नष्ट करना है । जुआरी का तथा उसकी पत्नी का सर्वत्र अपमान होता है । जुआरी लोभवश जुआ खेलता है और अन्त में अपना सर्वनाश कर लेता है । अतः शिक्षा दी गई है कि जुआ न खेलो, कृषि करो । कृषि की आय से ही सन्तुष्ट रहो ।

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व
वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः ।। ऋग्० १०.३४.१३

(१०) विवाह सूक्त (ऋग्० १०.८५) : अथर्ववेद में भी विवाह से संबद्ध दो सूक्त (कांड १४ सूक्त १ और २) आए हैं । अधिकांश मंत्र वे ही हैं । इसमें सूर्या (सूर्य की पुत्री अर्थात् उषा) का सोम (चन्द्रमा) से विवाह का वर्णन है । अश्विनीकुमार इसमें सहयोगी का कार्य करते हैं । इस सूक्त में स्त्री के कर्तव्यों का बहुत विस्तार से वर्णन है । स्त्री को उपदेश दिया गया है कि वह सास-ससुर की सेवा करे । पति को अपना देवता समझे । परिवार का हित करना उसका कर्तव्य है । साथ ही स्त्री को गृहस्वामिनी, गृहपत्नी और सम्राज्ञी कहा गया है । स्त्री को अत्यन्त आदरणीय स्थान देते हुए उसे सास-ससुर, देवर आदि की सम्राज्ञी (स्वामिनी) कहा गया है । भारतीय संस्कृति के अध्ययन के लिए यह सूक्त अत्युत्तम है ।

(क) अघोरचक्षुरपतिघ्नी-एधि, ..
शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ।। (मंत्र ४४)

(ख) सम्राज्ञी श्वशुरे भव, सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव ।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव, सम्राज्ञी अधि देवृषु ।। (मंत्र ४६)

१३. आख्यान एवं संवाद-सूक्त

ऋग्वेद में आख्यान और संवाद-सूक्तों की संख्या पर्याप्त है । इनको ही परकालीन इतिहास, काव्य, महाकाव्य, आख्यान-साहित्य और नाटकों का बीजरूप माना जाता है । जो बातें ऋग्वेद में बीजरूप में प्राप्य हैं, वे ही ब्राह्मणग्रन्थों आदि में सुपुष्पित एवं फलित वृक्ष के रूप में विकसित हुई है । इनका ही रामायण, महाभारत और पुराणों के युग में विस्तार हुआ है । इस दृष्टि से आख्यान-तत्त्व ऋग्वेद का महत्त्वपूर्ण विषय है ।

भारतीय परंपरा भी वेदों से नाटकों की उत्पत्ति मानती है । महामुनि भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में उल्लेख किया है कि देवों की प्रार्थना पर ब्रह्मा ने चारों वेदों से सारभाग लेकर पंचमवेद 'नाट्यवेद' की रचना की । उन्होंने ऋग्वेद से पाठ्य (संवाद, कथोपकथन),

सामवेद से संगीत, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस के तत्त्वों को लिया ।

जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च ।

यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि ।। नाट्यशास्त्र १.१७

अधिकांश पाश्चात्त्य विद्वान् भी ऋग्वेदीय संवादसूक्तों से नाटकों की उत्पत्ति मानते हैं । इनमें प्रो० मैक्समूलर (Max Muller) , प्रो० सिल्वाँ लेवी (Sylvan Levi), प्रो० फोन श्रोएदर (Von Schroeder), डा० हर्टल (Hertel) , प्रो० ओल्डेनबर्ग (Oldenberg), विन्डिश (Windisch) और प्रो० पिशेल (Pischel) मुख्य हैं । इस दृष्टि से संवादसूक्तों का महत्त्व बढ़ जाता है ।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि वेदों के ये आख्यान काल्पनिक रचनाएँ हैं । किसी गूढ़ दार्शनिक, आध्यात्मिक या नैतिक विषय को सुरुचिपूर्ण और मनोरंजक बनाने के लिए उसे आलंकारिक आख्यान के रूप में प्रस्तुत किया गया है । किसी गूढ़ विषय को समझाने के लिए कथा या उदाहरण का आश्रय लेना प्राचीन परम्परा रही है । महाभारत और भागवत पुराण में भी इस तथ्य का उल्लेख है कि गूढ़ विषयों को सरल और रोचक बनाने के लिए आख्यान-साहित्य का निर्माण हुआ । इतिहास और पुराणों में वेद के रहस्यों को विकसित किया गया है ।

(क) इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् । महाभारत

(ख) भारत-व्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शितः । भागवत पुराण १.४.२८

(क) मुख्य आख्यान-सूक्त

(१) विष्णु के तीन पैर (त्रिविक्रम) (ऋग्० १.१५४) (२) सोम-सूर्या-विवाह (ऋग्० १०.८५), (३) श्यावाश्व सूक्त (ऋग्० ५.६१) । (४) अक्षसूक्त (ऋग्० १०.३४) । (५) मण्डूक सूक्त (ऋग्० ७.१०३) । (६) इन्द्र-वृत्र-युद्ध (ऋग्० १.८० ; २.१२) ।

(ख) मुख्य संवाद-सूक्त

(१) पुरूरवा-उर्वशी-संवाद (ऋग्० १०.९५) । (२) यम-यमी-संवाद (ऋग्० १०.१०) । (३) सरमा-पणि-संवाद (ऋग्० १०.१०८) । (४) विश्वामित्र-नदी-संवाद (ऋग्० ३.३३) । (५) इन्द्र-मरुत्-संवाद (ऋग्० १.१६५) । (६) अगस्त्य-लोपामुद्रा-संवाद (ऋग्० १.१७९) । (७) वशिष्ठ-सुदास संवाद (ऋग्० ७.८३) । (८) इन्द्र - इन्द्राणी-वृषाकपि संवाद (ऋग्० १०.८६) ।

विशिष्ट आख्यान सूक्तों का विवरण

(१) विष्णु के तीन पैर (ऋग्० १.१५४) : इसमें वर्णन किया गया है कि विष्णु ने अपने तीन पगों (चरणों) से तीनों लोकों को नापा, अतः उसे त्रिविक्रम कहते हैं । उसने एक पैर से द्युलोक, दूसरे से अन्तरिक्ष और तीसरे से भूलोक को नापा । इसका ही विकसित रूप विष्णु के वामनावतार और बलि की कथा में मिलता है ।

(२) सोम-सूर्या-विवाह (ऋग्० १०.८५) : इसका वर्णन पीछे विवाहसूक्त में हुआ है ।

(३) श्यावाश्व सूक्त (ऋग्० ५.६१) : इस सूक्त में ऋषिपुत्र श्यावाश्व और राजा रथवीति की कन्या का प्रणय-वर्णन है । श्यावाश्व रथवीति की कन्या से प्रेम करता है, किन्तु रथवीति की पत्नी अपनी कन्या का विवाह किसी सुयोग्य विद्वान् से करना चाहती है । श्यावाश्व कठोर तपस्या करके विद्वान् होकर आता है और उसका विवाह रथवीति की कन्या से हो जाता है । इस सूक्त में शिक्षा दी गई है कि योग्य वर को ही कन्या देनी चाहिए ।

(४) मण्डूक सूक्त (ऋग्० ७.१०३) : इसमें वर्षा ऋतु में बोलते हुए मेंढकों की वेदपाठी ब्राह्मणों से तुलना की गई है । यह सूक्त एक मनोरंजक प्राकृतिक चित्रण प्रस्तुत करता है ।

(५) इन्द्र-वृत्र-युद्ध (ऋग्० १.८० । २.१२) - इन्द्र और वृत्र के युद्ध का वर्णन वेदों, पुराणों, महाभारत आदि में सर्वत्र पाया जाता है । वृत्र इन्द्र को हराना चाहता है, परन्तु इन्द्र उसका वध करके विजयी होता है ।

विशिष्ट संवाद-सूक्तों का विवरण

(१) पुरूरवा-उर्वशी-संवाद सूक्त (ऋग्० १०.९५) - इस सूक्त में राजा पुरूरवा (पुरूरवस्) और उर्वशी नामक अप्सरा के प्रणय-संबन्ध का वर्णन है । उर्वशी पुरूरवा से विवाह करती है । चार वर्ष दोनों का प्रणय-संबन्ध रहता है । उनका आयु नामक पुत्र होता है । अन्त में प्रतिज्ञाभंग के कारण वह पुरूरवा को छोड़कर जाना चाहती है , तब पुरूरवा उसे रोकता है । वह लौटना नहीं चाहती और पुरूरवा को समझाती है कि तुम मेरे लिए न मरो, न शोकाकुल हो, तुम्हें हिंसक पशु न खावें । स्त्रियों का प्रेम चिरस्थायी नहीं होता, वे कठोर हृदय की होती हैं ।

पुरूरवो मा मृथा मा प्र पप्तो, मा त्वा वृकासो अशिवास उ क्षन् ।
न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति, सालावृकाणां हृदयान्येता ।। (मंत्र १५)

इसमें संकेत है कि प्रणय-विवाहों की प्राय: ऐसी ही परिणति होती है । पाश्चात्य जगत् में इसके असंख्य उदाहरण प्राप्य हैं ।

शतपथ ब्राह्मण (११.५.१) में यह कथा विस्तार से दी गई है । विष्णुपुराण, महाभारत आदि में भी इसका उल्लेख है । इसका सुन्दरतम रूप कालिदास के 'विक्रमोर्वशीय' नाटक में मिलता है ।

(२) यम-यमी-संवाद (ऋग्० १०.१०) : यम और यमी भाई-बहिन हैं । यमी यम से सृष्टि के लिए प्रणय-याचना करती है । यम इसे अनैतिक और अनुचित बताकर इस प्रार्थना को अस्वीकार कर देता है ।

पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात् । (मंत्र १२)

(३) सरमा-पणि-संवाद (ऋग्० १०.१०८) : पणि (कृपण व्यापारी) इन्द्र की गायों को चुरा कर ले जाते हैं । इन्द्र दूत के रूप में सरमा (देवशुनी, कुतिया) को भेजते

हैं । सरमा गायों का पता लगा लेती है और पणियों से कहती है कि यदि इन गायों को नहीं लौटाओगे तो इन्द्र तुम्हारा सर्वनाश कर देगा । इस सूक्त में सरमा और पणियों का रोचक संवाद है । इस सूक्त में दूत के कर्तव्यों और उसकी वाक्पटुता तथा कर्तव्यनिष्ठा का सुन्दर वर्णन किया गया है ।

ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ पर इन्द्र से अभिप्राय जीवात्मा का है । ज्ञान के अनेक रहस्य मस्तिष्क में गूढरूप से विद्यमान रहते हैं और वे अज्ञान के आवरण में छिपे रहते हैं । जीवात्मा उन रहस्यों को जानना चाहता है, अतः वह बुद्धिरूपी देवशुनी सरमा को उसका पता लगाने के लिए भेजता है । बुद्धि उन रहस्यात्मक तत्त्वों या ज्ञान की किरणों को, जिन्हें गो (गाय) कहा गया है, पता चला लेती है । यहाँ ज्ञान की किरणों को गो (गाय) कहा गया है । सरमा कोई कुतिया नहीं, अपितु मनुष्य की बुद्धि है, जो गुप्त से गुप्त रहस्यात्मक तत्त्वों का पता लगा लेती है । सूक्त के अन्त में कहा गया है कि बृहस्पति (विद्वान्), ऋषि और ज्ञानी उन गूढ तत्त्वों का पता लगा लेते हैं ।

बृहस्पतिर्या अविन्दन् निगूढाः,
सोमो ग्रावाण ऋषयश्च विप्राः ।। ऋग्० १०.१०८.११

१५. आख्यान-समीक्षा

वैदिक आख्यान वस्तुतः ऐतिहासिक व्यक्तियों पर निर्भर न होकर प्राकृतिक पदार्थों आदि पर आश्रित हैं । इनमें कहीं सूर्य और बादलों का युद्ध, कहीं बादलों में विद्युत् का प्रकाश, कहीं पाप-पुण्य का द्वन्द्व, कहीं सूर्य-चन्द्र एवं नक्षत्रों का वर्णन , कहीं अमूर्त भावों का मूर्तरूप में वर्णन, कहीं दिन-रात का भाई-बहिन या पति-पत्नी के रूप में वर्णन, कहीं उषा और सूर्या (सूर्य की किरण) का सूर्य की पुत्री के रूप में वर्णन है । उपर्युक्त आख्यानों के गूढार्थ को स्पष्ट करने के लिए कतिपय संकेत नीचे दिए जा रहे हैं ।

(१) विष्णु के तीन पैर : विष्णु शब्द सूर्य के लिए है । 'वेवेष्टि व्याप्नोति इति विष्णुः', जो सर्वत्र व्याप्त है, उसे विष्णु कहते हैं । तीनों लोकों, अर्थात् द्युलोक अन्तरिक्ष और भूमि, में व्याप्त होने से विष्णु (सूर्य) को त्रिविक्रम या त्रिपाद् कहा जाता है । सूर्य प्रातः मध्याह्न और सायं रूपी तीन पगों से सारे संसार को नाप लेता है । इसका ही ऋग्वेद में वर्णन है । अतएव उसे तीनों लोकों का निर्माता, तीनों लोकों का धर्ता और गो (किरणों) का धाम कहा गया है । (यः पार्थिवानि विममे रजांसि विचक्रमाणस्त्रेधो-धोरुगायः, एको दाधार भुवनानि विश्वा, यत्र गावो भूरिश्रृंगा अयासः) । ऋग्० १.१५४.१,४,६

(२) पुरूरवा-उर्वशी : इस संवाद की अनेक प्रकार से व्याख्या की गई है । पुरूरवा सूर्य है और उर्वशी उषा उसकी प्रेयसी है । सूर्य के प्रकट होने पर उषा लुप्त हो जाती है ।[1] प्रो० गेल्डनर, प्रो० रोठ, गोल्डस्टूकर आदि इस मत के समर्थक हैं ।

---

१. देखें, वैदिक संपत्ति, रघुनन्दनशर्मा, १९४७, पृष्ठ ६० से आगे

प्रो० ग्रिफिथ ने अपने पद्यानुवाद के नोट्स में प्रो० मैक्समूलर और गोल्डस्टूकर का मन्तव्य इस प्रकार उद्धृत किया है :[१]

" Maxmuller considers the story to be one of the Vedas which expreses the correlation of the dawn and the sun. According to Dr. Goldstucker, Urvasi is the morning mist which vanishes away as soon as Pururavas, the sun, displays himself."

इस कथानक की अधिक उपयुक्त व्याख्या यह होगी कि पुरूरवा मेघ है, (पुरु-अधिक, रवस्-शब्द करने वाला),[२] उर्वशी विद्युत् है, (उरु-अधिक, अशी-व्याप्त)[३], दोनों के संयोग से आयु (अन्न, दीर्घायु का प्रदाता) का जन्म होता है ।[४] यजुर्वेद में उर्वशी को अप्सरा बताते हुए उसे विद्युत् बताया गया है ।[५]

ऋग्वेद में भी उर्वशी के विद्युत् होने का निर्देश है कि यह जलीय विद्युत् है ।[६] ऋग्वेद में ही उर्वशी को दीर्घ आयु का दाता भी कहा गया है ।[७] मेघों के जल में बिजली विचरण करती है, अतः बिजली को अप्सरा (अप्-जल में, सरस्-विचरण करने वाली) कहते हैं । अतिरूपवती को भी अप्सरा (अप्स-सुन्दर रूप, रा- वाली) कहते हैं ।[८] वर्षा काल के बाद उर्वशी (विद्युत्) पुरूरवा (मेघ) को छोड़कर चली जाती है (लुप्त हो जाती है) । इसका ही यह आलंकारिक वर्णन है । पुरूरवा-उर्वशी के संयोग से वर्षा होती है और उससे आयु-प्रदाता अन्न की उत्पत्ति होती है । यह है पुत्र 'आयु' का जन्म ।

(३) यम-यमी : यम दिन है (यम अर्थात् समय का नियामक), यमी रात्रि है, समय की नियामिका । यम-यमी परस्पर भाई-बहिन के तुल्य हैं । प्रातः उषा के और सायं संध्या के व्यवधान के कारण ये कभी मिल नहीं पाते हैं । इस सूक्त के द्वारा शिक्षा दी गई है कि भाई-बहिन का वैवाहिक संबन्ध सर्वथा वर्जित है ।

(४) सोम-सूर्या-विवाह : सोम अर्थात् चन्द्रमा में अपना प्रकाश नहीं है, अतः वह सूर्या (सूर्य की किरण, सूर्य की पुत्री) से विवाह करता है । चन्द्रमा सूर्य की सुषुम्ण किरण से प्रकाशित होता है । यजुर्वेद और निरुक्त में इसका स्पष्ट उल्लेख है कि सूर्य की सुषुम्ण किरण चन्द्रमा को प्रकाश देती है ।[९] इसका ही इस सूक्त (ऋग्० १०.८५) में

---

१. ग्रिफिथ, ऋग्वेद का अनुवाद, मंत्र १०.९५ पर पादटिप्पणी ।
२. पुरूरवा बहुधा रोरूयते । निरुक्त १०.४६
३. उर्वशी-अप्सरा । उरु-अभ्यश्नुते । निरुक्त ५.१३
४. अन्नमु वा आयुः । शत० ९.२.३.१६
५. उर्वशी च पूर्वचित्तिश्च-अप्सरसौ, अवस्फूर्जन् हेतिः, विद्युत् प्रहेतिः । यजु० १५.१९
६. विद्युन्न या पतन्ती .. अप्या । ऋग्० १०.९५.१०
७. प्रोर्वशी तिरत दीर्घमायुः । ऋग्० १०.९५.१०
८. अप्सरा अप्सारिणी । अपि वा अप्स इति रूपनाम । निरुक्त ५.१३
९. (क) सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः । यजु० १८.४०
(ख) अथाप्यस्यैको रश्मिश्चन्द्रमसं प्रति दीप्यते, आदित्यतोऽस्य दीप्तिर्भवति । निरुक्त २.६

आलंकारिक वर्णन है । सूर्य की पुत्री (किरण) सोम (चन्द्रमा) की पत्नी है और वह उसे प्रकाशित करती है । इस सूक्त में सर्वप्रथम विवाह-संस्कार का वर्णन मिलता है ।

(५) इन्द्र और वृत्र : इन्द्र सूर्य है और आवरणकर्ता होने के कारण मेघ वृत्र है । वर्षाकाल में दोनों का सदा युद्ध होता रहता है । कभी बादलों को हटाकर सूर्य दिखाई देता है और कभी बादल उसे घेरे रहते हैं । यह है इन्द्र और वृत्र का युद्ध । इस युद्ध में अन्त में इन्द्र (सूर्य) की विजय होती है और वृत्र (मेघ) का नाश होता है । वृत्र-वध अर्थात् बादलों के फटने से वर्षा होती है और नदियाँ बह निकलती हैं । वेदों में सर्वत्र वृत्रवध से नदियों के बहने का उल्लेख है । किसी राक्षस के वध से नदियों का बहना असंभव है ।

इसी प्रकार अन्य आख्यानों का गूढार्थ ज्ञातव्य है ।

१६. वैदिक खिल सूक्तों की समीक्षा

खिल-सूक्त : प्रो० जी० ब्यूलर (G.Buhler) ने सर्वप्रथम खिल-सूक्तों का संकलन ऋग्वेद की एक प्राचीन काश्मीरी पांडुलिपि से किया था । ये सूक्त ऋग्वेद के दशम मंडल के बाद क्रम से संगृहीत थे । समस्त लिख सूक्त ५ अध्यायों में विभक्त हैं । यजुर्वेद के तुल्य इनकी क्रम-व्यवस्था है । प्रत्येक अध्याय के प्रारम्भ में ऋषि, देवता और छन्दों की सूचक अनुक्रमणी है । सूक्त के अन्त में ऋग्वेद के मंत्रों का प्रतीक भी दिया गया है, जिससे ज्ञात होता है कि ऋग्वेद में उनका स्थान कहाँ पर है ।

खिल-सूक्तों की संख्या : मैक्समूलर के संस्करण में ३२ तथा आउफ्रेख्त (Aufrecht) के संस्करण में २५ खिल सूक्त हैं । श्री सातवलेकर के ऋग्वेद-संहिता के संस्करण में ३६ खिलसूक्त हैं । प्रो० रोठ की प्रेरणा से डा० शेफ्टेलोवित्स (Scheftelowitz) ने एक खिल-सूक्त-संग्रह १९०६ ई० में ब्रेस्लाड (जर्मनी) से निकाला । तदनन्तर पूना से प्रकाशित सायण-भाष्य-सहित ऋग्वेद के संस्करण के चतुर्थ भाग के अन्त में श्री चिन्तामणि गणेश काशीकर ने खिल-सूक्तों पर विस्तृत विचार किया है और ५ अध्यायों में ८६ खिल सूक्तों का पाठभेद आदि के साथ संकलन किया है । साथ ही यह भी संकेत किया है कि ऋग्वेद में ये कहाँ पढ़ने हैं ।

श्री काशीकर द्वारा संकलित खिल-सूक्तों का संक्षिप्त विवरण यह है :

अध्याय	सूक्त	मंत्रसंख्या	विशिष्ट सूक्त
१	१२	८६	सौपर्ण सूक्त (११ सूक्त, ८४ मंत्र)
२	१६	६६+७० (अन्य)	श्रीसूक्त (१९+२१= ४० मंत्र)
३	२२	१३७+२५ (अन्य)	बालखिल्य (८ सूक्त, ६६ मंत्र)
४	१४	१०५+६० (अन्य)	शिवसंकल्प (२८ मंत्र)
५	२२	३७०+९ (अन्य)	निविद् १९३, प्रैष ६४, कुन्ताप ८० मंत्र
योग	८६	९२९	

खिल या अभिप्राय : खिल का वस्तुतः अभिप्राय है – परिशिष्ट या प्रक्षिप्त । जो अंश या मंत्र मूल ग्रन्थ में न हो और आवश्यकतानुसार अन्यत्र से संग्रह किया गया हो, उसे खिल कहते हैं । महाभारत के प्रसिद्ध टीकाकार नीलकंठ का भी यही मत है । एक वेद की परशाखा से किसी अपेक्षा से जो अंश ग्रहण किया जाता है, वह 'खिल' कहा जाता है । जैसे महाभारत में हरिवंशपर्व खिल (प्रक्षिप्त) है ।

एवम् ... यत् पुराणान्तरस्थम् आकांक्षावशात् पठ्यते तत् खिलं हरिवंशाख्यम् इति । महाभारत, आदिपर्व २.८२ पर टीका

ऋग्वेद की शाकल शाखा में बाष्कल शाखा से कुछ अतिरिक्त मंत्र संगृहीत हैं, अधिकांश वे ही मंत्र खिल सूक्तों में हैं । इसी प्रकार यजुर्वेद आदि में भी अन्य शाखाओं में संगृहीत मंत्र 'खिल' कहे जाते हैं ।

१७. विशिष्ट खिल सूक्त

१. सौपर्ण सूक्त : अध्याय १ के २ से १२ तक ११ सूक्त सौपर्ण सूक्त कहते जाते हैं । इन सूक्तों के द्रष्टा तार्क्ष्य सुपर्ण ऋषि हैं, अतः इन्हें सौपर्ण कहते हैं । ११ सूक्तों में से १० सूक्तों में अश्विनी देवों की स्तुति है । इसे 'सुपर्णाध्याय' भी कहते हैं ।

२. श्री सूक्त : कई श्रौतसूक्तों, अग्निपुराण आदि में इसका उल्लेख है । 'लक्ष्मीतन्त्रम्' के ५०वें अध्याय में इसका विस्तृत विवेचन हुआ है । लक्ष्मीपूजा के प्रसंग में इस सूक्त का पाठ होता है ।

३. बालखिल्य सूक्त : अध्याय ३ के १ से ८ सूक्त (ऋग्वेद में मंडल ८ के ४९ से ५९ सूक्त, ११ सूक्त, ८० मंत्र) । खिल सूक्तों में ऋग्वेद के ११ बालखिल्य सूक्तों में से केवल प्रारम्भ के ८ सूक्त ही संगृहीत हैं । अन्त के ३ सूक्त (१४ मंत्र) नहीं हैं । इनके ऋषि कण्ववंशी प्रस्कण्व, पुष्टिगु, श्रुष्टिगु, आयु, मेध्य, मातरिश्वा , कृश और पृषध्र हैं । सभी कण्ववंशी हैं । इनमें अधिकांश मंत्रों का देवता इन्द्र है । बालखिल्य ऋषियों को 'बृहद्देवता' (६.८४-८६) में 'तिग्मतेजसाम्' अत्यन्त तेजस्वी कहा गया है । इन सूक्तों में स्वर आदि का निर्देश भी व्यवस्थित हैं ।

४. पावमानी सूक्त (३.१०) : यह सूक्त पवमान सोम से संबद्ध हैं । सभी प्रकार के रोग, शोक, कष्ट आदि से मुक्ति के लिए इस सूक्त का पाठ निर्दिष्ट है ।

५. ब्रह्मसूक्त (३.२२) : इस सूक्त के १० मंत्रों में ब्रह्म और सूर्य का महत्त्व वर्णित है ।

६. रात्रिसूक्त (४.२) : इस सूक्त के ४ मंत्रों में रात्रि का महत्त्व वर्णित है ।

७. कृत्यासूक्त (४.५) : इस सूक्त के ४० मंत्रों में विविध अभिचार कृत्यों का वर्णन है ।

८. शिवसंकल्पसूक्त (४.११) : इस सूक्त के २८ मंत्रों में मन की शुद्धि की प्रार्थना की गई है । इसके प्रारम्भिक ६ मंत्र यजुर्वेद के अध्याय २४ के प्रारम्भ में दिए हैं ।

९. संज्ञानसूक्त (५.१) : इस सूक्त के ५ मंत्रों में सांमनस्य, एकता और संगठन की प्रार्थना है ।

१०. महानाम्नी सूक्त (५.४) : इस सूक्त के ११ मंत्रों में धनादि के लिए इन्द्र की स्तुति है । 'शाक्वरी व्रत' (ब्रह्मचर्य व्रत) के लिए इन मंत्रों का पाठ किया जाता है ।

११. निविद् अध्याय (५.५) : निविद् मंत्र वैदिक गद्य के प्राचीनतम रूप हैं । इनका संबन्ध निवेदयामि (निवेदन, नैवेद्य) से है । ये मंत्र अग्नि, सविता, इन्द्र, विश्वेदेव, ऋभु, मरुद्गण आदि देवों की प्रार्थना से संबद्ध हैं ।

१२. प्रैष अध्याय (५.७) : प्रैष अध्याय में अग्नि, सोम, इडा, सरस्वती, भारती, इन्द्र आदि देवों की कल्याणार्थ प्रार्थना है । प्रैष सामूहिक प्रार्थना के मंत्र हैं ।

१३. कुन्ताप सूक्त (५.८. से २२) : अथर्ववेद में खिल सूक्तों के रूप में कुन्ताप सूक्तों का उल्लेख है । ये कांड २० के १२७ से १३७ सूक्त अर्थात् १० सूक्त हैं । इनमें परीक्षित् के राज्य-प्रशासन की प्रशंसा, सभ्य-असभ्य के कुछ लक्षण, पशु, पक्षी, मुद्रा, वृक्ष, वाद्यों आदि का उल्लेख है ।

(ख) यजुर्वेद-संहिता

१. यजुष् (यजुस् , यजुः) का अर्थ

यजुर्वेद के यजुष् शब्द की कई व्याख्याएँ प्रस्तुत की गई हैं, जो विभिन्न दृष्टिकोण के सूचक हैं । यजुष् के मुख्य अर्थ हैं - (१) **'यजुर्यजतेः'** (निरुक्त ७.१२) अर्थात् यज्ञ से संबद्ध मंत्रों को यजुष् कहते हैं । (२) **'इज्यतेऽनेनेति यजुः'** अर्थात् जिन मंत्रों से यज्ञ किया जाता है, उन्हें यजुष् कहते हैं । यजुर्वेद का यज्ञ के कर्मकांड से साक्षात् संबन्ध है, अतः इसे 'अध्वर्युवेद' भी कहा जाता है । यज्ञ में अध्वर्यु नामक ऋत्विज् यजुर्वेद का प्रतिनिधित्व करता है और वही यज्ञ का नेतृत्व करता है । अतएव सायण ने कहा है कि वह यज्ञ के स्वरूप का निष्पादक है ।

अध्वर्युनामक एक ऋत्विग् यज्ञस्य स्वरूपं निष्पादयति ।
अध्वरं युनक्ति, अध्वरस्य नेता । ऋग्भाष्यभूमिका

(३) **'अनियताक्षरावसानो यजुः'** अर्थात् जिन मंत्रों में पद्यों के तुल्य अक्षर-संख्या निर्धारित नहीं होती है, वे यजुष् हैं । (४) **'शेषे यजुःशब्दः'** (पूर्वमीमांसा २.१.३७) अर्थात् पद्यबन्ध और गीति से रहित मन्त्रात्मक रचना को यजुष् कहते हैं । इसका अभिप्राय यह है कि सभी गद्यात्मक मंत्र-रचना यजुः की कोटि में आती है । (५) **'एकप्रयोजनं साकांक्षं पदजातमेकं यजुः'** अर्थात् एक उद्देश्य से कहे हुए साकांक्ष एक पद-समूह को एक यजुः कहेंगे । इसका अभिप्राय यह है कि एक सार्थक वाक्य को यजुः की एक इकाई माना जाता है ।

तैत्तिरीयसंहिता के भाष्य की भूमिका में सायण ने यजुर्वेद का महत्त्व बताते हुए कहा है कि यजुर्वेद भित्ति (दीवार) है और अन्य ऋग्वेद एवं सामवेद चित्र हैं । इसलिए यजुर्वेद सबसे मुख्य है । यज्ञ को आधार बनाकर ही ऋचाओं का पाठ और सामगान होता है ।

भित्तिस्थानीयो यजुर्वेदः, चित्रस्थानावितरौ । तस्मात् कर्मसु यजुर्वेदस्यैव प्राधान्यम् । तैत्ति० भूमिका

यजुर्वेद का दार्शनिक रूप : ब्राह्मण ग्रन्थों में यजुर्वेद का दार्शनिक रूप प्रस्तुत किया गया है । यजुर्वेद विष्णु का स्वरूप है, अर्थात् इसमें विष्णु (परमात्मा) के स्वरूप का वर्णन है ।[1] यजुर्वेद प्राणतत्त्व और मनस्तत्त्व का वर्णन करता है, अतः वह प्राण है, मन है ।[2] यजुर्वेद में वायु और अन्तरिक्ष का वर्णन है, अतः वह अन्तरिक्ष का प्रतिनिधि है ।[3] यजुर्वेद तेजस्विता का उपदेश देता है , अतः वह महः (तेज) है ।[4] यजुर्वेद क्षात्रधर्म और कर्मठता की शिक्षा देता है, अतः यह क्षत्रियों का वेद है ।[5]

२. यजुर्वेद की शाखाएँ

शुक्ल एवं कृष्ण शाखाएँ : यजुर्वेद मुख्य रूप से दो भागों में विभक्त है - १. शुक्ल यजुर्वेद, २. कृष्ण यजुर्वेद । यजुर्वेद के दो संप्रदाय प्रचलित हैं - १. आदित्य संप्रदाय, २. ब्रह्म संप्रदाय । शुक्ल यजुर्वेद आदित्य-संप्रदाय से संबद्ध है और कृष्ण यजुर्वेद ब्रह्म-संप्रदाय से । शतपथ ब्राह्मण में स्पष्ट उल्लेख है कि शुक्ल यजुर्वेद आदित्य से संबद्ध है और यह याज्ञवल्क्य के द्वारा आख्यात है ।

आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूंषि
वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येन-आख्यायन्ते । शत० १४.९.४.३३

शुक्ल यजुर्वेद को ही वाजसनेयि-संहिता और माध्यन्दिन संहिता भी कहते हैं । याज्ञवल्क्य इसके ऋषि हैं । वे मिथिला के निवासी थे । पिता का नाम वाजसनि होने से याज्ञवल्क्य को वाजसनेय कहते थे । वाजसनेय से संबद्ध संहिता वाजसनेयि-संहिता कहलाई । याज्ञवल्क्य ने मध्याह्न के सूर्य से इस वेद को प्राप्त किया था, अतः इसे माध्यन्दिन संहिता भी कहते हैं । शुक्ल और कृष्ण भेदों का आधार यह है कि शुक्ल यजुर्वेद में यज्ञों से संबद्ध विशुद्ध मंत्रात्मक भाग है । इसमें व्याख्या, विवरण और विनियोगात्मक भाग नहीं है । ये मंत्र इसी रूप में यज्ञों में पढ़े जाते हैं । विशुद्ध और परिष्कृत होने के कारण इसे शुक्ल (स्वच्छ, अमिश्रित) यजुर्वेद कहा जाता है ।

कृष्ण यजुर्वेद का संबन्ध ब्रह्म संप्रदाय से है । इसमें मंत्रों के साथ ही व्याख्या और विनियोग वाला अंश भी मिश्रित है, अतः इसे कृष्ण (अस्वच्छ, मिश्रित) कहते हैं । इसी आधार पर शुक्ल यजुर्वेद के पारायणकर्ता ब्राह्मणों को 'शुक्ल' और कृष्ण यजुर्वेद के परायणकर्ता ब्राह्मणों को 'मिश्र' नाम दिया गया है ।

इस विषय में एक आख्यायिका भी प्रचलित है कि गुरु वैशम्पायन एक बार अपने शिष्य याज्ञवल्क्य से रुष्ट हो गए और उन्होंने आदेश दिया कि वह उनकी शिक्षा लौटा

---

१. यजूंषि विष्णुः । शत० ४.६.७.३
२. प्राणो वै यजुः । शत० १४.८.१४.२ । मनो यजु० । शत० १४.४.३.१२
३. अन्तरिक्षलोको यजुर्वेदः । षड्विंश ब्रा० १.५ । ४. यजुर्वेद एव महः । गोपथ ब्रा० पूर्व० ५.१५
५. यजुर्वेदं क्षत्रियस्याहुर्योनिम् । तैत्ति० ब्रा० ३.१२.९.२

दे । याज्ञवल्क्य ने सारी मंत्रविद्या उगल दी । वैशम्पायन के अन्य शिष्यों ने तित्तिरि (तीतर) का रूप धारण करके उस उगले हुए को खा लिया । अतः उनकी शाखा तैत्तिरीय कहलाई । याज्ञवल्क्य ने सूर्य की उपासना की और मध्याह्न के सूर्य से पुनः यजुर्वेद का ज्ञान प्राप्त किया, अतः इसे माध्यन्दिन संहिता भी कहते हैं ।[1]

यजुर्वेद की १०० शाखाएँ : महर्षि पतंजलि ने महाभाष्य में 'एकशत-मध्वर्युशाखाः' (आह्निक १) कहा है, अर्थात् यजुर्वेद की १०० शाखाएँ हैं । षड्गुरुशिष्य की सर्वानुक्रमणी की वृत्ति में तथा कूर्मपुराण में भी यजुर्वेद की १०० शाखाओं का उल्लेख मिलता है ।[2] परन्तु 'चरणव्यूह' में यजुर्वेद की ८६ शाखाओं का ही उल्लेख मिलता है । इनका संक्षिप्त वर्गीकरण एवं विवरण इस प्रकार है - (क) चरकशाखा - १२, (ख) मैत्रायणीय -७ , (ग) वाजसनेय -१७, (घ) तैत्तिरीय -६, कठ - ४४ ।[3] चरणव्यूह में कठ की ४४ शाखाओं का नाम निर्देश नहीं है । इससे प्रतीत होता है कि यजुर्वेद की शाखाएँ क्रमशः लुप्त होती जा रही थीं और चरणव्यूह के समय में केवल ४२ शाखाएँ ही उपलब्ध थीं । कठ शाखा के ४४ ग्रन्थों एवं उनके लेखकों के नाम भी लुप्त हो चुके थे । संप्रति केवल ६ शाखाएँ ही उपलब्ध हैं । दो शुक्ल यजुर्वेद की तथा चार कृष्ण यजुर्वेद की ।

३. शुक्ल यजुर्वेद

शुक्ल यजुर्वेद की शाखाएँ : शुक्ल यजुर्वेद की दो शाखाएँ हैं । उनकी एक-एक संहिताएँ उपलब्ध हैं -

१. माध्यन्दिन या वाजसनेयि-संहिता : इसमें ४० अध्याय और १९७५ मंत्र हैं । अतएव यजुर्वेद के सन्दर्भ में केवल दो संख्याएँ रहती हैं - एक अध्याय की और दूसरी मंत्र की । जैसे - ईशा वास्यम्० (यजु० ४०.१) अर्थात् यह ४०वें अध्याय का प्रथम मंत्र है । शतपथ ब्राह्मण में यजुर्वेद के अक्षरों की संख्या २,८८,००० (दो लाख, अट्ठासी हजार दी गयी है, अर्थात् ८ हजार ३६ अक्षर वाला बृहती छन्द) ।[4]

२. काण्व संहिता : इसमें भी ४० अध्याय हैं और मंत्रसंख्या २०८६ है, अर्थात् वाजसनेयि शाखा से इसमें १११ मंत्र अधिक हैं । इसका विभाजन अध्याय, अनुवाक और मंत्र के रूप में हुआ है । अध्याय ४०, अनुवाक ३२८ और मंत्र २०८६ हैं । इसमें मंत्रों के क्रम में भी अन्तर मिलता है ।

---

१. आदित्याल्लब्धवान् यस्तु, शाखाः पञ्चदशापराः ।
तं याज्ञवल्क्यं वन्देऽहं, मन्त्रभाष्य-प्रसिद्धये ।। उवट, यजुर्वेद-भाष्य-भूमिका ।

२. (क) यजुरेकशताध्वकम् । षड्गुरुशिष्य, सर्वानुक्रमणी
(ख) शाखानां तु शतेनाथ यजुर्वेदमथाकरोत् । कूर्म० ४९.५१

३. यजुर्वेदस्य षडशीतिर्भेदाः, चरका द्वादश, मैत्रायणीयाः सप्त, वाजसनेयाः सप्तदश, तैत्तिरीयकाः षट् , कठानां चतुश्चत्वारिंशत्० । चरणव्यूह २
विवरण के लिए देखें - यजुर्वेद -संहिता, सातवलेकर, १९२७, भूमिका पृष्ठ ६-७

४. अष्टौ बृहतीसहस्राणि (८००० x ३६= २,२८,००० अक्षराणि) यजुषाम् । शत० १०.४.२.२४

महर्षि कण्व का उल्लेख ऋग्वेद में भी है । मंडल १,८ और ९ में अनेक सूक्तों के द्रष्टा कण्व और उसके वंशज हैं । आदित्य पुराण के अनुसार कण्व के पिता बोधायन थे और याज्ञवल्क्य उनके गुरु थे ।

बोधायन-पितृत्वाच्च प्रशिष्यत्वाद् बृहस्पतेः ।
शिष्यत्वाद् याज्ञवल्क्यस्य कण्वोऽभून्महतो महान् ।।

महर्षि कण्व इस शाखा के प्रवर्तक हैं ।

श्री सातवलेकर ने वाजसनेयि संहिता के साथ ही काण्वसंहिता के पाठभेद परिशिष्ट के रूप में दिए हैं ।[1] श्री सातवलेकर ने काण्वसंहिता का पृथक् संस्करण भी प्रकाशित किया है । वैदिक संशोधनमंडल पुणे तथा संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी ने भी इसके संस्करण प्रकाशित किए हैं ।

आजकल काण्वसंहिता का प्रचार महाराष्ट्र में ही है और माध्यन्दिन का उत्तर भारत में । परन्तु प्राचीन काल में काण्व शाखा का प्रचार उत्तर भारत में भी था । काण्वसंहिता (११.३.३) में कुरु-पंचालों का उल्लेख मिलता है । महाभारत आदिपर्व (६३.१८) के अनुसार शकुन्तला के धर्मपिता महर्षि कण्व का मालिनी नदी (संप्रति बिजनौर जिले में कोटद्वार के पास मालन नदी) के तट पर आश्रम था । कण्व का उत्तर प्रदेश से साक्षात् संबन्ध रहा है ।

४. शुक्ल यजुर्वेद की विषय-वस्तु

यजुर्वेद कर्मकांड का वेद है । इसमें विभिन्न यज्ञों की विधियाँ और उनमें पाठ्य मंत्रों का संकलन है । यज्ञ करने वाले ऋत्विज् को अध्वर्यु कहते हैं । ऋग्वेद में अध्वर्यु के विषय में कहा गया है कि वह यज्ञ का संयोजक और निष्पादक होता है, अतः वह यज्ञ का नेता (प्रमुख) होता है । '**यज्ञस्य मात्रां वि मिमीत उ त्वः**' (ऋग्वेद १०.७१.११) । यास्क ने अध्वर्यु की व्याख्या में कहा है - '**अध्वरं युनक्ति, अध्वरस्य नेता** (निरुक्त १.३) अर्थात् यज्ञ का संयोजक और यज्ञ का नेता । इस प्रकार यजुर्वेद कर्मकांड का प्रमुख ग्रन्थ है ।

यजुर्वेद की शुक्ल और कृष्ण शाखाओं में विषय-वस्तु प्रायः एक ही है । अतः वाजसनेयि-संहिता के अनुसार प्रतिपाद्य विषयों का संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है ।

अध्याय १ और २ : इसमें दर्श (अमावस्या के बाद वाली प्रतिपदा) और पौर्णमास (पूर्णिमा) से संबद्ध यागों का वर्णन है । **(अ० ३)** : इसमें अग्निहोत्र और चातुर्मास्य इष्टियों का वर्णन है । चातुर्मास्य इष्टियों से अभिप्राय है - चार-चार मास पर ऋतु-परिवर्तन होने पर किए जाने वाले विशेष यज्ञ । **(अ० ४ से ८)** : इनमें अग्निष्टोम और सोमयाग का वर्णन है । अग्निष्टोम ज्योतिष्टोम का परिष्कृत रूप है । यह स्वर्ग की कामना से किया जाता है । इसमें १६ पुरोहित होते हैं और यह पाँच दिन चलता है ।

१. देखो, यजुर्वेद संहिता, सातवलेकर, १९२६ पृष्ठ १७१-२०२

सोमयाग में सोमरस में दूध मिलाकर आहुति दी जाती है। यह याग प्रातः, मध्याह्न और सायं तीन बार होता है, अतः इसे प्रातःसवन, मध्याह्न सवन और सायं सवन कहते हैं। (अ० ९ और १०) इनमें वाजपेय और राजसूय यागों का वर्णन है। इसमें राज्याभिषेक, राजा के अधिकार और कर्तव्यों का विस्तृत वर्णन है।

(अ० ११ से १८) : इनमें अग्निचयन और विविध प्रकार की वेदियों के निर्माण से संबद्ध मंत्र हैं। वेदी की रचना १०,८०० ईंटों से होती थी और इनकी आकृति यज्ञ के अनुसार विभिन्न प्रकार की होती थी। कुछ वेदियाँ श्येन (गरुड) आदि पक्षियों के आकार की होती थी। १६वाँ अध्याय 'रुद्राध्याय' कहा जाता है। इसमें रुद्र के विराट् रूप का विस्तृत वर्णन है। (अ० १९ से २१) में सौत्रामणी याग का विधान है। राज्य-च्युत राजा अपने राज्य की पुनः प्राप्ति के लिए भी इस याग का अनुष्ठान करता था। (अ० २२ से २५) : इनमें अश्वमेध यज्ञ का विस्तृत वर्णन है। सार्वभौम आधिपत्य के लिए अश्वमेध यज्ञ किया जाता है। (अध्याय २२) : में 'आ ब्रह्मन्०' यह राष्ट्रीय प्रार्थना भी संमिलित है। (अध्याय २४) : जन्तुविज्ञान की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसमें सैकड़ों पशु-पक्षियों का उल्लेख है। (अ० २६ से २९) : इन अध्यायों को खिल अध्याय कहते हैं। इनमें पूर्वोक्त यागों से संबद्ध नवीन मंत्र हैं। (अ० ३०) इसमें पुरुषमेध का वर्णन है। इसमें पूरे समाज को एक विशाल पुरुष मानते हुए १८४ व्यवसायों का उल्लेख है। समाजशास्त्रीय अध्ययन के लिए यह अध्याय बहुत उपयोगी है। (अ० ३१) : इसे पुरुषसूक्त और विष्णुसूक्त भी कहते हैं। इसमें विराट् पुरुष के स्वरूप का वर्णन है। (अ० ३२) : इसमें विराट् पुरुष के दार्शनिक और आध्यात्मिक स्वरूप का वर्णन है। (अ० ३३) : सर्वमेध सूक्त है। (अ० ३४) : इसमें प्रारम्भ के ६ मंत्र 'शिवसंकल्प उपनिषद्' (तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु) कहे जाते हैं। मनोविज्ञान की दृष्टि से यह अध्याय अतिमहत्त्वपूर्ण है। (अ० ३५) इसमें पितृमेध का वर्णन है। (अ० ३६ से ३८) : इनमें प्रवर्ग्यनामक यज्ञ से संबद्ध मंत्र हैं। (अ० ३९) इसमें अन्त्येष्टि से संबद्ध मंत्र हैं। इसे प्रायश्चित्ताध्याय भी कहते हैं। (अ० ४०) : इसे ईशोपनिषद् और ईशावास्योपनिषद् कहते हैं। यह अध्याय यजुर्वेद का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अध्याय है। इसे उपनिषदों में प्रथम स्थान प्राप्त है। यह सब उपनिषदों का आधार माना जाता है। इसमें अध्यात्म और दर्शन का अपूर्व संमिश्रण है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि यजुर्वेद में जिन यागों और इष्टियों का वर्णन किया गया है, वे किसी विशेष उद्देश्य से प्रेरित यज्ञ हैं। कुछ यज्ञ स्वर्ग-प्राप्ति या मोक्षप्राप्ति के लिए हैं, जैसे अग्निष्टोम आदि। कुछ यज्ञ क्षत्रियवर्ग या नृप आदि की श्रीवृद्धि तथा उनकी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए आयोजित होते थे, जैसे अश्वमेध आदि। कुछ यज्ञ ब्राह्मणवर्ग की ओजस्विता, तेजस्विता एवं मेधा-वृद्धि के लिए होते थे, जैसे वाजपेय आदि। कुछ यज्ञ सार्वजनिक उन्नति के लिए होते थे, जैसे सर्वमेध आदि। इनमें व्यावसायिक

उन्नति और श्रीवृद्धि की कामना की गई है। कुछ सूक्त, जैसे पुरुषसूक्त, शिवसंकल्पसूक्त, ईशोपनिषद् आदि आध्यात्मिक और दार्शनिक भावों को अभिव्यक्त करने के लिए हैं।

५. कृष्ण यजुर्वेद

शुक्ल यजुर्वेद और कृष्ण यजुर्वेद में मुख्य अन्तर यह है कि शुक्ल यजुर्वेद में केवल मंत्र-भाग है, किन्तु कृष्ण यजुर्वेद में मंत्रों के साथ उनकी व्याख्या और विनियोग आदि का भी उल्लेख है। 'चरणव्यूह' में यजुर्वेद की ८६ शाखाओं का उल्लेख है, जिसमें से शुक्ल यजुर्वेद की १७ शाखाएँ हैं, शेष ६९ कृष्ण यजुर्वेद की हैं। कृष्ण यजुर्वेद में भी तैत्तिरीय शाखा के दो मुख्य भेद हैं -औख्य और खांडिकेय। खांडिकेय के ५ भेद हैं : आपस्तम्ब, बौधायन, सत्याषाढ, हैरण्यकेश और काट्यायन। मैत्रायणी के ७ भेद हैं और चरक (या कठ) के १२ भेद हैं। कठ के ४४ उपग्रन्थ भी हैं। संप्रति कृष्ण यजुर्वेद की केवल ४ शाखाएँ ही उपलब्ध हैं। ये हैं - (१) तैत्तिरीय, (२) मैत्रायणी, (३) काठक (या कठ), (४) कपिष्ठल-कठ शाखा।

(क) तैत्तिरीय संहिता

यह तैत्तिरीय शाखा की संहिता है और कृष्ण यजुर्वेद की सबसे प्रमुख संहिता है। इसमें ७ कांड, ४४ प्रपाठक और ६३१ अनुवाक हैं। अनुवाकों के भी उपभेद (खंड) किए गए हैं। अतः तैत्तिरीय संहिता के सन्दर्भ-निर्देश में चार संख्याएँ आती हैं। जैसे :

देवा वसव्या अग्ने सोम सूर्य । तैत्ति० सं० २.४.८.१

इसका अभिप्राय यह है कि यह मंत्र या सन्दर्भ तैत्तिरीय संहिता के कांड २, प्रपाठक ४, अनुवाक ८ के खंड १ में है।

यही एक संहिता है, जिसके ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, शुल्बसूत्र और धर्मसूत्र प्राप्य हैं , अतः यही संहिता सर्वांगपूर्ण है। इसी संहिता के बौधायन और आपस्तम्ब के श्रौत-गृह्य-शुल्ब-धर्मसूत्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। इसमें भी शुक्ल यजुर्वेद के तुल्य विविध यागों का वर्णन है। कांडों के अनुसार वर्ण्य-विषय ये हैं : (कांड १) दर्शपूर्णमास, अग्निष्टोम, राजसूय। (कांड २) पशुविधान, इष्टि। विधान, कारीरी इष्टि। (कांड ३) पवमान ग्रह आदि , वैकृत विधि, इष्टिहोम। (कांड ४) अग्निचिति, देवयजनग्रह, चितिवर्णन, वसोर्धारा संस्कार। (५) उख्य अग्नि, चितिनिरूपण, इष्टकात्रय, वायव्य पशु आदि। (कांड ६) सोममंत्रब्राह्मण। (कांड ७) अश्वमेध, षड्रात्र आदि, सत्रकर्म आदि।

तैत्तिरीय संहिता का विशेष प्रचार महाराष्ट्र, आंध्र और दक्षिण भारत में है। आचार्य सायण की यही अपनी शाखा थी, अतएव उन्होंने सर्वप्रथम इसी संहिता का विस्तृत भाष्य किया था। सायण से पूर्ववर्ती भट्ट भास्कर मिश्र (११वीं शती ई०) ने भी 'ज्ञानयज्ञ' नामक भाष्य इस पर किया था। इसमें आध्यात्मिक और आधिदैविक अर्थ भी दिए गए हैं। डा० कीथ ने इसका इंग्लिश् में अनुवाद किया है और विस्तृत भूमिका दी है। पूरी संहिता में गद्य और पद्य भाग का संमिश्रण है।

(ख) मैत्रायणी संहिता

यह मैत्रायणीय शाखा की संहिता है । मैत्रायणीय शाखा कठ (या चरक) की १२ शाखाओं में से एक है । मैत्रायणी संहिता की सात शाखाओं का उल्लेख 'चरणव्यूह' में मिलता है । ये शाखाएँ हैं - १. मानव, २. दुन्दुभ, ३. ऐकेय, ४. वाराह, ५. हारिद्रवेय, ६. श्याम, ७. श्यामायनीय । पं० भगवद्दत्त और श्री सातवलेकर ने इस शाखा के प्रवर्तक का नाम हरिबंशपुराण के एक श्लोक के आधार पर मैत्रायण या मैत्रेय माना है ।[1]

इसमें मंत्र और व्याख्याभाग (ब्राह्मण या गद्यभाग) मिश्रित है । इसमें ४ कांड, ५४ प्रपाठक और ३१४४ मंत्र हैं । इन मंत्रों में से १७०१ ऋचाएँ ऋग्वेद से उद्धृत हैं । ऋग्वेद में भी प्रथम मंडल से ४१९ मंत्र, षष्ठ मंडल से १५७ मंत्र और दशम मंडल से ३२३ मंत्र उद्धृत हैं । इस प्रकार ज्ञात होता है कि प्रथम, षष्ठ और दशम मंडल से अधिकांश मंत्र (८९९) संगृहीत हैं, शेष मंडलों से कम ।

वर्ण्य-वस्तु की दृष्टि से अन्य यजुर्वेद की शाखाओं के तुल्य इसमें भी विभिन्न यागों का वर्णन है । चार कांडों में इन विषयों का उल्लेख है - (कांड १) दर्शपूर्णमास, अध्वर, अग्निहोत्र, चातुर्मास्य और वाजपेय याग । (कांड २) काम्य इष्टियाँ, राजसूय और अग्निचिति । (कांड ३) अग्निचिति, अध्वर आदि की विधि, सौत्रामणी और अश्वमेध याग । (कांड ४) यह खिल नाम से विख्यात है । इसमें पूर्वोक्त राजसूय, अध्वर, प्रवर्ग्य और याज्यानुवाक आदि से संबद्ध अन्य आवश्यक सामग्री दी गई है ।

श्री सातवलेकर ने मैत्रायणी संहिता के संस्करण में पादटिप्पणी में विस्तार से यह निर्देश किया है कि मैत्रायणी संहिता के ये मंत्र यजुर्वेद की अन्य शाखाओं में कहाँ-कहाँ मिलते हैं । जैसे - वाजसनेयिसंहिता, काण्वसंहिता, तैत्तिरीय संहिता, काठक संहिता, कपिष्ठल संहिता में तथा ऋग्वेद, सामवेद और शतपथ ब्राह्मण आदि में । तुलनात्मक अध्ययन के लिए यह बहुत उपयोगी है ।

(ग) काठक संहिता

इसे कठसंहिता भी कहते हैं । यह कठ शाखा की संहिता है । यह चरकों की शाखा मानी जाती है । इसमें ५ खंड हैं । उनके नाम हैं : १. इठिमिका, २. मध्यमिका, ३. ओरिमिका, ४. याज्यानुवाक्या, ५. अश्वमेधादि अनुवचन । इसके खंडों और उनके उपविभागों के नाम कुछ विचित्र हैं । उपखंडों को 'स्थानक' और 'अनुवचन' नाम दिए हैं । इनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है :

---

1. अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि दिवोदासस्य सन्ततिम् ।
दिवोदासस्य दायादो ब्रह्मर्षिर्मित्रयुर्नृप ।
मैत्रायणी ततः शाखा मैत्रेयास्तु ततः स्मृताः ।। हरिवंश० अ० ३४

(खंड १) इठिमिका, स्थानक १ से १८, मंत्र १ से १५३८
(खंड २) मध्यमिका, स्थानक १९ से ३०, मंत्र १५३९ से २०५३
(खंड ३) ओरिमिका,
(खंड ४) याज्यानुवाक्या,] स्थानक ३१ से ४०, मंत्र २०५४ से २७९९
(खंड ५) अश्वमेधादि अनुवचन वचन १ से १३, मंत्र २८०० से ३०२८

इस प्रकार ५ खंडों में स्थानक ४० + वचन १३ = ५३ उपखंड, अनुवाक ८४३ और ३०२८ मंत्र हैं । मंत्र और ब्राह्मणों की संमिलित संख्या १८ हजार है ।

काठक संहिता में वर्णित प्रमुख १९ याग क्रमशः ये हैं : १. दर्श-पूर्णमास, २. ज्योतिष्टोम, ३. अग्निहोत्र, ४. उपस्थान आदि कर्म, ५. आधान, ६. काम्य इष्टियाँ, ७. विविध पयस्या-याग, ८. पशुबन्ध, ९. वाजपेय, १०. राजसूय, ११. अग्निचयन, १२. पात्नीवतयाग, १३. अतिरात्र आदि सत्र, १४. एकादशिनी, १५. प्रायश्चित्तियाँ, १६. चातुर्मास्य, १७. गोसव आदि याग, १८. सौत्रामणी, १९. अश्वमेघ ।

कृष्ण यजुर्वेद की चारों संहिताओं में प्रायः स्वरूप की एकता है और विविध यागों में प्रयुक्त मंत्रों में भी बहुत साम्य है । इसका मूल कारण यह है कि ये शाखाएँ वस्तुतः एक यजुर्वेद की ही शाखाएँ हैं, अतः इनमें स्वरूप और प्रयोग में साम्य है ।

महर्षि पतंजलि ने लिखा है कि - **'ग्रामे ग्रामे काठकं कालापकं च प्रोच्यते'** (महाभाष्य ४.३.१०१) । इससे ज्ञात होता है कि पतंजलि (१५० ई०पू०) के समय में काठक और कलाप-शाखा का प्रत्येक ग्राम में प्रचार था । आजकल यह शाखा प्रायः लुप्त हो चुकी है ।

इस संहिता के स्वरचिह्न-निर्देश में अन्तर है । इसमें केवल उदात्त अक्षर के ऊपर ही ऊर्ध्व रेखा (स्वरित जैसा चिह्न ॒) का चिह्न है । अनुदात्त और स्वरित पर चिह्न नहीं है । यहाँ यह नियम स्मरणीय है कि उदात्त से पहला अक्षर अनुदात्त होता है और उदात्त के बाद वाला अक्षर, यदि उसके बाद पुनः उदात्त न हो तो, स्वरित होता है । यदि बाद में उदात्त होगा तो पूर्ववर्ती अक्षर अनुदात्त ही रहेगा । यह पद्धति अत्युत्तम है । अतएव पाश्चात्य विद्वानों ने सभी संहिताओं में केवल उदात्त पर ही स्वरचिह्न (॒) लगाया है ।

(घ) कपिष्ठल-कठ संहिता

यह शाखा 'चरणव्यूह' के अनुसार चरकों की १२ शाखाओं में से एक है । यह कपिष्ठल-कठ शाखा की संहिता है । प्राचीन काल में कठों की कई शाखाएँ प्रचलित थीं, जैसे - कठ, प्राच्य कठ और कपिष्ठल कठ । इस शाखा के प्रवर्तक कपिष्ठल ऋषि थे । पाणिनि ने 'कपिष्ठलो गोत्रे' (८.३.९१) तथा दुर्गाचार्य ने निरुक्त की टीका (४.४) में 'अहं च कपिष्ठलो वासिष्ठः' का उल्लेख किया है । इससे ज्ञात होता है कि ये वसिष्ठ-गोत्र के थे । विद्वानों का अनुमान है कि कुरुक्षेत्र के पास 'कैथल' ग्राम कपिष्ठल का ही

अपभ्रंश है और यह कपिष्ठल ऋषि का निवास स्थान था ।

डा० रघुवीर ने इसका एक सुन्दर संस्करण १९३२ में लाहौर से प्रकाशित किया था । यह ग्रन्थ अपूर्ण है । यह ऋग्वेद के तुल्य अष्टकों और अध्यायों में विभक्त है । इसकी स्वरांकन पद्धति भी काठक संहिता के तुल्य है । इसके केवल ६ अष्टक उपलब्ध हैं । ४८ अध्याय पर समाप्ति है । बीच में कई अध्याय सर्वथा नहीं हैं या अपूर्ण हैं । इसमें अध्याय ९ से २४,३२,३३ और ४३ सर्वथा खंडित हैं ।

६. अश्वमेध आदि याग

यजुर्वेद के कई अध्यायों में 'मेध' वाले यज्ञ हैं । यथा-अश्वमेध (अध्याय २२-२९), पुरुषमेध या नरमेध (अ० ३०,३१), सर्वमेध (अ० ३२,३३), पितृमेध (अ० ३५) आदि । कतिपय भारतीय एवं पाश्चात्त्य विद्वानों को भ्रान्ति है कि 'मेध' शब्द केवल बलि या वध का वाचक है । यह शब्द 'मेधृ संगमे च' धातु से बना है, जिसका अर्थ है - संगम (गुणों से युक्त होना), मेधा (ज्ञानवृद्धि) और हिंसा । अतः केवल हिंसा अर्थ को लेकर सर्वत्र बलि देना अर्थ करना अज्ञानता है । कालिदास का प्रयोग है - 'प्रजायै गृहमेधिनाम् (रघुवंश) अर्थात् सन्तान के लिए गृहमेधी होना या गृहस्थ धर्म को अपनाना । गृहमेध का प्रयोग घर को बलि देना या घर का वध करना नहीं है । ब्राह्मण ग्रन्थों के देखने से ज्ञात होता है कि मेध शब्द का प्रयोग उन्नति, प्रगति, तेजस्विता आदि के लिए होता था । यजुर्वेद में मेध शब्द का प्रयोग 'अन्न' के लिए हुआ है ।[1] शतपथ, तैत्तिरीय और कौषीतकि ब्राह्मणों में मेध का अर्थ घी, अन्न और भोज्य पदार्थ तथा पौष्टिक पदार्थ बताए गए हैं । अतः जौ, चावल और पुरोडाश (पूआ) को मेध बताया है ।[2]

यजुर्वेद में अश्वमेध आदि शब्द राष्ट्रीय उन्नति और प्रगति के लिए हैं । यथा-पितृमेध या पितृयज्ञ का अभिप्राय है - माता-पिता की सेवा-शुश्रूषा और उन्हें अन्नादि से तृप्त रखना । मेध शब्द का प्रयोग श्रीवृद्धि, समृद्धि, उन्नति आदि के लिए होता था । शतपथ और तैत्तिरीय आदि ब्राह्मण ग्रन्थों में अश्वमेध की अनेक पारिभाषिक व्याख्याएँ की गई हैं । इनके अनुसार अश्वमेध का अर्थ है - राष्ट्र की श्रीवृद्धि, राष्ट्र को धन-धान्य से समृद्ध करना, राष्ट्र को तेजस्वी ऊर्जस्वी और ब्रह्मवर्चस्वी बनाना ।[3] इसी प्रकार पुरुषमेध या नरमेध का अर्थ है - मनुष्य की सर्वांगीण उन्नति । सर्वमेध का अर्थ है - प्रजामात्र की

---

१. मेधाय चीयमानः। यजु० १३.४७
मेधाय अन्नाय । शत०ब्रा० ७.५.२.३२

२. (क) मेधो वा आज्यम् । तैत्ति० ३.९.१२.१
(ख) सर्वेषां वा एष पशूनां मेधो यद् व्रीहियवौ । शत० ३.८.३.१
(ग) मेधो वा एष पशूनां यत् पुरोडाशः । कौषी० १०.५

३. श्रीर्वै राष्ट्रमश्वमेधः । शत० १३.२.९.२ । राष्ट्रं वा अश्वमेधः । तैत्ति० ३.८.९.४ । एष (अश्वमेधः) वै ब्रह्मवर्चसी नाम यज्ञः । तैत्ति० ३.९.१९.३ । एष (अश्वमेधः) वै तेजस्वी नाम यज्ञः । तैत्ति० ३.९.१९.३ । एष (अश्वमेधः) वै पयस्वान् नाम यज्ञः । तैत्ति० ३.९.१९.१

सर्वतोमुखी उन्नति । अतएव गोपथ ब्राह्मण में कहा है कि सर्वमेध अर्थात् सर्वजन-समुन्नति के द्वारा राजा सर्वराट् (सबका अधिपति) हो जाता है ।[१] गोमेध का अभिप्राय है – गोवंश की रक्षा और पशु-समृद्धि ।

यजुर्वेद का अध्याय ३० 'पुरुषमेध' कहा जाता है । इसमें १८४ वृत्तियों (व्यवसायों) और वृत्ति-जीवियों का उल्लेख है । इसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी हैं । इस पुरुषमेध का अभिप्राय एक मंत्र में स्पष्ट किया गया है कि -

ब्रह्मणे ब्राह्मणम् , क्षत्राय राजन्यम् , मरुद्भ्यो वैश्यम् , तपसे शूद्रम्० ।

यजु० ३०.५

इसका अभिप्राय यह है कि ब्राह्मण का कर्तव्य है – ब्रह्मशक्ति (ज्ञान या विद्या) की वृद्धि करना, क्षत्रिय का कर्तव्य है – क्षात्रधर्म (शौर्य, पुरुषार्थ, क्षात्रबल) की उन्नति करना, वैश्य का कर्तव्य है – मरुत् (वायु) के तुल्य व्यवसाय के द्वारा सबको जीवनोपयोगी वस्तुएँ प्राप्त कराना । शूद्र का कर्तव्य है – तपस् या श्रमसाध्य कार्यों को करना । इस मंत्र से स्पष्ट है कि इस अध्याय में जो १८४ वृत्तियाँ गिनाई गई हैं, उनकी सर्वविध उन्नति करना और उनको राजकीय संरक्षण देना । इसी प्रकार सर्वमेध का अभिप्राय है – सार्वजनिक या सामूहिक उन्नति और प्रगति । मेध शब्द ईश्वरोपासना आदि के प्रसंगों में आत्मसमर्पण या ईश्वरार्पण के अर्थ में प्रयुक्त होता था । इसी प्रकार अन्त्येष्टि के प्रसंग में नरमेध या पितृमेध शब्द अन्त्येष्टिक्रिया का बोधक है ।

७. विविध

प्रो० मैकडानल आदि ने यजुर्वेद के विषय में कुछ स्वतंत्र विचार प्रस्तुत किए हैं । संक्षेप में वे इस प्रकार हैं ।[२]

(१) यजुर्वेद की रचना के ४ स्तर : (क) मूल भाग अध्याय १ से १८ है । (ख) अध्याय १९ से २५ बाद की रचना है । (ग) अध्याय २६ से ३९ बाद में जोड़ा गया है । (घ) अध्याय ४०, यह ईश उपनिषद् मात्र है । इस प्रकार यजुर्वेद इन चार स्तरों में क्रमशः विकसित हुआ है ।

(२) यज्ञों का असाधारण महत्त्व : यजुर्वेद में यज्ञों को असाधारण महत्त्व दिया गया है । इनसे आवश्यकतानुसार वृष्टि, समृद्धि और मनोवांछित फल की प्राप्ति बताई गई है । यहाँ तक कि पुरोहितों के इच्छानुसार संभव एवं असंभव सभी फल देने की क्षमता यज्ञों में बताई गई है ।

(३) देवों का स्वरूप-विकास : ऋग्वेद में प्रजापति, रुद्र और विष्णु का महत्त्व कम था । यजुर्वेद में इन देवों का महत्त्व बढ़ गया है । प्रजापति मुख्य देवता हो गए हैं ।

---

१. स सर्वमेधेनेष्ट्वा सर्वराड् इति नामाधत्त । गोपथ पूर्व० ५.८

२. मैकडानल - संस्कृत साहित्य का इतिहास (हिन्दी अनुवाद) पृष्ठ १६६ से १७०

रुद्र शिव, शंकर और महादेव के रूप में विकसित हुए हैं । विष्णु अब यज्ञ-स्वरूप और यज्ञ-नारायण हो गए हैं । 'असुर' शब्द, जो ऋग्वेद में बलिष्ठ का वाचक था, अब केवल दैत्यों का पर्याय हो गया है । ऋग्वेद में अप्सराओं का उल्लेख नाममात्र है, परन्तु यजुर्वेद में उनका महत्त्व, सौन्दर्य और आकर्षकता बढ़ गई है ।[1] उर्वशी का नामोल्लेख तक मिलता है ।[2]

(४) पुरोहितों का महत्त्व : यज्ञ के महत्त्व के साथ ब्राह्मणों का महत्त्व भी बढ़ा । यहाँ तक कि 'यज्ञ के द्वारा देवता तो ब्राह्मणों की मुट्ठी में थे' ।[3]

(५) जाति -व्यवस्था का संगठन : यजुर्वेद-काल में जाति-व्यवस्था दिन-प्रतिदिन बढ़ती गई और सुदृढ़ हो गई । चातुर्वर्ण्य के अतिरिक्त वर्णसंकर-जन्य जातियों के भी नाम प्राप्त होते हैं ।[4] यज्ञों और कर्मकांड के द्वारा ब्राह्मणों का सामाजिक एवं धार्मिक महत्त्व बहुत बढ़ गया ।[5]

८. यजुर्वेद के महत्त्वपूर्ण अध्याय

यजुर्वेद के कुछ अध्याय भाव-गाम्भीर्य के कारण विशेष महत्त्वपूर्ण हैं । उनका यहाँ दिग्दर्शन कराया जा रहा है ।

१. अध्याय ९ और १० : इनमें राजा का राज्याभिषेक, राजा के अधिकार और कर्तव्यों का विस्तृत वर्णन है । राजा के कर्तव्यों में उल्लेख है कि १. वह कृषि की उन्नति करे, २. जन-कल्याण करे, ३. राष्ट्र की श्रीवृद्धि करे , ४. राष्ट्र का सर्वांगीण विकास करे । एक अन्य मंत्र में कहा गया है कि जनता में राष्ट्रीय भावना का विकास होना चाहिए । एक मंत्र में 'महान् जनराज्य' अर्थात् विशाल प्रजातंत्रीय राज्य की स्थापना लक्ष्य बताया गया है । एक अन्य मंत्र में राष्ट्र के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा गया है कि (१) वह स्वराज् अर्थात् स्वतंत्र राष्ट्र हो, (२.) जनभृत् हो अर्थात् राष्ट्र की समस्त प्रजा का हितचिन्तन होना चाहिए, (३.) विश्वभृत् हो, अर्थात् अपने राष्ट्र की उन्नति के साथ ही विश्व-कल्याण और विश्वबन्धुत्व की स्थापना करे ।

(क) **कृष्यै त्वा, क्षेमाय त्वा, रय्यै त्वा, पोषाय त्वा ।** यजु० ९.२२

(ख) **राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त ।** यजु० १०.२

(ग) **महते जानराज्याय ।** यजु० ९.४०

(घ) **स्वराज स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम् अमुष्मै दत्त ।**
जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम् अमुष्मै दत्त ।
विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम् अमुष्मै दत्त ।। यजु० १०.४

---

१. यजुर्वेद अ० १८.३८ से ४३
२. यजु० ५.२
३. मैकडानल, वही पृष्ठ १६९
४. यजु० अध्याय ३०
५. मैकडानल, वही, पृष्ठ १७०

२. अध्याय ११ : विज्ञान की दृष्टि से यह अध्याय बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसमें वर्णन किया गया है कि अथर्वा ऋषि ने दो महत्त्वपूर्ण आविष्कार किये थे। (१) जल के मन्थन से विद्युत् (Hydro-electricity) का उत्पादन। (२) उत्खनन (drilling) के द्वारा पुरीष्य अग्नि (तेल और प्राकृतिक गैस, oil and natural Gas) का निकालना। मंत्र २८ से ३२ तक इन दोनों आविष्कारों का विस्तार से वर्णन है।

(क) **त्वामग्ने पुष्करादधि-अथर्वा निरमन्थत।** यजु० ११.३२

(ख) **पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यम् अंगिरस्वत् खनामि।** यजु० ११.२८

३. अध्याय ९ : इसके एक मंत्र में सूर्य में हाइड्रोजन और हीलियम गैसों के होने का स्पष्ट उल्लेख है। हाइड्रोजन के लिए मंत्र में 'अपां रसः' (जल का सारभाग) शब्द है और हीलियम के लिए 'अपां रसस्य यो रसः' प्रयोग है। 'सूर्ये सन्तम्' के द्वारा स्पष्ट किया गया है कि ये दोनों गैसें सूर्य में हैं।

अपां रसम् उद्वयसं सूर्ये सन्तं समाहितम्। अपां रसस्य यो रसः,
तं वो गृह्णाम्युत्तमम्। यजु० ९.३

४. अध्याय १६ : यह रुद्राध्याय है। इसके द्वारा शतरुद्रीय होम किया जाता है। इसमें रुद्र के विराट् रूप का वर्णन है। इसमें रुद्र के शिव और रुद्र दोनों रूपों का वर्णन है। इसमें रुद्र को असंख्य बताते हुए पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक में सर्वत्र व्याप्त बताया गया है। रुद्र को वृक्ष, वन, ओषधि आदि का स्वामी बताते हुए उसे वृक्ष-वनस्पति के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वह कार्बन-डाई-आक्साइड (Corbon dioxide, Co_2) रूपी विषय पीता है और आक्सीजन (Oxygen) रूपी अमृत छोड़ता है। यह शिव का वृक्ष के रूप में विषपान और अमृतदान है। इस अध्याय में रुद्र को सेनापति, गणपति, शिल्पी, योद्धा, कवचधारी, शंभु और शंकर के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

(क) **असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधि भूम्याम्।**
अन्तरिक्षे भवा अधि। दिवं रुद्रा उपश्रिताः॥ मंत्र ५४ से ५६

(ख) **वृक्षाणां पतये, ओषधीनां पतये, वनानां पतये।** मंत्र १८ और १९

(ग) **नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यः, सेनानिभ्यः, कर्मारिभ्यः,**
शंभवाय, शंकराय च। मंत्र २५,२६,२७,४१

५. अध्याय ३१ और ३२ : अध्याय ३१ पुरुषसूक्त है। इसे विष्णुसूक्त भी कहते हैं। अध्याय ३१ और ३२ में विराट् पुरुष का वर्णन है। उससे ही सृष्टि की उत्पत्ति होती है। उससे ही ब्राह्मण आदि चारों वर्ण उत्पन्न हुए हैं। उसके ज्ञान से ही मुक्ति होती है। वह सर्वव्यापक है। वह एक है। उसके ही अग्नि, वायु, सूर्य, ब्रह्म आदि अनेक नाम हैं। उसमें ही सारा संसार समाहित है। वही संसार में ओत-प्रोत है। उसके ज्ञान से ही व्यक्ति ब्रह्मवित् या तत्त्वज्ञ होता है। अध्याय ३२ में पुरुष की दार्शनिक व्याख्या है।

(क) पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि । यजु० ३१.३

(ख) ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् , बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद् वैश्यः, पद्भ्यां शूद्रो अजायत । यजु० ३१.११

(ग) तमेव विदित्वाति मृत्युमेति, नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय । यजु०३१.१७

(घ) तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद् वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ।। यजु० ३२.१

(ङ) यत्र विश्वं भवत्येकनीडम् ।
स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु ।। यजु० ३२.८

(च) ऋतस्य तन्तुं विततं विचृत्य
तदपश्यत् तदभवत् तदासीत् ।। यजु० ३२.१२

६. अध्याय ३४ : इस अध्याय के प्रथम ६ मंत्र 'शिवसंकल्प सूक्त' या 'शिवसंकल्प उपनिषद्' कहे जाते हैं । इनमें '**तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु**' दिया गया है अर्थात् हमारा मन शुभ विचारों से युक्त हो । यह सूक्त मनोविज्ञान की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जाता है । इसमें मन का मनोवैज्ञानिक चित्रण है । मन जागते और सोते समय दूर तक जाता है । यह अतितीव्रगामी है । यह सर्वोत्तम ज्योति है । इसके द्वारा ही संसार के सारे कर्म किए जाते हैं । इसमें मन के तीन विशिष्ट गुणों का उल्लेख है : १. प्रज्ञान या जानना (Cognition), २. चेतस्, चित्त या स्मरण शक्ति (Recollection), ३. धृति या धारणा शक्ति (Retention) । यह समस्त ज्ञान (Knowledge) और बुद्धि (Intelligence) का आश्रयस्थान है । यह विश्व की समस्त चेतना (Consciousness) का आधार है । सुयोग्य सारथि के तुल्य इस मन को अपने नियंत्रण में रखें ।

(क) **यज्जाग्रतो दूरमुदैति ... दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकम्** । मंत्र १

(ख) **यत् प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च, यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु** । मंत्र ३

(ग) **यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानाम्** । मंत्र ५

(घ) **सुषारथिरश्वानिव ... तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु** । मंत्र ६

७. अध्याय ४० : इसको ईशोपनिषद् और ईशावास्य उपनिषद् कहते हैं । यह यजुर्वेद का अन्तिम अध्याय है और उपनिषदों में इसे प्रथम स्थान मिला है । इसको उपनिषदों की आधारशिला माना जाता है । यह अध्याय दार्शनिक और आध्यात्मिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । इसमें मुख्य बातें ये दी गई हैं : १. ईश्वर सर्वव्यापक है । उसके द्वारा प्रदत्त धन का ही उपयोग करें । कभी धन का लोभ न करें (मंत्र १) । २. सौ वर्ष तक निष्काम भाव से कर्म करते रहें । इस प्रकार हम कर्मफल के बन्धन में नहीं पड़ेंगे (मंत्र २) । यह मंत्र भगवद्गीता के निष्काम कर्मयोग की आधारशिला है । ३. आत्मा की आवाज को अवश्य सुनो, नहीं तो आत्महत्या का पाप लगेगा, (मंत्र ३) । ४. परमात्मा दूर-समीप, बाहर-अन्दर सर्वत्र विद्यमान है (मंत्र ५) । ५. सब जीवों को आत्मवत् देखो

(मंत्र ६,७) । ६. परमात्मा निराकार एवं सर्वव्यापी है (मंत्र ८) । ७. ज्ञानमार्ग और कर्ममार्ग तथा अध्यात्मवाद और भौतिकवाद दोनों का समन्वय रखें । तभी यह लोक और परलोक दोनों सुखद होंगे । (मंत्र ९ से १४) । ८. शरीर नश्वर है , ओम् ही एकमात्र रक्षक है (मंत्र १५) । ९. सूर्य में जो महान् शक्ति काम कर रहो है, वही इस शरीर में भी है । इस प्रकार 'सोऽहम्' की अनुभूति करें । ईश्वर आकाशवत् सर्वव्यापक है (मंत्र १७) ।

(क) ईशा वास्यमिदं सर्वं, यत् किं च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा, मा गृधः कस्यस्विद् धनम् ।। मंत्र १

(ख) कुर्वन्नेवेह कर्माणि, जिजीविषेत् शतं समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति, न कर्म लिप्यते नरे ।। मंत्र २

(ग) अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा, विद्ययाऽमृतमश्नुते । मंत्र १४

(घ) योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् ।
ओं खं ब्रह्म ।। मंत्र १७

९. यजुर्वेद के अतिमहत्त्वपूर्ण मंत्र

पूर्वोक्त मंत्रों के अतिरिक्त यजुर्वेद के कुछ अतिमहत्त्वपूर्ण मंत्र ये हैं :

१. राष्ट्रीय प्रार्थना : 'आ ब्रह्मन्०' मंत्र में चारों वर्णों के सर्वांगीण अभ्युदय, कुलव्रत-पालक नारियों, सभ्य युवकों, यथासमय वर्षा और योगक्षेम की प्रार्थना की गई है । योग का अर्थ है - अप्राप्त की प्राप्ति और क्षेम का अर्थ है - प्राप्त की सुरक्षा, अतः योगक्षेम का अर्थ है - समग्र कल्याण (Total Welfare)

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम् , आ राष्ट्रे राजन्यः
शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्, ... योगक्षेमो नः कल्पताम् ।

यजु० २२.२२

२. चारों वर्णों को वेद पढ़ने का अधिकार : एक मंत्र में कहा गया है कि यह शुभ वेदवाणी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सबके लिए है ।

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः । ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च ।

यजु० २६.२

३. चारों वर्ण तेजस्वी हों : मंत्र का कथन है कि चारों वर्ण अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी तेजस्वी हों ।

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु, रुचं राजसु नस्कृधि ।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु, मयि धेहि रुचा रुचम् ।। यजु० १८.४८

४. विश्वप्रेम : मंत्र का कथन है कि सब मुझे मित्र की दृष्टि से देखें । मैं सबको मित्र की दृष्टि से देखूँ और सब परस्पर मित्र की दृष्टि से देखें ।

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् । मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे । मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ।। यजु० ३६.१८

५. सब निर्भय हों : मंत्र का कथन है कि हम सब ओर से निर्भय हों । सारी प्रजा सुखी हो और सारे पशु निर्भय हों ।

यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु ।
शं नः कुरु प्रजाभ्यो - अभयं नः पशुभ्यः ।। यजु० ३६.२२

६. विश्वकल्याण की प्रार्थना : इन मंत्रों में कहा गया है कि यह सारा संसार नीरोग हो और सद्भाव-युक्त हो । मनुष्य और पशु सबका कल्याण हो । प्रत्येक ग्राम में सभी हृष्ट-पुष्ट और नीरोग हों ।

(क) यथा नः सर्वमिज्जगद् अयक्ष्मं सुमना असत् । यजु० १६.४
(ख) यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे, विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन् अनातुरम् ।। यजु० १६.४८

७. राष्ट्रप्रेम की भावना हो : मंत्र का कथन है कि हम स्वराष्ट्र की रक्षा में सदा अग्रणी (पुरोहित) रहें और सदा जागरूक रहें ।

वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः । यजु० ९.२२

८. व्रत का महत्त्व : व्रत से मनुष्य दीक्षित होता है । दीक्षित होने से उसे दक्षिणा (दाक्षिण्य, निपुणता) प्राप्त होती है । दक्षिणता से श्रद्धा उत्पन्न होती है और श्रद्धा से सत्यरूप ब्रह्म की प्राप्ति होती है ।

व्रतेन दीक्षामाप्नोति, दीक्षयाऽऽप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति, श्रद्धया सत्यमाप्यते ।। यजु० १९.३०

(ग) सामवेद-संहिता

१. सामन् (साम) का अर्थ

सामन् या साम का अर्थ : गीतियुक्त मंत्र है । साम के लिए गीतियुक्त होना अनिवार्य है । ऋग्वेद के मंत्र (ऋक् या ऋचा) जब विशिष्ट गान-पद्धति से गाये जाते हैं, तब उनको सामन् (साम) कहते हैं । अतएव पूर्वमीमांसा में गीति या गान को साम कहा गया है । **'गीतिषु सामाख्या'** (पूर्व० २.१.३६) । ऋग्वेद में स्तोत्ररूप या गीतिरूप मंत्र को 'आंगूष्यं साम' (ऋग्० १.६२.२) कहा है । आंगूष्य का अर्थ है - स्तोत्र या गीतिरूप । इससे ज्ञात होता है कि जब मंत्र या ऋचा गीति के रूप में प्रस्तुत की जाती है तो उसे साम कहते हैं ।

ऋग्वेद और सामवेद का अन्योन्याश्रित संबन्ध है । ऋचा + गान = सामन् है । गीतियुक्त ऋचा साम हो जाती है । इस भाव को अथर्ववेद, ऐतरेय ब्राह्मण, छान्दोग्य और बृहदारण्यक उपनिषदों में अनेक रूप से प्रकट किया गया है । कहीं पर सामान्यरूप से और कहीं पर आलंकारिक रूप में । सा + अम = साम । (१) स या सा (ऋचा) + अम (गीति) = सामन् । इसका अभिप्राय है कि स या सा ऋग्वेद है और अम संगीत

है । दोनों के मिश्रण से साम (सामवेद) बनता है । (२) सा (अर्थात् ऋचा पत्नी है) + अम (गान पुरुष है) = सामन् । पति-पत्नी के तुल्य ऋग्वेद और सामवेद का संबन्ध है ।[१]

(क) या ऋक् तत् साम । छान्दो०उप० १.३.४

(ख) ऋचि अध्यूढं साम । छा०उप० १.६.१

(ग) अमोऽहमस्मि सा त्वम् , सामाहमस्मि-ऋक् त्वम् ,
द्यौरहं पृथिवी त्वम् । ताविह सं भवाव प्रजामा जनयावहै ।

अथर्व० १४.२.७१ । ऐत० ब्रा० ८.२७ । बृहदा०उप० ६.४.२०

(घ) सा च अमश्चेति तत् साम्नः सामत्वम् । बृहदा०उप० १.३.२२

बृहदारण्यक उपनिषद् में स्पष्ट लिखा है कि गान ही सामवेद का स्वत्व है । गान ही सामवेद का स्वरूप और अस्तित्व है ।

तस्य हैतस्य साम्नो यः स्वं वेद, ... तस्य स्वर एव स्वम् ।

बृहदा० उप० १.३.२५

मीमांसासूत्रों की व्याख्या में शबरस्वामी ने भी यही भाव प्रकट किया है कि कुछ विशेष प्रकार से ऋचाओं के गान को साम कहते हैं ।

विशिष्टा काचिद् गीतिः सामेत्युच्यते । मी०सूत्र २.१.३७

२. सामवेद का दार्शनिक और आध्यात्मिक रूप

ब्राह्मण ग्रन्थों में सामवेद के दार्शनिक और आध्यात्मिक रूप का वर्णन किया गया है । सामवेद उपासना का वेद है । इसमें अध्यात्मपरक मंत्रों का मुख्य रूप से संकलन है, अतः इसका आध्यात्मिक रूप होना चाहिए ।

यजुर्वेद का कथन है कि सामवेद प्राणतत्त्व है अर्थात् सामवेद से प्राणशक्ति की वृद्धि होती है ।[२] शतपथ ब्राह्मण और जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मणों में भी यही बात कही गई है ।[३] सामवेद को ऋग् और गीति का समन्वय मानने पर जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण का कथन है कि यह वाक्तत्त्व (सा) और प्राणतत्त्व (अम) का समन्वय है, सा + अम = साम ।[४] वाक् शब्दब्रह्म है और प्राण उसमें शक्ति है । सामवेद सूर्य का प्रतिनिधि है, अतः इसमें सौर ऊर्जा है । सूर्य सर्वत्र समभाव से विद्यमान है, अतः समत्व के कारण सूर्य सामवेद है । सम का ही भावार्थक रूप साम है ।[५] सामवेद सूर्य है और सामवेद के

---

१. विस्तृत विवरण के लिए देखें : सामवेद संहिता, संवत् १९९६ (१९३९ ई०) श्री सातवलेकर - संपादित संस्करण की भूमिका, पृ० १-२

२. साम प्राणं प्र पद्ये । यजु० ३६.१

३. प्राणो वै साम । शत० १४.८.१४.३
स यः प्राणस्तत् साम । जैमि० उप० ब्रा० १.२५.१०

४. प्राणो वावामो वाक् सा, तत् साम । जै० उप०ब्रा० ४.२३.३

५. तद्यद् एष (आदित्यः) सर्वैर्लोकैः समः, तस्मादेष (आदित्यः) एव साम । जै०उप०ब्रा० १.१२.५

मंत्र सूर्य की किरणें हैं, अर्थात् सामवेद से सौर ऊर्जा मनुष्य को प्राप्त होती है ।[१] सामवेद में साम (गीति) द्युलोक है, और ऋग् (ऋचा या मंत्र) पृथिवी है ,अतः सामवेद द्यु और भू का समन्वय है ।[२]

इस प्रकार ज्ञात होता है कि सामवेद तीन प्रमुख शिक्षाएँ देता है : १. समत्व की भावना जागृत करना । जहाँ जहाँ समत्व है, वहाँ साम या सामवेद है । समत्व बुद्धि, समत्व का प्रकाशन और समत्व की प्रतिष्ठा साम की प्रतिष्ठा है । २. समन्वय की भावना । ऋग् और साम का समन्वय द्युलोक और पृथिवी का समन्वय है । पति-पत्नी का एकीकरण है । जीवन में समन्वय की भावना जागृत करना सामवेद की महत्त्वपूर्ण शिक्षा है । ३. साम प्राण है । जीवन में प्राणशक्ति या आत्मशक्ति को उद्‌बुद्ध करना मानव का लक्ष्य है । प्राण और अपान शक्ति के समन्वय से आध्यात्मिक उन्नति करना ही योग एवं साधना है ।

३. सामवेद का महत्त्व

वेदों में सामवेद के महत्त्व के प्रमुख कारण ये हैं :

१. सामवेद वेदों का सार है । शतपथ और गोपथ ब्राह्मण का कथन है कि सारे वेदों का रस या सार सामवेद है ।[३]

२. साम के बिना यज्ञ अपूर्ण है । शतपथ ब्राह्मण का कथन है कि सामगान के बिना यज्ञ पूर्ण नहीं होता है ।[४]

३. सामवेद में सौर ऊर्जा है । शतपथ का कथन है कि सूर्य से सामवेद की उत्पत्ति हुई है । अतः यह सूर्य-पुत्र है । इसमें सूर्य की शक्ति है ।[५]

४. सामवेद का सार (रस) द्युलोक है । जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण का कथन है कि प्रजापति ने सामवेद का रस (सार) लेकर द्युलोक की रचना की । वही रस सूर्य के रूप में हुआ ।[६]

५. 'बृहद्‌देवता' का कथन है कि जो सामवेद को जानता है, वही वेद के रहस्य को जान सकता है ।[७]

६. गीता में श्रीकृष्ण ने सामवेद को सर्वोच्च स्थान दिया है और उसे परमात्मा का रूप माना है ।[८]

---

१. (आदित्यस्य) अर्चिः सामानि । शत० १०.५.१.५
२. साम वा असौ (द्यु-) लोकः, ऋगयम् (भूलोकः) । तांड्य० ४.३.५
३. सर्वेषां वा एष वेदानां रसो यत् साम । शत० १२.८.३.२३ । गो० २.५.७
४. नासामा यज्ञोऽस्ति । शत० १.४.१.१
५. सूर्यात् सामवेदः (अजायत) । शत० ११.५.८.३
६. स्वरित्येव सामवेदस्य रसमादत्त । सोऽसौ द्यौरभवत् । तस्य रसः ... आदित्यः । जैमि०उप०ब्रा० १.१.५
७. सामानि यो वेत्ति स वेद तत्त्वम् । बृहद्‌देवता ।
८. वेदानां सामवेदोऽस्मि । गीता १०.२२

७. छान्दोग्य उपनिषद् में ऋचाओं का सार सामवेद बताया गया है और सामवेद का सार उद्गीथ (प्रणव, ओंकार, ओम्) । इस उद्गीथ को संसार का सबसे बहुमूल्य रस बताया गया है ।[1] इस प्रकार सामवेद ओम् (परमात्मा) का प्रतिपादन करता है ।

८. सामवेद गीतिमय या संगीत का वेद है । संगीत संसार की सर्वश्रेष्ठ विद्या है, अतः चारों वेदों में सामवेद का गुणगान है ।[2] सामवेद का गान करने वाले को 'सामग' कहकर उसकी प्रशंसा की गई है ।[3]

९. सामवेद जागरूकता का प्रतीक है । अतएव ऋग्वेद में कहा गया है कि जो जागरूक है, उसको ही ऋग्वेद और सामवेद पसन्द करते हैं ।[4]

१०. सामगान देव-स्तुति और देवों को प्रसन्न करने का सर्वोत्तम उपाय है । शुद्ध हृदय से किया गया सामगान सभी देवों को आकृष्ट कर लेता है । इसीलिए ऋग्वेद में कहा गया है कि शुद्ध मन से सामगान करें ।[5]

४. सामवेद का स्वरूप

सामवेद के दो मुख्य भाग हैं : (१) पूर्वार्चिक, (२) उत्तरार्चिक । आर्चिक का शाब्दिक अर्थ है - ऋचाओं का समूह या संकलन ।

(१) पूर्वार्चिक : इसमें चार कांड हैं : (क) आग्नेय, (ख) ऐन्द्र, (ग) पावमान । (घ) आरण्य कांड और परिशिष्ट के रूप में महानाम्नी आर्चिक । पूर्वार्चिक में ६ अध्याय हैं । अध्यायों के खंड किए गए हैं और इनको 'दशति' नाम दिया गया है । दशति का अर्थ दस ऋचाएँ हैं , परन्तु प्रत्येक दशति में दस संख्या का प्रतिबन्ध नहीं है, कहीं कम हैं और कहीं अधिक । अध्याय १ आग्नेय कांड है । अध्याय २ से ४ तक ऐन्द्र कांड है । अध्याय ५ पावमान कांड है । अध्याय ६ आरण्यकांड है । इसी का परिशिष्ट महानाम्नी आर्चिक (१० मंत्र) है ।

विषय और मंत्र संख्या आदि की दृष्टि से पूर्वार्चिक का विवरण यह है :

कांड	विषय	अध्याय	खंड	मंत्र	विवरण
१. आग्नेय	अग्नि देवता	१	१२	११४	(१-११४)
२. ऐन्द्र	इन्द्र देवता	२ से ४	१२	३५२	(११५-४६६)
३. पावमान	सोम देवता	५	११	११९	(४६७-५८५)
४. आरण्य	इन्द्र, अग्नि, सोम	६	५	५५	(५८६-६४०)
५. महानाम्नी आर्चिक	इन्द्र	परिशिष्ट	..	१०	(६४१-६५०)
		पूर्वार्चिक मंत्र संख्या =६५०			

१. ऋचः साम रसः, साम्न उद्गीथो रसः । रसतमः परमः परार्ध्यः .. उद्गीथः । छा० १.१.२ और ३
२. सामभिः स्तूयमानाः । ऋग्० १.१०७.२ । सामतेजाः । अथर्व० १०.५.३०
३. सामगेभिः० । अ० २.१२.४
४. यो जागार तमृचः ... तमु सामानि यन्ति । ऋग्० ५.४४.१४
५. (क) इन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना । ऋग्० ८.९५.७
(ख) इन्द्राय साम गायत । ऋग्० ८.९८.१

अध्याय १ से ५ तक की ऋचाओं को 'ग्राम-गान' कहते हैं । इसका अभिप्राय यह है कि इनका गान ग्रामों में होता था । अध्याय ६ आरण्य कांड है । इसकी ऋचाओं का गान अरण्य (वन) में होता था ।

(२) **उत्तरार्चिक** : इसमें २१ अध्याय (या ९ प्रपाठक) हैं और मंत्रों की संख्या १२२५ है । उत्तरार्चिक में कुल ४०० सूक्त हैं । इनमें २८७ सूक्तों में प्रत्येक में तीन-तीन मंत्रों का समूह है । ६६ में दो-दो मंत्र हैं और शेष ४७ सूक्तों में १ से १२ तक मंत्र-समूह हैं ।

मंत्र-संख्या-विचार : सामवेद के पूर्वार्चिक में ६५० मंत्र हैं और उत्तरार्चिक में १२२५ । इस प्रकार पूरे सामवेद की मंत्र संख्या १८७५ है । इसमें ऋग्वेद से संकलित ऋचाएँ १७७१ हैं । अतः सामवेद में केवल १०४ मंत्र ही नये हैं । ऋग्वेद के १७७१ मंत्रों में भी २६७ मंत्र पुनरुक्त हैं तथा सामवेद के १०४ नए मंत्रों में भी ५ पुनरुक्त हैं । अतः पुनरुक्त मंत्रों की संख्या २७२ है । इस प्रकार ऋग्वेद में सर्वथा अप्राप्त मंत्र केवल ९९ हैं । इस प्रकार कह सकते हैं कि :

सामवेद में ऋग्वेदीय मंत्र १५०४ + पुनरुक्त २६७ = १७७१
सामवेद में नवीन मंत्र ९९ + पुनरुक्त ५ = १०४

कुल मंत्र संख्या १८७५

सामवेद में ऋग्वेद से लिए गए अधिकांश मंत्र मंडल ८ और ९ से हैं । ऋग्वेद के नवम मंडल से संगृहीत मंत्र ६४५ और अष्टम मंडल से ४५० मंत्र हैं । इसके अतिरिक्त ऋग्वेद के शेष सभी मंडलों से भी कुछ मंत्र लिए गए हैं । इनमें प्रथम मंडल से २३७ मंत्र और दशम मंडल से ११० मंत्र हैं । शेष मंडलों से गृहीत मंत्रों की संख्या न्यून है ।

शतपथ ब्राह्मण में सामवेद के अक्षरों की भी गणना प्रस्तुत की गई है । शतपथ के अनुसार सामवेद में ४ सहस्र बृहती छन्द (३६ अक्षर) के बराबर अक्षर हैं, अर्थात् ४००० x ३६ = १,४४,००० (एक लाख चौवालीस हजार अक्षर)।[1]

५. सामवेद की स्वतंत्र सत्ता

ऋग्वेद और सामवेद के संबन्ध के विषय में कुछ भ्रान्तियाँ हैं । जिनका निराकरण आवश्यक है । कतिपय भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों की धारणा है कि सामवेद की स्वतंत्र सत्ता नहीं है, अपितु यह गान के निमित्त संगृहीत ऋचाओं का संकलनमात्र है । यह धारणा वस्तुतः भ्रान्त एवं निर्मूल है । इसके कतिपय कारण ये हैं :

(१) यदि गान या साम के लिए ही संकलित मंत्रों का संग्रह सामवेद होता तो इसमें केवल वे ही मंत्र होते जो सामगान के लिए अपेक्षित थे । परन्तु ऐसा नहीं है । सामवेद में ४५० मंत्र ऐसे हैं, जिन पर गान नहीं होता है, ऐसे मंत्रों का संग्रह सामवेद में नहीं होना चाहिए था ।

1. चत्वारि बृहतीसहस्राणि (४००० x ३६ =१,४४,००० अक्षराणि)साम्नाम् । शत० १०.४.२.२४

(२) सामवेद में प्राप्त अधिकांश ऋग्वेदीय ऋचाओं में आंशिक साम्य है। कहीं पर पाठभेद है, कहीं पाद-व्यत्यय है। कहीं अपूर्ण ऋचा है। यदि वस्तुतः ऋग्वेद से ये ऋचाएँ ली गई होतीं तो इनमें पाठभेद आदि नहीं होता और ऋचा आंशिक न होकर पूर्णरूप से ली जाती, जैसे (क) ऋग्वेद का पाठ - अपो महि व्ययति० (ऋग्० ७.८१.१)। सामवेद कापाठ - अपो मही वृणुते० (मंत्र ३०३)। (ख) ऋग्वेद - अरं वहन्ति मन्यवे (ऋग्० ६.१६.४३)। सामवेद - अरं वहन्त्याशवः (मंत्र २५)। इसी मंत्र में ऋग्वेद में 'युक्ष्वा' प्रयोग है और सामवेद में 'युङ्क्ष्वा'। इसी प्रकार शब्दों की वर्तनी में भी अन्तर है। जैसे - (क) ऋग्वेद - इदं विष्णुः ... पांसुरे। (ऋग्० १.२२.१७), सामवेद - 'पांसुले' (मंत्र १६६९)। इसी मंत्र में ऋग्वेद में 'समूह्लम्' पाठ है, सामवेद में - समूढम्'। इसी प्रकार ऋग्वेद ' परि त्यं हर्यतं हरिम्० (ऋग्० ९.९८.७) का केवल एक पाद ही सामवेद में 'परि त्यं हर्यतं हरिम्' (मंत्र १६८१) दिया गया है। शेष तीन पाद छोड़ दिए हैं। यह आंशिक साम्य है। इस प्रकार के उदाहरण अनेक हैं।

(३) यदि सामवेद के मंत्र ऋग्वेद से ही लिए गए होते तो सर्वथा या अंशतः ऋग्वेद के क्रम से ही होते। परन्तु ऐसा नहीं है।

(४) ऋग्वेद और सामवेद में स्वरांकन पद्धति में पूर्णतया भेद है। ऋग्वेद में उदात्त, अनुदात्त और स्वरित हैं। सामवेद में १,२,३ अंक हैं। ये 'नारदीय शिक्षा' के अनुसार क्रमशः मध्यम (म), गान्धार (ग) और ऋषभ (रे) स्वर के बोधक हैं। ऋग्वेद और सामवेद के मंत्रों के उच्चारण में भी पूर्ण भिन्नता है। ऋग्वेद के मंत्र द्रुत गति से बोले जाते हैं और सामवेद के विलम्बित (बहुत धीमी) गति से।

(५) ऋग्वेद में स्वयं सामवेद से संबद्ध ये शब्द ३७ बार आए हैं। जैसे - साम (१३ बार), सामगा इव (१), सामगाम् (१), सामन् (३), साम्नाम् (१), सामनौ (१), सामान्यः सामभिः (४), सामानि (४), साम्नः (१), साम्ना (१), साम्ने (२) आदि।[1] ऋग्वेद में साम, सामानि, सामगा आदि शब्दों का ३७ बार उल्लेख सिद्ध करता है कि सामवेद और सामगान की प्रक्रिया ऋग्वेद से प्राचीन है।

(६) ऋग्वेद में ४ ऋत्विजों में सामगानकर्ता का 'उद्गाता' के रूप में उल्लेख है, (ऋचां त्वः०, ऋग्० १०.७१.११)। इसी मंत्र में शक्वरी छन्द में गान का वर्णन है। बृहत् साम, रथन्तर साम आदि का ऋग्वेद में उल्लेख है। इससे ऋग्वेद से पहले सामवेद को सत्ता ज्ञात होती है।

(७) ऋग्वेद में स्वयं ऋग्, साम और यजुः की एक साथ सत्ता स्वीकार की गई है।[2] इस मंत्र में ऋग्वेद, यजुः, साम और अथर्व (छन्दस्) चारों वेदों की एक

---

१. कुछ सन्दर्भ ये हैं - साम (ऋग्० १.६२.२ । २.४३.२)। सामगाः (२.४३.१)। सामभिः (१.१०७.२)। सामानि (५.४४.१४ और १५)। साम्नः (२.२३.१६)। साम्ना (८.९५.७)। साम्ने (८.४.१७)।

२. तस्माद् यज्ञात् ...... ऋचः सामानि जज्ञिरे। ऋग्० १०.९०.९

साथ परमात्मा से उत्पत्ति वर्णित है। मनुस्मृति में भी यही वर्णन है कि ये वेद सनातन (नित्य) हैं और उनकी उत्पत्ति क्रमशः अग्नि, वायु और आदित्य से हुई है।[1]

(८) आचार्य सायण आदि भी सामवेद की स्वतंत्र सत्ता मानते हैं, अतएव उन्होंने ऋग्वेद के बाद सामवेद पर स्वतंत्र भाष्य लिखा है।

(९) 'ऋचि अध्यूढं साम गीयते'[2] छान्दोग्य उपनिषद् के इस कथन भाव है कि ऋचा का आश्रय लेकर सामगान होता है। ऋचा ऋग्वेद और सामवेद दोनों में हैं। सामवेद की प्राचीन शाखाओं में ये ऋचाएँ थीं। इन शाखाओं का ही वर्तमान रूप सामवेद है।

सामवेद में ऋग्वेद से मौलिक अन्तर है। दोनों की विभाजन-पद्धति पृथक् है। ऋग्वेद में मंडल और सूक्त हैं, सामवेद में कांड, अध्याय, दशति आदि। दोनों की विषयवस्तु भिन्न है। दोनों का कार्य भिन्न है। ऋग्वेद देवस्तुति है और सामवेद संगीत। उक्त विवरण से ज्ञात होता है कि सामवेद की स्वतंत्र सत्ता है। यह ऋग्वेद पर आश्रित नहीं है, अपितु स्वतंत्र सामवेदीय प्राचीन शाखा पर आश्रित है।

६. सामवेद की शाखाएँ

महाभाष्य में पतंजलि ने 'सहस्रवर्त्मा सामवेदः' कहा है।[3] इसी प्रकार 'सहस्राध्वा सामवेदः' भी कहा गया है।[4] इनका अर्थ यह लगाया गया है कि सामवेद की एक सहस्र शाखाएँ थीं, परन्तु 'वर्त्मन्' और 'अध्वन्' का वस्तुतः शाखा अर्थ नहीं है, अपितु यह गीति के एक सहस्र भेदों का संकेत करता है। सामवेद के एक मंत्र से इस बात की पुष्टि होती है। मंत्र में 'सहस्रवर्तनि' शब्द का प्रयोग करते हुए कहा गया है कि मैं गायत्री, त्रिष्टुप् और जगती छन्द वाले मंत्रों को सहस्र प्रकार से गाता हूँ। मंत्र में 'वर्तनि' शब्द का अर्थ 'प्रकार, मार्ग या भेद' है।

गाये सहस्रवर्तनि। गायत्रं त्रैष्टुभं जगत्। साम० १८२९

मीमांसासूत्र 'अर्थैकत्वाद् विकल्पः स्यात्' पर शबरस्वामी ने अपने भाष्य में कहा है कि 'सामवेदे सन्ति सहस्रं गीत्युपायाः।' अर्थात् सामवेद में सहस्रों प्रकार के गान की विधियाँ हैं।[5] श्री सत्यव्रत सामश्रमी और श्री सातवलेकर आदि ने भी यही मन्तव्य उपयुक्त बताया है। इस बात की पुष्टि इस बात से भी होती है कि 'सामतर्पण' में केवल १३ सामवेदी आचार्यों को स्मरण किया जाता है। यदि १३ से अधिक शाखाकार होते तो उनका सामतर्पण में या अन्यत्र उल्लेख मिलता। सामतर्पण में इन १३ शाखाकारों का उल्लेख मिलता है :

१. अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थम्, ऋग् - यजुः - सामलक्षणम्॥ मनु० १.२३

२. छान्दोग्य उप० १.७.१

३. महाभाष्य, आह्निक १

४. षड्गुरुशिष्य द्वारा 'चरणषट्क' से उद्धृत।

५. मीमांसासूत्र ९.२.२९ पर शाबर भाष्य।

६. चरणव्यूह खंड ३

राणायन - शाट्यमुग्र्य-व्यास-भागुरि - औलुण्डी - गौल्गुलवि - भानुमानौपमन्यव - काराटि - मशकगार्ग्य - वार्षगव्य - कुथुम - शालिहोत्र - जैमिनि - त्रयोदशैते मे सामगाचार्याः स्वस्ति कुर्वन्तु तर्पिताः । (सामतर्पणम्)

१. राणायन (राणायनि), २. शाट्यमुग्र्य (सात्यमुग्रि), ३. व्यास, ४. भागुरि, ५. औलुण्डी, ६. गौल्गुलवि, ७. भानुमान् औपमन्यव, ८. काराटि (दाराल), ९. मशक गार्ग्य (गार्ग्य सावर्णि), १०. वार्षगव्य, (वार्षगण्य), ११. कुथुम (कुथुमि, कौथुमि), १२. शालिहोत्र, १३. जैमिनि ।

प्रपञ्चहृदय, दिव्यावदान, चरणव्यूह और जैमिनि गृह्यसूत्र में भी १३ शाखाओं के नाम मिलते हैं ।[१] परन्तु नामों में कुछ भेद हैं । भागवत, विष्णुपुराण और वायुपुराण में भी शाखाओं का उल्लेख है । इन पुराणों के अनुसार वेदव्यास के शिष्य जैमिनि हैं । जैमिनि ने अपने पुत्र सुमन्तु को, सुमन्तु ने सुन्वान् को और सुन्वान् ने अपने पुत्र सुकर्मा को सामवेद की शिक्षा दी । सामवेद के विस्तार का श्रेय सुकर्मा को ही है । सुकर्मा के दो शिष्य थे - १. हिरण्यनाभ कौशल्य, २. पौष्यञ्जि । हिण्यनाभ का शिष्य 'कृत' था । कृत ने सामवेद के २४ प्रकार के गानस्वरों का प्रवर्तन किया ।[२] कृत के अनुयायी होने के कारण सामवेदी आचार्यों को 'कार्त' कहा जाता था ।

चतुर्विंशतिधा येन प्रोक्ता वै सामसंहिताः ।
स्मृतास्ते प्राच्यसामानः कार्ता नामेह सामगाः । मत्स्य पु० ४९.६७

उपर्युक्त १३ शाखाओं में से आजकल केवल तीन शाखाएँ ही उपलब्ध हैं : १. कौथुमीय, २. राणायनीय, ३. जैमिनीय । इनका ही संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है ।

(क) कौथुमीय (कौथुम) शाखा

आजकल यही शाखा सर्वत्र प्रचलित है । संहिता की दृष्टि से कौथुमीय और राणायनीय संहिताओं में कोई मौलिक भेद नहीं है । दोनों में वे ही मंत्र हैं और उनका क्रम भी वही है । दोनों में केवल गणना-पद्धति का अन्तर है । कौथुमीय शाखा का विभाजन अध्याय, खंड और मंत्र के रूप में है । राणायनीय शाखा का विभाजन प्रपाठक, अर्धप्रपाठक, दशति और मंत्र के रूप में है । श्री सातवलेकर ने सामवेद संहिता के अपने संस्करण में दोनों पद्धतियों का साथ-साथ उल्लेख किया है । दोनों पद्धतियों में स्वरों के उच्चारण में कुछ भेद हैं तथा कहीं-कहीं पाठभेद भी हैं । जैसे - जैमिनीय 'हाउ' कहते हैं और राणायनीय उसमें व् और जोड़कर 'हावु' कहते हैं । इसी प्रकार 'राइ' को राणायनीय य्

---

१. चरणव्यूह -खंड ३ । जैमिनि गृह्य० १.१४

२. विस्तृत वर्णन के लिए देखें - भागवत (१२.६.८०), मत्स्य पुराण । अ० ४९.७५-७६ , हरिवंश (२०.४१-४४), विष्णुपुराण (४.१९-५०), वायुपुराण (४१.४४), ब्रह्माण्ड पुराण (३५.४९-५०)

जोड़कर 'रायि' बोलते हैं । पाठभेद की दृष्टि से कौथुमीय 'वाजेषु नो' और राणायनीय - वाजेषु णो' पाठ करते हैं । इस प्रकार दो स्वरों के बीच य् या व् जोड़ना तथा वर्तनी में न को ण और स को ष पाठभेद राणायनीय शाखा में है ।

सामवेद के प्रातिशाख्य 'पुष्पसूत्र' के अन्य नाम कुसुमसूत्र और कौसुमसूत्र भी हैं । इस आधार पर कुछ विद्वानों का विचार है कि कौथुम शब्द का प्राचीन रूप कौसुम रहा होगा । उसका ही रूपान्तर कौथुम शब्द है । पुष्पसूत्र कौथुम शाखा से संबद्ध है ।

कौथुमीय शाखा की ही एक शाखा 'तांड्य' है । इसका ही विशालकाय ब्राह्मण 'तांड्यमहाब्राह्मण' है, जिसे पंचविंशब्राह्मण भी कहते हैं, क्योंकि इसमें २५ अध्याय हैं । किसी समय इस शाखा का बहुत प्रचार था । शंकराचार्य ने वेदान्तभाष्य में तांड्य का अनेक बार उल्लेख किया है ।[१] प्रसिद्ध छान्दोग्य उपनिषद् का संबन्ध तांड्य शाखा से है । शंकराचार्य ने छान्दोग्य उपनिषद् के भाष्य में इसका स्पष्ट उल्लेख किया है और छान्दोग्य को 'तण्डिनाम् उपनिषद्' कहा है ।[२]

इस शाखा का प्रचार विन्ध्य के उत्तर में अर्थात् उत्तर भारत में और राणायनीय शाखा का प्रचार दक्षिण भारत में अधिक रहा है ।

(ख) राणायनीय शाखा

ऊपर लिखा जा चुका है कि कौथुमीय और राणायनीय शाखाओं के मंत्रों तथा उनके क्रम में कोई भेद नहीं है । केवल गणना की विधि में अन्तर है । राणायनीयों के अनुसार विभाजन प्रपाठक, अर्धप्रपाठक, दशति और मंत्र के रूप में है । पाठभेद और कुछ उच्चारणभेद अवश्य हैं । इनका संकेत ऊपर किया गया है ।

राणायनीयों की ही एक शाखा सात्यमुग्रि है । पंतजलि ने महाभाष्य में तथा आचार्य आपिशलि ने सात्यमुग्रि और राणायनीयों की एक महत्त्वपूर्ण भाषावैज्ञानिक विशेषता बताई है कि वे ए और ओ के दो रूप मानते हैं - १. शुद्ध ए, ओ । २. ह्रस्व ऍ, ऑ ।[२] ह्रस्व ए ओ को अर्ध ए ओ भी कहते हैं, इसमें ए और ओ का बहुत हल्का उच्चारण होता है । भाषाविज्ञान की दृष्टि से यह बहुत महत्त्वपूर्ण विचार माना जाता है । प्राकृत में और आधुनिक प्रान्तीय भाषाओं में ए और ओ का उच्चारण ह्रस्व भी किया जाता है । इस शाखा का विशेष प्रचार दक्षिण भारत में रहा है ।

(ग) जैमिनीय शाखा

सामवेद की जैमिनीय शाखा भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । इसकी संहिता डा० रघुवीर ने लाहौर से प्रकाशित की थी । श्री सातवलेकर ने सामवेद संहिता के परिशिष्ट में

१. (क) अन्येऽपि शाखिनः ताण्डिनः शाट्यायिनः । शांकर भा० ३.३.२७
(ख) यथा तण्डिनामुपनिषदि 'स आत्मा' । शांकर भा० ३.३.३६

२. (क) छन्दोगानां सात्यमुग्रि - राणायनीया ह्रस्वानि पठन्ति । आपि० शिक्षा
(ख) छन्दोगानां सात्यमुग्रि-राणायनीया अर्धमेकारम् .. अर्धमोकारं च अधीयते ।
महाभाष्य १.१-४,४८

जैमिनीय शाखा के पाठभेदों का पूरा विवरण दिया है । कौथुम शाखा में १८७५ मंत्र हैं और जैमिनीय में १६८७ । इससे ज्ञात होता है कि जैमिनीय शाखा में १८८ मंत्र कम हैं ।

जैमिनीय शाखा के उत्तरार्चिक में अनेक मंत्र ऐसे हैं, जो कौथुमीय शाखा में उपलब्ध नहीं हैं । यद्यपि जैमिनीय शाखा में कौथुम से मंत्रों की संख्या कुछ कम है, तथापि सामगान की दृष्टि से जैमिनीय शाखा अधिक समृद्ध है । कौथुमीय गान केवल २७२२ हैं, परन्तु जैमिनीय गानों की संख्या ३६८१ हैं, अर्थात् ९५९ गान अधिक ।

जैमिनीय शाखा इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है कि इसकी संहिता, ब्राह्मण, श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्र सभी उपलब्ध हैं । इसकी एक अवान्तर शाखा तलवकार (तवलकार) है, जिससे संबद्ध प्रसिद्ध केन उपनिषद् है । तलवकार श्री जैमिनि के शिष्य माने जाते हैं ।

७. सामवेद का प्रतिपाद्य विषय

सामवेद मुख्यरूप से उपासना का वेद है । इसमें मुख्यरूप से अग्नि, इन्द्र और सोम देवों से संबद्ध मंत्र हैं । इन देवों की स्तुति, प्रार्थना और उपासना है । इसमें सोमयाग और पवमान सोम से संबद्ध मंत्रों की संख्या अधिक है । सोमशब्द न केवल सोमरस का ही बोधक है, अपितु यह उपासना के लक्ष्य सोम्य गुणों का भी सूचक है । इन सोम्य गुणों की प्राप्ति के लिए सामगान किया जाता है । सोम शब्द परमात्मा के लिए भी है, अतः उपासना के द्वारा परमात्मा की प्राप्ति लक्ष्य है । इसके लिए सामगान है । सामगान भक्तिभावना और श्रद्धा जागृत करने के लिए किया जाता है ।

पूर्वार्चिक में अग्नि, इन्द्र और पवमान सोम से संबद्ध मंत्र संकलित किए गए हैं । इन मंत्रों को सामगान की दृष्टि से लय के साथ स्मरण करना होता है । प्रत्येक मंत्र की लय स्मरण होनी चाहिए । इनका प्रयोग उत्तरार्चिक में होता है । उत्तरार्चिक में द्विक, त्रिक या चतुष्क आदि (अर्थात् २,३ या ४ मंत्रों का समूह) हैं, इनमें इन लयों का प्रयोग होता है । अधिकांश त्रिक, चतुष्क आदि का प्रथम मंत्र (सामयोनिमंत्र) पूर्वार्चिक का होता है, उसी की लय पर वह पूरा सूक्त (त्रिक या चतुष्क आदि) गाया जाता है । यज्ञों के समय उद्गाता इन मंत्रों का गान करता है । इस दृष्टि से यजुर्वेद और सामवेद का घनिष्ठ संबन्ध ज्ञात होता है । गान में प्रयुक्त मंत्र ऋचा हैं, अतः ऋग्वेद आधारभूत है । इस प्रकार सामवेद एक ओर ऋग्वेद से और दूसरी ओर यजुर्वेद (यज्ञक्रिया) से संबद्ध है ।

सामवेद में सोम, सोमरस, सोमपान, सोमयाग का विशेष महत्त्व है, अतः इसे सोम-प्रधान वेद कह सकते हैं । आध्यात्मिक दृष्टि से सोम ब्रह्म, शिवतत्त्व या परमात्मा है । उसकी प्राप्ति का साधन उपासना है । सामवेद संगीत एवं भक्ति के द्वारा परमात्मा प्राप्ति का उत्तम साधन है ।

वर्ण्य-विषय की दृष्टि से सामवेद के विषय में रोचक तथ्य यह है कि सामवेद का प्रारम्भ शान्त रस से होता है । प्रथम मंत्र 'अग्न आ याहि वीतये०' में अग्नि की स्तुति है । सामवेद की समाप्ति वीररस से है । इस सूक्त में २७ मंत्र हैं । इसमें इन्द्र योद्धा के

के रूप में वर्णित है । वह शत्रुसेना से युद्ध करता है और शत्रुओं की सौ सेनाओं पर विजय प्राप्त करता है । वह आग्नेय और तामस अस्त्र जैसे दिव्य अस्त्रों को भी छोड़ता है । अन्त में 'भद्रं कर्णेभिः०' और 'स्वस्ति न इन्द्रो०' से ग्रन्थ की समाप्ति होती है । इसका अभिप्राय यह है कि सामवेद अध्यात्म के लिए भी वीररस, सक्रियता और संघर्ष की शिक्षा देता है । यह महादेव के शिव और शक्तिरूप या शिव और रुद्र रूप के समन्वय की भावना प्रस्तुत करता है ।

८. सामवेदीय संगीत

सामवेदीय संगीत से संबद्ध कुछ आवश्यक बातें यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं :

(१) स्वर : सामवेदीय मंत्रों के ऊपर १,२,३ संख्याएँ दी गई हैं । इनका अर्थ है १ = उदात्त, २ = स्वरित, ३ = अनुदात्त । ऋग्वेद की ऋचाओं में उदात्त पर कोई चिह्न नहीं होता है । सामवेद में उस पर १ संख्या होगी । ऋग्वेद में स्वरित वाले वर्ण के ऊपर खड़ी लकीर होती है, सामवेद में उस पर २ संख्या होगी । इसी प्रकार ऋग्वेद में अनुदात्त पर वर्ण के नीचे पड़ी लकीर होती है, सामवेद में उस पर ३ संख्या होगी । उदात्त के बाद आने वाले अनुदात्त पर स्वरित का चिह्न होता है और स्वरित के बाद वाले अनुदात्त वर्ण या वर्णों पर कोई चिह्न नहीं होता । इसी प्रकार सामवेद में भी चिह्न २ के बाद यदि कोई अनुदात्त वर्ण है तो उस पर कोई अंक नहीं होगा और वह खाली छोड़ा जाएगा । ऐसे रिक्त वर्णों को 'प्रचय' कहते हैं । इनका उच्चारण एकश्रुति (एक स्वर में, न ऊँचा न नीचा) स्वर में किया जाता है । स र ग म के अनुसार १ संख्या म है, २ संख्या ग और ३ संख्या रे है । प्रचय वाले वर्ण पर भी ग की ध्वनि होगी ।

संकेत : उदात्त (उ) , अनुदात्त (अ), स्वरित (स्व), प्रचय (प्र) । षड्ज (स), ऋषभ (रे), गान्धार (ग), मध्यम (म), पंचम (प), धैवत (ध) , निषाद (नि) । उदाहरण के रूप में सामवेद का प्रथम मंत्र (१ पाद) प्रस्तुत किया जा रहा है :

ऋग्वेद के अनुसार :	अ	ग्न	आ	या॑	हि	वी	त	ये॑
	२	३	१	२		३	१	२
सामवेद के अनुसार :	अ	ग्न	आ	यो	हि	वी	त	ये
उदात्त आदि संकेत :	उ	अ	उ	स्व	प्र	अ	उ	स्व
सरगम के संकेत :	म	रे	म	ग	ग	रे	म	ग

(२) ग्राम, तान आदि, नारदीय शिक्षा : नारदीय शिक्षा में नारद ने शिक्षा-संबन्धी कतिपय उपयोगी निर्देश दिए हैं । संक्षेप में विशेष उल्लेखनीय बातें ये हैं :

(क) स्वर : सात हैं । **(ख) ग्राम** - तीन हैं । **(ग) मूर्च्छनाएँ** - २१ हैं । **(घ) तान** - ४९ हैं । सात स्वर ये हैं - षड्ज (स) , ऋषभ (रे), गान्धार (ग), मध्यम (म), पंचम (प), धैवत (ध), निषाद (नि) । ग्राम तीन हैं - मन्द्र (निम्न), मध्य (मध्यम), तीव्र (उच्च) । तीन सप्तक होते हैं , इनमें प्रथम निम्न या मोटी ध्वनि के लिए हैं । द्वितीय मध्यम या साधारण ध्वनि के लिए और तृतीय तीव्र बहुत पतली या तीखी

ध्वनि के लिए हैं । गायक की ध्वनि के अनुसार मन्द मध्य या तीव्र सप्तक का उपयोग किया जाता है । इन तीन सप्तकों को तीन ग्राम कहा गया है । मूर्च्छनाएँ २१ हैं - ७ स्वर x ३ ग्राम = २१ मूर्च्छनाएँ होती हैं । प्रत्येक सप्तक के एक-एक स्वर से निकलने वाली ध्वनि को मूर्च्छना कहते हैं । ये स्वर और ग्रामों के भेद से २१ हो जाती हैं । तान ४९ हैं - ७ स्वर x ७ स्वर = ४९ । सात स्वरों के परस्पर एक -दूसरे के मिश्रण से ४९ तान (विभिन्न ध्वनियाँ) हो जाती हैं ।

सप्त स्वराः, त्रयो ग्रामाः, मूर्छनास्त्वेकविंशतिः।

ताना एकोनपंचाशत् , इत्येतत् स्वरमण्डलम् ।। नारदीय शिक्षा

नारदीय शिक्षा ने ही वर्णन किया है कि वीणा (वेणु) के अनुसार सामवेद के १,२,३ आदि अंक क्रमशः मध्यम, गान्धार आदि के सूचक हैं । सामवेदीय अंक और वीणा के स्वरों को इस प्रकार रख सकते हैं :

सामवेदीय अंक		**वेणु (वीणा) के स्वर**
१.	प्रथम	मध्यम (म)
२.	द्वितीय	गान्धार (ग)
३.	तृतीय	ऋषभ (रे)
४.	चतुर्थ	षड्ज (स)
५.	पंचम	निषाद (नि)
६.	षष्ठ	धैवत (ध)
७.	सप्तम	पंचम (प)

अर्थात् सामवेद का प्रथम स्वर (उदात्त) मध्यम (म)से प्रारम्भ होकर अवरोह की ओर म ग रे स नि ध प के क्रम से रहता है । स्वरनिर्धारण उक्त सारणी के अनुसार करें :

यः सामगानां प्रथमः स वेणोर्मध्यमः स्वरः।

यो द्वितीयः स गान्धारः , तृतीयस्त्वृषभः स्मृतः । इत्यादि, नारदीय शिक्षा

(३) सामविकार : किसी भी ऋचा (मंत्र) को गान का रूप देने के लिए कुछ परिवर्तन किए जाते हैं, इन्हें सामवेद की पारिभाषिक शब्दावली में 'विकार' कहा जाता है । ये ६ प्रकार के हैं । इन विकारों में 'स्तोभ' मुख्य हैं । जैमिनीय बाह्मण का कथन है कि स्तोभ सामगान के अलंकरण हैं । इनसे मंत्र की शोभा बढ़ जाती है ।

स्तोभा ह वा आसाम् अलंकाराः । जैमि०ब्रा०

(क) स्तोभ : ऋचा को गान का रूप देने लिए कुछ अतिरिक्त पद मंत्र के साथ जोड़ दिए जाते हैं । ये पद आलाप के लिए होते हैं । जैसे - औहोवा, हाउ इत्यादि । ये पद सामान्यतया निरर्थक होते हैं । शाखाओं के भेद से स्तोभ के पदों में भी भेद होता है । जैसे, कौथुमीय शाखा वाले 'हाउ' 'राइ' आदि जोड़ते हैं और राणायनीय शाखा वाले- 'हावु-

'रायि' आदि । संगीत के अनुसार यह माना जाता है कि इन स्तोभ अक्षरों में कुछ दैवी शक्ति होती हैं । स्तोभ अक्षरों को दो वर्गों में विभक्त किया गया है । १. अन्वयी, २. अनुषंगी । अन्वयी ऋचा के प्रारम्भ में जुड़ते हैं और अनुषंगी स्तोभ दो शब्दों के मध्य में या मंत्र के अन्त में । जैमिनीय ब्राह्मण (१.१३१-१३२) में स्तोभ अक्षरों को १ से लेकर १७ अक्षरों तक का गिनाया गया है ।

(ख) विकार : मंत्र के शब्दों में गान की दृष्टि से कुछ परिवर्तन किया जाता है । जैसे -'अग्ने' को 'ओग्नायि' बोलना ।

(ग) विश्लेषण : एक पद का पृथक्करण अर्थात् एक पद को दो या अधिक खंडों में विभक्त करना । जैसे - 'वीतये' को 'वोयि तोयाऽयि' कहना ।

(घ) विकर्षण : एक स्वर को लंबा खींचकर देर तक उच्चारण करना । जैसे - 'ये' को 'या २ ३ यि' अर्थात् दीर्घ और प्लुत तक लंबा खींचना । २ दीर्घ, ३ प्लुत ।

(ङ) अभ्यास : किसी पद का दो या अधिक बार उच्चारण करना । जैसे - तो या २ यि, तो या २ यि । दो बार उच्चारण करना ।

(च) विराम : गान की सुविधा के लिए किसी पद के बीच में ही रुक जाना । जैसे - गृणानो हव्यदातये का 'गृणानो ह । व्यदातये' के रूप में उच्चारण करना । पद के मध्य में ह पर ही थोड़ा रुकना ।

(४) पूर्वगान (प्रकृतिगान) और उत्तरगान : पूर्वगान को ही प्रकृतिगान भी कहते हैं । पूर्वगान का अभिप्राय है - सामवेद के पूर्वार्चिक खंड में पठित मंत्र । ये मंत्र विभिन्न गानों के आधार हैं, अतः इन्हें पूर्वगान या प्रकृतिगान कहते हैं । ये पूर्वार्चिक में पढ़े गए हैं , अतः पूर्वगान हैं । इनके दो भेद हैं : ग्रामगेयगान और अरण्यगेयगान । पूर्वार्चिक के आग्नेय , ऐन्द्र और पावमान कांड ग्रामगेयगान हैं । आरण्यकांड अरण्यगेयगान हैं । ग्राम में गाए जाने वाले साममंत्र ग्रामगेयगान में आते हैं और अरण्य या वन में गाए जाने वाले आरण्यकांड के मंत्र अरण्यगेयगान में आते हैं । पूर्वार्चिक में एक मंत्र के आधार पर एक गीति (गान) होती है । पूर्वार्चिक के मंत्रों को 'सामयोनिमंत्र' 'सामयोनि' या केवल 'योनि' कहते हैं । इसका कारण यह है कि पूर्वार्चिक के ये मंत्र आधार (Base) मंत्र हैं । इनके आधार पर या इनकी तर्ज पर उत्तरार्चिक के मंत्रों का गान होता है ।

उत्तरगान का अभिप्राय है - उत्तरार्चिक के मंत्रों पर आश्रित गान । उत्तरार्चिक में २,३ या ४ मंत्रों के एक-एक सूक्त (खंड) हैं । इनकी पहली ऋचा पूर्वार्चिक वाली होती है । उसी के आधार पर या तर्ज पर उत्तरार्चिक के सूक्तों के मंत्रों का गान होता है ।

(५) सामगान के चार भेद : सामयोनि मंत्रों का आश्रय लेकर ऋषियों ने विभिन्न गानों की रचना की है । सामगान चार प्रकार का है :

१. ग्रामगेयगान : इसे 'प्रकृतिगान' और 'वेयगान' भी कहते हैं । यह ग्राम या सार्वजनिक स्थानों पर गाया जाता था ।

२. आरण्यगान या आरण्यक -गेयगान : यह वनों या पवित्र स्थानों पर ही गाया जाता था । अतएव इसको 'आरण्यक' या 'रहस्य' गान भी कहते थे । आरण्यकांड के सामयोनिमंत्रों को 'छन्दसी' कहते थे और उसके गान को 'छान्दस' कहा जाता था ।

३. ऊहगान : ऊह का अर्थ है - विचारपूर्वक विन्यास । पूर्वार्चिक से संबद्ध उत्तरार्चिकों का गान इस विधि से होता था । यह सोमयाग एवं विशेष धार्मिक अवसरों पर गाया जाता था । ऊह की प्रकृति या आधार वेयगान या प्रकृतिगान हैं । पूर्वार्चिक के आग्नेय आदि कांडों के मंत्रों पर ऊहगान निर्भर है । इसका अभिप्राय यह है कि वेयगान में प्रयुक्त स्वर राग आदि का आश्रय लेकर ऊहगानों का निर्माण होता है ।

४. ऊह्यगान या रहस्यगान : ऊह्यगान रहस्य गान है । रहस्यात्मक होने के कारण सर्वसाधारण के सामने इनका गान निषिद्ध माना जाता है । ऊहगान और ऊह्यगान ये दोनों मौलिक न होने के कारण विकृति-गान कहे जाते हैं ।

कौथुमीय और राणायनीय शाखाओं के अनुसार सामगानों की संख्या २७२२ है तथा जैमिनीय शाखा के अनुसार गानों की संख्या ३६८१ है । इसका विवरण इस प्रकार है :

	गान का नाम	कौथुमीय, राणायनीय गान	जैमिनीय गान
१.	ग्रामगेयगान	११९७	१२३२
२.	आरण्य-गेयगान	२९४	२९१
३.	ऊहगान	१०२६	१८०२
४.	ऊह्यगान	२०५	३५६
	योग	**२७२२**	**३६८१**

(६) शस्त्र, स्तोत्र, स्तोम और विष्टुति : ये सामवेद में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द हैं । इनके लक्षण ये हैं :

(क) शस्त्र : शस्त्र का लक्षण है : 'अप्रगीत-मंत्रसाध्या स्तुतिः शस्त्रम्' अर्थात् गान-रहित मंत्रों के द्वारा संपादित स्तुति को शस्त्र कहते हैं । अतएव ऋग्वेद में वर्णित स्तुतिमंत्र 'शस्त्र' कहे जाते हैं ।

(ख) स्तोत्र : 'प्रगीत-मंत्रसाध्या स्तुतिः स्तोत्रम्' गान-युक्त मंत्रों द्वारा संपादित स्तुति को स्तोत्र कहते हैं । सामवेद में गानयुक्त मंत्र हैं, अतः सामवेद के मंत्र स्तोत्र की श्रेणी में आते हैं । इस प्रकार शस्त्र ऋग्वेदीय मंत्र और स्तोत्र सामवेदीय मंत्र हैं । यही दोनों में अन्तर है ।

सायण का कथन है कि सामान्यतया एक स्तोत्र के लिए तीन ऋचाएँ होनी चाहिएँ । सामवेद के उत्तरार्चिक में तीन ऋचाओं वाले सूक्त हैं । स्तोत्र में उत्तरार्चिक वाले ही सूक्त आते हैं ।

ये तु मंत्राः स्तोत्ररूपाः, उत्तरासु तृचेषु ते । सायण, तांड्यभाष्य

इसको ही 'प्रगाथ' भी कहते हैं ।

(क) स्तोम : तृच (तीन ऋचा वाले सूक्त) रूपी स्तोत्रों को जब आवृत्तिपूर्वक गान किया जाता है तो उसे 'स्तोम' कहते हैं ।

आवृत्तियुक्तं तत्साम स्तोम इत्यभिधीयते । सायण, तांड्यब्राह्मण -भाष्य-भूमिका

इस प्रकार स्तोम तृच-स्तोत्रों पर निर्भर हैं । यह स्तुति का ही एक प्रकार है ।

(घ) विष्टुति : विष्टुति का अर्थ है - विशेष प्रकार की स्तुति । विष्टुति स्तोत्ररूपी तृचों के द्वारा संपादित होती है । इसे गान के तीन पर्याय या क्रम (Round) समझना चाहिए । तृच के तीन मंत्रों में पहले, दूसरे या तीसरे मंत्र को कितनी बार दुहराते हैं, इस आधार पर स्तोमों की संख्या निर्धारित की गई है । एक बार तीनों मंत्रों के आवृत्तिसहित पाठ को 'एक आवृत्ति' (One Round) कहेंगे । इस प्रकार तीन आवृत्ति होने पर एक स्तोम पूरा होगा । इस दृष्टि से स्तोमों के ९ भेद किए गए हैं ।

ये भेद हैं : १. त्रिवृत् (३), २. पंचदश (१५), ३. सप्तदश (१७), ४. एकविंश (२१), ५. चतुर्विंश (२४), ६. त्रिणव (२७), ७. त्रयस्त्रिंश (३३), ८. चतुश्चत्वारिंश (४४), ९. अष्टचत्वारिंश (४८) ।

इसका अभिप्राय यह है कि तीन विष्टुतियों (पर्याय, आवृत्ति Round) में एक तृच के मंत्र कुल कितनी बार बोले गए, उसी आधार पर ३ से लेकर ४८ तक की संख्याएँ हैं । त्रिवृत् का अभिप्राय है कि तृच के तीनों मंत्र केवल एक-एक बार बोले गए । एक स्तोम तीन पर्याय (Round) में पूरा होता है, अतः 'पंचदश' स्तोम का अभिप्राय है कि प्रत्येक पर्याय में ५ बार गायन हुआ । एक पर्याय में कौन सा मंत्र कितनी बार बोला जाएगा, इसके नियम निर्धारित हैं । उदाहरण के लिए 'पंचदश स्तोम' को लीजिए ।

विष्टुति/पर्याय	मंत्र १	मंत्र २	मंत्र ३	कुल कितनी बार
१	३ बार	१ बार	१ बार	= ५ बार
२	१	३	१	= ५ बार
३.	१	१	३	= ५ बार
				योग - १५ बार

तीसरे पर्याय (Round) की समाप्ति पर इस तृच के मंत्रों का कुल १५ बार पाठ हुआ, अतः इसे 'पंचदश स्तोम' कहते हैं । इसी प्रकार अन्य स्तोमों के लिए विशिष्ट गणना-पद्धति है ।

याग की दृष्टि से सामगान में 'बहिष्पवमान' आदि ३३ प्रमुख स्तोत्र, ९ स्तोम और २८ विष्टुतियाँ हैं । इनका विशेष वर्णन तांड्य ब्राह्मण के द्वितीय और तृतीय अध्याय में किया गया है ।

(७) सामगान : सामवेद के विभिन्न मंत्रों से लेकर विभिन्न ऋषियों ने अलग-अलग राग पर अलग-अलग तान आदि निकाले हैं । इन गानों के लिए 'पर्क' 'बार्हिष' आदि नामों का प्रयोग किया गया है । एक ही मंत्र अनेक गानों के आधार पर अनेक प्रकार का हो जाता है । उदाहरण के लिए सामवेद के प्रथम मंत्र का एक पाद (१ चरण)

लिया जा रहा है। इस पर गौतम के दो पर्क और कश्यप का एक बार्हिष लेकर यह तीन प्रकार का गान हो जाता है।[१]

२ ३ १ २ ३ १ २
मंत्र - अग्न आ याहि वीतये।

(१) गौतम का पर्क :

ओग्नाई। आयाही ३। वो इ तो या २ इ। तो या २ इ।

(२) कश्यप का बार्हिष :

अग्न आयाही वी। तया इ।

(३) गौतम का पर्क :

अग्न आयाहि। वा ५ इ त या इ।

(८) सामगान की पाँच भक्तियाँ (विभाग) : 'पंचविध सूत्र' में सामगान की पाँच भक्तियों का वर्णन है। ये हैं :

प्रस्तावोद्गीथ - प्रतिहारोपद्रव - निधनानि भक्तयः।

प्रतिहारसूक्त के व्याख्याकार वरदराज का कथन है कि इन ५ में हिंकार और ओंकार को और जोड़ देने से इन भक्तियों की संख्या ७ हो जाती है। हिंकार को प्रस्ताव से पहले जोड़ें और ओंकार को उद्गीथ से पहले।

सप्त वा। हिंकारः प्रस्तावात् पूर्वः। उद्गीथाद् ओंकारः। वरदराज

पाँच भक्तियाँ ये हैं : १. प्रस्ताव, २. उद्गीथ, ३. प्रतिहार, ४. उपद्रव, ५. निधन। हिंकार और ओंकार जोड़ने पर ये ७ भक्तियाँ हो जाती हैं। मंत्र का गान ऋत्विज् मिलकर करते हैं। १. प्रस्तोता, २. उद्गाता, ३. प्रतिहर्ता। तीनों के कर्तव्य पृथक् - पृथक् निर्दिष्ट हैं।

उदाहरण के रूप में सामवेद का प्रथम मंत्र प्रस्तुत है।

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये।
नि होता सत्सि बर्हिषि।

	भक्ति	**गायक**	**मंत्र का अंश**
१.	प्रस्ताव	प्रस्तोता	हुँ ओग्नाइ।
२.	उद्गीथ	उद्गाता	ओम् आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये।
३.	प्रतिहार	प्रतिहर्ता	नि होता सत्सि बर्हर्षि ओम्।
४.	उपद्रव	उद्गाता	नि होता सत्सि ब।
५.	निधन	तीनों मिलकर	र्हिषि ओम्।

---

१. विशेष विवरण के लिए देखें - सामवेद संहिता, सातवलेकर, भूमिका पृ० २ से ४

प्रतिहार वाले अंश के दो भाग होंगे । एक का नाम उपद्रव है, इसे उद्गाता गान करेगा और शेष भाग को निधन (अर्थात् अन्तिम अंश) कहते हैं, इसे प्रस्तोता, उद्गाता और प्रतिहर्ता तीनों मिलकर गाते हैं । मंत्र के प्रारंभ में हुँ लगा देते हैं । यह छठी भक्ति है । उद्गीथ में मंत्र के पहले 'ओम्' लगा देते हैं । यह सातवीं भक्ति है । इस प्रकार ये सामगान के ७ भेद हो जाते हैं ।

पर्व : प्रत्येक भक्ति (या मंत्रांश) के कुछ छोटे-छोटे विभाग किए जाते हैं , इन्हें पर्व कहते हैं । जैसे 'बर्हिषि' को दो भागों में बाँटा गया है - ब र्हिषि । इसमें एक पर्व के बाद थोड़ा सा विराम होता है ।

जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण और छान्दोग्य उपनिषद् में इन सभी भेदों का विस्तृत वर्णन रूपकों के माध्यम से किया गया है । छान्दोग्य में हिंकार और ओंकार को संमिलित करते हुए सात प्रकार के साम का वर्णन है । साथ ही ओम् या उद्गीथ की बहुत अधिक महिमा बताई गई है ।

(९) तीन मूल स्वर : मूल स्वर तीन हैं : उदात्त, अनुदात्त और स्वरित । ये ऋग्वेद के काल से ही प्रचलित हैं । इनमें से उदात्त स्वर उच्च ध्वनि या तीव्र स्वर के लिए था । अनुदात्त निम्न या हलके स्वर के लिए था और स्वरित इन दोनों के मध्यगत स्वर के लिए था । इन तीन मूल स्वरों के आधार पर ही षड्ज आदि लौकिक स्वरों का उद्भव हुआ है । नारदीय शिक्षा और पाणिनीय शिक्षा के अनुसार उदात्त आदि से इन लौकिक स्वरों का विकास हुआ है ।

	मूल स्वर	**लौकिक स्वर**
१.	उदात्त	निषाद (नि), गान्धार (ग)
२.	अनुदात्त	ऋषभ (रे), धैवत (ध)
३.	स्वरित	षड्ज (स), मध्यम (म), पंचम (प)

उदात्ते निषादगान्धारौ-अनुदात्ते ऋषभधैवतौ ।
स्वरितप्रभवा ह्येते, षड्जमध्यम-पंचमाः ।।

नाᵒशिक्षा १.८.८ । पाणिᵒ शिक्षा १२

याज्ञवल्क्य शिक्षा में भी इसी प्रकार का वर्णन है । पहले वर्णन किया जा चुका है कि सामवेदीय स्वरों (अंक १ से ७) का वेणु के मध्यम आदि स्वरों के साथ किस प्रकार सामंजस्य है ।

क्रुष्ट स्वर : सामगान के सात स्वरों में प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र (५) और अतिस्वर (६) के अतिरिक्त क्रुष्ट स्वर का भी उल्लेख मिलता है । क्रुष्ट स्वर किसी स्वर को खींचकर ऊपर स्थापित करने का बोध कराता है । मन्द्र निम्न स्वर है तथा अतिस्वर (या अतिस्वार) अतिनिम्न स्वर का बोधक है ।

(१०) सामवेदीय स्वरों का विकास : नारदीय शिक्षा में स्वरों के विकास का संकेत प्राप्त होता है । नारदीय शिक्षा में उल्लेख है कि तीन प्रकार के स्वर थे - १. आर्चिक, २. गाथिक और ३. सामिक । सर्वप्रथम आर्चिक संगीत का विकास हुआ । यह एक स्वर वाला था । यह ऋचाओं पर आश्रित था । तदनन्तर गाथिक संगीत आया और वह दो स्वरों वाला था । यह गाथाओं पर आश्रित था, अतः गाथिक कहलाता था। इसके पश्चात् सामिक संगीत आया । यह तीन स्वरों वाला था । इसका आधार सामवेदीय मंत्र थे । इस प्रकार साम-स्वरों के विकास के तीन सोपान नारदीय-शिक्षा में प्राप्त होते हैं ।

आर्चिकं गाथिकं चैव, सामिकं च स्वरान्तरम् ।
कृतान्ते स्वरशास्त्राणां, प्रयोक्तव्यं विशेषतः ।।
एकान्तरः स्वरो ह्यृक्षु, गाथासु द्व्यन्तरः स्वरः ।
सामसु त्र्यन्तरं विद्याद्, एतावत् स्वरतोऽन्तरम् ।। नारदीय शिक्षा १.१.२-३

आधुनिक विद्वानों का मत है कि सामिक के पश्चात् 'स्वरान्तर' प्रकार का संगीत आया और इसमें चार स्वर थे । इसे बाद पाँच स्वरों वाला संगीत आया । उसे 'औडव' संगीत कहते थे । इसके बाद ६ स्वरों वाला संगीत आया और उसे 'षाडव' संगीत कहा गया । इस षाडव संगीत के आधार पर सात स्वरों वाले संगीत का विकास हुआ । श्री स्वामी प्रज्ञानानन्द और डा० जयदेव सिंह जी ने साम-स्वरों के विकास के ये दो सोपान बताए हैं ।

स्वामी प्रज्ञानानन्द ने डा० जयदेव सिंह को उद्धृत किया है कि सामवेदीय संगीतज्ञ के विकास के दो सोपान थे । प्रथम सोपान में केवल तीन या चार स्वरों का ही प्रयोग होता था । द्वितीय सोपान में अन्य तीन स्वरों को संमिलित किया गया । इस प्रकार सात स्वरों वाले सामवेदीय संगीत का विकास हुआ ।[1]

तांड्य ब्राह्मण के उल्लेख से ज्ञात होता है कि ब्राह्मणग्रन्थों के काल में संगीतज्ञ मन्द्र, मध्य और तार इन तीन सप्तकों के प्रयोग से परिचित थे । तांड्य ब्राह्मण का कथन है कि प्रारम्भ मन्द्र स्वर से करें । तत्पश्चात् स्वर को ऊँचा करते हुए तारतर (मध्यम) पर ले जावें और उसके बाद तारतम (तार, तीव्र) पर जावें । इस प्रकार क्रमशः नीचे से ऊपर या अवरोह से आरोह की ओर जावें ।

मन्द्रमिवाग्र आददीताथ तारतरम् , अथ तारतमम् । तां० ब्रा० ६.१.७

सामवेदीय संगीत की यह संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की गई है । विशेष विवरण के लिए तांड्य महाब्राह्मण, नारदीय शिक्षा आदि ग्रन्थों का अवलोकन उपयोगी है ।

---

1. देखें, स्वामी प्रज्ञानानन्दकृत ग्रन्थ Historical Development of Indian Music.

(घ) अथर्ववेद संहिता

१. अथर्वन् का अर्थ

निरुक्त और गोपथ ब्राह्मण में अथर्वन् शब्द की दो प्रकार से व्याख्या की गई है : (१) अथर्वन् – गतिहीन या स्थिरता से युक्त योग । निरुक्त के अनुसार 'थर्व्' धातु का अर्थ है गति या चेष्टा, अत: अथर्वन् का अर्थ है – गतिहीन या स्थिर । इसका अभिप्राय है कि जिस वेद में स्थिरता या चित्तवृत्तियों के निरोधरूपी योग का उपदेश है, वह अथर्वन् वेद है ।[१] (२) गोपथ ब्राह्मण में अथर्वन् (अथर्वा) शब्द 'अथार्वाक्' का संक्षिप्त रूप माना गया है । अथ + अर्वाक् = अथर्वा । गोपथ ने इसका अभिप्राय यह दिया है – समीपस्थ आत्मा को अपने अन्दर देखना या वह वेद जिसमें आत्मा को अपने अन्दर देखने की विद्या का उपदेश है ।[२] अथर्ववेद में ऐसे अनेक सूक्त हैं, जिनमें आत्मविद्या (४.२), आत्मा (५.९), ज्येष्ठ ब्रह्म (१०.८), ब्रह्मविद्या (४.१), उच्छिष्ट ब्रह्म (११.७), महद् ब्रह्म (१.३२) और ब्रह्मविद्या का विस्तृत वर्णन है ।

इस प्रकार अथर्ववेद योग-साधना, चित्तवृत्तिनिरोध, ब्रह्म की प्राप्ति आदि विषयों से संबद्ध वेद माना जाता है ।

अथर्ववेद का दार्शनिक और आध्यात्मिक रूप : शतपथ ब्राह्मण का कथन है कि प्राण अथर्वा है ।[३] इसका अभिप्राय है प्राणशक्ति को प्रबुद्ध करना और प्राणायाम के द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति करना । गोपथ ब्राह्मण (१.४) में स्पष्ट किया गया है कि उस आत्मतत्त्व को अपने अन्दर देखना और उसे प्राप्त करना अथर्ववेद का लक्ष्य है । गोपथ ब्राह्मण ने एक अन्य व्याख्या भी की है कि अथर्ववेद चान्द्र वेद है । इसका संबन्ध चन्द्रमा से है । चन्द्रमा की ज्योति और शीतलता प्राप्त करना इसका उद्‌देश्य है । इसका अभिप्राय है कि यदि ऋग्वेद आग्नेय (अग्नि-तत्त्व-प्रधान) वेद है तो अथर्ववेद सोमीय (सोमतत्त्व-प्रधान) वेद है । यदि ऋग्वेद ऊष्मा, प्रगति और स्फूर्ति देता है तो अथर्ववेद शान्ति, सामंजस्य, सद्‌भावना और सोमीय गुणों का आधान करता है, जिससे ब्रह्म की प्राप्ति हो सके । ब्रह्मप्राप्ति की विधि का विस्तृत विवरण अथर्ववेद (कांड १० सूक्त २ मंत्र २६ से ३३) में दिया गया है ।

---

१. अथर्वाणोऽथर्वणवन्तः । थर्वतिश्चरतिकर्मा, तत्प्रतिषेधः । निरुक्त ११.१८

२. अथ अर्वाग् एनं ... अन्विच्छेति, तद् यद् अब्रवीद् अथार्वाङ् एनमेतासु अप्सु- अन्विच्छेति तदथर्वाऽभवत् । गोपथ ब्रा० पू० १.४

३. प्राणोऽथर्वा । शत० ६.४.२.२

४. अथर्वणां चन्द्रमा दैवतं तदेव ज्योतिः । गोपथ पूर्व० १.२९

२. अथर्ववेद का महत्त्व

अथर्ववेद कई दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । मुख्य बातें ये हैं :

(१) यह वैदिक दर्शन का सबसे पुष्ट एवं प्रामाणिक स्रोत है । आरण्यक, उपनिषद् आदि में प्राप्य दार्शनिक चिन्तन एवं विचार अथर्ववेद का ही विकसित रूप है ।

(२) वैदिक सभ्यता और संस्कृति के ज्ञान के लिए अथर्ववेद चारों वेदों में सबसे अधिक उपयोगी है । वेदकालीन सभ्यता और संस्कृति का जितना विशद वर्णन अथर्ववेद में प्राप्य है, उतना अन्य किसी वेद में नहीं है ।

(३) अथर्ववेद सामाजिक और राजनीतिक स्थिति का सबसे सुन्दर चित्रण करता है ।

(४) अथर्ववेद एक प्रकार से विश्वकोष है । इसमें वेदकालीन सभ्यता, संस्कृति, ज्ञान और विज्ञान का पूर्ण संग्रह है ।

(५) अथर्ववेद में उस समय प्रचलित रीति-रिवाज, प्रथाएँ, मान्यताएँ, कतिपय अन्धविश्वास, रूढ़ियाँ, कृत्या-प्रयोग, अभिचार-कर्म, संमोहन, वशीकरण, विविध मणियाँ (ताबीज), जादू-टोना, अरिष्ट-निवृत्ति, पापमोचन, शकुन-विचार तथा विविध जड़ी-बूटियों आदि का विस्तृत उल्लेख है ।

(६) इसमें कई विरोधी गुणों का समन्वय है । यह एक ओर ब्रह्मवेद (ब्राह्मणों का वेद) है तो दूसरी ओर क्षत्रवेद (क्षत्रियों का वेद) ; यह एक ओर दार्शनिक विचार-प्रधान वेद है तो दूसरी ओर यह स्त्रियों और शूद्रों का वेद माना गया है ।[1] एक ओर इसमें अध्यात्म-चर्चा है तो दूसरी ओर जादू-टोने और कृत्या-प्रयोग का इसमें वर्णन है ।

(७) यह सार्वजनीन वेद है । इसे जनता का वेद कह सकते हैं । इसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और स्त्रियों आदि को समान रूप से स्थान दिया गया है ।

(८) 'साहित्य समाज का दर्पण है' इसका सर्वोत्तम उदाहरण अथर्ववेद है ।

(९) अथर्वपरिशिष्ट[2] और स्कन्दपुराण[3] में वर्णन है कि अथर्ववेद के मंत्रों में शक्ति है और इसके मंत्रों के जप से इष्टसिद्धि होती है ।

(१०) अथर्ववेद ही एकमात्र ऐसा वेद है, जो लौकिक और पारलौकिक दोनों दृष्टि से उपादेय है । अतएव सायण ने अथर्वभाष्यभूमिका में कहा है कि यह लौकिक (ऐहिक) और पारलौकिक (आमुष्मिक) दोनों फल देना वाला है ।[4] अन्य तीन वेद केवल पारलौकिक फल देने वाले हैं ।

---

१. सा निष्ठा या विद्या स्त्रीषु शूद्रेषु च ।
आथर्वणस्य वेदस्य शेष इत्युपदिशन्ति ।। आपस्तम्ब धर्मसूत्र २.२९.११-१२

२. न तिथिर्न च नक्षत्रं, न ग्रहो न च चन्द्रमाः।
अथर्वमन्त्रसंप्राप्त्या, सर्वसिद्धिर्भविष्यति ।। अथर्वपरि० २.५

३. यस्तत्राथर्वणान् मन्त्रान् , जपेत् श्रद्धासमन्वितः।
तेषामर्थोद्भवं कृत्स्नं, फलं प्राप्नोति स ध्रुवम् ।। स्कन्द पुराण, कमलालय खंड

४. ऐहिकामुष्मिकफलं चतुर्थं व्याचिकीर्षति । सायण, अथर्वभाष्यभूमिका

(११) जयन्त भट्ट ने न्यायमंजरी में 'अथर्ववेद' को प्रथम स्थान देते हुए कहा है कि चारों वेदों में यही सर्वोत्कृष्ट वेद है । यह सर्वकार्य-साधक है, सार्वलौकिक है और सार्वजनीन है, अतः सर्वप्रथम है ।[१]

(१२) यज्ञ के दो पक्ष हैं - वाचिक और मानस । अन्य तीन वेद वाचिक (मौखिक) पक्ष का संपादन करते हैं । अथर्ववेद मानसिक पक्ष की पूर्ति करता है, तभी यज्ञ पूर्ण होता है । अतएव ब्रह्मा यज्ञ का अधिष्ठाता होता है । वह अथर्ववेदवित् होता है ।[२]

(१३) शान्ति और पौष्टिक दोनों प्रकार के कर्मों का संपादन केवल इसी वेद से होता है ।

(१४) देशभक्ति, देशप्रेम और देश के लिए बलिदान होने की भावना का सर्वप्रथम सुदृढ प्रतिपादन इसी वेद के पृथिवीसूक्त (१२.१) में हुआ है । माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः (१२.१.१२) (पृथिवी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ), ; वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम (१२.१.६२) (हम मातृभूमि के लिए बलिदान हों) आदि ।

(१५) अथर्ववेद के महत्त्व के विषय में प्रो० मैकडानल का कथन है कि 'सभ्यता के इतिवृत्त के अध्ययन के लिए ऋग्वेद की अपेक्षा अथर्ववेद में उपलभ्यमान सामग्री कहीं अधिक रोचक एवं महत्त्वपूर्ण है' ।[३]

३. अथर्ववेद के विविध नाम

अथर्ववेद में विभिन्न ऋषियों के दृष्ट मंत्र हैं तथा अनेक विषयों का प्रतिपादन है, अतः इसके अनेक नाम पड़े हैं । अथर्ववेद तथा अन्य ग्रन्थों में अथर्ववेद के ये नाम प्राप्त होते हैं :

(१) अथर्ववेद : अथर्वन् (अथर्वा) ऋषि के नाम पर इस वेद का नाम अथर्ववेद पड़ा । इसमें अथर्वा ऋषि एवं उनके वंशजों द्वारा दृष्ट मंत्रों की संख्या सबसे अधिक है ।[४] इन मंत्रों की संख्या १७७२ है ।

(२) आंगिरस वेद : गोपथ ब्राह्मण में अंगिरस् (अंगिरा) ऋषि और उनके वंशजों द्वारा दृष्ट होने के कारण इसे 'आंगिरस वेद' कहा है ।[५] इनके दृष्ट मंत्रों की संख्या ४२० है ।

(३) अथर्वाङ्गिरस वेद : अथर्ववेद का प्राचीन नाम 'अथर्वाङ्गिरस वेद' भी है । इसमें अथर्वा और अंगिरा ऋषि के तथा उनके वंशजों के दृष्ट मंत्रों का संकलन है, अतः

---

१. तत्र वेदाश्चत्वारः, प्रथमोऽथर्ववेदः । न्यायमंजरी पृ० २३७-२३८
२. स वा एष त्रिभिर्वेदैर्यज्ञस्यान्यतरः पक्षः संस्क्रियते । मनसैव ब्रह्मा यज्ञस्यान्तरं पक्षं संस्करोति । गोपथ० पू० ३.२
३. मैकडानल, संस्कृत सहित्य का इतिहास (हिन्दी अनुवाद) पृ० १७२
४. स आथर्वणो वेदोऽभवत् । गोपथ० पू० १.५
५. स आंगिरसो वेदोऽभवत् । गोपथ० पू० १.८ । शत० १३.४.३.८

इसे 'अथर्वाङ्गिरस वेद' कहते हैं। अथर्ववेद में भी इसका यह नाम मिलता है।[१] दोनों ऋषियों के समन्वित संकलन को यह नाम दिया गया है।

(४) ब्रह्मदेव : अथर्ववेद का एक प्राचीन नाम 'ब्रह्मवेद' है। अथर्ववेद में इसको 'ब्रह्मवेद' कहा गया है।[२] गोपथ ब्राह्मण में भी इसे ब्रह्मवेद कहा गया है।[३] अथर्ववेद में ब्रह्मा के द्वारा दृष्ट मंत्रों की संख्या ८६३ है।

(५) भृग्वंगिरोवेद : गोपथ ब्राह्मण में अथर्ववेद को 'भृग्वंगिरोवेद' भी कहा गया है।[४] भृग्वंगिराः और उनके वंशजों के द्वारा दृष्ट मंत्रों की संख्या ५४८ है।

(६) क्षत्रवेद : शतपथ ब्राह्मण में अथर्ववेद को 'क्षत्रवेद' कहा गया है।[५] इसका कारण यह है कि इसमें राजाओं एवं क्षत्रियों के कर्तव्यों का विशेष रूप से वर्णन है।

(७) भैषज्य वेद : अथर्ववेद में आयुर्वेद, चिकित्सा एवं ओषधियों आदि का बहुत वर्णन है, अतः इसे 'भैषज्यवेद' कहते हैं। अथर्ववेद में इसे 'भेषजा' (भेषजानि) कहा है।[६]

(८) छन्दोवेद : अथर्ववेद का एक प्राचीन नाम 'छन्दोवेद' या 'छन्दस् है। अथर्ववेद, ऋग्वेद और यजुर्वेद में इसे 'छन्दस् ' नाम दिया गया है।[७] छन्दःप्रधान वेद होने के कारण इसे छन्दस् कहा गया है।

(९) महीवेद : अथर्ववेद में इसे 'मही' कहा गया है।[८] इसमें महती ब्रह्मविद्या का वर्णन है तथा मही (पृथ्वी, पृथ्वी सूक्त) का विशेष गुणगान है।

४. अथर्ववेद की शाखाएँ

महर्षि पतंजलि ने महाभाष्य में 'नवधाऽऽथर्वणो वेदः' (महा० आह्निक १) कहकर अथर्ववेद की ९ शाखाओं का उल्लेख किया है। प्रपंचहृदय, चरणव्यूह और सायण की अथर्ववेद-भाष्य-भूमिका में भी ९ शाखाओं का उल्लेख मिलता है। परन्तु नामों में भेद मिलता है। सायण द्वारा उल्लिखित नाम अधिक उपयुक्त प्रतीत होते हैं। ये नाम हैं : १. पैप्पलाद, २. तौद, ३. मौद, ४. शौनकीय, ५. जाजल, ६. जलद, ७. ब्रह्मवद, ८. देवदर्श, ९. चारणवैद्य।[९] आथर्वण परिशिष्ट और चरणव्यूह में भी ये ही नाम हैं।

---

१. अथर्वाङ्गिरसो मुखम्। अथर्व० १०.७.२०

२. तमृचश्च सामानि च यजूंषि च ब्रह्म चानुव्यचलन्। अथर्व० १५.५.६

३. ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो ब्रह्मवेद इति। गोपथ० १.२.१६

४. ब्रह्मा भृग्वंगिरोवित्। गोपथ० १.३.१

५. उक्थं .. यजुः .. साम .... क्षत्रं वेद। शत० १४.८.१४.२ से ४

६. ऋचः सामानि भेषजा। यजूंषि०। अथर्व० ११.६.१४

७. (क) ऋचः सामानि छन्दांसि ...यजुषा सह। अथर्व० ११.७.२४
(ख) छन्दांसि जज्ञिरे तस्मात्०। ऋग्० १०.९०.९। यजु० ३१.७

८. ऋचः साम यजुर्मही। अथर्व० १०.७.१४

९. सायण, अथर्व० भाष्य भूमिका पृ० २३

केवल तौद के स्थान पर स्तौद नाम है । इनमें से केवल २ शाखाएँ ही संप्रति उपलब्ध हैं - १. शौनकीय, २. पैप्पलाद ।

(१). शौनकीय शाखा : आजकल प्रचलित 'अथर्ववेद संहिता' शौनकीय शाखा ही है । इसमें २० कांड, ७३० सूक्त एवं ५९८७ मंत्र हैं । इसमें सबसे बड़े तीन कांड हैं - कांड २० (९५८ मंत्र), कांड ६ (४५४ मंत्र), कांड १९ (४५३ मंत्र) । सबसे छोटा कांड १७वाँ है । इसमें केवल ३० मंत्र हैं ।[1] अथर्ववेद में भी यजुर्वेद के तुल्य गद्य अंश है और यह पूरे ग्रन्थ का लगभग षष्ठांश (१/६) है । ५० से अधिक सूक्त गद्य में हैं । पूरा १५वाँ और १६वाँ कांड गद्यमय है । अन्य कांडों में प्रायः ३० सूक्त गद्यमय हैं ।

(२) पैप्पलाद शाखा : इस शाखा की संहिता 'पैप्पलाद संहिता' है । काश्मीर में शारदा लिपि में प्राप्त एक पांडुलिपि के आधार पर प्रो० ब्लूमफील्ड ने १९०१ ई० में अंग्रेजी-अनुवाद के साथ इसे प्रकाशित किया था ।[2] बाद में डा० रघुवीर ने भी इसका एक सुन्दर संस्करण प्रकाशित कराया था । यह संहिता अपूर्ण ही प्राप्त है । पतंजलि ने महाभाष्य में अथर्ववेद का प्रथम मंत्र 'शं नो देवीरभिष्टय०' दिया है । शौनकीय में यह मंत्र कांड १ सूक्त ६ का प्रथम मंत्र है । पैप्पलादसंहिता में यह अथर्ववेद का प्रथम मंत्र है । इससे ज्ञात होता है कि पतंजलि के समय में पैप्पलाद संहिता का प्रचलन था ।

५. अथर्ववेद के ५ उपवेद

गोपथ ब्राह्मण में अथर्ववेद के ५ उपवेदों का उल्लेख है ।[3] ये हैं : (१) सर्पवेद । इसमें सर्पों के भेद, सर्पविष-चिकित्सा आदि का वर्णन है । (२) पिशाचवेद । इसमें पिशाचों या राक्षसों की विविध चेष्टाओं आदि का वर्णन है । (३) असुरवेद । अथर्ववेद में असुरों को यातुधान कहा गया है । ये यातु (जादू-टोना) आदि में विश्वास करते थे । इनके विविध क्रियाकलापों का इसमें वर्णन है । (४) इतिहास वेद - इसमें प्राचीन आख्यान, राजवंशों का परिचय आदि वर्णित है । शतपथ ब्राह्मण ने इतिहास-वेद में समुद्र-विज्ञान को भी सम्मिलित किया है । (५) पुराणवेद : इसमें पुराण ग्रन्थ आते हैं । इनमें सृष्टि-उत्पत्ति, देवों और ऋषियों की वंशावली, मन्वन्तरों का वर्णन, सूर्य और चन्द्रवंशी राजाओं का जीवन-चरित आदि का वर्णन है । शतपथ ब्राह्मण ने पुराणवेद में जन्तुविज्ञान (पशु-पक्षी-विज्ञान) का भी समावेश किया है ।

---

१. विस्तृत विवरण के लिए देखें - अथर्ववेद, सातवलेकर, भूमिका पृ० १८ ।

२. विवरण के लिए देखें : भगवद्दत्त, वैदिक वाङ्मय का इतिहास, पृष्ठ २२३

३. पञ्च वेदान् निरमिमीत - सर्पवेदम् , पिशाचवेदम् , असुरवेदम् , इतिहासवेदम् , पुराणवेदम् इति । गोपथ० १.१.१०

शतपथ ब्राह्मण में इन पाँच उपवेदों के ये नाम दिए हैं :[१] १. सर्पविद्यावेद, २. देवजनविद्यावेद (रक्षोवेद या राक्षसवेद), ३. मायावेद (असुरवेद या जादूविद्या आदि का वेद), ४. इतिहास वेद (इतिहास एवं समुद्र-विज्ञान), ५. पुराणवेद (पुराण एवं जन्तुविज्ञान)। मायावेद में ही बाद में शिल्प-विज्ञान (Engineering & Technology) को भी सम्मिलित किया गया है। इन पाँच उपवेदों में से केवल इतिहास-ग्रन्थ और पुराण-ग्रन्थ ही प्राप्य हैं। शेष उपवेद अप्राप्य हैं।

६. अथर्ववेद का संकलन-वैशिष्ट्य

अथर्ववेद के परीक्षण से ज्ञात होता है कि इसके संकलन में कुछ विशेषताएँ हैं। इसमें कहीं पर मंत्रों की संख्या के आधार पर कांडों का विभाजन है और कहीं पर विषय की दृष्टि से। इस प्रकार अथर्ववेद को चार भागों में बाँटा जा सकता है :

(१) कांड १ से ७ तक। इन कांडों के प्रत्येक सूक्त में मंत्रों की संख्या पर ध्यान रखा गया है। जैसे - कांड १ में प्रत्येक सूक्त में प्रायः ४ मंत्र हैं। कांड २ में प्रायः ५ मंत्र, कांड ३ में ६ मंत्र, कांड ४ में ७ मंत्र और कांड ५ में ८ मंत्र। इससे ज्ञात होता है कि कांड १ से ५ तक प्रत्येक कांड में सूक्तों के अन्तर्गत मंत्रों की संख्या बढ़ती गई है। कांड ६ में प्रत्येक सूक्त में प्रायः ३ मंत्र हैं और कांड ७ में १ या २ मंत्र हैं। कांड १ से ६ में यह भी विशेषता है कि प्रत्येक कांड में मंत्र-संख्या का योग बढ़ता गया है। जैसे - कांड १ में १५३, कांड २ में २०७, कांड ३ में २३०, कांड ४ में ३२४, कांड ५ में ३७६ और कांड ६ में ४५४।

(२) कांड ८ से १२। इन कांडों में अधिक मंत्रों वाले सूक्त हैं, परन्तु विषय भिन्न हैं।

(३) कांड १३ से १८। इन कांडों में भी अधिक मंत्रों वाले सूक्त हैं, परन्तु इनका विषय प्रायः एक ही है। जैसे - कांड १३ में अध्यात्म, कांड १४ में विवाह, कांड १८ में पितृमेध।

(४) कांड १९ और २०। ये दोनों कांड प्रक्षिप्त ज्ञात होते हैं। पंचपटलिका और शौनकीय चतुरध्यायिका में अथर्ववेद के केवल १८ कांडों का ही उल्लेख है। कौशिक गृह्यसूत्र और वैतान श्रौतसूत्र में भी केवल १८ कांडों के ही मंत्र 'प्रतीक' के रूप में उद्धृत हैं।

इस विषय में पर्याप्त मतभेद हैं कि अथर्ववेद में मौलिक कांड कितने हैं। कोई मूलकांड १३ मानते हैं, कोई १८ कोई १९ और कोई पूरे २०।[२] अथर्ववेद के कांड २० के प्रायः सभी मंत्र ऋग्वेद के इन्द्र-विषयक सूक्तों से लिए गए हैं।

---

१. सर्पविद्या वेदः, देवजनविद्या वेदः, माया वेदः, इतिहासो वेदः, पुराणं वेदः।
शत० १३.४.३.९ से१३

२. विवरण के लिए देखें : अथर्ववेद, सातवलेकर, भूमिका पृष्ठ ६

प्रो० मैकडानल का अभिमत : प्रो० मैकडानल ने अथर्ववेद के विषय में ये विचार व्यक्त किए हैं ।[1] : १. मूल अथर्ववेद में केवल १३ कांड थे । यह रचनाशैली एवं विषय-विवेचन की दृष्टि से कहा जा सकता है । (२) कांड १३ के बाद विषयों में एकरूपता एवं क्रमबद्धता है, जो १३ कांडों में अप्राप्य है । जैसे - कांड १४ में विवाह-संस्कार, कांड १५ में व्रात्य-वर्णन, कांड १६-१७ में संमोहन मंत्र, कांड १८ में अन्त्येष्टि । कांड १५-१६ ब्राह्मणों के तुल्य गद्य-शैली में हैं । कांड १६ एवं १७ बहुत छोटे हैं । (३) कांड १९ और २० बाद में जोड़े गए हैं । कांड १९ में कुछ अंश परिशिष्ट के तुल्य हैं और कुछ अंशों में पाठ भ्रष्ट हैं । कांड २० के प्रायः सभी सूक्त इन्द्र-स्तुति-परक हैं और ऋग्वेद से संगृहीत हैं । अथर्ववेद की परम्परा के विरुद्ध अन्तिम अध्यायों में सोमयाग वर्णित है । यह अथर्ववेद को चतुर्थ वेद का स्थान दिलाने का प्रयत्न है ।

७. अथर्ववेद का प्रतिपाद्य विषय

प्रो० ब्लूमफील्ड और प्रो० विन्टरनित्स ने अथर्ववेद का पूरा नाम 'अथर्वाङ्गिरस वेद' माना है और इसकी व्याख्या इस प्रकार की है : अवेस्ता का 'अथ्रवन्' शब्द अथर्वन् का प्रतिनिधि है । इसका अर्थ है - पुरोहित । यह अग्नि की पूजा करता था । अथर्ववेद भी अग्निपूजा या यज्ञ में विश्वास रखता है । अवेस्ता का अथ्रवन् पौरोहित्य के साथ जादू का भी काम करता था । आंगिरस प्रागैतिहासिक काल के पुरोहित हैं । दोनों यज्ञ के साथ ही जादू में भी निपुण थे । अथर्वन् और आंगिरसों में भेद यह है कि अथर्वन् के मंत्रों में सुख-शान्ति और अच्छाई वाले जादू हैं । इनमें रोग-निवारण आदि के लिए भी मंत्र हैं । आंगिरस मंत्रों में कृत्या-प्रयोग, अभिचार कर्म और शत्रुनाशन आदि के मंत्र हैं ।[2]

कांडों के अनुसार प्रतिपाद्य विषय : कांडों के अनुसार प्रातिपाद्य विषय संक्षेप में इस प्रकार हैं :

(कांड १) । विविध रोगों की निवृत्ति, पाशमोचन, रक्षोनाशन, शर्म-प्राप्ति आदि । **(कांड २)** रोग-नाशन, शत्रु एवं कृमिनाशन, दीर्घायुष्य-प्राप्ति । **(कांड ३)** शत्रु-सेना-संमोहन, राजा का निर्वाचन, शाला-निर्माण, कृषि एवं पशुपालन । **(कांड ४)** ब्रह्मविद्या, विषनाशन, राज्याभिषेक, वृष्टि, पापमोचन, ब्रह्मौदन का वर्णन । **(कांड ५)** ब्रह्मविद्या, कृत्या-परिहार । **(कांड ६)** दुःस्वप्न-नाशन, अन्नसमृद्धि । **(कांड ७)** आत्मा का वर्णन । **(कांड ८)** प्रतिसर मणि, विराट् ब्रह्म का वर्णन । **(कांड ९)** मधुविद्या, पंचौदन अज, अतिथि-सत्कार, गाय का महत्त्व, यक्ष्म-नाशन । **(कांड १०)** कृत्या-निवारण, ब्रह्मविद्या एवं वरण मणि का वर्णन, सर्पविष-नाशन, ज्येष्ठ ब्रह्म का महत्त्व । **(कांड ११)** ब्रह्मौदन, रुद्र, ब्रह्मचर्य सूक्त । **(कांड १२)** पृथिवी सूक्त, भूमि का महत्त्व । **(कांड १३)** अध्यात्म-वर्णन । **(कांड १४)** विवाह-संस्कार ।

---

१. मैकडानल, संस्कृत साहित्य का इतिहास (हिन्दी अनु०) पृष्ठ १७३-१७४

2. Winternitz - History of Indian Literature. PP. 119-120

(कांड १५) व्रात्य-ब्रह्म का वर्णन । (कांड १६) दुःखमोचन । (कांड १७) अभ्युदय के लिए प्रार्थना, संमोहन । (कांड १८) पितृमेध । (कांड १९) यज्ञ , नक्षत्रों के नाम, विविध, मणियाँ, छन्दों के नाम, राष्ट्र का वर्णन, हिरण्यधारण, सुरक्षा, रात्रि, काम और काल का महत्त्व, दीर्घायुष्य । (कांड २०) सोमयाग-वर्णन, इन्द्र-स्तुति । कुन्तापसूक्त (सूक्त १२७ से १३६) में राजा परीक्षित् के राज्यशासन आदि का वर्णन है ।

८. वेदत्रयी और वेदचतुष्टयी

पाश्चात्त्य विद्वानों ने विशेष बलपूर्वक पर मत व्यक्त किया है कि प्रारम्भ में तीन ही वेद थे । अथर्ववेद बाद की रचना है तथा बाद में इसे चार वेदों में संमिलित किया गया है । उन्होंने जो तर्क उपस्थित किए हैं, उनका विशेष आधार है, ऋग्वेद आदि में अथर्ववेद का उल्लेख न होना । परन्तु ऋग्वेद आदि की आन्तरिक परीक्षा से ज्ञात होता है कि ये तर्क अपुष्ट हैं । संक्षेप में इसके कारण निम्नलिखित हैं :

(१) पूर्वमीमांसा का विवेचन : पूर्वमीमांसा ने स्पष्ट उल्लेख किया है कि त्रयी नाम ग्रन्थों पर निर्भर न होकर विषयों पर निर्भर है । पद्य-बन्ध या पद्यात्मक रचना को ऋक् कहते हैं , गीति को साम कहते हैं और गद्यात्मक रचना को यजुः।[१] अतः अथर्ववेद का इन तीन विधाओं में समावेश होने के कारण पृथक् उल्लेख नहीं है ।

(२) ऋग्वेद में अथर्वा (अथर्वन्) का उल्लेख : ऋग्वेद में अथर्वा का १५ बार उल्लेख है ।[२] उसमें अथर्वा, अथर्वाणः, अथर्वभ्यः आदि शब्दों का प्रयोग है । इससे ज्ञात होता है कि ऋग्वेद में केवल अथर्वा ऋषि ही नहीं, अपितु उनके वंशजों का भी 'अथर्वाण;' आदि शब्दों से उल्लेख है ।[३] इतना ही नहीं, ऋग्वेद में उसे यज्ञविद्या का प्रवर्तक, अग्नि का प्रथम आविष्कारक तथा जलीय विद्युत् (Hydel) का आविष्कारक बताया गया है ।[४]

(३) ऋग्वेद में अथर्ववेद के ऋषि : ऋग्वेद में अथर्ववेदीय ऋषि भृगु और अंगिरा के परिवार के क्रमशः १२ और ४५ अर्थात् ५७ ऋषि मंत्रद्रष्टा हैं । इनके मंत्रों की संख्या सहस्रों में है । इससे ज्ञात होता है कि ऋग्वेद ही अथर्ववेदीय ऋषियों का ऋणी है ।[५]

---

१. तेषामृग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था । गीतिषु सामाख्या । शेषे यजुःशब्दः । पूर्वमी० २.१.३५-३७
२. अथर्वा (ऋग्० १.८०.१६), अथर्वणा (ऋग्० १०.२१.५), अथर्वणि (ऋग्० ८.९.७) आदि।
३. अथर्वाणः (ऋग्० ९.११.२ ; १०.१४.६), अथर्वभ्यः (ऋग्० ६.४७.२४)
४. (क) यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते । ऋग्०१.८३.५
   (ख) अथर्ववदग्निं मन्थन्ति वेधसः । ऋग्० ६.१५.१७
   (ग) त्वामग्ने पुष्करादधि-अथर्वा निरमन्थत । ऋग्० ६.१६.१३
५. विस्तृत विवरण के लिए देखें - लेखककृत- अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन, अध्याय १, पृ० ९ और १०

(४) यज्ञ में ब्रह्मा का महत्त्व : ऋग्वेद में चार ऋत्विजों में ब्रह्मा को ब्रह्मविद्या के उपदेशार्थ प्रतिष्ठित किया गया है ।[१] चारों वेदों में कहीं भी ऐसा उल्लेख नहीं है कि ब्रह्मा के बिना यज्ञ संभव हो । यज्ञ ही ऋग्वेद का आधार है । ब्रह्मा के लिए अनिवार्य है कि वह अथर्ववेदवित् हो । इस प्रकार यज्ञ और ब्रह्मा परस्पर अनुस्यूत हैं । जहाँ ब्रह्मा है, वहाँ अथर्ववेद भी है ।

(५) ऋग् और यजुः में अथर्ववेद का उल्लेख : ऋग्वेद और यजुर्वेद में चारों वेदों का उल्लेख करते हुए अथर्ववेद के लिए 'छन्दांसि' शब्द आया है ।[२]

(६) ब्राह्मण और उपनिषद् ग्रन्थों में अथर्ववेद का उल्लेख : गोपथ ब्राह्मण, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, मुण्डक, मुक्तिक आदि उपनिषदों में स्पष्ट रूप से चार वेदों का उल्लेख है ।[३]

(७) अथर्ववेद का नामोल्लेख न होने का कारण : यज्ञ का ऋग्, यजुः और साम इन तीन वेदों से साक्षात् संबन्ध है । इन तीन वेदों के पाठ, गान और कर्मकांड के लिए होता, उद्गाता और अध्वर्यु इन तीन ऋत्विजों की नियुक्ति होती है । अथर्ववेद का मुख्य विषय यज्ञ नहीं है , अतः उसके मंत्रों का पाठ यज्ञों में नहीं होता है । अतएव तीन वेदों के साथ उसका सर्वत्र उल्लेख नहीं होता है । यज्ञ का स्वारस्य अध्यात्म है । वह अथर्ववेद का विषय है । उसका विशेषज्ञ ब्रह्मा होता है । वही अध्यात्म की व्याख्या करता है । अतएव ब्रह्मा ही यज्ञ का अधिष्ठाता और निर्देशक होता है ।

९. अथर्वा (अर्थवन्) महान् वैज्ञानिक एवं दार्शनिक

वैदिक वाङ्मय में अथर्वा का बहुत महत्त्व है । ऋग्, यजुः और साम तीनों वेद उसका गुणगान करते हैं । इसके प्रमुख कारण ये हैं :

(१) अथर्वा ने सर्वप्रथम अग्नि का आविष्कार किया । मंत्रों से ज्ञात होता है कि अथर्वा ने अरणि-मन्थन से अग्नि का और जल-मन्थन से जलीय विद्युत् (Hydel) का आविष्कार किया था ।[४]

(२) अथर्वा ने उत्खनन के द्वारा पुरीष्य अग्नि (प्राकृतिक गैस अर्थात् Oil and Natural Gas) का आविष्कार किया था ।[५]

---

१. ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्याम्० । ऋग्० १०.७१.११

२. ऋचः सामानि जज्ञिरे । छन्दांसि जज्ञिरे.. यजुः अजायत । ऋग्० १०.९०.९ । यजु० ३१.७

३. विस्तृत विवरण एवं सन्दर्भों हेतु देखें - लेखककृत अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ २१ से २४

४. (क) अग्निर्जातो अथर्वणा । ऋग्० १०.२१.५
अथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्ने । यजु० ११.३२
(ख) त्वामग्ने पुष्करादधि-अथर्वा निरमन्थत । ऋग्० ६.१६.१३ । यजु० ११.३२

५. (क) पुरीष्योऽसि विश्वभरा अथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थग्ने । यजु० ११.३२
(ख) पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यम् अंगिरस्वत् खनामः। यजु० ११.२८
(ग) पुरीष्यासो अग्नयः । ऋग्० ३.२२.४

(३) अथर्वा ने सर्वप्रथम यज्ञ कार्य में अग्नि का प्रयोग किया था ।[१]

(४) वह वैदिक कर्मकांड, यज्ञिय विधि एवं वैदिक तत्त्वमीमांसा का प्रचारक और निदेशक रहा । अध्यात्म-चिन्तन और अध्यात्म-वर्णन उसकी मुख्यता थी ।

(५) अथर्वा का दृष्टिकोण संकीर्ण न होकर व्यापक था । वह कर्मकांड तक ही सीमित न था । उसने आध्यात्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, दार्शनिक, शास्त्रीय और आयुर्वेदिक आदि सभी विषयों का अपनी सूक्ष्म दृष्टि से चिन्तन और विवेचन किया है ।

१०. अथर्ववेद संक्षिप्त वैदिक विश्वकोश

अथर्ववेद में वर्णित विषयों पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि यह वेद गागर में सागर है । वैदिक काल का ऐसा कोई विषय इसमें नहीं छूटा है, जिसका तत्कालीन किसी वेद आदि में उल्लेख हो । यद्यपि कुछ विषयों पर बहुत विस्तृत विवेचन नहीं है, तथापि उनका सूत्ररूप में वर्णन है, अतः अथर्ववेद को संक्षिप्त वैदिक विश्वकोश की संज्ञा दी जा सकती है । अथर्ववेद में वर्णित दार्शनिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक विषय तथा शिक्षा, विज्ञान, आयुर्वेद आदि के कतिपय सन्दर्भ संकेत रूप में यहाँ दिए जा रहे हैं । कोष्ठ में अथर्ववेद के कांड और सूक्तों की संख्या दी गई है । विशेष विवरण के लिए उन सन्दर्भों का अवलोकन करें ।[२]

(१) दार्शनिक वर्णन : विराट् ब्रह्म (अथर्व० ८.९ । ८.१० । ९.१०। १९.६), ब्रह्म (४.१४ । ५.२ । १९.४२), वाक्तत्त्व (२.१ । ४.१), ब्रह्म और माया (१०.८), माया और मायी (८.९), उच्छिष्ट ब्रह्म (१०.९०), ईश्वर (४.२ । ४.१४ । ७.१४ । ७.२२), सूत्रात्मा (१०.८), एकेश्वरवाद (१३.४), स्कम्भ ब्रह्म (१०.७), रोहित ब्रह्म (१३.१), यज्ञ (८.९ । १०.७), त्रैतवाद (९.९),जीवात्मा (९.१०। १०.८), प्रकृति (९.१०। १०.८), व्रात्य ब्रह्म (कांड १५), पुनर्जन्म (९.१०। १०.८), स्वर्ग (१९.१५), नरक (१२.४), मधुकशा या मधुविद्या (१.३४ । ९.१), मनोविज्ञान (१.१ । ६.४१.१ । ७.५ । १९.९), स्वप्नविज्ञान (६.४६ । १९.५७) ।

(२) राजनीतिक वर्णन :[३] – राष्ट्र (१२.१ । १३.१), राष्ट्र में समानाधिकार (१२.१.१५), राष्ट्रीय एकता (३.८.३), देशरक्षा (१२.१.७), राजा के कर्तव्य (४.८.२ । ६.८७.२), मित्रराष्ट्र (६.८८.३), जनराज्य (२०.२१.९), ग्राम-पंचायत (४.७.५), सैनिक-शासन के दोष (६.९९.२), राजा परीक्षित् की शासन – व्यवस्था (२०.१२७.

---

१. यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते । ऋग्० १.८३.५

२. विस्तृत विवेचन एवं वर्णन के लिए देखें - लेखककृत - 'अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन' ग्रन्थ । १९८८, विश्वभारती अनुसंधान परिषद् ज्ञानपुर (भदोही)

३. देखें लेखककृत - 'वेदों में राजनीतिशास्त्र' ग्रन्थ, १९९७, प्रकाशक पूर्ववत् ।

१ से १४), राजा का निर्वाचन प्रजा के द्वारा (३.४.१ से ७ । ६.८७.१ से ३), राजा का निर्वाचन सर्वसंमति से (२०.५४.१), राजा का निर्वाचन समिति के द्वारा (५.१९.२४), राजा को गद्दी से हटाना (३.८.२), राजा और राजकृत् (३.५.६ और ७) राज्याभिषेक (१.९.१ और ३०) (४ .८), सभा और समिति (७.१२.१ से ४), संसद् का स्वरूप (७.१२.३), संसद् के सात विभाग (२०.११०.२), राजकीय आय के साधन (१.१५.३ । ३.४.७), न्याय और दण्ड-विधान (१९.४९.९ और १०), सेना और सेनापति (१.२७.१), शस्त्रास्त्र, आग्नेय अस्त्र (६.६७.२), बारूद (८.८.२), सीसे की गोलियाँ (१.१६.२ से ४)

(३) सामाजिक वर्णन : पंचजन (३.२१.५), जाति-बहिष्कार (२०.११६.१), ब्रह्मचारी के कर्तव्य आदि (५.१७ । ११.५), स्त्री के अधिकार (२०.१२६.९ और १०), दहेज (२.३६.७ । ५.१७.३), सूती, रेशमी और ऊनी वस्त्र (१४.१.२७ । १४.२.५०। १८.३.४९ । १८.४.३१) स्वर्ण के आभूषण (५.१७.१४ । २०.१३०.९), शाला-निर्माण (३.१२), संगीत और नृत्य (६.१२६.२ और ३ । ११.८.२४ । १२.१.४१ । २०.१३२.८), अभिनय (१२.१.४१) ।

(४) आर्थिक वर्णन : कृषि (३.१७.१से ९), खाद डालना (३.१४.३), ६ या ८ बैलों वाले बड़े हल (६.९१.१ । ८.९.१६), व्यापार और वाणिज्य (३.१५), समुद्री व्यापार (१७.१.२६), मणि, रत्न, सुवर्ण आदि धातुएँ (अ० ४.१० । ५.१.१७ । ५.२८.१ । १९.२६.२), मुद्राएँ (५.१४.३ । २०.१२७.३) ।

(५) आयुर्वेद : शरीर के अंग (२.३३.१ से ७ । २०.९६.१७ से २३), रोगों के नाम (९.८), जल-चिकित्सा (४.४.५), ज्वर, यक्ष्मा, खांसी, कुष्ठ, हृदयरोग, क्षेत्रिय रोगों की चिकित्सा (१.१२ । १.२२.१.२३ । १.२५ । ६.९६ । ६.१०५ आदि), सूर्य-किरण-चिकित्सा (९.८.२२), मृत्-चिकित्सा (२.३.४), हस्तस्पर्शचिकित्सा (४:१३.६ और ७) ।

(६) शिक्षा एवं विज्ञान : शिक्षा (७.६१), शिक्षा विधि (१.१), शिक्षक (२०.२१), ज्योतिष (१३.२ । १३.३), नक्षत्र (१९.७ । १९.८), रसायन-विज्ञान (२.२९.१), वनस्पति-विज्ञान (१०.८.३१), आकाश मार्ग से यात्रा (३.१५.२), सूर्य की किरणों से ऊर्जा (३.३१.७ । ४.३८.५), सौर ऊर्जा (८.१०(५) ३-४), वातानुकूलित भवन (६.१०६.३), समुद्री पोत (१७.१.२५से२६), सैकड़ों सूर्यों की सत्ता (२०.८१.१), पृथ्वी द्वारा सूर्य की प्रदक्षिणा (२०.४८.४), २१ प्रकार के मरुत् (गैस) (१३.१.३) ।

---

१. देखें, लेखक - कृत - वेदों में आयुर्वेद, १९९३, प्रकाशक पूर्ववत् ।

२. विज्ञान-विषयक सन्दर्भों के लिए देखें, लेखक - कृत - 'वेदों में विज्ञान' २०००, प्रकाशक पूर्ववत्

(७) अभिचार कर्म : इन्द्रजाल (८.८.१ से २४), कृत्या-प्रयोग या जादू-टोना (४.१७.४ । ४.१८.३ । २.७.५), झाड़-फूँक (३.९.५), विविध मणियों से रोगनाशन (कांड १९), कृत्या-प्रयोग के चार भेद (८.५.९), पति-वशीकरण (७.३८), अभिचार यज्ञ (३.१९.२), कृत्या-परिहार (४.१८ । ४.१९), वशीकरण (२.३० । ३.२५) स्वापन या संमोहन (४.५), वाजीकरण (४.४ । ६.१०१), नारी-सुखप्रसूति (१.११), बंन्ध्यात्व-नाशन और पुत्र-प्राप्ति (३.२३) ।

१०. अथर्ववेद का रचनाकाल

ऋग्वेद के रचनाकाल के तुल्य अथर्ववेद के रचनाकाल का प्रश्न भी जटिल है । इस विषय में मतैक्य नहीं है । इस विषय में दो विचारधाराएँ हैं - (१) भारतीय परंपरागत विचारधारा, (२) पाश्चात्त्य विद्वानों की विचार धारा ।

(१) भारतीय विचारधारा : इस पक्ष के समर्थकों का कथन है कि वेद अपौरुषेय और अनादि हैं । मानवजाति के विकास के साथ ही इनका प्रादुर्भाव हुआ । परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा (अंगिरस्) ऋषियों को क्रमशः ऋग्, यजुः, साम और अथर्व वेदों का ज्ञान दिया। उसी परम्परा से वेद आज तक अक्षुण्ण चले आ रहे हैं । अतएव इन वेदों का कोई समय निर्धारित नहीं किया जा सकता है । ये सृष्टि के प्रारम्भ से इसी रूप में हैं । भारतीय परंपरावादी आचार्य इसी मत के समर्थक हैं ।

(२) पाश्चात्त्य विचारधारा : पाश्चात्त्य तथा कतिपय भारतीय विद्वान् पूर्वोक्त विचारधारा से सहमत नहीं है । वे वेदों का समय ऐतिहासिक, सामाजिक एवं भाषावैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर निर्धारित करते हैं । उनके मतानुसार ऋग्वेद मानवजाति का प्राचीनतम धर्मग्रन्थ है । अन्य वेद उसके बाद बने हैं । ऐतिहासिक, भौगोलिक एवं भाषावैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर वे अथर्ववेद को ऋग्वेद के बाद की रचना मानते हैं ।

अथर्ववेद के समय-निर्धारण में कुछ कठिनाइयाँ : अथर्ववेद के समय-निर्धारण में कुछ कठिनाइयाँ हैं । अथर्ववेद के मौलिक अंश में ऐतिहासिक तथ्यों का अभाव है । अथर्ववेद में जो ऐतिहासिक तत्त्व मिलता है, वह है कुन्तापसूक्तों में राजा परिक्षित् (परीक्षित्) का नाम और उसके प्रशासन की प्रशंसा ।[१] इन सूक्तों को 'खिल सूक्त' कहा जाता है । इसका अभिप्राय यह है कि ये सूक्त परिशिष्ट में हैं । ये बाद में मूल ग्रन्थ में जोड़े गए हैं । अतः इनके आधार पर समय-निर्धारण नहीं किया जा सकता है ।

राजा परीक्षित् का उल्लेख : अथर्ववेद के कुन्ताप सूक्त में राजा परीक्षित् का तीन बार उल्लेख है ।[२] इसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि राजा परीक्षित् विश्वजनीन अर्थात्

---

१. अथर्ववेद २०.१२७ से १३६ ।

२. राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः । अ० २०.१२७.७ से १०

सर्वजनहितकारी राजा था । उसके राज्य में प्रजा अत्यन्त सुखी थी । कुन्ताप सूक्तों में दो ऐतिहासिक नाम मिलते हैं - प्रतीप और प्रातिसुत्वन ।[१] प्रो० रैप्सन ने मत प्रकट किया है कि प्रातिसुत्वन परीक्षित् का पौत्र था और प्रतीप प्रपौत्र ।[२] परीक्षित् अर्जुन का पौत्र था और अभिमन्यु का पुत्र । इस प्रकार अर्जुन से पाँच पीढ़ी का परिचय मिलता है । अर्जुन > अभिमन्यु > परीक्षित् > पौत्र प्रातिसुत्वन > प्रतीप ।

महाभारत के अनुसार युधिष्ठिर ने वनवास जाते समय परीक्षित् को गद्दी पर बैठाया था । पार्जिटर , रैप्सन और मजूमदार आदि ने महाभारत-युद्ध का समय १००० ई० पूर्व के लगभग माना है ।[३] रैप्सन ने उल्लेख किया है कि महाभारत-युद्ध के ३६ वर्ष बाद परीक्षित् हस्तिनापुर की गद्दी पर बैठा था ।[४] प्रो० लुई रेनु ने पुराणों के आधार पर महाभारत -युद्ध का समय १५०० ई० पूर्व माना है और परीक्षित् का समय १४०० ई० पूर्व । इसी आधार पर उन्होंने अथर्ववेद का समय १४०० ई० पूर्व माना है ।[५]

कल्पसूत्रों का उल्लेख : अथर्ववेद में ६ बार कल्पों अर्थात् कल्पसूत्रों का उल्लेख है ।[६] इनमें सभ्य और असभ्य के लक्षण आदि दिए हैं । इससे ज्ञात होता है कि मंत्रों में कल्प शब्द से कल्पसूत्रों (धर्मसूत्रों) का ग्रहण अभिप्रेत है ।

कुन्तापसूक्तों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि अथर्ववेद का संपादन परीक्षित् के समय में हुआ है । अतएव परीक्षित् का नाम बड़े आदर के साथ लिया गया है । परीक्षित् का समय १४०० ई०पूर्व मानने पर अथर्ववेद का समय १४०० ई० पूर्व मानना उचित है ।

ऋग्वेद और अथर्ववेद की तुलना : दोनों वेदों के तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि अथर्ववेद ऋग्वेद के बाद की रचना है ।

१. भूगोल : ऋग्वेद काल में आर्य बंगाल से परिचित नहीं थे, किन्तु अथर्ववेद-काल में वे बंगाल से परिचित थे । व्याघ्र बंगाल में होता है, उसका उल्लेख ऋग्वेद में नहीं है , किन्तु अथर्ववेद में उसका उल्लेख १९ बार है ।[७] ऋग्वेद में यव (जौ) का उल्लेख है, परन्तु व्रीहि (चावल) का उल्लेख नहीं है । अथर्ववेद में व्रीहि का उल्लेख ९ बार है ।[८] चावल पूर्व में होता है, अतः ऋग्वेद में उसका उल्लेख नहीं है ।

---

१. प्रतीपं प्रातिसुत्वनम् । अ० २०.१२९.२
2. The Cambridge History of India, Vol. I, P. 107
3. Pargiter, Dynasties of the Kali Age, PP. 11,67
The Cambridge History of India, Vol. I P. 273
Ancient India, R.C. Majumdar, P. 74
4. The Cambridge History of India, Vol. I, P 273
5. The Civilization of Ancient India, Louis Renou, P. 174
६. अथर्व० २०.१२८.६ से ११
७. अथर्व० ४.३.१ ।४.८.४ । ४.३६.६ आदि ।
८. अथर्व० ८.७.२० । ९.१.२२ । ११.४.१३ आदि

२. समाज : ऋग्वेद में केवल एक मंत्र में चारों वर्णो का उल्लेख है ।[१] परन्तु अथर्ववेद में चातुर्वर्ण्य प्रथा बद्धमूल हो चुकी थी । अथर्ववेद में १०३ मंत्रों में ब्रह्मगवी अर्थात् ब्राह्मण की गाय या ब्राह्मण के धन के हरण करने से होने वाले अनर्थों का विस्तार से वर्णन है ।[२] अथर्ववेद में वर्णन है कि वशा गाय ब्राह्मण को ही दान में देनी चाहिए, अन्य को नहीं ।[३]

३. दर्शन : ऋग्वेद के अधिकांश देवता प्राकृतिक तत्त्व हैं । उनके गुण-धर्म सर्वथा पृथक् हैं । अथर्ववेद में अग्नि, इन्द्र आदि अपने मूल गुणों को छोड़कर प्राय: एक ही कार्य करते हैं , वह है - राक्षसों का नाश । इसी प्रकार ब्रह्म, जीव, प्रकृति, सृष्टि-उत्पत्ति आदि दार्शनिक और आध्यात्मिक विषयों पर ऋग्वेद की अपेक्षा अथर्ववेद में गूढ विवेचन है । यह परकालीनता का द्योतक है ।

४. शासन-प्रणाली : ऋग्वेद की अपेक्षा अथर्ववेद की शासन-प्रणाली अधिक विकसित है । इसमें राज्यशासन, सभा-समिति, राजा का निर्वाचन आदि विषयों पर अधिक मनन और चिन्तन है ।

५. ऋग्वेद और अथर्ववेद की भाषा : प्रो० बी०के० घोष ने ऋग्वेद और अथर्ववेद की भाषा की तुलना करके सिद्ध किया है कि ऋग्वेद से अथर्ववेद की भाषा अधिक विकसित है ।[४] इसमें ऋग्वेद में प्राप्त होने वाली प्राचीनता न्यून हो गयी है । जैसे - (क) ऋग्वेद में दो स्वरों के बीच में आने वाले ड को ल और ढ को ल्ह हो जाता है । अथर्ववेद में यह ड और ढ ही रहता है ।

(ख) ऋग्वेद में ग्रह् और ग्रभ् दोनों का प्रचलन है । जैसे - गृह्णामि और गृभ्णामि । अथर्ववेद में गृह्णामि ही रह गया है ।

(ग) ऋग्वेद में तृतीया बहुवचन में ऐ: और एभि: दोनों प्रचलित हैं । जैसे - देवै:, देवेभि: । अथर्ववेद में देवै: जैसे प्रयोग ही रह गये हैं ।

(घ) ऋग्वेद में त्वा, त्वाय, त्वी सभी प्रचलित हैं । अथर्ववेद में त्वा-वाले प्रयोग ही रह गये हैं ।

(ङ) लुट् वाले प्रयोग 'अन्वागन्ता' आदि अथर्ववेद से ही प्रारम्भ होते हैं ।[५]

(च) लिट् में 'आम्' वाले प्रयोग 'गमयांचकार' आदि अथर्ववेद से ही प्रारम्भ होते हैं ।[६]

इस प्रकार भाषाशास्त्र की दृष्टि से अथर्ववेद की भाषा ऋग्वेद से अधिक विकसित और परवर्ती है । पुराणों और प्रो० लुई के मत को मान्य समझते हुए पाश्चात्य विद्वानों के मतानुसार अथर्ववेद का अपरकाल १४०० ई० पू० माना जाता है ।[७]

१. ऋग्० १०.९०.१२
२. अथर्व० ५.१८ । ५.१९ । १२.५
३. अथर्व० १०.१० । १२.४
4. The Vedic Age. Vol. I, PP. 335-340,406,407
५. अथर्व० ६.१२३.१ ६. अथर्व० १८.२.२७
७. इस विषय के विस्तृत विचवेन के लिए देखें - लेखककृत अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ ४८४ - ४८५

११. अथर्ववेद के कुछ महत्त्वपूर्ण सूक्त

अथर्ववेद में महत्त्वपूर्ण सूक्तों की संख्या बहुत अधिक है। यहाँ पर केवल कुछ विशिष्ट सूक्तों का ही परिचय दिया जा रहा है।

१. पृथिवी सूक्त : अथर्ववेद का पृथिवीसूक्त या भूमिसूक्त (अ० १२.१) अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सूक्त है। विश्व के किसी भी धर्मग्रन्थ में मातृभूमि का इतना सशक्त वर्णन प्राप्य नहीं है। इस सूक्त के ६३ मंत्रों में पृथिवी को माता के रूप में प्रस्तुत किया गया है। पृथिवी को रत्नों की खान, पालक, रक्षक और समग्र ऐश्वर्य प्रदान करने वाली कहा गया है। देशवासियों के लिए निर्देश है कि वे देशरक्षार्थ बलिदान होने को उद्यत रहें । पृथिवी भाषाभेद, धर्मभेद, विचारभेद होने पर भी मानवमात्र को एक परिवार के तुल्य पालती है। । पृथिवी के आधारभूत तत्त्व हैं - सत्य, ऋत, दीक्षा (अनुशासन), तप (तपोमय जीवन), ब्रह्म (आस्तिकता एवं ज्ञानोन्नति) एवं यज्ञ (आत्मसमर्पण एवं स्वार्थत्याग)।

(क) माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः । अ० १२.१.१२

(ख) वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम । अ० १२.१.६२

(ग) जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं
नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम् । अ० १२.१.४५

(घ) सत्यं बृहद् ऋतमुग्रं दीक्षा तपो
ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति ।। अ० १२.१.१

२. ब्रह्मचर्य सूक्त : अथर्ववेद (११.५) में इस सूक्त के २६ मंत्रों में ब्रह्मचर्य (संयम), ब्रह्मचारी के गुण-धर्म, गुरु-शिष्य के उदात्त संबन्ध और अनुशासन के महत्त्व पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। ब्रह्मचारी को राष्ट्र की ज्योति और देश का रक्षक बताया गया है। आचार्य, राजा, युवकवर्ग और कन्याओं को ब्रह्मचर्य का पालन करना अनिवार्य बताया गया है। ब्रह्मचर्य से देवों ने मृत्यु पर विजय प्राप्त की। राजा ब्रह्मचर्य का पालन करने पर ही राष्ट्र की रक्षा कर सकता है। संयमी आचार्य ही विद्यार्थी को संयमी बना सकता है। पशु-पक्षी भी ब्रह्मचर्य का नियम पालन करते हैं।

(क) ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत । अ० ११.५.१९

(ख) आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते । अ० ११.५.१७

(ग) ब्रह्मचारी ...... श्रमेण लोकान् तपसा पिपर्ति । अ० ११.५.४

(घ) पशव आरण्याः ... पक्षिणश्च ये ते जाता ब्रह्मचारिणः ।
अ० ११.५.२१

३. काल-सूक्त : अथर्ववेद में दो सूक्तों (११.५३ और ५४) के १५ मंत्रों में काल के महत्त्व पर वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। विज्ञान भी काल (Time) के महत्त्व को स्वीकार करता है। काल ही सृष्टि का कर्ता, धर्ता और संहर्ता है। काल में ही सृष्टि की सभी वस्तुएँ समाहित हैं। सूर्य काल का प्रतिनिधि है। काल से ही सूर्योदय,

सूर्यास्त, ग्रह-नक्षत्रों की गति, पृथिवी द्वारा परिक्रमा, वायु का बहना और सृष्टि की उत्पत्ति तथा प्रलय नियन्त्रित हैं । वर्तमान, भूत और भविष्य का आधार काल ही है । काल ही जीवन और मृत्यु है । संसार का समस्त ज्ञान और विज्ञान काल के द्वारा नियन्त्रित है ।

(क) कालो ह सर्वस्येश्वरः ।　　अ० १९.५३.८

(ख) कालेनोदेति सूर्यः काले नि विशते पुनः ।　अ० १९.५४.१

(ग) कालाद् ऋचः समभवन् , यजुः कालादजायत । अ० १९.५४.३

(घ) स इमा विश्वा भुवनानि-अञ्जत्
कालः स ईयते प्रथमो नु देवः ।।　　अ० १९.५३.२

४. विवाह सूक्त : अथर्ववेद का पूरा १४वाँ कांड 'विवाह-सूक्त' है । इसमें २ सूक्त और १३९ मन्त्र हैं । इसमें विवाह-संस्कार की विधियों, पति-पत्नी के कर्तव्य, विवाह-संबन्ध का अविच्छेद्य होना, पतिव्रता-धर्म, पत्नी के अधिकार और कर्तव्य आदि का विस्तृत विवेचन है । पति अग्नि तत्त्व है और स्त्री सोमीय तत्त्व है । पति धनात्मक (Positive) है और स्त्री ऋणात्मक (Negative) है । दोनों के संयोग से ही सृष्टिक्रम चलता है । स्त्री के कर्तव्यों में बताया गया है कि वह लज्जाशील हो, मधुरभाषिणी हो, पति और पति के परिवार वालों का सदा आदर करे, कुल-परम्पराओं का पालन करे, सास-ससुर की सेवा करे । दूसरी ओर उसे गृहस्वामिनी और परिवार की सम्राज्ञी कहा गया है । वह परिवार की स्वामिनी है । वह वीर और योग्य पुत्रों को जन्म दे ।

(क) पत्युरनुव्रता भूत्वा सं नह्यस्वामृताय कम् ।　अ० १४.१.४२

(ख) सम्राज्ञ्येधि श्वशुरेषु सम्राज्ञ्युत देवृषु ।　　अ० १४.१.४४

(ग) सुमंगली प्रतरणी गृहाणां सुशेवा पत्ये श्वशुराय शंभूः ।
अ० १४.२.२६

(घ) पितृभ्यश्च नमस्कुरु ।　　अ० १४.२.२०

५. व्रात्य-सूक्त : अथर्ववेद का १५वाँ कांड (सूक्त १ से १८, मंत्र २३०) पूरा व्रात्य सूक्त है । इसमें व्रात्य का ब्रह्म के रूप में वर्णन किया गया है । उसे ही रुद्र, ब्रह्म, महादेव और ईशान कहा गया है । उसके विराट् रूप से सारी सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है । समाजशास्त्र की दृष्टि से यह सूक्त अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । इसमें 'अतिथिदेवो भव' का बहुत विस्तार से वर्णन है । अतिथि-सत्कार को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य बताया गया है । इसमें यहाँ तक कहा गया है कि सभी आवश्यक कार्यों को रोककर अतिथिसत्कार करे । जो ऐसा नहीं करता है, उसके सारे पुण्य क्षीण हो जाते हैं ।

६. मधुविद्या-सूक्त : अथर्ववेद के कांड ९ सूक्त १ के २४ मंत्रों में मधुविद्या का विस्तृत वर्णन किया गया है । मधुविद्या का अभिप्राय है - जीवन में माधुर्य गुण हो । द्युलोक, अन्तरिक्ष, पृथिवी आदि सभी पंच भूतों में मधुरता है । प्रकृति की सभी

वस्तुएँ मधुरता प्रदान करती हैं । मधुविद्या को ही मधुकशा कहते हैं । जो मधुविद्या को जान लेता है, उसके जीवन में मधुरता का वास होता है ।

(क) यो वै कशायाः सप्त मधूनि वेद मधुमान् भवति । अ० ९.१.२२

(ख) मधु जनिषीय मधु वंशिषीय । अ० ९.१.१४

(ग) मधुमान् भवति, मधुमद् अस्याहार्यं भवति । अ० ९.१.२३

७. ब्रह्मविद्या : अथर्ववेद के अनेक सूक्तों में ब्रह्मविद्या का विस्तृत वर्णन है । इनमें ब्रह्म, ईश्वर, जीव, प्रकृति आदि का विस्तृत वर्णन है । ब्रह्म का अनेक नामों से अनेक रूप में वर्णन है । उच्छिष्ट ब्रह्म (११.७.१ से २७), स्कम्भ ब्रह्म (१०.७.१-४४), रोहित ब्रह्म (कांड १३, सूक्त १ से ९, मंत्र १८८), आत्मविद्या (४.२.१ से ८), अध्यात्म (११.८.१ से ३४), ज्येष्ठ ब्रह्म (१०.८.१ से ४४), महद् ब्रह्म (१.३२), ब्रह्मविद्या (४.१.१ से ७ तथा ५.६.१ से १४) , अनड्वान् ब्रह्म (४.११.१ से १२), विराट् ब्रह्म (८. सूक्त ९ और १०) , विश्वस्रष्टा (६.६१) आदि । इन सूक्तों में ब्रह्म, ईश्वर और अध्यात्म का तथा अन्य दार्शनिक विषयों का बहुत विस्तार से वर्णन है । इनमें ईश्वर, ब्रह्म, जीव, प्रकृति, सृष्टि-उत्पत्ति, लोक और परलोक, आध्यात्मिक विद्याएँ, दार्शनिक सिद्धान्त और मनोविज्ञान का सूक्ष्म विवेचन हुआ है । इनके आधार पर ही उपनिषदों और भारतीय दर्शन की सृष्टि हुई है ।[1]

---

१. विस्तृत विवेचन के लिए देखें - लेखककृत "अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन" पृ०३९१-४४६

अध्याय ३

ब्राह्मण ग्रन्थ

१. ब्राह्मण का अर्थ

ब्राह्मण शब्द की व्युत्पत्ति : ब्राह्मण ग्रन्थों के अर्थ में 'ब्राह्मण' शब्द विभिन्न तीन अर्थों को लेकर 'ब्रह्मन्' शब्द से अण् (अ) प्रत्यय करके बना है । ये तीन अर्थ हैं : (१) शतपथ ब्राह्मण के अनुसार ब्रह्मन् शब्द का अर्थ 'मंत्र' है ।[1] अत: वेदमंत्रों की व्याख्या और विनियोग प्रस्तुत करने वाले ग्रन्थ को 'ब्राह्मण' कहते हैं । (२) शतपथ के अनुसार ही ब्रह्मन् शब्द का दूसरा अर्थ 'यज्ञ' है ।[2] अत: यज्ञों की व्याख्या और विवरण प्रस्तुत करने वाले ग्रन्थों को 'ब्राह्मण' कहते हैं । (३) ब्रह्मन् शब्द का एक अन्य अर्थ है – पवित्र ज्ञान या रहस्यात्मक विद्या । अत: जिन ग्रन्थों में वैदिक रहस्यों का उद्घाटन किया गया है, उन्हें 'ब्राह्मण' कहते हैं । इन ग्रन्थों में यज्ञों का आध्यात्मिक, आधिदैविक और वैज्ञानिक स्वरूप प्रस्तुत किया गया है ।

श्री सत्यव्रत सामश्रमी ने 'ब्राह्मण' शब्द की एक अन्य व्युत्पत्ति दी है । उन्होंने ब्राह्मण शब्द से 'प्रोक्त' (कथित, वर्णित) अर्थ में अण् (अ) प्रत्यय करके 'ब्राह्मण' शब्द की सिद्धि की है ।[3] इसका अभिप्राय है कि ब्राह्मणों द्वारा यज्ञ-विषयक व्याख्यारूप में निर्मित ग्रन्थों को 'ब्राह्मण' ग्रन्थ कहते हैं ।

ब्राह्मण का अर्थ : मीमांसा-दर्शन का कथन है कि मंत्रभाग या संहिताग्रन्थों के अतिरिक्त वेद-भाग को 'ब्राह्मण कहते हैं ।[4] इसका अभिप्राय यह है कि संहिता भाग में पद्य, गद्य या गीति के रूप में मंत्र हैं, उनके अतिरिक्त व्याख्या-ग्रन्थों को 'ब्राह्मण' कहते हैं । भट्ट भास्कर का कथन है कि कर्मकांड और मंत्रों के व्याख्यान ग्रन्थों को 'ब्राह्मण' कहते हैं ।

ब्राह्मणं नाम कर्मणस्तन्मन्त्राणां व्याख्यानग्रन्थः ।

(भट्टभास्कर, तैत्ति० सं० १.५.१ पर भाष्य)

---

१. ब्रह्म वै मन्त्रः । शत० ७.१.१.५

२. ब्रह्म यज्ञः । शत० ३.१.४.१५

३. ऐतरेयालोचन, पृष्ठ २

४. शेषे ब्राह्मणशब्दः, मीमांसा० २.१.३३

वाचस्पति मिश्र ने वर्ण्य-विषयों का निर्देश करते हुए कहा है कि 'ब्राह्मण' उन ग्रन्थों को कहते हैं जिनमें निर्वचन (निरुक्ति), मंत्रों का विविध यज्ञों में विनियोग, प्रयोजन, प्रतिष्ठान (अर्थवाद) और विधि का वर्णन होता है।

नैरुक्त्यं यत्र मन्त्रस्य विनियोगः प्रयोजनम् ।
प्रतिष्ठानं विधिश्चैव ब्राह्मणं तदिहोच्यते ।। वाचस्पति मिश्र

ब्राह्मण और अनुब्राह्मण : यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि ग्रन्थ अर्थ में ब्राह्मण शब्द नपुंसकलिंग है। मेदिनीकोश के अनुसार वेदभाग का सूचक ब्राह्मण शब्द नपुंसक लिंग होता है।[1] ब्राह्मण शब्द का ग्रन्थ अर्थ में प्रयोग अष्टाध्यायी (४.३.१०५)। निरुक्त (४.२७), शतपथ ब्राह्मण (४.६.९.२०) और ऐतरेय ब्राह्मण (६.२५) आदि में प्राप्त होता है। इसका बहुवचन में प्रयोग 'ब्राह्मणानि' तैत्तिरीय आरण्यक में प्राप्त होता है। वहाँ इसका तीन बार प्रयोग हुआ है।[2] पाणिनि की अष्टाध्यायी में 'अनुब्राह्मण' ग्रन्थों का भी उल्लेख मिलता है।[3] काशिका में ब्राह्मण के सदृश ग्रन्थ को 'अनुब्राह्मण' कहा है, (ब्राह्मणसदृशो ग्रन्थोऽनुब्राह्मणम्)। 'आर्षेय ब्राह्मण' में स्वयं इस ग्रन्थ को 'अनुब्राह्मण' कहा गया है। आश्वलायन श्रौतसूत्र एवं वैतान श्रौतसूत्रों में भी अनुब्राह्मण ग्रन्थों का उल्लेख है। ये अनुब्राह्मण लघुकाय ब्राह्मण ग्रन्थ हैं। इनमें किसी एक अंश का ही विवेचन मिलता है।

मन्त्र और ब्राह्मण : संहिताओं और ब्राह्मणग्रन्थों का स्वतंत्र अस्तित्व है। संहिताओं में उपलब्ध मंत्र भाग का कर्मकांड में विनियोग होता है। ब्राह्मण-भाग मंत्रों के विनियोग की विधि बताता है। एक मूल है और दूसरा उसका व्याख्यान या भाष्य। यज्ञों में मंत्रों से ही आहुति दी जाती है, ब्राह्मण भाग उसकी उपयोगिता और विधि बताता है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। वेद शब्द मुख्य रूप से वैदिक संहिताओं का ही वाचक है, ब्राह्मण ग्रन्थों का नहीं। वैदिक वाङ्मय या वैदिक साहित्य में ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों का भी समावेश है। वेद शब्द का गौण अर्थ वैदिक साहित्य लेने पर ब्राह्मण ग्रन्थों को भी वेद कहा जा सकता है। इसी गौण अर्थ को लेते हुए 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्' (आपस्तम्ब श्रौतसूत्र १.३३) अर्थात् मंत्र (संहिताग्रन्थ) और ब्राह्मणग्रन्थों को वेद कहते हैं, यह उक्ति प्रचलित हुई है। यही भाव आपस्तम्ब श्रौतसूत्र (२४.१.३१), बौधायन गृह्यसूत्र (२.६.३), कौशिक सूत्र (१.३), तन्त्रवार्तिक (१.३.१०), शांकरभाष्य (वेदान्तदर्शन १.३.३३) आदि में भी प्रकट किया गया है। मंत्रों और ब्राह्मणों में वस्तुतः मौलिक भेद है। यथा - भावभेद, रचना-भेद, विषय-भेद और प्रक्रिया-भेद। अतएव वास्तविक दृष्टि से ब्राह्मणों को वेद कहना अनुपयुक्त है। गौण अर्थ में ही वेद में उनका समावेश संभव है।

---

१. ब्राह्मणं ब्रह्मसंघाते वेदभागे नपुसंकम्। मेदिनी कोश
२. ब्राह्मणानि। तैत्ति० आर० २.९.१। २.१०.१। २.११.१
३. अनुब्राह्मणादिनिः। अष्टा० ४.२.६२

संहिता और ब्राह्मणों का विषय-भेद : संहिताग्रन्थों और ब्राह्मणग्रन्थों के स्वरूप में तथा विषयों में अत्यन्त पृथक्ता है । संक्षेप में ये भेद हैं :

१. स्वरूप की दृष्टि से संहिताग्रन्थ अधिकांश छन्दोबद्ध हैं । यजुर्वेद और अथर्ववेद के कुछ अंश गद्यात्मक हैं । परन्तु ब्राह्मणग्रन्थ सर्वथा गद्यात्मक हैं ।

२. विषय की दृष्टि से दोनों में भेद है । ऋग्वेद में देवस्तुतियों की प्रधानता है, यजुर्वेद में विविध यागों का वर्णन है , अथर्ववेद में रोगनिवारण, शत्रुनाशन आदि विषय हैं, परन्तु ब्राह्मणग्रन्थों का मुख्य विषय है - विधि अर्थात् यज्ञ कब और कहाँ किया जाए, यज्ञ के अधिकारी, यज्ञ के लिए आवश्यक साधन एवं सामग्री आदि । संहिताग्रन्थ स्तुति-प्रधान हैं तो ब्राह्मणग्रन्थ विधि-प्रधान ।

३. भाव और भाषा की दृष्टि से दोनों में भेद है । संहिताओं में देवस्तुति है और ब्राह्मणों में विधि-विधान की व्याख्या । वेदों की अपेक्षा ब्राह्मणों की भाषा सरल और सरस है । शब्दरूपों और धातुरूपों की विविधता कम हो गई है । समास आदि का प्रयोग बहुत कम हो गया है ।

ब्राह्मणों की भाषा और शैली : संहिता ग्रन्थ की अपेक्षा ब्राह्मणों की भाषा में प्रसादगुण का बाहुल्य है । भाषा सरल, सरस और रोचक है । इनमें प्रयत्न किया गया है कि वर्ण्य विषय की दुरूहता को कम किया जाए । अतएव लम्बे समासों, क्लिष्ट पदों और अस्पष्टार्थक शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया है । शैली प्रवाहयुक्त और रोचक है । विविध आख्यानों के प्रसंग में शैली की रोचकता दर्शनीय है । ब्राह्मणों की भाषा वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत को जोड़ने वाली सुन्दर कड़ी है । यज्ञिय, दार्शनिक एवं गूढ प्रसंगों को भी सरल भाषा में प्रस्तुत किया गया है । ब्राह्मणों में वैदिक और लौकिक शब्दावली का समन्वय है । शब्दरूपों की विविधता ऋग्वेद की अपेक्षा बहुत कम है । वैदिक लेट् लकार का प्रयोग अतिविरल है । तुमर्थक प्रत्ययों के प्राचीन रूप कहीं-कहीं दृष्टिगोचर होते हैं । ब्राह्मणों में छन्दों का नियन्त्रण न होने से भाव-प्रकाशन की पूर्ण स्वतंत्रता है । कहीं-कहीं गाथा छन्दों से मिलते हुए पद्य भी प्राप्त होते हैं । ऐसे पद्य मुख्यतया आख्यानों में ही प्राप्य हैं ।

ऋषि और आचार्य में भेद : आश्वलायन गृह्यसूत्र (३.३) में ऋषि और आचार्य में भेद किया गया है । ऋषि मन्त्रद्रष्टा को कहते हैं और ब्राह्मणग्रन्थों के द्रष्टा या रचयिता को आचार्य कहते हैं । अतएव आश्वलायन गृह्यसूत्र में ऋषि-तर्पण के साथ ही आचार्य-तर्पण का भी उल्लेख है । आचार्यों के तीन गण (वर्ग) बताए गए हैं : १. माण्डूकेय गण, २. शांखायन गण, ३. आश्वलायन गण । इसी प्रसंग में आचार्यों के नाम भी गिनाए गए हैं । उनमें विशिष्ट नाम ये हैं, जो विभिन्न ब्राह्मणग्रन्थों के रचयिता हैं : कौषीतक, भरद्वाज, शांखायन, ऐतरेय, बाष्कल, शाकल, गार्ग्य, शौनक और आश्वलायन ।

२. ब्राह्मणग्रन्थों का प्रतिपाद्य विषय

ब्राह्मणग्रन्थों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है – यज्ञ एवं यज्ञप्रक्रिया का सर्वाङ्गीण विवेचन । यज्ञ-मीमांसा के दो मुख्य भाग हैं : विधि और अर्थवाद । (१) विधि का अभिप्राय है – यज्ञप्रक्रिया का विशद निरूपण । जैसे यज्ञ कब, कहाँ कैसे किया जाय । यज्ञ के लिए कितने ऋत्विज् चाहिएँ, प्रत्येक के क्या कर्तव्य हैं , यज्ञ के लिए क्या-क्या सामान चाहिए, यज्ञशाला का निर्माण आदि । अतएव आपस्तम्ब का कथन है – 'कर्मचोदना ब्राह्मणानि'[१] अर्थात् ब्राह्मण ग्रन्थ विविध यज्ञरूप कर्मों में मनुष्यों को प्रेरित करते हैं । (२) अर्थवाद का अभिप्राय है – स्तुति या निन्दापरक विविध विषय । यज्ञिय कर्मकांड में विहित विधानों की अनेक प्रकार से प्रशंसा की जाती है । साथ ही निषिद्ध कर्मों की निन्दा की जाती है । इस प्रकार के विषय अर्थवाद के अन्तर्गत आते हैं ।

वाचस्पति मिश्र ने ब्राह्मणग्रन्थों के चार प्रयोजन बताए हैं । ये हैं – **१. निर्वचन :** शब्दों की निरुक्ति बताना । किसी वस्तु का वह नाम क्यों पड़ा है, उसका आधार क्या है तथा किस धातु से वह नाम बना है । **२. विनियोग :** किस यज्ञ की किस विधि में किन मंत्रों का पाठ किया जायेगा । किस कार्य के लिए कौन सा मंत्र निर्दिष्ट है, इसका पूरा विवरण बताना । विनियोग का अभिप्राय है – कौन सा मंत्र किस कार्य के लिए है, इसका निर्देश देना । **३. प्रतिष्ठान :** प्रतिष्ठान का अभिप्राय है – अर्थवाद । यज्ञ की प्रत्येक विधि का क्या महत्त्व है, उसके करने से क्या लाभ हैं, उसके न करने से क्या हानियाँ हैं । इस प्रकार यज्ञ की विधियों की प्रशंसा करना और उसके समर्थन में कोई उपाख्यान आदि प्रस्तुत करना । साथ ही यज्ञ में निषिद्ध कार्यों की निन्दा करना और उनके दोष बताना भी अर्थवाद के अन्तर्गत आता है । **४. विधि :** यज्ञ और उससे सम्बद्ध कार्यकलाप का विस्तृत विवरण बताना । यज्ञ कब, कहाँ, कैसे किया जाएगा, किस यज्ञ के लिए क्या सामग्री अपेक्षित है तथा कौन सा ऋत्विज् क्या काम करेगा, आदि का विशद वर्णन करना ।

नैरुक्त्यं यत्र मन्त्रस्य विनियोगः प्रयोजनम् ।
प्रतिष्ठानं विधिश्चैव ब्राह्मणं तदिहोच्यते ।। वाचस्पति मिश्र

मीमांसादर्शन के भाष्य में शबरस्वामी ने इन्हीं विषयों को कुछ और विस्तृत करते हुए ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रतिपाद्य विषयों की संख्या दस बताई है ।

हेतुर्निर्वचनं निन्दा प्रशंसा संशयो विधिः ।
परक्रिया पुराकल्पो व्यवधारण-कल्पना ।
उपमानं दशैते तु विधयो ब्राह्मणस्य वै ।। मीमांसासूत्र ,शाबर भाष्य २.१८

दस विषय ये हैं :

१. हेतु : यज्ञ में कोई कार्य क्यों किया जाता है, इसका कारण बताना ।

२. निर्वचन : शब्दों की निरुक्ति बताना । जैसे – नद् (शब्द करना) धातु से नदी शब्द ।

---

१. यज्ञपरिभाषा, सूत्र ३५

३. निन्दा : यज्ञ में निषिद्ध कर्मों की निन्दा। जैसे – यज्ञ में असत्य-भाषण निषिद्ध है। असत्य-भाषण की निन्दा करना।

४. प्रशंसा : यज्ञ में विहित कार्यों की प्रशंसा करना। जैसे – 'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म' अर्थात् यज्ञ सर्वश्रेष्ठ कर्म है, अतः अवश्य करना चाहिए। इस प्रकार यज्ञ की प्रशंसा करना।

५. संशय : किसी यज्ञिय कर्म के विषय में कोई सन्देह उपस्थित हो तो उसका निवारण करना। यह कार्य इस प्रकार से ही किया जाए, इसका स्पष्ट निर्देश करना।

६. विधि : विधि का अभिप्राय है – यज्ञिय क्रियाकलाप की पूरी विधि का विशद निरूपण। कौन सा कार्य पहले किया जाए तथा उसके बाद के कार्यों का तारतम्य से विवरण प्रस्तुत करना।

७. परक्रिया : इसके अर्थ के विषय में पर्याप्त मतभेद है। परक्रिया का भाव है – परार्थक क्रिया, परहित या परोपकार वाले कर्तव्यों का वर्णन। इसमें इष्टापूर्त का समावेश है। इष्ट का अभिप्राय है – विविध याग आदि। पूर्त का अभिप्राय है – धर्मार्थ कार्य, जैसे कूप तडाग आदि का निर्माण, धर्मशाला अनाथालय आदि का निर्माण। ब्राह्मणग्रन्थ ऐसे जनहित के कार्यों का उपदेश देते हैं।

८. पुराकल्प : यज्ञ की विभिन्न विधियों के समर्थन में किसी प्राचीन आख्यान या ऐतिहासिक घटना का वर्णन करना। जैसे – राजा के अभाव में जनता भयभीत रहती थी, अतः राजा के वरण की व्यवस्था की गई। हरिश्चन्द्रोपाख्यान में प्रसिद्ध 'चरैवेति, चरैवेति' चलते रहो, चलते रहो आदि निर्देश।

९. व्यवधारण-कल्पना : परिस्थिति के अनुसार कार्य की व्यवस्था करना। सायण ने इसका उदाहरण दिया है – जितने घोड़े हों, उतने जल भरे पात्र रखें। घोड़ों की संख्या के अनुसार उनके लिए पीने के पात्र रखने हैं। इसी प्रकार यज्ञादि में अभ्यागतों की संख्या के अनुसार आसनों की व्यवस्था की जाएगी।

१०. उपमान : कोई उपमा या उदाहरण देकर वर्ण्य विषय की पुष्टि करना। जैसे- ऐतरेय ब्राह्मण में 'चरैवेति' की पुष्टि में सूर्य का उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। सूर्य निरन्तर चलता रहता है, अतएव उसकी तेजस्विता बनी रहती है। 'सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरन्। चरैवैति०'।

ब्राह्मणों में विधि और अर्थवाद के अतिरिक्त **'उपनिषद्'** का भी प्रतिपादन किया गया है। ब्राह्मणों में यज्ञ आदि की आध्यात्मिक, दार्शनिक और वैज्ञानिक व्याख्याएँ भी प्रस्तुत की गई हैं। यज्ञ केवल कर्मकांड नहीं है, अपितु सृष्टि-विद्या का प्रतीक है। इसके द्वारा सृष्टि के गूढ रहस्यों को स्पष्ट किया गया है। जैसे – यजुर्वेद, शतपथ ब्राह्मण आदि में यज्ञ को विष्णु कहा गया है।[१] इसका अभिप्राय यह है कि यज्ञ ब्रह्मप्राप्ति का साधन है। विष्णु के तीन पग (पद) द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथिवी हैं।[२] वह सर्वव्यापक है,

१. यज्ञो वै विष्णुः। यजु० २२.२०। शत० १३.१.८.८। कौषी० ४.२। तांड्य० ९.६.१०। तैत्ति० १.२.५.१। गोपथ उ० ४.६।

२. इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। यजु० ५.१५

उसकी प्राप्ति के लिए यज्ञ है । यह आध्यात्मिक और दार्शनिक व्याख्या ब्राह्मण ग्रन्थ ही करते हैं । वाक् ब्रह्म है, मन ब्रह्म है ।[१] वाणी का संयम और मनोनिग्रह ब्रह्म की उपासना है ।

यजुर्वेद के एक मंत्र (१३.५३) में जल के विराट् रूप की वैज्ञानिक व्याख्या की गई है ।[२] शतपथ ब्राह्मण (७.५.२.४६-६०) की सहायता के बिना इस मंत्र का अर्थ सर्वथा दुरूह है । इसमें मंत्र में दिए एमन् , ओद्मन् , भस्मन् , सरिर, क्षय, योनि, पुरीष, पाथस् आदि पारिभाषिक शब्दों का अर्थ शतपथ ब्राह्मण में विस्तार से स्पष्ट किया गया है ।[३] जल के आधार पर ही द्यु, भू, अन्तरिक्ष, विद्युत् , प्राण, मन, वाक्, चक्षु, श्रोत्र, समुद्र, वनस्पतियों आदि की सत्ता है । यदि संसार में जल (सोमीय तत्त्व) न हो तो संसार की किसी भी वस्तु का अस्तित्व संभव नहीं है ।

इस प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थ न केवल यज्ञ की विधि का ही वर्णन करते हैं, अपितु वेदों में प्राप्त आध्यात्मिक, दार्शनिक और वैज्ञानिक तथ्यों का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करते हैं । इस दृष्टि से ब्राह्मण ग्रन्थ वैदिक वाङ्मय के अतिमहनीय ज्ञानकोश हैं ।

३. ब्राह्मण ग्रन्थों का शास्त्रीय महत्त्व

विवेच्य विषयों पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि ब्राह्मणों का शास्त्रीय महत्त्व है । इसके मुख्य कारण ये हैं :

१. ब्राह्मणों में यज्ञों के नानारूपों का विशद वर्णन है । विविध यज्ञों के क्रियाकलाप का सांगोपांग उल्लेख है । ब्राह्मण ग्रन्थ यज्ञ को एक वैज्ञानिक संस्था के रूप में प्रस्तुत करते हैं । प्रत्येक विधि में निहित गूढार्थ का वे स्पष्टीकरण करते हैं ।

२. विविध निर्वचनों के द्वारा निरुक्त शास्त्र का मूल इनमें प्रतिष्ठित है । इन निर्वचनों के आधार पर आगे निरुक्त शास्त्र पल्लवित हुआ है ।

३. पुराणों आदि में वर्णित आख्यानों के मूल-तत्त्व ब्राह्मण ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं । परकालीन साहित्य में इनके आधार पर अनेक कथानक प्रस्तुत किए गए हैं ।

४. ब्राह्मण ग्रन्थ कर्मकांड के प्रथम प्रचारक हैं । कर्मकांड का सांगोपांग विवेचन इनमें प्राप्त होता है ।

५. संगीत शास्त्र का शास्त्रीय अध्ययन सामवेदीय ब्राह्मणों में विशेषतया प्राप्त होता है ।

६. ब्राह्मणों में अध्यात्म की प्रतिष्ठा है । इनके आधार पर ही परकालीन उपनिषद्-साहित्य विकसित हुआ है ।

---

१. वाग् वै ब्रह्म । ऐत० ६.३ । शत० २.१.४.१०
मनो ब्रह्म । गोपथ पू० २.१० । तांड्य० १.५

२. अपां त्वेमन् सादयामि, अपां त्वोद्मन् , भस्मन्, सरिरे, क्षये० । यजु० १३.५३

३. विस्तृत व्याख्या के लिए देखें :
(क)शत० ब्रा० ७.५.२.४६-६०
(ख)लेखककृत - वेदों में विज्ञान , पृ० ४२-४३
(ग) यजु० १३.५३ पर उवट और महीधर का भाष्य ।

७. शतपथ ब्राह्मण आदि में दी गई वेदि-निर्माण-विधि परकालीन शुल्बसहित्य, रेखागणित और ज्यामितिशास्त्र (Geometry) की आधारशिला है ।

८. ब्राह्मणग्रन्थों में वर्णित वैज्ञानिक तथ्य परकालीन वैज्ञानिक विकास के पूर्वरूप हैं ।

९. ब्राह्मणों में वर्णित भौगोलिक तथ्य देशनाम आदि भूगोलशास्त्र को अनुपम देन है ।

१०. ब्राह्मणों में वर्णित कृषि, व्यापार और वाणिज्य आदि से संबद्ध विवरण अर्थशास्त्रीय दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है ।

११. ब्राह्मणों में वर्णित वर्ण-व्यवस्था, आश्रम-व्यवस्था आदि का विवरण समाजशास्त्रीय दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है ।

१२. ब्राह्मणों में वर्णित सभा, समिति, राज्यशासन विविध शासन प्रणालियाँ राजनीतिशास्त्र के लिए विशिष्ट देन हैं ।

१३. ब्राह्मणों में प्राप्य ब्रह्म-विवेचन, नीतिशिक्षा, आचारशिक्षा आदि से संबद्ध तथ्य भारतीय दर्शन की आधारशिला हैं ।

१४. ब्राह्मणों में प्राप्य मनस्तत्त्व का विवेचन, जीवन और मृत्यु की समीक्षा मनोविज्ञान के लिए विशेष महत्त्वपूर्ण हैं ।

४. ब्राह्मणग्रन्थों का वर्गीकरण

वेदों के अनुसार ब्राह्मणग्रन्थों का वर्गीकरण इस प्रकार है :

(क) ऋग्वेदीय ब्राह्मण : १. ऐतरेय ब्राह्मण, २. शांखायन (कौषीतकि) ब्राह्मण ।

(ख) शुक्ल यजुर्वेदीय : ३. शतपथ ब्राह्मण ।

(ग) कृष्ण यजुर्वेदीय : ४. तैत्तिरीय ब्राह्मण ।

(घ) सामवेदीय : ५. पंचविंश (तांड्य या प्रौढ) ब्राह्मण, ६. षड्विंश ब्राह्मण (अन्तिम प्रपाठक में अद्‌भुत ब्राह्मण), ७. सामविधान ब्राह्मण, ८. आर्षेय ब्राह्मण, ९. देवताध्याय ब्राह्मण, १०. मंत्र (उपनिषद्) ब्राह्मण, ११. संहितोपनिषद् ब्राह्मण, १२. वंश ब्राह्मण, १३. जैमिनीय (तलवकार) ब्राह्मण, १४. जैमिनीय (आर्षेय) ब्राह्मण , १५. जैमिनीय उपनिषद् (छान्दोग्य) ब्राह्मण ।

(ङ) अथर्ववेदीय : १६. गोपथ ब्राह्मण ।

अनुपलब्ध ब्राह्मण ग्रन्थ : डा० बटकृष्ण घोष ने १६ अनुपलब्ध ब्राह्मणों के इतस्ततः प्राप्य उद्‌धरण एकत्र किए हैं ।[1] इनके नाम हैं : १. शाट्यायन, २. भाल्लवि, ३.

---

१. द्रष्टव्य, श्री घोष का ग्रन्थ Collections of Fragments of Lost Brahmanas, कलकत्ता, १९५३

जैमिनीय (तवलकार), ४. आह्वरक, ५. कंकति, ६. कालबवि, ७. चरक, ८. छागलेय, ९. जाबालि, १०. पैंगायनि, ११. माषशरावि, १२. मैत्रायणीय, १३. रौरुकि, १४. शैलालि, १५. श्वेताश्वतर, १६. हारिद्रविक ब्राह्मण ।

इनमें शाट्यायन ब्राह्मण महत्त्वपूर्ण ज्ञात होता है । सायण ने ऋग्वेद तथा तांड्य ब्राह्मण के भाष्य में और शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्रभाष्य में इसके ७० से अधिक उद्धरण दिए हैं । भाल्लवि ब्राह्मण का उल्लेख पतंजलि के महाभाष्य (४.२.१०४) और काशिका (४.२.६६)-में मिलता है । आपस्तम्ब श्रौतसूत्र (६.४.७) में शैलालि ब्राह्मण का उल्लेख मिलता है ।

श्री पं० भगवद्दत ने उक्त १६ ब्राह्मणग्रन्थों के अतिरिक्त आठ अन्य ब्राह्मणग्रन्थों का उल्लेख किया है ।[1] इनके नाम हैं : १. काठक ब्राह्मण, २. खाण्डिकेय, ३. औखेय, ४. गालव, ५. तुम्बरु, ६. आरुणेय, ७. सौलभ, ८. पराशर ब्राह्मण ।

प्राचीन और नवीन ब्राह्मण : इतिहास की दृष्टि से पाणिनि का सूत्र 'पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु' (अष्टा० ४.३.१०५) बहुत महत्त्वपूर्ण है । इसमें प्राचीन और नवीन ब्राह्मण ग्रन्थों का उल्लेख है । सूत्र में प्राचीन के लिए 'पुराण' शब्द है । इसकी व्याख्या की गई है कि जो ब्राह्मण ग्रन्थ प्राचीन आचार्यों के द्वारा बनाए गए हैं, उनसे णिनि (इन्) प्रत्यय (कथित या निर्मित) अर्थ में होता है । प्राचीन ब्राह्मणों में इन ब्राह्मणों का उल्लेख है -

ऐतरेय, शाट्यायन और भाल्लवि ब्राह्मण ।[2] इसी प्रकार प्राचीन कल्पसूत्रों में पैङ्गीकल्पसूत्र का उल्लेख है तथा नवीन कल्पसूत्रों में आश्मरथ कल्पसूत्र का ।

पाणिनि के इस सूत्र से स्पष्ट है कि पाणिनि (५वीं शती ई०पू०) के समय तक ब्राह्मणग्रन्थों और कल्पसूत्रों की रचना हो रही थी । पाणिनि ने पूर्ववर्ती आचार्यों को पुराण या प्राचीन कहा है, शेष नवीन आचार्य थे । ऐतरेय आदि ब्राह्मण प्राचीन ब्राह्मण ग्रन्थ कहे जाते थे । ब्राह्मण ग्रन्थों के तुल्य ही कल्पसूत्रों की भी उस समय तक रचना हो रही थी । प्राचीन कल्पसूक्तों में पैंगीकल्प का वर्णन है तथा नवीन कल्पसूत्रों में आश्मरथ कल्पसूत्र की गणना है ।

इस सूत्र के आधार पर यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि ब्राह्मणग्रन्थों और कल्पसूत्रों के रचनाकाल की अपरसीमा ५वीं शती ई०पू० समझी जानी चाहिए ।

---

१. द्रष्टव्य, भगवद्दत्त, वैदिक वाङ्मय का इतिहास, भाग २, पृष्ठ २६-३४ ।
२. पुराणेन चिरन्तनेन मुनिना प्रोक्ताः, भाल्लविनः, शाट्यायनिनः, ऐतरेयिणः । (सूत्र ४.३.१०५ पर काशिका और सिद्धान्तकौमुदी)

ऋग्वेदीय ब्राह्मण - (१)

(क) ऐतरेय ब्राह्मण

१. ऐतरेय ब्राह्मण के रचयिता

ऐतरेय ब्राह्मण के रचयिता महिदास ऐतरेय ऋषि माने जाते हैं । ऐतरेय ऋषि के माता-पिता के नामों में कुछ मतभेद हैं । षड्गुरुशिष्य (१२वीं शती ई०) ने ऐतरेय ब्राह्मण के भाष्य में उल्लेख किया है कि महिदास यज्ञवल्क नामक ब्राह्मण के पुत्र थे और उनकी द्वितीय भार्या 'इतरा' उनकी माता थी ।[1] सायण ने भी महिदास की माता का नाम 'इतरा' माना है ।[2] स्कन्दपुराण के अनुसार महिदास हारीत-वंशज माण्डूकि ऋषि के पुत्र थे और माता का नाम इतरा था ।[3] ब्रह्मसूत्र के मध्व-भाष्य में ब्रह्माण्ड पुराण का श्लोक उद्धृत किया गया है कि महिदास की माता 'इतरा' थी ।[4] छान्दोग्य उपनिषद् के अनुसार महिदास ऐतरेय को ११६ वर्ष की आयु प्राप्त हुई थी ।[5] अवेस्ता में ऋत्विज् के अर्थ में 'एथ्रेय' शब्द है । कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने ऐतरेय का संबन्ध एथ्रेय से स्थापित किया है । इस प्रकार ऐतरेय को वेदकालीन ऋषियों में गिना जाएगा ।

२. ऐतरेय ब्राह्मण का प्रतिपाद्य विषय

ऐतरेय ब्राह्मण में ४० अध्याय हैं । प्रत्येक पाँच अध्यायों की एक 'पंचिका' होती है । इस प्रकार पूरे ग्रन्थ में ८ पंचिकाएँ हैं । अध्यायों को खंडों में विभजित किया गया है, उन्हें 'कण्डिका' कहते हैं । पूरे ऐतरेय ब्राह्मण में ४० अध्याय, ८ पंचिकाएँ और २८५ खंड हैं ।

ऋग्वेद होतृ (होता) नामक ऋत्विज् के कार्यकलापों का वर्णन करता है, अतः इस ब्राह्मण में होता-विषयक पक्ष की विशेष मीमांसा की गयी है । होता-मंडल में सात ऋत्विज् होते थे । इनके नाम हैं - १. होता, २. मैत्रावरुण, ३. ब्राह्मणाच्छंसी, ४. नेष्टा, ५. पोता, ६. अच्छावाक, ७. आग्नीध्र । ये सभी सोमयागों के तीनों सवनों (प्रातः, मध्याह्न और सायंकालीन यज्ञ) में ऋग्वेद के मंत्रों का पाठ करते थे ।

पंचिकाओं के अनुसार वर्ण्य-विषय इस प्रकार हैं :

पंचिका १ और २ : इनमें 'अग्निष्टोम' याग में होता के कर्तव्यों का विस्तृत वर्णन है । अग्निष्टोम याग सभी सोमयागों का आधारभूत है, अतः इसका विशेष विवेचन प्रस्तुत किया गया है ।

---

१. महिदासैतरेयर्षिसंदृष्टं ब्राह्मणं तु यत् ।
आसीद् विप्रो यज्ञवल्को द्विभार्यस्तस्य द्वितीयामितरेति चाहुः । ऐत०ब्रा० सुखप्रदा वृत्ति ।

२. ऐत०ब्रा० सायण भाष्य, पृष्ठ ८

३. माण्डूकिरिति विप्राग्र्यो वेदवेदांगपारगः । तस्यासीदितरानाम भार्या साध्वी गुणैर्युता ।
तस्यामुदपद्यत सुतस्त्वैतरेय इति स्मृतः । स्कन्द पु० १.२.४२.२८-३०

४. महिदासाभिधो जज्ञे इतरायास्तपोबलात् । ब्रह्मसूत्र, मध्वभाष्य

५. महिदास ऐतरेयः .. स ह षोडशं वर्षशतम् अजीवत् । छान्दो० उप० ३.१६.७

पंचिका ३ और ४ : इनमें तीनों सवनों अर्थात् प्रातः मध्याह्न और सायंकालीन यज्ञों में बोले जाने वाले मंत्रों (शस्त्रों) का उल्लेख है । इसके साथ ही अग्निष्टोम की विकृतियों अर्थात् उक्थ्य, अतिरात्र और षोडशी नामक यागों का भी संक्षिप्त विवरण दिया है ।

इसी में 'गवामयन' आदि सत्रयागों का भी वर्णन है । सत्रयाग का अभिप्राय है - एक वर्ष तक चलने वाले याग । ये यज्ञ प्रातः, मध्याह्न और सायं तीन बार होते थे । इन्हें तीन सवन कहा जाता है ।

पंचिका ५ : इसमें द्वादशाह (१२ दिन चलने वाले) नामक सोमयागों का वर्णन है । इसी में अग्निहोत्र का भी वर्णन है ।

पंचिका ६ : इसमें कई सप्ताह चलने वाले सोमयागों का वर्णन है । इसमें होता आदि ऋत्विजों के कार्यों का विवेचन है । इसमें 'बालखिल्य' आदि खिल-सूक्तों की भी विशद समीक्षा है ।

पंचिका ७ : इसका मुख्य विषय 'राजसूय- यज्ञ है । इसके तृतीय अध्याय में सुप्रसिद्ध शुनःशेप (हरिश्चन्द्र) उपाख्यान है, जो 'चरैवेति चरैवेति' गाथाओं के कारण विख्यात है ।

पंचिका ८ : इसके प्रथम दो अध्यायों में राजसूय याग का ही वर्णन है । अन्तिम तीन अध्याय संस्कृतिक और ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं । इनमें 'ऐन्द्र महाभिषेक' तथा चक्रवर्ती नरेशों के महाभिषेक का वर्णन है । तृतीय और चतुर्थ अध्याय में १० प्रकार की शासन-पद्धतियों का विस्तृत वर्णन है, साथ ही इनके शासकों के नाम भी दिए हैं । ये शासन-प्रणालियाँ भारतवर्ष के किन क्षेत्रों में प्रचलित थीं, इसका भी विवरण दिया है । अन्तिम अध्याय में पुरोहित के धार्मिक और राजनीतिक महत्त्व का प्रतिपादन है । इसमें शत्रुनाशार्थ एक अद्भुत 'ब्राह्मपरिमर' नामक प्रयोग का वर्णन है । जिसमें ब्रह्म (वायु) के अन्तर्गत विद्युत् , वृष्टि, सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि का समावेश वर्णित है । इस प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण सोमयाग के विभिन्न स्वरूपों का विशद वर्णन प्रस्तुत करता है ।

३. ऐतरेय ब्राह्मण का महत्त्व

ऐतरेय ब्राह्मण धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और ऐतिहासिक आदि दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है । उसकी कतिपय विशेषताएँ ये हैं :

१. यज्ञ का महत्त्व : यज्ञ ब्रह्म का रूप है । यज्ञ ही विष्णु है । यज्ञ ब्रह्म की उपासना है । यज्ञ पर्यावरण को शुद्ध करता है ।

ब्रह्म वै यज्ञः । ऐत० ७.२२
विष्णुर्वै यज्ञः । ऐत० १.१५
अयं वै यज्ञो योऽयं पवते । ऐत० ५.३३

२. विष्णु का देवों में महत्त्व : ऐतरेय ब्राह्मण में विष्णु को बहुत उच्च स्थान प्रदान किया गया है । विष्णु में सभी देवता आ जाते हैं । अग्नि प्रथम देवता है और विष्णु परम (अन्तिम) देवता है, सभी देवता इन दोनों के मध्य में आ जाते हैं । इसी आधार पर पुराणों में विष्णु को सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित किया गया है ।

विष्णुः सर्वा देवताः । ऐत० १.१

अग्निर्वै देवानामवमो विष्णुः परमः । ऐत० १.१

३. अचार शिक्षा : यज्ञ में दीक्षा लेने के बाद सत्य बोलना अनिवार्य है ।

तस्माद् दीक्षितेन सत्यमेव वदितव्यम् । ऐत० १.६

४. दस प्रकार की शासन-प्रणाली : ऐतरेय ब्राह्मण में राजनीतिशास्त्र की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण सामग्री प्राप्त होती है । इसकी अष्टम पंचिका के अध्याय ४ में १० प्रकार की शासन-प्रणालियों का उल्लेख है । साथ ही उनके शासकों के नाम भी दिए गए हैं । इनके नाम तथा शासकों के नाम इस प्रकार हैं :[1]

१. साम्राज्य (सम्राट्), २.भौज्य (भोज), ३. स्वाराज्य (स्वराट्), ४. वैराज्य (विराट्),५. पारमेष्ठ्य (परमेष्ठी), ६. राज्य (राजा), ७. माहाराज्य (महाराज), ८. आधिपत्य (अधिपति), ९. स्वावश्य, १०. आतिष्ठ । इसी प्रसंग में ऐतरेय ब्राह्मण में वर्णन है कि ये शासन प्रणालियाँ किन प्रदेशों में प्रचलित हैं । इन प्रदेशों में पूर्व, पश्चिम आदि दिशाओं के राज्यों के अतिरिक्त उत्तरकुरु, उत्तरमद्र, कुरु, पंचाल आदि का उल्लेख है ।[2]

५. राजा के द्वारा देशभक्ति की शपथ लेना : प्रत्येक राजा के लिए अनिवार्य था कि वह राज्याभिषेक के समय निम्न शपथ अवश्य ले । राष्ट्र के प्रतिनिधि के रूप में पुरोहित राजा को यह शपथ दिलाता था ।

'जिस रात्रि में मेरा जन्म हुआ और जिस रात्रि में मेरी मृत्यु होगी, उन दोनों के मध्य में मैंने जो भी पुण्यकर्म किए हों, वे सब नष्ट हो जाएँ और मैं स्वर्ग, समस्त शुभकर्म, आयु और सन्तान से वंचित हो जाऊँ, यदि मैं किसी भी प्रकार से तुम्हारे प्रति (अर्थात् देश और जनता के प्रति) द्रोह करूँ ।[3]

यह राजा के लिए वस्तुतः कठोर अनुशासनात्मक निर्देश था ।

६. वैज्ञानिक तथ्य : ऐतरेय ब्राह्मण के ३०वें अध्याय में वर्णन है कि प्रारम्भ में पृथिवी अत्यन्त गर्म थी और वह मनुष्यों के रहने के योग्य नहीं थी । उसी उष्णता के कारण पृथिवी ऊँची-नीची हो गई है ।

७. यागों का विभाजन : ऐतरेय ब्राह्मण में समस्त श्रौत यागों को पाँच भागों में विभक्त किया गया है । ये हैं : अग्निहोत्र, दर्श-पूर्णमास, चातुर्मास्य, पशुयाग और

---

१. विस्तृत विवरण के लिए देखें - लेखक-कृत 'वेदों में राजनीतिशास्त्र' पृ०१५८-१७४ । ऐ०ब्रा० ८.४.१८

२. ऐत० ब्रा० ८.३.१४

३.यां च रात्रिम् अजायेऽहम् ... मे लोकं सुकृतम् आयुः प्रजां वृंजीथाः, यदि ते द्रुह्येयम् इति ।
ऐत० ब्रा० ८.१५

सोमयाग । सोमयाग को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है । इसकी सात संस्थाएँ मानी जाती हैं । ये हैं : अग्निष्टोम (ज्योतिष्टोम), अत्यग्निष्टोम, उक्थ, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और अप्तोर्याम । श्रौतयागों के संपादन के लिए चारों वेदों के प्रतिनिधि के रूप में मुख्य चार ऋत्विज् होते थे – होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा । इनके सहायकों को लेकर संपूर्ण यज्ञ में १७ ऋत्विजों की आवश्यकता होती है । इनके कार्यों का भी विभाजन है । अग्निष्टोम का ही दूसरा नाम ज्योतिष्टोम भी है । यह सारे सोमयागों का आधार माना जाता है । इसमें परमात्मा की ज्योति के रूप में स्तुति की जाती है, अतः इसे ज्योतिष्टोम कहते हैं ।

एष वाव प्रथमो यज्ञो यज्ञानां यत् ज्योतिष्टोमः । ऐत०

ज्योतिर्भूतम् अस्तुवन् तस्मात् .... ज्योतिष्टोमम् इत्याचक्षते । ऐ० ३.४३

८. दीक्षित क्षत्रिय और वैश्य भी ब्राह्मण : अन्य ब्राह्मण ग्रन्थों के तुल्य ऐतरेय ब्राह्मण में भी दीक्षा का बहुत महत्त्व है । अतएव सर्वप्रथम दीक्षणीया इष्टि का विधान है । इसमें दीक्षा की विधि दी है । ऐतरेय और शतपथ ब्राह्मण ने आदेश दिया है कि दीक्षित यज्ञमान चाहे क्षत्रिय हो या वैश्य, उसे ब्राह्मण ही कहना चाहिए, क्योंकि दीक्षा लेने पर वह ब्राह्मण हो जाता है ।

(क) स (क्षत्रियः) ह दीक्षमाण एव ब्राह्मणताम् अभ्युपैति । ऐ० ७.२३

(ख) तस्मादपि (दीक्षितं) राजन्यं वा वैश्यं वा ब्राह्मण इत्येव ब्रूयात् ।
शत०ब्रा० ३.२.१.४०

९. अतिथि-सत्कार : अथर्ववेद के तुल्य ऐतरेय ब्राह्मण और शतपथ ब्राह्मण में अतिथि-सत्कार को बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है । ऐतरेय ब्राह्मण में इसके लिए 'आतिथ्य इष्टि' का विधान है । सोम का राजा के रूप में आने पर बहुत विस्तार से अतिथिसत्कार का वर्णन है । ऐतरेय ब्राह्मण का कथन है कि अतिथिसत्कार सबसे बड़ा यज्ञ है । शतपथ ब्राह्मण का कथन है कि अतिथि विष्णु (परमात्मा) का रूप है ।

(क) शिरो वा एतद् यज्ञस्य यद् आतिथ्यम् । ऐत० १.१७

(ख) अथ यद् आतिथ्येन यजन्ते । विष्णुमेव देवतां यजन्ते । शत० १२.१.३.४

१०. 'चरैवेति' की शिक्षा : ऐतरेय ब्राह्मण की सबसे प्रमुख शिक्षा है : चरैवेति, चरैवेति । चर-एव-इति, अर्थात् चलते रहो, चलते रहो । सदा कर्म करते रहो, सदा उद्योगशील रहो, निरन्तर कर्मठ बने रहो । कर्मनिष्ठ जीवन ही जीवन है । **'इन्द्र इच्चरतः सखा'** परमात्मा भी कर्मठ का ही सहायक होता है । **'नानाश्रान्ताय श्रीरस्ति'** अथक परिश्रम किए बिना श्री नहीं मिलती । कर्मठ का ही भाग्योदय होता है । सूर्य का उदाहरण देकर बताया गया है कि सूर्य निरन्तर चलता है, अतः उसकी कान्ति अक्षय है । चतुर्युग की एक सुन्दर व्याख्या की गई है कि सोया हुआ (अकर्मण्य) व्यक्ति ही वस्तुतः कलियुगी व्यक्ति है । सुप्तावस्था कलि है । अँगड़ाई लेता हुआ (उठने के लिए तत्पर) व्यक्ति

द्वापर-युगी है । खड़ा होने वाला (किसी योजना के कार्यान्वयन के लिए कृतसंकल्प) व्यक्ति त्रेतायुगी है और चल पड़ने वाला (कार्य में दृढ संकल्प के साथ प्रवृत्त) व्यक्ति वस्तुतः सतयुगी है । चतुर्युग की यह सुन्दर व्याख्या प्रत्येक मनुष्य की प्रवृत्ति और प्रकृति का द्योतक है ।

चरन् वै मधु विन्दति, चरन् स्वादुमुदुम्बरम् ।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं, यो न तन्द्रयते चरन् । चरैवेति०
कलिः शयानो भवति, संजिहानस्तु द्वापरः ।
उत्तिष्ठन् त्रेता भवति, कृतं संपद्यते चरन् । चरैवेति०, ऐत० अ० ३३

११. भौगोलिक सन्दर्भ : ऐतरेय ब्राह्मण (८.३.१४) में कतिपय भौगोलिक स्थानों का निर्देश है । साथ ही यह भी निर्देश है कि उन राज्यों में कौन सी शासन-पद्धति प्रचलित है । इस दृष्टि से ये भौगोलिक सन्दर्भ विशेष महत्त्वपूर्ण हैं । पूर्व के राज्यों (मगध, कलिंग, बंग आदि में) साम्राज्य पद्धति, दक्षिण दिशा के सत्वत् (यादव) राज्यों में भौज्य पद्धति, पश्चिम दिशा के राज्यों (सुराष्ट्र, कच्छ, सौवीर आदि) में स्वाराज्य पद्धति, उत्तरदिशा के उत्तरकुरु, उत्तर मद्र आदि में वैराज्य पद्धति और मध्य देश के कुरु, पंचाल, शिवि, उशीनर आदि राज्यों में राज्य पद्धति प्रचलित थी । इसी प्रकार काशी, मत्स्य, कुरुक्षेत्र एवं खाण्डव आदि स्थानों का भी उल्लेख है ।

१२. चक्रवर्ती महाराज : ऐतरेय ब्राह्मण (८.४.७-९) में कुछ प्राचीन चक्रवर्ती महाराजाओं का उल्लेख है , जिनका 'ऐन्द्र महाभिषेक' हुआ था और जिन्होंने अश्वमेध यज्ञ करके चक्रवर्ती महाराज का पद प्राप्त किया था । इस प्रसंग में महाराजाओं के पिता (या वंश) का नाम और ऐन्द्र महाभिषेक के संपादक पुरोहित ऋषियों के नामों का भी उल्लेख है । ऐतिहासिक दृष्टि से यह बहुत महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ है । इसका संक्षिप्त विवरण यह है :

	चक्रवर्ती राजा	पिता (वंश)	पुरोहित ऋषि
१.	जनमेजय	परीक्षित्	कवषपुत्र तुर
२.	शार्यात	मनु-वंशी	भृगुपुत्र च्यवन
३.	शतानीक	सत्राजित्	वाजरत्न के पौत्र सोमशुष्मा (-मन्)
४.	आम्बष्ठ्य	अम्बष्ठ	पर्वत और नारद
५.	युधांश्रौष्टि	उग्रसेन	पर्वत और नारद
६.	विश्वकर्मा	भुवन	कश्यप
७.	सुदास्	पिजवन	वसिष्ठ
८.	मरुत्त	अविक्षित	संवर्त
९.	अंगराज	विरोचन	अत्रिपुत्र उदमय
१०.	भरत	दुष्यन्त	ममता के पुत्र दीर्घतमा (-तमस्)

दुष्यन्त-पुत्र भरत के विषय में कहा है कि भरत ने जो महान् कार्य किए थे, वैसे

न उसके पूर्वर्ती और न परवर्ती किसी महाराज ने किए। उसकी ऊँचाई को छूना ऐसा ही है, जैसे हाथ से स्वर्ग को छूना।

महाकर्म भरतस्य, न पूर्वे नापरे जनाः।

दिवं मर्त्य इव हस्ताभ्यां, नोदापुः पञ्च मानवाः।। ऐत० ८.४.९

'ऐन्द्र महाभिषेक' अतिप्रतापी राजा का ही होता था। वह दिग्विजय करके महाराजाधिराज बनता था।

४. शुनःशेप आख्यान

इस आख्यान को 'हरिश्चन्द्र-उपाख्यान' भी कहते हैं। इसका 'चरैवेति' गान विश्व-विश्रुत है। शुनःशेप ऋषि ऋग्वेद प्रथम मंडल के ७ सूक्तों (२४-३०) के द्रष्टा हैं। इनके दृष्ट मंत्रों की संख्या ९७ है। सायण ने इसमें ये तीन मंत्र और जोड़कर १०० की संख्या पूरी की है। ये मंत्र हैं - त्वं नः० (ऋग्० ४.१.४), स त्वं० (ऋग्० ४.१.५), शुनश्चिच्छेपं० (ऋग्० ५.२.७)। ऐतरेय ब्राह्मण (७.३.६) में इस शुनःशेप आख्यान को १०० ऋचाओं से युक्त कहा गया है - 'ऋक्शतगाथं शौनःशेपम् आख्यानम्'। यह आख्यान धर्मशास्त्र, समाजशास्त्र और नृवंशविज्ञान की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है। राज्याभिषेक के समय राजा को यह आख्यान अवश्य सुनाया जाता है।

संक्षिप्त कथा : राजा हरिश्चन्द्र के कोई पुत्र नहीं था। वरुण की उपासना से उसे पुत्र प्राप्त हुआ, परन्तु शर्त यह थी कि वे वरुण देव को यह पुत्र समर्पित कर देंगे। पुत्र का नाम रोहित रखा गया। राजा वरुण को दिए समर्पण की बात टालते गए। वरुण के शाप से राजा को जलोदर रोग हो गया। बड़ा होने पर पुत्र रोहित वन में चला गया। रोहित घर लौटना चाहता है, परन्तु इन्द्र उसे रोक लेता है। वह ६ वर्ष तक वन में रहा। उसने वरुण-हेतु बलि देने के लिए एक निर्धन एवं लोभी ब्राह्मण अजीगर्त को अपना मध्यम पुत्र शुनःशेप देने के लिए पटा लिया। वह लोभी अजीगर्त वरुण के यज्ञ में स्वयं अपने पुत्र शुनःशेप की बलि देने के लिए तैयार हो जाता है। शुनःशेप ने मृत्यु से बचने के लिए वरुण, अग्नि आदि देवों की स्तुति की। अन्त में वह मृत्यु से बच जाता है। शुनःशेप अपने लोभी पिता का परित्याग करके विश्वामित्र की गोद में बैठ जाता है। विश्वामित्र ने उसे अपना दत्तक पुत्र बना लिया और उसका नाम देवरात (देवों द्वारा प्रदत्त) रखा। विश्वामित्र के १०१ पुत्र थे। ५० मधुच्छन्दस् (मधुच्छन्दा) से बड़े थे, ५० छोटे। मधुच्छन्दा और उससे छोटे ५० पुत्रों ने विश्वामित्र के इस गोद लेने के कार्य का समर्थन किया तथा मधुच्छन्दा से बड़े ५० पुत्रों ने इस कार्य का विरोध किया। विश्वामित्र ने अपने उन ५० विद्रोही पुत्रों को शाप दिया कि तुम्हारी सन्तान चाण्डाल आदि म्लेच्छ (दस्यु) हो जायेंगे। वे ही अन्ध्र, पुण्ड्र, शबर, पुलिन्द, मूतिब आदि नीच हो गए।

निष्कर्ष : इस आख्यायिका के कुछ निष्कर्ष ये हैं : (१) वचनभंग का पाप होता है, वह दण्डनीय है, अतः राजा हरिश्चन्द्र को जलोदर रोग हो गया। (२) इन्द्र का

रोहित को उपदेश 'चरैवेति' । कर्मठ जीवन ही जीवन है , कर्मठता से ही श्री मिलती है, अन्यथा वह कलयुगी जीवन है । (३) लोभी व्यक्ति कुछ भी निन्द्य कर्म कर सकता है । लोभी ब्राह्मण अजीगर्त ने अपने पुत्र को बेच दिया और लोभवश पुत्र की हत्या के लिए भी तैयार हो जाता है । (४) किसी देवी-देवता के लिए नरबलि देना अतिनिन्दनीय कर्म है । नरबलि को अमानवीय कर्म घोषित किया गया है । (५) मंत्रों में शक्ति है, अत: रोहित मन्त्रों के प्रभाव से बन्धन से मुक्त हो गया । (६) मानवहृदय की निर्बलता है- पुत्र-लालसा । राजा हरिश्चन्द्र ने वरुण से सशर्त पुत्र रोहित प्राप्त किया । (७) यह राजसत्ता का दुरुपयोग था, निर्धन ब्राह्मण अजीगर्त के पुत्र को बलि के लिए खरीदना । (८) बालक का स्वाभिमान।रोहित ने लोभी एवं निर्दयी पिता अजीगर्त का परित्याग किया । (९) कर्मणा वर्णपरिवर्तन । ब्राह्मण-पुत्र रोहित का क्षत्रिय ऋषि विश्वामित्र का पुत्र होना और उत्तराधिकारी बनना । (१०) विश्वामित्र का दुहरा चरित्र । एक ओर विश्वामित्र में ममता और स्नेह है । गोद में आ बैठे ब्राह्मणपुत्र रोहित को अपना ज्येष्ठ पुत्र बनाया । दूसरी ओर उनमें क्रोध और प्रतीकार की भावना है । अपने बड़े ५० पुत्रों को शाप देकर उनकी सन्तानों को दस्यु (म्लेच्छ) बनाया । संभवत: अनेक जनजातियाँ (Tribes) इस प्रकार विश्वामित्र के वंशज हैं ।

ऋग्वेदीय ब्राह्मण -२

(२) शांखायन (कौषीतकि) ब्राह्मण

१. शांखायन ब्राह्मण के रचयिता

यह ऋग्वेद का द्वितीय ब्राह्मण है । इसको कौषीतकि ब्राह्मण भी कहते हैं । इसके रचयिता शांखायन ऋषि माने जाते हैं । शांखायन आरण्यक में इनकी वंश-परम्परा का उल्लेख मिलता है ।[1] तदनुसार उद्दालक आरुणि से कहोल कौषीतकि को, उनसे गुण शांखायन को और उनसे शांखायन आरण्यक के लेखक को यह विद्या परंपरा से प्राप्त हुई । इस उद्धरण से ज्ञात होता है कि शांखायन कौषीतकि के शिष्य थे । इनसे यह विद्या शांखायन को मिली । शांखायन ने इसको व्यवस्थित करके प्रचलित किया, अत: शांखायन ब्राह्मण नाम प्रचलित हुआ । शांखायन ने अपने गुरु के नाम को भी अमर करने हेतु इसका नाम 'कौषीतकि ब्राह्मण' रखा । अत: इस ब्राह्मण के दोनों नाम प्रचलित हैं । 'चरणव्यूह' की एक टीका में 'महार्णव' का एक श्लोक उद्धृत है , जिसमें कहा गया है कि ब्राह्मण का नाम 'कौषीतकि' है, किन्तु शाखा शांखायनी है ।

कौषीतकि ब्राह्मणं च, शाखा शांखायनी स्थिता ।[2]

शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र के भाष्य में 'कौषीतकि ब्राह्मण' नाम स्वीकार किया है ।[3] पाणिनि ने भी अष्टाध्यायी में ३० अध्याय वाला ब्राह्मण और ४० अध्याय वाला ब्राह्मण कहकर शांखायन और ऐतरेय दोनों ब्राह्मणों का उल्लेख किया है ।[4]

१. शांखायन आरण्यक १५.१
२. चरणव्यूह, खंड २ की टीका, पृष्ठ ३३,.चौखंबा संस्करण ।
३. ब्रह्मसूत्र, शांकरभाष्य (१.१.२८ और ३.३.१०)
४. त्रिंशच्चत्वारिंशतोर्ब्राह्मणे० (अष्टा० ५.१.६२)

२. शांखायन ब्राह्मण का प्रतिपाद्य विषय

शांखायन ब्राह्मण में ३० अध्याय हैं । प्रत्येक अध्याय खंडों में विभाजित हैं । इन खण्डों की संख्या ४ से लेकर १७ तक है । संपूर्ण खण्डों की संख्या २६६ है । खंडों में लम्बे गद्य हैं । ग्रन्थ में कई स्थानों पर कौषीतकि का उल्लेख है और उनका मत दिया गया है ।[1]

अध्यायों के अनुसार प्रतिपाद्य विषय हैं :

अध्याय १ - अग्न्याधान, अध्याय २ - अग्निहोत्र,

अध्याय ३ - दर्श और पूर्णमास यज्ञ,

अध्याय - ४ अनुनिर्वाप्या, अभ्युदिता, अभ्युदृष्टा आदि ११ विशेष इष्टियाँ,

अध्याय ५ - चातुर्मास्य यज्ञ,

अध्याय ६ - ब्रह्मा के कर्तव्य, हविर्यज्ञ ।

अध्याय ७ से ३० - सोमयज्ञ का विस्तृत वर्णन ।

सोमयागों में अध्याय ८ में अतिथि-सत्कार, अध्याय १२ में अपोनप्त्रीय यज्ञ, अध्याय १५ में मरुत्वतीय शस्त्र, अध्याय २२ और २३ में षडह (६ दिन चलने वाले यज्ञ) के आज्य, प्रउग और मरुत्वतीय शस्त्रों का वर्णन, अध्याय २६ में 'गवामयन' और छन्दोमों (छन्दोमय शस्त्र) का वर्णन, अध्याय २८ में प्रैष, अनुप्रैष और निगदों का वर्णन, अध्याय ३० में नाभानेदिष्ठ, नाराशंस, बालखिल्य, कुन्ताप, दधिक्रा, एवयामरुत् , अतिरात्र, वाजपेय और अप्तोर्याम का भी वर्णन है ।

३. ऐतरेय और कौषीतकि (शांखायन) ब्राह्मणों की तुलना

डा० कीथ ने अपने ग्रन्थ 'Rigveda Brahmanas' में १०३ पृष्ठों की भूमिका में ऐतरेय और कौषीतकि ब्राह्मणों के संबन्ध, इनके पौवापर्य, विषय-विवेचन, भाषा, शैली, छन्दोविधान, वाक्य-विन्यास आदि का अत्यन्त सूक्ष्मता से विवेचन किया है ।

डा० कीथ ने विस्तृत विवेचन के बाद निर्णय दिया है कि काषीतकि (शांखायन) ब्राह्मण ऐतरेय ब्राह्मण से परवर्ती है । दोनों की विषय-वर्णन शैली में भी अन्तर है । इस प्रसंग में कुछ मुख्य बातें यहाँ दी जा रही हैं :

१. ऐतरेय ब्राह्मण में वर्ण्य-विषयों की अधिकता है, परन्तु मुख्य रूप से सोमयाग का ही वर्णन है । कौषीतकि का क्षेत्र व्यापक है, इसमें सोमयाग के अतिरिक्त सभी प्रमुख श्रौत यागों का वर्णन है । इसमें राजसूय और अश्वमेध जैसे कम प्रचलित यज्ञों को छोड़ दिया गया है ।

२. कौषीतकि की भाषा सुगठित है । वाक्य-विन्यास संक्षिप्त और परिष्कृत है । पूरे ग्रन्थ में विषय-क्रम सुनिर्धारित है । अवान्तर विषयों का परित्याग किया गया है । अनावश्यक आख्यान आदि नहीं दिए गए हैं । ऐतरेय में यह बात नहीं है । उसमें

१. कौषीतकिः । शांखा० ८.९

विषयान्तर भी है, अतः विषय-क्रम टूट जाता है। ऐतरेय में कौषीतकि जैसी सुश्लिष्टता नहीं है।

३. कौषीतकि में विभिन्न ऋत्विजों के द्वारा बोले जाते वाले मंत्रों (शस्त्रों) आदि का पूर्ण विवरण प्राप्त होता है, ऐतरेय में नहीं। कौषीतकि अधिक सुनियोजित और क्रमबद्ध है।

४. कौषीतकि में 'तस्योक्तं ब्राह्मणम्' 'तदेतद् ऋचाऽभ्युदितम्' (जैसा कि ब्राह्मण ग्रन्थ में कहा गया है)। (यह ऋग्वेद के मंत्र में कहा गया है)। ऐसे प्रयोग बहुत अधिक हैं। कौषीतकि उक्त वाक्यों के साथ ब्राह्मण ग्रन्थ का सन्दर्भ या ऋचा देता है, जिससे विषय स्पष्ट हो जाता है और अनावश्यक विस्तार नहीं होता। ऐसा ऐतरेय में नहीं है। वहाँ अनावश्यक विस्तार मिलता है और पूर्ण सन्दर्भ नहीं मिलता।

५. ऐतरेय में पुरोहितों की मंत्रशक्ति (Magic Power) स्वीकार की गई है। वे किसी का भी शुभ या अशुभ कर सकते हैं। कौषीतकि में ऐसी मंत्रशक्ति का वर्णन नहीं है।

६. ऐतरेय में विषय की प्रामाणिकता के विषय में कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया जाता है। कौषीतकि में प्रमाणरूप में कौषीतकि (या कौषीतक) का वचन उद्धृत किया जाता है।

७. ऐतरेय में बहुदेवतावाद (Polytheism) है, परन्तु कौषीतकि में रुद्र के विषय में एक पूरा अध्याय (६.१. से ९) है। इसमें रुद्र के अनेक रूपों का वर्णन है। जैसे - भव, शर्व, पशुपति, उग्रदेव, महादेव, रुद्र, ईशान, अशनि। इससे पाश्चात्य विद्वानों ने निष्कर्ष निकाला है कि बहुदेवतावाद अवनति की ओर था और शैवधर्म उन्नति की ओर।

८. डा० कीथ ने कौषीतकि (शांखायन) ब्राह्मण के परवर्ती होने के ये कारण प्रस्तुत किए हैं : (१) कौषीतकि की रचना अधिक सुसंबद्ध और वैज्ञानिक है। (२) विषयों का क्रम-विन्यास अत्यन्त तर्कसंगत है। (३) इस में एकाह (१ दिन वाले) और द्वादशाह (१२ दिन वाले) यज्ञ आदर्शरूप में दिए गए हैं। इनसे बड़े यज्ञों का स्वरूप स्वयं निर्धारण करें। (४) शस्त्रों (मंत्रों) को क्रमबद्ध और पूर्णरूप से दिया गया है। ऐतरेय में ऐसा नहीं है। (५) यद्यपि ऐतरेय में भी रुद्र का महत्त्वपूर्ण उल्लेख है, पर कौषीतकि में उसे बहुत महत्त्व दिया गया है। रुद्र के महादेव और ईशान नामों का उल्लेख शैवधर्म के विकास का सूचक है तथा कौषीतकि के परवर्ती होने का। (६) कौषीतकि में 'पुनर्मृत्यु' का उल्लेख है।[1] यह पुनर्जन्म सिद्धान्त का सूचक है। यह परवर्ती विचारधारा है। (७ राजा के साथ 'राजमात्र' का उल्लेख करना।[2] राजमात्र का अभिप्राय है राजा के समकक्ष अधिकारी। इनको भी राजा के तुल्य संमान दिया गया है। ऐतरेय में 'राजमात्र' का उल्लेख नहीं है। (८) ऐतरेय में 'तुम्' अर्थ वाले अनेक प्रत्ययों

---

१. पुनर्मृत्युं च जयन्ति । शांखा० २५.१

२. राजानं वा राजमात्रं वा० । शांखा० २७.६

का प्रयोग है, 'लेट्' लकार वाले रूप हैं, परन्तु कौषीतकि में ये बहुत कम हैं । इन आधारों पर डा० कीथ ने कौषीतकि को ऐतरेय से परवर्ती माना है । भाषा की दृष्टि से कौषीतकि से ऐतरेय की भाषा सरल और रोचक है ।

४. शांखायन ब्राह्मण के कुछ विशिष्ट सन्दर्भ

१. अग्निदेव का महत्त्व : अग्निदेवता के आधार पर ही सारे देव जीवित हैं । अग्नि देवों का मुख है ।

अग्निं प्रथमं देवतानां यजति, अग्निर्वै देवानां मुखम् । शां० ३.६

२. वाक् का महत्त्व : वाक् (वाणी) ही वाङ्मय (वाक् + मय) का आधार है । मनोगत भावों को वाणी ही प्रकट करती है । इस प्रकार भाव, भाषा और साहित्य का आधार वाक् (वाणी) है ।

मनो वाचम् अप्येति, वाङ्मयं भवति । शां० २.७

३. सत्य ज्योति है , देवता है : सत्यरूपी ज्योति से ही आत्मा पवित्र होती है । इस ज्योति से वाङ्मय आत्मा सत्यमय होती है । देवता सत्य-स्वरूप हैं ।

ज्योतिरित्याह, स सत्यं वदति । तस्य वाङ्मय आत्मा सत्यमयो भवति । सत्यमया उ देवाः । शां० २.८

४. वेदत्रयी का सार भूर्भुवः स्वः : ऋग्वेद का सार भूः, यजुर्वेद का सार भुवः और सामवेद का सार स्वः है ।

भूः इति ऋचाम्, भुवः इति यजुषाम् , स्वरिति साम्नाम् । शां० ६.१०

५. विष्णु का महत्त्व : अग्नि नीचे की ओर है और विष्णु ऊपर । इनके मध्य में ३३ देवता हैं ।

अग्निर्वै देवानाम् अवरार्ध्यः, विष्णुः परार्ध्यः । शां० ७.१

६. उदीच्य विद्वानों की प्रशंसा : उत्तरदिशा के विद्वानों की प्रशंसा में कहा गया है कि उदीच्य विद्वान् अधिक योग्य होते हैं, अतः भाषाज्ञान के लिए उदीच्यों के पास जाना चाहिए । पाणिनि भी उदीच्य थे ।

उदीच्यां दिशि प्रज्ञाततरा वाग् उद्यते । उदञ्च एव यन्ति वाचं शिक्षितुम् । शां० ७.६

७. प्राण ही ३३ देव हैं : ११ प्राण प्रयाज हैं, ११ अपान अनुयाज हैं और ११ समान प्राण उपयाज हैं । इस प्रकार प्राण ही तीन रूपों में सर्वदेवमय है ।

प्राणा वै प्रयाजाः, अपाना अनुयाजाः, समाना उपयाजाः । शां० १०.३

८. रुद्र का महत्त्व : रुद्र ही सर्वश्रेष्ठ देव है । वही ज्येष्ठ भी है ।

रुद्रो वै ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च देवानाम् । शां० २५.१३

९. अग्निष्टोम सर्वोत्तम याग : अग्निष्टोम ज्योति है, अतः इसे ज्योतिष्टोम भी कहते हैं । यही सूर्य के रूप में प्रकाश दे रहा है ।

ज्योतिर्वा अग्निष्टोमः । ज्योतिरेष य एष तपति । शां० २५.९

१०. पशुहत्या निन्द्य है : बहुत सुन्दर शब्दों में पशुहत्या की निन्दा की गयी है । जो पशुहत्या करते हैं और पशुमांस खाते हैं, उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि परलोक में वे पशु ही उन मनुष्यों का मांस खायेंगे । यह पशुबलि के विरुद्ध एक क्रान्तिमंत्र है ।

अस्मिन् लोके मनुष्याः पशून् अश्नन्ति । एवमेव अमुष्मिन् लोके पशवो मनुष्यान् अश्नन्ति । शां० ११.३

११. छन्दों का निर्वचनात्मक अर्थ : शक्वरी छन्द (शक् (सकना) धातु से बना । इन छन्दों से इन्द्र वृत्र को मार सका, अतः इनका नाम शक्वरी पड़ा । ये छन्द शक्तिदाता हैं ।

एताभिर्वा इन्द्रो वृत्रम् अशकद् हन्तुम् , तस्मात् शक्वर्यः । शां० २३.२

१२. वाणी विश्वामित्र है : वाणी से यज्ञ किया जाता है । वाणी ही विश्वामित्र है ।

वाग् वै विश्वामित्रः । वाचा यज्ञस्तायते । शां० १०.५

१३. शिल्प का महत्त्व : शिल्प में ही अन्तरिक्ष आदि की स्थिति है । यह ईश्वरीय लीला है कि बिना आधार के लोक स्थित हैं । वह ईश्वरीय शिल्प है ।

अन्तरिक्षम् अप्रतिष्ठानम् , शिल्पेष्वेव प्रतितिष्ठन्तो यन्ति । शां० २९.५

१४. नृत्य, गीत और वाद्य शिल्प हैं : शिल्प के तीन रूप हैं : नृत्य, गीत और वाद्य । इन तीनों को मिलाकर संगीत होता है ।

त्रिवृद् वै शिल्पम् , नृत्यं गीतं वादित्रम् इति । शां० २९.५

१५. गायत्री ज्योति है : गायत्री ज्योति है । गायत्री पापों को नष्ट करती है ।

ज्योतिर्वै गायत्री । यज्ज्योतिषा पाप्मानम् अपघ्नन्ति । शां० १७.६

६. (क) यजुर्वेदीय ब्राह्मण (शुक्ल यजुर्वेद)

शतपथ ब्राह्मण

१. शतपथ ब्राह्मण के रचयिता एवं नामकरण

शतपथ ब्राह्मण ब्राह्मण-ग्रन्थों में मूर्धन्य है । विषय-विवेचन की दृष्टि से और स्थूलता की दृष्टि से इसे प्रथम स्थान प्राप्त है । यागानुष्ठान के विस्तृत विवेचन के कारण इसको सबसे अधिक ख्याति प्राप्त हुई है ।

इसके रचयिता वाजसनि के पुत्र याज्ञवल्य माने जाते हैं । वाजसनि के पुत्र होने से इन्हें 'वाजसनेय' कहा जाता है । शतपथ ब्राह्मण के अन्त में इसका स्पष्ट उल्लेख है कि सूर्य की कृपा से प्राप्त शुक्ल यजुर्वेद की व्याख्या वाजसनेय याज्ञवल्क्य ने की ।

आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूंषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येन-आख्यायन्ते ।

शत० १४.९.४.३३

याज्ञवल्य के पिता वाजसनि के विषय में सायण ने लिखा है कि वे अन्न-दाता (वाज-अन्न, सनि-दाता) के रूप में विख्यात थे, अतःउनका नाम वाजसनि पड़ा

था ।[1] महाभारत और स्कन्दपुराण के अनुसार याज्ञवल्क्य का आश्रम सौराष्ट्र में था ।[2] वायुपुराण (६१.२१), विष्णुपुराण (३.५.३) और ब्रह्मपुराण (पूर्वभाग ३५१२४) के अनुसार याज्ञवल्क्य के पिता नाम 'ब्रह्मरात' था । भागवत (१२.६.४) के अनुसार पिता का नाम 'देवरात'था । ब्रह्मरात और देवरात का अर्थ है - ब्रह्मदत्त और देवदत्त । संभवत: ये वाजसनि के ही नामान्तर हों । स्कन्दपुराण (नागरखण्ड - ६.१६४.६) के अनुसार याज्ञवल्क्य की माता का नाम 'सुनन्दा' था। बृहदारण्यक उपनिषद् (२.४.१) के अनुसार याज्ञवल्क्य की दो पत्नियाँ थीं - मैत्रेयी और कात्यायनी । स्कन्दपुराण में कात्यायन और पारस्कर को एक मानकर उन्हें याज्ञवल्क्य का पुत्र बताया है। यजुर्वेद का गृह्यसूत्र 'पारस्कर गृह्यसूत्र' पारस्कर की रचना है ।

महाभारत शान्तिपर्व (३१८.१६-१७) के अनुसार सूर्य से वरदान प्राप्त करके याज्ञवल्क्य ने परिशिष्ट-सहित शतपथ ब्राह्मण की रचना की और उसे अपने १०० शिष्यों को पढ़ाया । वहीं वैशम्पायन को याज्ञवल्क्य का मातुल (मामा) बताया गया है ।[3]

पुराणों में याज्ञवल्क्य की अनेक सिद्धियों का उल्लेख है । वे शुक्ल यजुर्वेद और शतपथ ब्राह्मण के संपादन के अतिरिक्त 'याज्ञवल्क्य-शिक्षा' 'याज्ञवल्क्य-स्मृति' आदि के प्रणेता माने जाते हैं ।

नामकरण : शतपथ में १०० अध्याय हैं । अत: उसे 'शतपथ' कहा जाता है । इसकी व्याख्या 'गणरत्न महोदधि' आदि ने की है - शतं पन्थानो मार्गा नामाध्याया यस्य तत् शतपथम्' जिसमें सौ अध्याय-रूपी मार्ग हैं, उसे शतपथ कहते हैं । काण्व शतपथ में यद्यपि १०४ अध्याय हैं, तथापि शत-संख्या के महत्त्व के कारण उसे शतपथ ही कहा जाता है । यह माध्यन्दिन और काण्व दोनों शाखाओं में उपलब्ध है । माध्यन्दिन में १०० अध्याय हैं और काण्व में १०४ अध्याय ।

२. शतपथ ब्राह्मण (माध्यन्दिन) का प्रतिपाद्य विषय

माध्यन्दिन (शुक्ल यजुर्वेदीय) शतपथ ब्राह्मण में १४ कांड, १०० अध्याय, ४३८ ब्राह्मण और ७६२४ कंडिकाएँ हैं । संपूर्ण ग्रन्थ १४ भागों में विभक्त है , इन्हें कांड कहते हैं । कांडों के उपविभाग अध्याय हैं और अध्यायों के उपविभाग ब्राह्मण हैं । इन ब्राह्मणों के भी उपविभाग हैं , इन्हें कंडिका कहते हैं । इस प्रकार इसके सन्दर्भ -निर्देश के लिए ४ संख्याएँ आती हैं - १. कांड, २. अध्याय, ३. ब्राह्मण और ४. कंडिका । इसका प्रतिपाद्य विषय इस प्रकार है :

कांड १ - दर्श और पूर्णमास याग ।

१. काण्वसंहिता, सायण भाष्य -भूमिका ।

२. स्कन्दपुराण ६.१२९.१-२ ।

३. ततः शतपथं कृत्स्नं सरहस्यं ससंग्रहम् ।
चक्रे सपरिशेषं च हर्षेण परमेण ह ।।
कृत्वा चाध्ययनं तेषां शिष्याणां शतमुत्तमम् ।। शान्तिपर्व ३१८.१६-१७

कांड २ : अग्निहोत्र, पिण्डपितृयज्ञ, दाक्षायण याग, नवान्नेष्टि, चातुर्मास्य याग ।

कांड ३ और ४ : सोमयाग ।

कांड ५ : वाजपेय और राजसूय यज्ञ ।

कांड ६ : सृष्टि - उत्पत्ति, चयन-निरूपण ।

कांड ७ और ८ : चयन-निरूपण , वेदि-निर्माण ।

कांड ९ : चयननिरूपण, शतरुद्रिय होम, राष्ट्रभृत् होम ।

कांड १०. : चयननिरूपण, छोटी और बड़ी वेदियों का निर्माण ।

कांड ११ : दर्श-पूर्णमास, दाक्षायण यज्ञ, उपनयन, पंच महायज्ञ, स्वाध्याय-प्रशंसा ।

कांड १२ : द्वादशाह, संवत्सर सत्र, ज्योतिष्टोम, सौत्रामणी याग, प्रायश्चित्त ।

कांड १३ : अश्वमेध, पुरुषमेध, सर्वमेध, दशरात्र, पितृमेध ।

कांड १४ : प्रवर्ग्ययाग, ब्रह्मविद्या, बृहदारण्यक उपनिषद् ।

३. शतपथ ब्राह्मण (काण्व) का प्रतिपाद्य विषय

काण्व शतपथ ब्राह्मण में माध्यन्दिन शतपथ ब्राह्मण से कुछ क्रम-विन्यास में अन्तर है । विषयवस्तु प्राय: वही है, पर क्रम में अन्तर हो गया है । इसमें १७ कांड, १०४ अध्याय, ४३५ ब्राह्मण और ६८०६ कंडिकाएँ हैं । माध्यन्दिन के कांड २ का वर्ण्यविषय कांड १ में कर दिया गया है और उसके कांड १ का विषय इसमें कांड २ में है । वर्ण्य विषय इस प्रकार है :

कांड १ : अग्निहोत्र, नवान्न इष्टि (आग्रयण इष्टि), दाक्षायण, चातुर्मास्य ।

कांड २ : दर्श और पूर्णमास याग ।

कांड ३ : अग्निहोत्र और दर्श-पूर्णमास यागों का अर्थवाद ।

कांड ४ और ५ : सोमयाग ।

कांड ६ और ७ : वाजपेय और राजसूय ।

कांड ८ : उखासंभरण ।

कांड ९ से १२ : विभिन्न चयन याग ।

कांड १३ : आधानकाल, पथिकृत् , शंयुवाक् , ब्रह्मचर्य , दर्श-पूर्णमास ।

कांड १४ : सौत्रामणी, प्रायश्चित्त ।

कांड १५ : अश्वमेध ।

कांड १६ : प्रवर्ग्य याग ।

कांड १७ : बृहदारण्यक उपनिषद् , ब्रह्मविद्या ।

दोनों ब्राह्मणों में प्रतिपाद्य विषय एक होने पर भी क्रम में भेद है । विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से माध्यन्दिन शतपथ अधिक व्यवस्थित है । शतपथ की अन्य विशेषता यह है कि इसमें वाजसनेयी संहिता के १८ अध्यायों की क्रमबद्ध व्याख्या प्रथम

९ कांडों में मिल जाती है । केवल अन्तर यह है कि संहिता में पिण्ड–पितृयज्ञ का वर्णन दर्श–पूर्णमास याग के बाद है और ब्राह्मण में अग्निहोत्र के बाद ।

४. शतपथ ब्राह्मण का रचनाकाल

डा० मैकडानल आदि पाश्चात्त्य विद्वान् ब्राह्मणग्रन्थों का काल ८०० ई०पूर्व से ५०० ई०पू० के मध्य मानते हैं । श्री शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने शतपथ ब्राह्मण का एक सन्दर्भ उद्‌धृत करके यह सिद्ध किया है कि शतपथ ब्राह्मण की रचना २५०० ई०पू० के लगभग हुई थी ।[१] उन्होंने सन्दर्भ दिया है – कृतिका नक्षत्र उस समय ठीक पूर्वीय बिन्दु पर उदय होते थे, वे वहाँ से च्युत नहीं होते थे ।[२] कृत्तिका नक्षत्र इस समय पौने पाँच नक्षत्र पीछे हट गए हैं । एक नक्षत्र पीछे हटने में ९६० वर्ष लगते हैं । अतः गणना करने पर अब से लगभग ४६०० वर्ष लगते हैं, अर्थात् लगभग २५०० वर्ष ई०पू० कृत्तिका नक्षत्रों (कृत्तिकाओं) की यह स्थिति थी । शतपथ ब्राह्मण ने कृतिकाओं का वर्तमान काल के रूप में वर्णन किया है, अतः इसका समय २५०० ई०पू० के लगभग सिद्ध होता है । प्रो० सी०वी० वैद्य, श्री दफ्तरी एवं पं० सातवलेकर आदि ने इस मत का समर्थन किया है ।[३] शतपथ ब्राह्मण में राजा के राज्याभिषेक में अन्य १७ जलों में सर्वप्रथम सरस्वती का जल लेने का विधान है ।[४] इससे ज्ञात होता है कि उस समय सरस्वती नदी विद्यमान थी । तांड्य ब्राह्मण (२५.१०.१६) में सरस्वती नदी के 'विनशन' स्थान पर लुप्त होने और 'प्लक्ष प्रास्रवण' स्थान पर पुनः दिखाई पड़ने का उल्लेख है । यह सरस्वती नदी संप्रति लुप्त है । इससे ज्ञात होता है कि शतपथ अन्य ब्राह्मणों से प्राचीन है और उस समय सरस्वती लुप्त नहीं हुई थी ।[५] शतपथ ब्राह्मण और तैत्तिरीय ब्राह्मण ही संहिता ग्रन्थों के तुल्य स्वरचिह्नों से युक्त है । यह इसकी प्राचीनता का द्योतक है । इन कारणों से इसका रचनाकाल २५०० ई०पू० के लगभग मानना उचित है ।

५. शतपथ ब्राह्मण का वैशिष्ट्य

शतपथ ब्राह्मण की कतिपय प्रमुख विशेष बातें ये हैं :

१. याज्ञवल्क्य और शांडिल्य : कांड १ से ५ तक ऋषि याज्ञवल्क्य को प्रमाण रूप में प्रस्तुत किया गया है तथा कांड ६ से १० तक शांडिल्य ऋषि को ही प्रमाण माना गया है । इससे ज्ञात होता है कि शतपथ की रचना में दोनों ऋषियों का योगदान है ।

---

१. द्रष्टव्य, उनका ग्रन्थ - भारतीय ज्योतिःशास्त्र, पूना १८९६, पृ० १३६-१४०

२. कृत्तिकास्वादधीत । एता ह वै प्राच्यै दिशो न च्यवन्ते । शत०ब्रा० २.१.२.२ और ३

३. द्रष्टव्य - (क) वैद्य - History of Skt. Lit. Section - 2, P. 15
 (ख) सातवलेकर, काण्वसंहिता, भूमिका पृ० १५

४. सारस्वतीरेव प्रथमा गृह्णाति । शत० ५.३.४.३

५. द्रष्टव्य- (क) डी०सी० सरकार, Studies in the Geography of Ancient India and Medieval India. P. 40
 (ख) डा० सूर्यकान्त, वैदिक कोश, पृ० ५४८-५४९

शांडिल्य को १०वें कांड में "अग्नि-रहस्य" का प्रवक्ता बताया गया है। यह भी उल्लेखनीय है कि शांडिल्य वाले ६ से १० कांडों में पश्चिमोत्तर भारत के गान्धार, केकय और शाल्व जनपदों का उल्लेख है। अन्य कांडों में मध्य और पूर्व भारत के कुरु-पंचाल, कोसल, सृंजय और विदेह आदि जनपदों का उल्लेख है। समग्र रूप से याज्ञवल्क्य को ही शतपथ का रचयिता माना जाता है।

२. यज्ञ का महत्त्व : शतपथ ब्राह्मण में यज्ञ को श्रेष्ठतम कर्म बताया गया है।[१] यज्ञ को विष्णु और प्रजापति कहा है।[२] शतपथ ब्राह्मण में यज्ञों के विधि-विधान का सांगोपांग वर्णन है। अतएव डा० मैकडानल ने ऋग्वेद और अथर्ववेद के बाद शतपथ ब्राह्मण को वैदिक वाङ्मय का सर्वोत्तम ग्रन्थ बताया है।[३] यज्ञ को संसार का पालक और रक्षक कहा गया है।[४] यज्ञ का संबन्ध पृथिवी, जल आदि पाँचों तत्त्वों से है। यह पाँचों तत्त्वों को पवित्र करता है, अतः इसे 'पांक्त' कहते हैं।[५] पांक्त शब्द पंक्ति से बना है और पंक्ति पंच शब्द से। पंचतत्त्वों का समन्वय पांक्त यज्ञ है। यज्ञ के दो रूप हैं : प्राकृत और कृत्रिम। प्रकृति में निरन्तर यज्ञ चल रहा है। इसमें वसन्त घी है , ग्रीष्म समिधा और शरद् हवि।[६] इससे ही वर्षचक्र, सृष्टिचक्र चल रहा है। प्रत्येक अणु-गति कर रहा है, इससे सृष्टि है, यह प्राकृतिक यज्ञ है। इसका ही यहाँ संकेत है।

३. यज्ञ का आध्यात्मिक रूप : बाह्य यज्ञ प्रतीकात्मक है। वस्तुतः प्रकृति में निरन्तर यह यज्ञ चल रहा है। उसकी व्याख्या के लिए बाह्य पंचयज्ञों का विधान है। वस्तुतः यज्ञ आध्यात्मिक है। यह आत्मशुद्धि, समर्पण और ब्रह्मप्राप्ति का साधन है। इसका ही विस्तृत विवेचन शतपथ के अन्तिम कांड बृहदारण्यक में किया गया है। ब्रह्म की प्राप्ति और ब्रह्मज्ञान यज्ञ का लक्ष्य है, अतः ब्रह्म को यज्ञ कहा गया है।[७] वाणी की शुद्धि और मन की पवित्रता से ही ब्रह्म की प्राप्ति होती है , अतः वाक् और मन को यज्ञ कहा गया है।[८] शतपथ ब्राह्मण का प्रारम्भ ही सत्य-भाषण की प्रतिज्ञा से होता है - 'इदम् अहम् अनृतात् सत्यमुपैमि' (मैं असत्य को छोड़ता हूँ और सत्य को अपनाता हूँ)। यज्ञ के लिए सत्यव्रती होना अनिवार्य है। यही सत्यभाषण मनुष्य को देवत्व प्रदान करता है। अतः कहा है - 'स वै सत्यमेव वदेत् ' अर्थात् सत्य ही बोले।[९]

---

१. यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म । शत० १.७.१.५
२. यज्ञो वै विष्णुः । शत० १.१.२.१३ । प्रजापतिर्यज्ञः । शत० १.१.१.१३
३. Macdonell, India's Past. P. 46
४. यज्ञो हि सर्वाणि भूतानि भुनक्ति । शत० ९.४.१.११
५. पाङ्क्तो यज्ञः । शत० १.५.२.१६
६. वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद् हविः । यजु० ३१.१४
७. ब्रह्म यज्ञः । शत० ३.१.४.१५
८. वाग्वै यज्ञः । शत० १.१.२.२ । मनो वै देववाहनम् । शत० १.४.३.६
९. शत० १.१.१.५

४. सांस्कृतिक और ऐतिहासिक तत्त्व : शतपथ ब्राह्मण (१.४.१.१० से १७) में आर्यों के पूर्व की ओर प्रसार का उल्लेख है । 'विदेघ माधव' और पुरोहित 'गोतम राहूगण' सरस्वती नदी से आगे बढ़ते हुए, सबको जीतते हुए, सदानीरा नदी (गंडक नदी) तक गए । यह सदानीरा नदी कोसल और विदेह के बीच की सीमा थी ।[१] सदानीरा से आगे के क्षेत्र को अमेध्य (अयज्ञिय, अपवित्र) बताया गया है । शांडिल्य कांडों (६ से १०) में गान्धार, केकय, शाल्व जनपदों का तथा अन्यत्र कुरु-पंचाल, कोसल, विदेह, सृंजय जनपदों का उल्लेख है । ऐतरेय ब्राह्मण के तुल्य शतपथ में भी अश्वमेध करने वाले चक्रवर्ती सम्राटों का तथा अन्यों का उल्लेख है ।[२] इनमें विशेष उल्लेखनीय हैं - परीक्षित् के चार पुत्र - जनमेजय, भीमसेन, उग्रसेन और श्रुतसेन, कौसल्य हैरण्यनाभ, पुरुकुत्स, आयोगव, पांचाल राजा क्रिवय, मात्स्य राज द्वैतवन, दुष्यन्तपुत्र भरत, उसकी माता शकुन्तला, राजा याज्ञतुर, सात्रासाह शोण, शतानीक सात्राजित, धृतराष्ट्र आदि ।

५. महत्त्वूपर्ण आख्यान : शतपथ में कुछ महत्त्वपूर्ण आख्यान हैं, जिनका इतिहास और पुराणों में बहुत विस्तार हुआ है । ये हैं : मनु एवं श्रद्धा । (१.१.४.१४ से १६), जलप्लावन की कथा तथा मत्स्य (१.८.१), इन्द्र-वृत्र-युद्ध तथा 'इन्द्रशत्रुर्वर्धस्व' (१.६.३), स्त्री-कामुक गन्धर्व (३.२.४.३), कद्रू-सुपर्णी (३.६.२), च्यवन - सुकन्या (४.१.५), स्वर्भानु (राहु) और सूर्यग्रहण (५.३.२), नमुचि और वृत्र (५.४.१ और १२.७.१-३), पृथु वैन्य (५.३.५.४), पुरूरवा - उर्वशी (११.५.१), राजा केशिन् (केशी) (११.८.४) ।

६. स्वाध्याय-प्रशंसा : शतपथ ब्राह्मण में स्वाध्याय (वेदाध्ययन) का बहुत अधिक महत्त्व बताया गया है । तीनों लोकों को दान करने से अधिक स्वाध्याय का महत्त्व है । स्वाध्याय करने वाले की सारी कामनाएँ पूर्ण होती हैं ।[३]

७. सृष्टि-प्रक्रिया : सृष्टि-उत्पत्ति का शतपथ के कांड ११ और १४ में बहुत विस्तार से वर्णन है । प्राकृतिक यज्ञ को सृष्टि का मूल बताया गया है ।[४] पहले जलीय सृष्टि, फिर हिरणमय पिंड (हिरण्यगर्भ), फिर पृथिवी, फिर क्रमशः फेन, मिट्टी, ओषधि-वनस्पति, मत्स्य आदि के बाद पशु-पक्षी, फिर क्रमशः मनुष्य आदि का वैज्ञानिक वर्णन है ।[५]

---

१. सैषा (सदानीरा) अप्येतर्हि कोसल-विदेहानां मर्यादा । शत० १.४.१.१७

२. शत० १३.५.४

३. स्वाध्यायोऽध्येतव्यः। स्वाध्याय-प्रशंसा । शत० ११.५.६ और ७

४. तस्माद् यज्ञात् .... पशून् तान् चक्रे । तस्मादश्वाः, गावः, अजावयः । यजु० ३१.६-७

५. (क) आपो ह वा इदग्रे सलितमेवास । हिरणमयमाण्डः संबभूव । शत० ११.१.६.१
(ख) आपः, फेनः, मृत् , सिकता, शर्करा, अश्मा, पृथिवी । शत० ६.१.३.१ से ७
(ग) प्रजापतिर्वा एष यज्ञः । शत० १४.१.२.१८

शतपथ ब्राह्मण के विषय में पं० भगवद्दत्त का कथन सत्य है कि –'जो अध्येता शतपथ पढ़ लेता है, वह याज्ञिक क्रिया का सर्वश्रेष्ठ पंडित कहा जाता है । शतपथ में वेदार्थ की कुंजी है । वैदिक ऐतिह्य का प्रामाणिक कथन है । यह अपूर्व ग्रन्थ है ।[1]

६. (ख) यजुर्वेदीय ब्राह्मण (कृष्ण यजुर्वेद)

तैत्तिरीय ब्राह्मण

१. तैत्तिरीय ब्राह्मण के रचयिता

तैत्तिरीय ब्राह्मण के रचयिता वैशम्पायन के शिष्य आचार्य तित्तिरि हैं । महाभारत शान्तिपर्व में वैशम्पायन को याज्ञवल्क्य का मातुल (मामा) बताया गया है और दोनों के मनमुटाव का भी उल्लेख किया गया है ।[2] वैशम्पायन का झुकाव तित्तिरि को ओर था, अतः उन्होनें याज्ञवल्क्य को अपमानित कर उसे अपनी शिष्यता से वंचित किया था । तित्तिरि ने तैत्तिरीय संहिता और तैत्तिरीय ब्राह्मण की रचना की । दूसरी ओर याज्ञवल्क्य ने यजुर्वेद की माध्यन्दिन-शाखा और शतपथ ब्राह्मण का संकलन किया ।

तैत्तिरीय ब्राह्मण के अन्तर्गत संमिलित काठकभाग (३.१० से १२) के प्रवक्ता काठक आचार्य हैं । इस शाखा का दक्षिण भारत के आन्ध्रप्रदेश, नर्मदा के दक्षिणी भाग तथा गोदावरी के तटवर्ती प्रदेशों में अधिक प्रचार था। प्रो० बर्नेल के अनुसार किंवदन्ती प्रचलित थी कि दक्षिण भारत की पालतू बिल्लियाँ भी तैत्तिरीय शाखा से परिचित थीं । सायणाचार्य की यही शाखा थी, अतः उन्होंने ब्राह्मण ग्रन्थों में तैत्तिरीय ब्राह्मण का भाष्य सबसे पहले किया ।

२. तैत्तिरीय ब्राह्मण का प्रतिपाद्य विषय

कृष्ण यजुर्वेदीय शाखा का एकमात्र यही ब्राह्मण संप्रति पूरा उपलब्ध है । काठक ब्राह्मण के केवल कुछ अंश ही प्राप्य हैं । शतपथ ब्राह्मण के तुल्य इसमें भी स्वरचिह्न हैं । यह इसकी प्राचीनता का द्योतक है । शतपथ के तुल्य यह भी विशालकाय है । यह तीन कांडों या अष्टकों में विभक्त है । प्रथम और द्वितीय कांड में ८-८ अध्याय या प्रपाठक है । तृतीय कांड में १२ अध्याय (प्रपाठक) हैं । इनके उपखंडों को 'अनुवाक' कहते हैं । इनकी संख्या ३५३ है ।

कांडों के अनुसार प्रतिपाद्य विषय ये हैं :

कांड १ : अग्न्याधान, गवामयन, वाजपेय, सोम, नक्षत्रेष्टि और राजसूय याग ।

कांड २ : अग्निहोत्र, उपहोम, सौत्रामणी, बृहस्पति सव, वैश्य सव आदि ।

कांड ३ : नक्षत्रेष्टियाँ और पुरुषमेध ।

प्रत्येक याग के उपयोगी ऋग्-मंत्रों का सर्वत्र निर्देश है । अधिकांश ऋचाएँ ऋग्वेद से ली गई हैं, कुछ नवीन हैं। कांड २ में ऋग्वेद के नासदीय सूक्त

---

१. द्रष्टव्य, भगवद्दत्त, वैदिक वाङ्मय का इतिहास, १९७४, पृष्ठ १७

२. विप्रियार्थं सशिष्यस्य मातुलस्य महात्मनः । महा० शान्तिपर्व ३१८.१७

(ऋग्० १०.१२९) के मंत्रों का विनियोग एक उपहोम (२.८) के लिए किया गया है। ऋग्वेद के कुछ प्रश्नों के उत्तर भी यहाँ मिलते हैं। यज्ञ को पृथिवी का अन्त और मध्य माना गया है।

वेदिमाहुः परमन्तं पृथिव्याः। वेदिमाहुर्भुवनस्य नाभिम्। तैत्ति० २.७.४ से १०

काठक ब्राह्मण के कुछ अंश प्राप्त हुए हैं। इनका संकलन डा० सूर्यकान्त ने 'काठक-ब्राह्मण-संकलनम्' नाम से प्रकाशित किया है।

३. तैत्तिरीय ब्राह्मण के कतिपय विशिष्ट प्रसंग

१. यज्ञमीमांसा : यजुर्वेदीय ब्राह्मण होने के कारण इसमें अध्वर्यु द्वारा किए जाने वाले यागों का विस्तृत वर्णन है। अन्य ब्राह्मणों में सोमयाग को विशेष महत्त्व दिया गया है। इस ब्राह्मण में इष्टियों, नक्षत्रों से संबद्ध नक्षत्रेष्टियों, पुरुषमेध, वैश्वसृज याग, नाचिकेतस अग्नि, सावित्र चयन, बृहस्पति सव, वैश्य सव आदि १२ सवों का तथा उपहोमों का विशेष रूप से वर्णन है।

२. अग्निहोत्र : अग्निहोत्र के विषय में कहा गया है कि यह अग्नि का भाग है।[1] अग्निहोत्र से सभी देवताओं की तृप्ति होती है, अतः इसे 'वैश्वदेव' (सभी देवों वाला) कहा जाता है।[2] जो अग्निहोत्र करता है, वह सभी देवों को भोग लगा देता है।[3] अग्निहोत्र प्रातः सूर्योदय के समय करना चाहिए।[4] अग्निहोत्र के प्रसंग में यह भी उल्लेख है कि उस समय जो भी अतिथि आवे, उसे अन्न आदि से तृप्त करे।[5] इससे ज्ञात होता है कि अतिथियज्ञ या 'अतिथिदेवो भव' अग्निहोत्र का ही एक अंग है।

३. बारह सव : तैत्तिरीय ब्राह्मण में १२ सवों का उल्लेख है। सब एक दिन चलने वाले (एकाह) यज्ञ हैं। इन यज्ञों में अभ्युदय, श्रीवृद्धि और इष्टसिद्धि की कामनाएँ की गई हैं। १२ सव ये हैं : बृहस्पति सव, वैश्य सव, ब्राह्मणसव, सोमसव, पृथिसव, गोसव, ओदन सव, मरुत्स्तोम, अग्निष्टुत, इन्द्रस्तुत, अप्तोर्याम और विघन। बृहस्पति सव ज्ञान के अभ्युदय के लिए है। इसी प्रकार वैश्य सव और ब्राह्मण सव दोनों वर्णों के अभ्युदय के लिए हैं। वैश्य सब वर्णों का पोषक है, अतः ब्राह्मणसव से पहले वैश्य के अभ्युदय की कामना की गई है।

४. उपहोम : ये छोटे गौण यज्ञ हैं। इनमें श्रौत और स्मार्त (स्मृतियों में वर्णित) सभी प्रकार के यज्ञों का वर्णन है।

५. क्रतु, सत्र, एकाह, अहीन : ये पारिभाषिक शब्द हैं। एक दिन से १२ दिन तक चलने वाले यज्ञों को 'क्रतु' कहते हैं। १२ से अधिक दिन चलने वाले यज्ञों को 'सत्र'

---

१. तैत्ति० ब्रा० २.३.६.४
२. किं दैवत्यम् अग्निहोत्रम् , वैश्वदेवम्। तैत्ति० ब्रा० २.१.४.६
३. तैत्ति० ब्रा० २.१.८.३
४. उदिते सूर्ये प्रातर्जुहोति। तैत्ति० ब्रा० २.१.२.६
५. ये गृहम् आगच्छन्ति, तान् अन्नेन तर्पयेत्। तैत्ति० ब्रा० २.१.५.१०

कहते हैं। ये ६ मास या कई वर्ष तक चलने वाले हो सकते हैं। एक दिन चलने वाले यज्ञ को 'एकाह' कहते हैं। इसी प्रकार दिनों के आधारपर द्वयह , पंचाह, षडह, द्वादशाह आदि २,५,६,१२ दिन चलने वाले यज्ञ हैं। द्वादशाह की गणना सत्र और अहीन दोनों में है। दो से बारह दिन चलने वाले यज्ञों को 'अहीन' कहते हैं।

६. नाचिकेतस (नाचिकेत) अग्नि : तैत्तिरीय ब्राह्मण के तृतीय कांड के ११ वें प्रपाठक में 'नाचिकेतस अग्नि' का वर्णन है। इसी स्थल पर कठोपनिषद् (३.१.१६) में वर्णित नचिकेता का प्रसिद्ध आख्यान भी है। 'नचिकेतस्' (नचिकेता) का अर्थ है - न (नहीं), चिकेतस् (ज्ञेय, वर्णनीय)। यह चिकेतस् चित् (जानना) धातु से बना है। अतः नचिकेतस् का अर्थ होता है - अनिर्वचनीय या अव्याख्येय ब्रह्म। मनुष्य एवं सृष्टि में विद्यमान आत्मतत्त्वरूपी अग्नि ही नाचिकेतस अग्नि है। इस आत्मतत्त्व या ब्रह्मतत्त्व का ही वर्णन कठोपनिषद् में किया गया है।

७. आख्यायिकाएँ : तैत्तिरीय ब्राह्मण (३.१०) में सबसे अधिक प्रसिद्ध आख्यान महर्षि भरद्वाज का है। इन्द्र से वरदान प्राप्त करके उन्होंने तीन जन्म में जो कुछ ज्ञान प्राप्त किया, वह समुद्र के किनारे पड़ी बालू की तीन मुट्ठी के बराबर है। इसमें बताया गया है कि ज्ञान (वेद) अनन्त है। ज्ञान का कहीं अन्त नहीं है। 'अनन्ता वै वेदाः'((वेद या ज्ञान अनन्त है)।[१] वास्तविक ज्ञान ब्रह्मतत्त्व है।

इसके अतिरिक्त ये आख्यान भी हैं - अगस्त्य और प्रह्लाद की कथा (तैत्ति० ब्रा० २.७.११), सीता और सावित्री के प्रेमाख्यान (तै०ब्रा० २.३.१०), उषा का प्रिय-प्राप्ति के लिए आख्यान (तैत्ति० ब्रा० ३.८.१६)। इसी प्रकार सृष्टि, यज्ञ और नक्षत्र-विषयक अनेक आख्यान हैं।

८. नारी-गौरव : तैत्तिरीय ब्राह्मण में नारी के गौरव का सुन्दर वर्णन है। उसे बहुत संमान दिया गया है। नारी (स्त्री) को श्री कहा गया है। उसे अर्धांगिनी बताया गया है। वह पति का आधा अंग है। स्त्री को यज्ञोपवीत धारण करने का अधिकार दिया गया है। यज्ञ में पति और पत्नी को साथ बैठने का विधान किया गया है। बिना पत्नी के बैठे यज्ञ अपूर्ण है।

श्रिया वा एतद् रूपं यत् पत्न्यः। तैत्ति० ब्रा० ३.९.४.७ और ८
अर्धो वा एष आत्मनः, यत् पत्नी। तैत्ति० ब्रा० ३.३.३.५
पत्न्यै व्रतोपनयनम्। तैत्ति० ब्रा० ३.३.३.२
अयज्ञो वा एषः। योऽपत्नीकः। तैत्ति० ब्रा० २.२.२.६

---

१. तैत्ति० ब्रा० ३.१०.११.३

९. आचारशिक्षा : तैत्तिरीय ब्राह्मण में आचार शिक्षा की अनेक बातें कही गई हैं । असत्य को छोड़ें और सत्य ही बोलें । सत्य बोलना देवत्व है ।[१] जीवन तपोमय होना चाहिए । तप से ही देवों और ऋषियों ने उच्च स्थिति प्राप्त की ।[२] श्रद्धा दिव्य गुण है । श्रद्धा से दिव्यता आती है । श्रद्धा संसार की पालक है ।[३] दान और परोपकार से संपत्ति सुरक्षित रहती है, वह नष्ट नहीं होती है ।[४] सप्तपदी की भावना मानते हुए सात पग जिसके साथ चल लिए वह हमारा मित्र है । ऐसी मित्रता को कभी न तोड़ें ।[५] मन प्रजापति है ।[६] मन ही सारे कर्मों का नियन्ता है । अतः मन की शुद्धि अत्यावश्यक है । मन की शुद्धि से ही सारे पाप नष्ट होते हैं ।[७]

१०. गवामयन : गवामयन याग क्या है : यह है संवत्सर चक्र से संबद्ध याग । गवाम् अयन में गो शब्द का अर्थ है सूर्य या सूर्य की किरणें, अयन का अर्थ है - उत्तरायण और दक्षिणायन । दोनों का समन्वित रूप है - अयन । अतः 'गवाम् अयन' का अर्थ है - सूर्य के दोनों अयनों को लेते हुए संवत्सररूपी चक्र । इसी का प्रतीक है - गवामयन याग । यह याग वर्ष भर चलता है । अन्य याग इसके अंग हैं । इसको सभी यज्ञों का आधार माना गया है ।

११. पुरुषमेध : पुरुषमेध में मेध शब्द अभ्युदय और उन्नति का बोधक है, नरबलि का नहीं । पुरुषमेध प्रकरण में वर्णित व्यवसायों का उल्लेख कृष्ण यजुर्वेदीय संहिताओं में नहीं है । यह प्रकरण शुक्ल यजुर्वेद (अध्याय ३०) से मुख्य रूप से लिया गया है । इसमें १९८ व्यवसायों का उल्लेख है । पुरुषमेध के द्वारा इन व्यवसायों और धन्धों के अभ्युदय की कामना की गई है ।

१२. नक्षत्रेष्टियाँ : यह तैत्तिरीय ब्राह्मण की विशेषता है । नक्षत्रों से संबद्ध यागों के द्वारा इस प्रकरण में ज्योतिष-संबन्धी अनेक तथ्यों का उल्लेख है ।

१३. वर्णव्यवस्था : तैत्तिरीय ब्राह्मण में वर्णव्यवस्था पूर्णरूप से प्रतिष्ठित है । इसमें विभिन्न वर्णों के कर्तव्यों आदि का भी निर्देश है । यह वर्णव्यवस्था जातिप्रथा से सर्वथा भिन्न है । यह कर्तव्यों और व्यवसायों पर निर्भर है ।

१४. क्षत्रियों के दो भेद : तैत्तिरीय ब्राह्मण में क्षत्रियों या राजन्य वर्ग को दो भागों में बाँटा गया है : १. वे क्षत्रिय जो राज्य करने के अधिकारी थे, उन्हें 'राजपुत्र' नाम दिया गया है । २. जो क्षत्रिय राज्य करने के अधिकारी नहीं थे, उन्हें 'उग्र' कहा गया है ।

---

1. अनृतात् सत्यमुपैमि । मानुषाद् देवत्वमुपैमि । तैत्ति० ब्रा० १.२.१
2. तपसा देवा देवतामग्र आयन् । तैत्ति० ब्रा० ३.१२.३.१
3. श्रद्धया देवो देवत्वम् अश्नुते । श्रद्धा विश्वस्य भर्त्री । तैत्ति० ब्रा० ३.१२.३.२
4. न ता नशन्ति न दभाति तस्करः । ... याभिर्यजते ददाति च । तै० ब्रा० २.४.६.८
5. सखायः सप्तपदा अभूम । सख्यात् ते मा योषाम । तै० ब्रा० ३.७.७.११
6. मनो वै प्रजापतिः । तै० ब्रा० ३.७.१.२
7. येन पूतस्तरति दुष्कृतानि । तै०ब्रा० ३.१२.३.४

१५. वर्णों की उत्पत्ति : तैत्तिरीय ब्राह्मण में वर्णों की उत्पत्ति से संबद्ध एक रोचक प्रसंग है। इसमें ऋग्वेद से वैश्य वर्ण और मूर्ति की उत्पत्ति, यजुः से क्षत्रिय और गति की तथा सामवेद से ब्राह्मण और ज्योति की उत्पत्ति का उल्लेख है।[1] वैश्य से संबद्ध शिल्प और व्यवसाय हैं। क्षत्रिय से संबद्ध गतिशीलता के सारे कर्म हैं और ब्राह्मण से संबद्ध ज्ञान-ज्योति के कार्य हैं। इसके अनुसार सारे वैश्य ऋग्वेदी हैं, क्षत्रिय यजुर्वेदी और ब्राह्मण सामवेदी।

१६. सृष्टि-प्रक्रिया : सृष्टि-उत्पत्ति की दृष्टि से तैत्तिरीय ब्राह्मण में पर्याप्त सामग्री है।[2] इस पर ऋग्वेद के नासदीय सूक्त (ऋग्० १०.१२९) का बहुत प्रभाव है। पहले असत् से सत् की उत्पत्ति, फिर मन की, बाद में धूम, अग्नि, ज्योति, अभ्र आदि की। तत्पश्चात् ऋतुओं, देवों और मनुष्यों की। इसमें मन का सबसे अधिक योगदान रहा।[3] सृष्टि की सुरक्षा प्राकृतिक नियमों पर निर्भर है। इन्हें 'ऋत' कहते हैं। ऋत का उल्लंघन कोई नहीं कर सकता।[4]

१७. वराह : पुराणों में वर्णित वराह (शूकर) अवतार का संकेत तैत्तिरीय ब्राह्मण और शतपथ ब्राह्मण में मिलता है। यहाँ वराह को पृथिवी का उद्धारक और प्रजापति कहा गया है।[5]

७. सामवेदीय ब्राह्मण

(१) तांड्य महाब्राह्मण (पंचविश, प्रौढ)

उपलब्ध ब्राह्मण : अन्य वेदों के ब्राह्मणों की अपेक्षा सामवेद के ब्राह्मणों की संख्या अधिक है। सामवेद के उपलब्ध ब्राह्मण ८ हैं। सायण ने इनका उल्लेख इस प्रकार से किया है :

अष्टौ हि ब्राह्मणग्रन्थाः प्रौढं ब्राह्मणमादिमम्।
षड्विंशाख्यं द्वितीयं स्यात् ततः सामविधिर्भवेत्।
आर्षेयं देवताध्यायो भवेदुपनिषत् ततः।
संहितोपनिषद् वंशो ग्रन्था अष्टावितीरिताः॥

---

१. ऋग्भ्यो जातं वैश्यं वर्णमाहुः। तैत्ति० ब्रा० ३.१२.९.२
ऋग्भ्यो जातां सर्वशो मूर्तिमाहुः। तै० ब्रा० ३.१२.९.१
यजुर्वेदं क्षत्रियस्याहुर्योनिम्। तैत्ति० ब्रा० ३.१२.९.२
सामवेदो ब्राह्मणानां प्रसूतिः। तैत्ति०ब्रा० ३.१२.९.२

२. तैत्ति० ब्रा० कांड २, प्रपा० २

३. असतो मनोऽसृज्यत। मनः प्रजापतिमसृजत। प्रजापतिः प्रजा असृजत। तैत्ति०ब्रा० २.२.९.१०

४. ऋतमेव परमेष्ठि। ऋतं नात्येति कश्चन। तैत्ति० ब्रा० १.५.५

५. स (प्रजापतिः) वै वराहं रूपं कृत्वा उपन्यमज्जत्। तै० ब्रा० १.१.३.६
तां (पृथिवीं) वराह उज्जघान। शत० १४.१.२.११

१. तांड्य ब्राह्मण (प्रौढ, पंचविंश), २. षड्विंश, ३. सामविधान (सामविधि), ४. आर्षेय, ५. देवताध्याय, ६. उपनिषद् (मंत्रब्राह्मण और छान्दोग्य उपनिषद्), ७. संहितोपनिषद् , ८. वंशब्राह्मण । ये कौथुम और राणायनीय शाखाओं से संबद्ध हैं ।

जैमिनीय शाखा से संबद्ध तीन ब्राह्मण हैं । ये हैं : १. जैमिनीय ब्राह्मण, २. जैमिनीय आर्षेय ब्राह्मण , ३. जैमिनीय उपनिषद् (छान्दोग्य) ब्राह्मण ।

उपर्युक्त ८ ब्राह्मणों में से केवल प्रथम और द्वितीय अर्थात् तांड्य और षड्विंश को पूर्ण ब्राह्मण का स्थान प्राप्त है । शेष सामविधान आदि ६ ब्राह्मण 'अनुब्राह्मण' में गिने जाते हैं । ये वेदों की अनुक्रमणिकाओं के तुल्य लघुकाय ग्रन्थ हैं , अतः इन्हें ब्राह्मणग्रन्थों के तुल्य बताकर 'अनुब्राह्मण' कहा गया है । सामवेदीय अनुपलब्ध ब्राह्मणों का विवरण पीछे दिया जा चुका है ।

१. तांड्य ब्राह्मण के रचयिता

तांड्य ब्राह्मण को ही पंचविंश ब्राह्मण और प्रौढ ब्राह्मण कहा जाता है । यह विशालकाय ग्रन्थ है, अतः इसे ब्राह्मण के स्थान पर महाब्राह्मण भी कहते हैं । इसके रचयिता सामवेदीय आचार्य 'तांडि' माने जाते हैं । उनके द्वारा विरचित होने के कारण इसे ताण्ड्य (ताण्डिन्) ब्राह्मण कहा जाता है । जैमिनीय ब्राह्मण में इसे तांड्य कहा गया है - 'तदु होवाच ताण्ड्यः' । आपस्तम्ब श्रौतसूत्र में भी इसे 'ताण्ड्यम्' कहा है । शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र (३.३.२७) के भाष्य में ताण्डिन् और शाट्यायिन् शाखाओं का उल्लेख किया है ।

२. तांड्य ब्राह्मण का प्रतिपाद्य विषय

तांड्य ब्राह्मण २५ अध्यायों में विभक्त हुआ है , अतः इसे 'पंचविंश ब्राह्मण' कहते हैं । विषय-विवेचन की प्रौढता के कारण इसे 'प्रौढ ब्राह्मण' भी कहते हैं । २५ अध्याय ऐतरेय आदि के तुल्य ५ अध्यायों की पंचिका हैं । इसमें पाँच-पाँच की ५ पंचिकाएँ हैं । इसका संबन्ध सामवेद की कौथुम शाखा से है ।

इसका मुख्य प्रतिपाद्य विषय सोमयाग है । इसमें ज्योतिष्टोम से प्रारम्भ करके एक हजार वर्ष तक चलने वाले सोमयागों का वर्णन है । इसमें इसी के अन्तर्गत स्तोत्र, स्तोमं, उनकी विष्टुतियों आदि का विस्तृत वर्णन है । यह उद्गाता के कार्यों की विस्तृत विवेचना के कारण आदरणीय ब्राह्मण माना जाता है ।

अध्यायों के अनुसार प्रतिपाद्य विषय ये हैं :

अध्याय १ : उद्गाता के लिए पठनीय मंत्रों का निर्देश ।

अध्याय २ और ३ : त्रिवृत् , पंचदश, सप्तदश आदि स्तोमों की विष्टुतियाँ ।

अध्याय ४ और ५ : वर्षभर चलने वाले 'गवामयन' याग का वर्णन ।

अध्याय ६ से ९ : (बारहवें खंड तक) : ज्योतिष्टोम, उक्थ्य और अतिरात्र का वर्णन । १२ से आगे के खंडों में विभिन्न प्रायश्चित्तों की विधियाँ हैं ।

अध्याय १० से १५ : द्वादशाह यागों का वर्णन ।

अध्याय १६ से १९ : एकाह यागों का वर्णन ।

अध्याय २० से २२ : अहीन (२ से १२ दिन वाले) यागों का वर्णन ।

अध्याय २२ से २५ : सत्र यागों का वर्णन ।

इसमें कुल १७८ सोमयागों का वर्णन है । अहीन याग ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों के लिए है । इसमें दक्षिणा दी जाती है । यजमान अनेक हो सकते हैं । सत्र याग १३ दिन से लेकर वर्षों तक चलता है । इसमें ब्राह्मण यजमान होंगे । दक्षिणा नही दी जायेगी । १७ से २४ तक यजमान हो सकते हैं । यह सोमयाग का ही अंग है ।

३. तांड्य ब्राह्मण की कुछ प्रमुख विशेषताएँ

१. रचना-वैशिष्ट्य : तांड्य ब्राह्मण अत्यन्त सुव्यवस्थित और सुसंपादित है । इसकी भाषाशैली, रचनासौष्ठव और वाक्यविन्यास सुनियोजित है । इसकी प्रत्येक पंक्ति ही नहीं, अपितु प्रत्येक शब्द नया-तुला है । इसमें न अनावश्यक विस्तार है और न अत्यन्त संक्षेप । अतएव धर्म और आचार-संहिता के लिए यह सुविख्यात है ।

२. सोमयाग : इसमें सोमयागों (एकाह से सत्र यागों तक) का सांगोपांग वर्णन है ।

३. सामगान की प्रक्रिया : ऊह और ऊह्यगानों के विशद विवेचन के लिए तांड्य ब्राह्मण अत्यन्त प्रमाणिक ग्रन्थ हैं । सभी सामों, स्तोत्रों और उनकी विष्टुतियों के लिए इसमें अत्यन्त उपादेय सामग्री प्राप्य है ।

४. व्रात्य यज्ञ : इसमें 'व्रात्य यज्ञ' विशेष महत्त्वपूर्ण है । यह संस्कारहीन व्यक्तियों की शुद्धि के लिए होता है । यह एकाह (एक दिन का) याग होता है । इसमें सांस्कृतिक दृष्टि से बहुमूल्य सामग्री मिलती है । ऋत्विजों को दक्षिणा में उष्णीष (पगड़ी), प्रतोद (बैल हाँकने का डंडा), धनुर्दण्ड, इक्के जैसा रथ, काले किनारे की धोती, रजत निष्क (चाँदी का गले का आभूषण) मिलता था । अन्यों को लाल किनारे की धोती, दो जूते और मृगचर्म आदि । (तां० ब्रा० १७.१.१४-१५)

५. सांस्कृतिक और ऐतिहासिक सामग्री : भौगोलिक ज्ञान के लिए इसमें विपुल सामग्री है । कुरुक्षेत्र और सरस्वती के क्षेत्र को स्वर्गतुल्य बताया गया है । (अ० २५) । सरस्वती नदी के लुप्त होने के स्थान 'विनशन' और उसके पुनः प्रकट होने के स्थान 'प्लक्ष प्रास्रवण' का वर्णन है । (तां० २५.१०.१६) । इसमें यमुना नदी, नैमिषारण्य, खांडव वन, कुरु-पांचाल एवं मगध जनपद आदि का उल्लेख है । निषाद आदि जातियों का भी उल्लेख मिलता है । (तां० १६.६.७) ।

६. यज्ञ का महत्त्व : इसमें यज्ञ का बहुत महत्त्व वर्णित है । यज्ञ न करने वालों को निकृष्ट और वध्य बताया गया है । (तां० १८.१.९) ।

२. षड्विंश ब्राह्मण

यह कौथुम शाखीय सामवेद का महत्त्वपूर्ण ब्राह्मण है। यह पूर्वोक्त पंचविंश के स्थान पर षड्विंश ब्राह्मण है, अर्थात् इसमें २५ के स्थान पर २६ अध्याय हैं। यह पंचविंश (तांड्य) ब्राह्मण का ही परिशिष्ट समझा जाता है। सायण ने अपने भाष्य में इसे 'तांड्यैकशेष ब्राह्मण' अर्थात् तांड्य का एक भाग या परिशिष्ट कहा है। तांड्य ब्राह्मण में सोमयाग के जिन विषयों का वर्णन नहीं हुआ है, उनका इसमें विवेचन है। अतः इसे तांड्य का परिशिष्ट समझा जाता है।

षड्विंश ब्राह्मण में ६ अध्याय हैं। इनके अवान्तर भेद खंड हैं। इसके प्रथम पाँच अध्यायों में यज्ञ का ही विषय वर्णित है। अन्तिम अध्याय (अ० ६) को 'अद्भुत ब्राह्मण' कहते हैं। इसमें भूकम्प, अतिवृष्टि, अकाल, अनिष्ट, कुस्वप्न और अपशकुनों आदि के साथ ही विभिन्न उत्पातों की शान्ति के लिए विभिन्न याग आदि का वर्णन है। यह ब्राह्मण तत्कालीन मान्यताओं, प्रथाओं आदि के ज्ञान के लिए बहुत उपयोगी है। इन विषयों को लेकर परकालीन धर्मशास्त्रों आदि में प्रायश्चित्तों और विभिन्न यज्ञों का वर्णन है।

इसके प्रथम अध्याय में 'सुब्रह्मण्या' ऋचा का विशेष वर्णन है। भूः, भुवः और स्वः इन तीन महाव्याहृतियों से क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद की उत्पत्ति का वर्णन है। अभिचार यज्ञों के समय ऋत्विज् लाल पगड़ी और लाल धोती पहनते थे।[1]

ब्राह्मणों के लिए सन्ध्योपासना का समय अहोरात्र की सन्धि अर्थात् प्रातः और सायं संधिवेला बताया गया है।[2]

षड्विंश ब्राह्मण में यज्ञिय विधानों के प्रसंग में २४ आख्यायिकाएँ आई हैं। इनमें इन्द्र और अहल्या वाला आख्यान बहुत प्रसिद्ध है।

(३) सामविधान ब्राह्मण

प्रतिपाद्य विषय की दृष्टि से यह ब्राह्मण अन्य ब्राह्मणों से सर्वथा भिन्न है। इसमें जादू-टोने से संबद्ध सामग्री बहुत है। विभिन्न उपद्रवों की शान्ति के लिए सामगान के साथ ही विभिन्न अनुष्ठानों का भी विधान है। इसमें प्रतिपादित विषय अधिकांशतः धर्मशास्त्र के क्षेत्र में आते हैं। सामविधान ब्राह्मण में श्रौत यागों के साथ ही प्रायश्चित्त-विधान, कृच्छ्र आदि व्रत, काम्य याग और अभिचार कर्मों का भी वर्णन है। विषय-वस्तु की दृष्टि से इस ब्राह्मण का क्षेत्र बहुत व्यापक है।

सामविधान-ब्राह्मण में तीन प्रपाठक और २५ अनुवाक हैं। इनमें वर्णित विषय-वस्तु संक्षेप में इस प्रकार है :

---

१. लोहितोष्णीषा लोहितवाससो निवीता ऋत्विजः प्रचरन्ति। षड्० ४.२२

२. तस्माद् ब्राह्मणोऽहोरात्रस्य संयोगे सन्ध्यामुपास्ते। षड्० ५.५.४

प्रपाठक १ : प्रजापति से सृष्टि की उत्पत्ति, सामप्रशंसा, सामस्वरों के देवता, देवों लिए यज्ञ, कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र व्रतों का वर्णन, स्वाध्याय और अग्न्याधान के नियम, दर्श-पूर्णमास, अग्निहोत्र, सौत्रामणी आदि यागों का वर्णन , श्रौतसूत्रों के साथ देव-प्रीत्यर्थ सामगान, विभिन्न पापों के लिए प्रायश्चित्तों का वर्णन ।

प्रपाठक २ और ३ : काम्य कर्म, रोगनिवृत्ति एवं क्षेम के लिए विभिन्न प्रयोग, अभीष्ट सिद्धि, राज्याभिषेक, अभिचार-शान्ति, युद्ध-विजय आदि के लिए विभिन्न प्रयोग दिए गए हैं । अन्त में साम-संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्यों का वर्णन, अध्ययन के अधिकारी और दक्षिणा का वर्णन है ।

सामविधान ब्राह्मण की कतिपय विशेषताएँ

१. इसमें श्रौत और तान्त्रिक विधियों का समन्वय है । इसमें अभिचार कार्यों के लिए सामगान के साथ कतिपय अनुष्ठानों के विधान है । जैसे - शत्रु को भगाने के लिए चिता की भस्म शत्रु के घर या बिस्तर पर डालना (२.६.१४) । शत्रु को मारने लिए शत्रु की आटे की मूर्ति बनाकर उसका चाकू से गला काटना और उसे आग में डालना (२.५.४) । इसी प्रकार पुत्र-प्राप्ति के लिए तथा राज्यक्ष्मा (T.B.) दूर करने के लिए कुछ अनुष्ठान दिए हैं (२.४.९) ।

२. अथर्ववेद में तो अभिचार के मंत्र हैं, परन्तु इसमें अन्य वेदों के मंत्रों का भी अभिचार कर्मों के लिए प्रयोग किया गया है । ऐसे ऋक् और यजुः के मंत्रों के प्रयोग के लिए स्वतंत्र ग्रन्थ 'ऋग्विधान' और 'यजुर्विधान' है ।

३. इस ब्राह्मण में न पुनरुक्तियाँ हैं और न अत्यन्त संक्षेप । यह ब्राह्मण ब्राह्मणग्रन्थों और सूत्र-ग्रन्थों के बीच की शैली में लिखा गया है ।

४. इसमें काम्य प्रयोग और प्रायश्चित्तों का विधान विशेष रूप से है ।

५. इसमें विविध व्रतों का प्रारम्भिक रूप मूल प्राप्य है । जैसे - किसी इष्टसिद्धि के लिए कमर तक जल में खड़े होकर किसी विशेष मंत्र का जप करना ।

६. यह ब्राह्मण धर्मसूत्रों की पूर्वपीठिका है । इसमें विविध पापों के लिए प्रायश्चित्तों का वर्णन है । यह ब्राह्मण पापों, अपराधों और कुकर्मों के सामाजिक अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण है ।

(४) आर्षेय ब्राह्मण

इस ब्राह्मण में ३ प्रपाठक हैं, जो ८२ खंडों मे विभक्त हैं । यह ब्राह्मण एक प्रकार से आर्ष-अनुक्रमणी का काम करता है । इसमें सामगान के ऋषियों की विस्तृत सूची नहीं है । इसमें सामगानों के नाम तथा उनके अन्य नामों का उल्लेख है । जिन ऋषियों ने जो गान प्रचलित किए थे या जो उन गानों के प्रवर्तक हैं , उन गानों के नाम उन ऋषियों के नाम पर रखे गए हैं। उनका इसमें विवरण है । इस दृष्टि से यह ब्राह्मण महत्त्वपूर्ण है । सामगान के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए यह ब्राह्मण विशेष उपयोगी है ।

सामगान के ४ प्रकारों का उल्लेख पहले किया जा चुका है । आर्षेय ब्राह्मण में इनमें से केवल दो प्रकार के गानों का वर्णन है । ये हैं : १. ग्रामगेय, २. अरण्यगेय । इसमें ऊह और ऊह्य गानों पर विचार नहीं किया गया है ।

सामगानों का नामकरण प्रायः पाँच आधारों पर हुआ है । इनके कारण सामगानों की पाँच कोटियाँ हो गई हैं । पाँच आधार ये हैं : १. उन ऋषियों के नामों पर, जिन्होंने उनका साक्षात्कार किया था । २. ऋचा के प्रारम्भिक पदों के आधार पर । ३. गान के अन्तिम भाग (निधन) के आधार पर । ४. प्रयोजन के आधार पर । जैसे - रक्षोघ्न (राक्षसों के नाशार्थ), ५. इनसे भिन्न अन्य आधार पर । जैसे वीङ्क आदि सामगान । इनमें से प्रथम कोटि के नाम साक्षात्कर्ता ऋषियों के नामों का उल्लेख करता है । जैसे अग्नेर्वैश्वानरस्य रक्षोघ्नम्, अत्रेर्वा वसिष्ठस्य वीङ्कम्' अर्थात् वैश्वानर अग्नि का रक्षोघ्न सामगान, अत्रि या वसिष्ठ का वीङ्क सामगान (१.७.३) । आर्षेय ब्राह्मण ऋषि के नाम के साथ उनके गोत्र-नाम का भी उल्लेख कर देता है । जैसे - हविष्मत् गान के ऋषि हैं - हविष्मान् । इनका संबन्ध अंगिरा (अंगिरस्) गोत्र से है ।

अधिकांश विद्वानों का मत है कि आर्षेय ब्राह्मण और देवताध्याय ब्राह्मण एक ही ग्रन्थ के दो भाग हैं । एक में सामगान के ऋषियों का वर्णन है और दूसरे में देवों का । आर्षेय ब्राह्मण में ग्रामगेय गानों का उल्लेख सामवेद संहिता के क्रम से है ।

(५) देवताध्याय ब्राह्मण

आकार की दृष्टि से यह ब्राह्मण बहुत छोटा है । यह सूत्र शैली में लिखा गया है । इसमें ४ खंड हैं । कुछ संस्करणों में केवल ३ खंड ही हैं । इसमें सामगानों के देवताओं का विशेषरूप से वर्णन है ।

खंडों के अनुसार वर्ण्य-विषय इस प्रकार है :

खंड १ : इसमें विभिन्न सामों के संबन्ध में देवताओं का वर्णन है । सामगान के देवताओं के रूप मे सर्वप्रथम इन देवताओं का उल्लेख है : अग्नि, इन्द्र, प्रजापति, सोम, वरुण, त्वष्टा, अंगिरस् , पूषा (पूषन्), सरस्वती और इन्द्राग्नी । इन देवों से संबद्ध विभिन्न सामगानों का भी उल्लेख है ।

खंड २ : इस खंड में छन्दों के देवता और उनके वर्णों का विशेष वर्णन है ।

खंड ३ : इस खंड में सामवेदीय छन्दों के नामों की निरुक्तियाँ दी गयी हैं । इन निरुक्तियों में से अनेक निरुक्तियों को यास्क ने अपने निरुक्त में ग्रहण किया है । जैसे - 'गायत्री गायतेः स्तुतिकर्मणः' (निरुक्त ७.१२) अर्थात् स्तुति अर्थ वाली गै धातु से गायत्री शब्द बना है । इसी प्रकार निरुक्त (७.१२) में अनुष्टुप्, उष्णिह , ककुभ् , जगती, पंक्ति, बृहती, त्रिष्टुप् आदि के निर्वचन दिए हैं ।

खंड ४ : इसमें गायत्र साम की आधाररूप गायत्री के विभिन्न अंगों की देवरूपता का वर्णन है । भाषाशास्त्र की दृष्टि से इसका निर्वचन वाला खंड अतिमहत्त्व का है । इसमें

निर्वचन बहुत प्रामाणिक ढंग से दिए गए हैं ।

(६) उपनिषद् ब्राह्मण

इसी का दूसरा नाम 'छान्दोग्य ब्राह्मण ' है । इसमें १० प्रपाठक हैं । यह ब्राह्मण दो ग्रन्थों का संमिलित रूप है ।

(१) मंत्र ब्राह्मण : प्रथम दो प्रपाठकों को मंत्र ब्राह्मण या मन्त्र पर्व कहते हैं । प्रत्येक प्रपाठक के ८-८ खंड हैं । इनमें गृह्य संस्कारों में विनियुक्त मंत्रों का संकलन है । इन मंत्रों का ही गोभिल और खादिर गृह्यसूत्रों में विभिन्न गृह्य संस्कारों में विनियोग है । इन मंत्रों की संख्या २६८ है । प्रथम प्रपाठक में गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन, चूडाकर्म, उपनयन, विवाह और समावर्तन के मंत्र दिए गए हैं । द्वितीय प्रपाठक में भूतबलि, आग्रहायणी कर्म, पितृपिण्डदान, देवबलिहोम, दर्श-पूर्णमास, आदित्योपस्थान, नवगृह-प्रवेश, स्वस्त्ययन और प्रसादप्राप्ति आदि के मंत्र हैं । इसमें अन्य संहिताओं और ब्राह्मणों से भी मंत्र लिए गए हैं । अनेक मंत्रों की भाषा सरल और रोचक है। जैसे- लाजाहोम का मंत्र -

इयं नार्युपब्रूतेऽग्नौ लाजानावपन्ती ।
दीर्घायुरस्तु मे पतिः शतं वर्षाणि जीवतु ।। १.३.८-९

लाजाहोम में पत्नी पति के दीर्घायु की कामना करती है ।

छान्दोग्य ब्राह्मण पर दो व्याख्याएँ हैं- १. गुणविष्णु कृत 'छान्दोग्यमंत्र-भाष्य' २. सायणकृत- वेदार्थप्रकाश । गुणविष्णु ने ब्राह्मणों, उपनिषदों, निरुक्त, मीमांसा आदि के बहुत उद्धरण दिए हैं । गुणविष्णु ने ऋषि, देवता, छन्द और विनियोग का विस्तृत विवरण दिया है । अर्थ के महत्त्व को दिखाने के लिए उन्होंने 'स्थाणुरयं भारहारः किलाभूद्०' (निरुक्त० १.१८) को उद्धृत किया है कि जो अर्थ नहीं जानता वह मूर्ख है और जो अर्थ जानता है, उसी को सफलता प्राप्त होती है । सायण ने अपने भाष्य में गुणविष्णु का अनुकरण किया है । सायण का भाष्य अधिक विस्तृत है ।

(२) छान्दोग्य उपनिषद् : छान्दोग्य ब्राह्मण के शेष ८ प्रपाठक छान्दोग्य उपनिषद् है। । यह कौथुम शाखा से संबद्ध है । शंकराचार्य ने इसे 'तण्डिनाम् उपनिषद्' अर्थात् तांड्य ब्राह्मण से संबद्ध उपनिषद् कहा है ।

इसकी विषय-वस्तु सुव्यवस्थित है । वर्णनशैली मनोरम है । संपूर्ण ग्रन्थ में क्रमबद्धता है । इसमें तत्त्वज्ञान और उससे संबद्ध कर्म और उपासनाओं का सुन्दन वर्णन है । श्री शंकराचार्य ने इसका भाष्य किया है, अतः इसका महत्त्व बढ़ गया है । इसके प्रथम अध्याय में ओंकार का महत्त्व और उसकी उपासना का वर्णन है । द्वितीय अध्याय में विविध सामों की उपासना का वर्णन है । तृतीय अध्याय में सूर्योपासना, गायत्री का महत्त्व, ब्रह्म, यज्ञ, प्राण और मन का विवेचन है । इसी प्रकार अन्य अध्यायों में विविध उपासनाओं का विवेचन है । सामगान के दार्शनिक पक्ष पर प्रकाश डाला गया है । ओंकार

और साम के रहस्यात्मक स्वरूप का विवेचन किया गया है । किसी कामना से यज्ञानुष्ठान और सामगान करने वालों की कड़ी आलोचना की गई है । इसमें अनेक आख्यानों का भी वर्णन है । यथा-दाल्भ्य और प्रवाहण का संवाद, सत्यकाम का आख्यान, अश्वपति का आख्यान, राजा जानश्रुति और रैक्व का उपाख्यान, उपस्ति का आख्यान, उद्दालक और श्वेतकेतु का संवाद, सनत्कुमार और नारद का संवाद आदि ।

(७) संहितोपनिषद् ब्राह्मण

संहितोपनिषद् ब्राह्मण शास्त्रीय गान की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है । संहितोपनिषद् का अर्थ है - संहिता के उपनिषद् अर्थात् रहस्य को बताने वाला ब्राह्मण ग्रन्थ । यहाँ संहिता शब्द का अर्थ सामवेदसंहिता आदि नहीं है । यहाँ पर संहिता शब्द का अर्थ है - साम के गान की संहिता अर्थात् सातत्य । शास्त्रीय गान में सप्त स्वरों का मन्द्र मध्य और तार स्थानों से समन्वय अत्यावश्यक है । इस समन्वय के बिना गान में सातत्य नहीं होता । सायण के अनुसार यह समन्वय ही संहिता है । इसके रहस्य का प्रतिपादन करना इस ब्राह्मण का उद्देश्य है । सायण का कथन है -

साम्नां सप्त स्वरा भवन्ति । ... मन्द्रमध्यताराणि वाचः स्थानानि भवन्ति । एतेषां यः संनिकर्षः सा संहिता । संहितो० ब्रा० भाष्य-भूमिका

सामगान के वैज्ञानिक पक्ष के उद्घाटन के लिए यह ब्राह्मण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है ।

संहितोपनिषद् ब्राह्मण का प्रतिपाद्य विषय

इस ब्राह्मण में ५ खंड हैं, जो सूत्रों में विभक्त हैं । इनका संक्षिप्त विवरण यह है :

खंड १ : इसमें तीन प्रकार की गान-संहिताओं का विस्तृत वर्णन है । ये तीन गान- संहिताएँ हैं - १. देवहू संहिता, २. वाक्शबहू, ३. अमित्रहू । इनके स्वरूप और फल का वर्णन हे । देवहू संहिता का उच्चारण मन्द्र स्वर से होता है । इसके गान से देवता शीघ्र पधारते हैं । देवहू के उद्गाता को धन-धान्य, श्री की प्राप्ति होती है । यह कल्याणकारिणी है । अन्य दो संहिताएँ अमंगलकारक हैं । वाक्शबहू में अस्पष्ट उच्चारण के कारण उद्गाता को हानि होती है । इसी प्रकार अमित्रहू अशास्त्रीय गान के कारण हानिकारक है । संहिता का एक अन्य प्रकार से विभाजन किया गया है - १. शुद्धा, २. दुःस्पृष्टा, ३. निर्भुजा । शुद्ध और मधुर स्वर से उच्चरित सामगान शुभ है । अशुद्ध और असंगत सामगान सदा कष्टकारी है ।

खंड २ और ३ : इन दो खंडों में सामगान का शास्त्रीय विवेचन है । इनमें सामगान की विधि, स्तोम, अनुलोम स्वर तथा विविध स्वरों का विशद विवेचन है । ये अध्याय शास्त्रीय गान के ज्ञान के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं ।

खंड ४ और ५ : इनमें पूर्वोक्त विषय का ही विस्तृत विवेचन है ।

संहितोपनिषद् ब्राह्मण की कतिपय विशेषताएँ

१. सामगान की शास्त्रीय विधि के ज्ञान के लिए यह ब्राह्मण अतिमहत्त्वपूर्ण है। टीकाकार द्विजराज भट्ट का कथन है कि सामब्रह्म के रसज्ञों को यह ब्राह्मण शास्त्रीय ज्ञान का शुद्ध रूप बताता है, 'सामब्रह्मरसज्ञानां विशुद्ध-ज्ञानहेतवे'।

२. इसके तृतीय खंड में एक प्रसिद्ध सुभाषित 'विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम०' दिया गया है। जिसका अभिप्राय है कि विद्या बहुमूल्य निधि है। इसे सुयोग्य, सुपात्र, जिज्ञासु और कृतज्ञ को ही देना चाहिए। अयोग्य, अपात्र, अजिज्ञासु और कृतघ्न को कभी विद्यादान न करें। इन सुभाषितों को निरुक्त (२.४) और मनुस्मृति (२.११४) ने भी उद्धृत किया है।

इस ब्राह्मण की दो टीकाएँ हैं - १. द्विजराज भट्टकृत भाष्य, २. सायण - भाष्य 'वेदार्थप्रकाश। इस ब्राह्मण पर सायण की अपेक्षा द्विजराज भट्ट का भाष्य अधिक विस्तृत और प्रमाणिक है। द्विजराज सायण से पूर्ववर्ती आचार्य हैं।

(८) वंश ब्राह्मण

यह ब्राह्मण बहुत छोटा है। इसमें सामगान के प्रवर्तक ऋषियों और आचार्यों की वंश-परंपरा दी गई है। प्राचीन ऋषियों की वंश-परंपरा के ज्ञान के लिए यह यह ब्राह्मण उपयोगी है।

इसमें तीन खंड हैं। इसमें स्वयंभू ब्रह्मा से सामवेद की परंपरा का प्रारम्भ माना है। स्वयंभू ब्रह्मा से कश्यप तक तथा कश्यप से शर्वदत्त गार्ग्य तक की वंश-परम्परा इस प्रकार दी गई है।

स्वंयभू ब्रह्मा से प्रजापति ने, प्रजापति से मृत्यु ने, मृत्यु से वायु ने , वायु से इन्द्र ने, इन्द्र से अग्नि ने और अग्नि से कश्यप ने सामवेद प्राप्त किया। तदनन्तर यह परंपरा कश्यप ऋषि से शर्वदत्त गार्ग्य तक आई।

इसमें अन्य कोई उल्लेखनीय विषय नहीं है।

(९) जैमिनीय-ब्राह्मण

सामवेद की जैमिनि-शाखा के तीन ब्राह्मण प्राप्त होते हैं। ये हैं : १. जैमिनीय ब्राह्मण, जैमिनीय आर्षेय ब्राह्मण, ३. जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण। सामवेद की कौथुम और राणायनीय शाखा के साथ ही जैमिनीय शाखा भी प्रचलित रही। जैमिनीय शाखा वाले ब्राह्मणों में प्राचीन वैदिक रूप मिलते हैं। इनकी वर्णनशैली प्राचीन है तथा आख्यानों में भी पुरातनता मिलती है। अतः ये ब्राह्मण अन्य सामवेदीय ब्राह्मणों से प्राचीन ज्ञात होते हैं। जैमिनीय ब्राह्मणों की भाषा-शैली ब्राह्मणों के तुल्य है, जबकि कौथुमशाखा वाले ब्राह्मणों में सूत्रशैली भी मिलती है।

जैमिनीय ब्राह्मण में ३ कांड हैं। ये खंडों में विभक्त हैं। प्रथम खंड में ३६४ खंड हैं, द्वितीय में ४४२ और तृतीय में ३८६। इस प्रकार खंडों की कुल संख्या ११९२ है।

मंगलाचरण के श्लोकों में महर्षि जैमिनि की स्तुति की गई है । उन्हें व्यास का शिष्य और तलवकार का गुरु बताया गया है ।

(क) व्यासशिष्याम मुनये तस्मै जैमिनये नमः।

(ख) तं जैमिनिं तलवकारगुरुं नमामि ।।

इस ब्राह्मण के प्रतिपाद्य विषय तीन कांडों में विभक्त हैं, जिनका सार-संक्षेप इस प्रकार है :

कांड १ : इसमें अग्निहोत्र के दो भेदों, नित्य और काम्य, का वर्णन है । काम्य अग्निहोत्र अधिक प्रचलित था । खंड ६६ से ३६४ तक अग्निहोत्र का विस्तृत वर्णन है । राजा वर्ष में एक बार अग्निष्टोम याग करता था । राजकुमार द्वादशाह याग और अन्य लोग छन्दस्य तथा अग्निहोत्र याग करते थे ।

कांड २ : इसमें एकाह (एक दिन वाला) से लेकर द्वादशाह (१२ दिन तक चलने वाला) तक के यागों का वर्णन है । इनके नाम द्विरात्र, त्रिरात्र, सप्तरात्र, नवरात्र, दशरात्र आदि हैं । इसमें १२ दिन से अधिक चलने वाले यागों का भी वर्णन है । वर्ष भर चलने वाले 'गवामयन' का पूर्ण विवरण इस खंड में दिया गया है । सरमा और पणि की कथा तथा भौगोलिक महत्त्व के अनेक नाम इस खंड में प्राप्त होते हैं ।

कांड ३ : इसमें १२ दिन चलने वाले (द्वादशाह) यागों का विस्तृत वर्णन है । अनेक सामों का भौतिक लाभ के लिए उपयोग बताया गया है । इसमें अनेक भौगोलिक तथ्य वर्णित हैं । अथर्वन् के पुत्र दधीचि की कथा विस्तार से दी गई है ।

डा० रघुवीर ने इस ब्राह्मण ग्रन्थ का उद्धार किया है । यह विशालकाय ग्रन्थ है । समग्र संस्कृत पाठ्य, पाठभेद-सहित, ५४० पृष्ठों में दिया गया है । जैमिनीय ब्राह्मण और तांड्य ब्राह्मण में अधिकांश सामग्री समान है । जैमिनीय ब्राह्मण में विषय-वस्तु का विवरण अधिक विस्तृत है ।

जैमिनीय ब्राह्मण के कुछ महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ

१. अनुष्टुप् छन्द को गायत्री छन्द की माता कहा गया है । (पृष्ठ १२०)

२. 'भूर्भुवः स्वः' इन तीन महाव्याहृतियों को सारे पापों का प्रायश्चित्त कहा गया है । ये सारे पापों को दूर करने में समर्थ हैं । (पृ० १५०)

३. गायत्री का महत्त्व बताते हुए कहा गया है कि यह तीनों सवनों (प्रातः, मध्याह्न और सायं) की आत्मा है । यह तीनों सवनों को यथास्थान देवों तक पहुँचाती है । (पृ० १२०)

४. कितने देव हैं ? इसका विचार करते हएु कहा गया है कि मुख्य रूप से ३३ देव हैं । इनका ही विस्तार ३०३ और ३००३ देवता हैं । ३३ देवों के नाम बताए हैं : ८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, इन्द्र और प्रजापति । ८ वसुओं के नाम हैं : अग्नि और पृथिवी, वायु और अन्तरिक्ष, सूर्य और द्युलोक, चन्द्रमा तथा नक्षत्र । ११ रुद्र हैं : १० प्राण

और आत्मा । १२ आदित्य १२ मास हैं । सर्वोत्तम एक देवता कौन है : इसका उत्तर दिया है -प्राण । साथ ही वसु, रुद्र और आदित्य का निर्वचन भी दिया है । (पृ० १९०)

५. सृष्टि की उत्पत्ति का विस्तृत वर्णन दिया गया है । (पृ० ५१०)

६. उद्गीथ (प्रणव या ओम्) का महत्त्व वर्णन करते हुए कहा गया है कि उद्गीथ ही ब्रह्म है । उद्गीथ ही चारों वेद है । उद्गीथ (ओम्) ही सारे विश्व को धारण किए हुए है । इस प्रकार ओम् की उपासना ब्रह्म की उपासना है । (पृ० ५१०)

७. इसका एक सुभाषित बहुत प्रसिद्ध है कि - ऊँचा मत बोलो, मकान (भूमि) के भी कान होते हैं । 'मोच्चैरिति होवाच, कर्णिनी वै भूमिरिति' ।

(१०) जैमिनीय आर्षेय ब्राह्मण

कौथुम शाखा के आर्षेय ब्राह्मण के तुल्य इसमें भी स्वाध्याय और यज्ञ की दृष्टि से ऋषि, देवता और छन्द के ज्ञान पर विशेष बल दिया गया है । दोनों ब्राह्मणों के वर्ण्य-विषय समान हैं । सामवेद के ऋषियों से सम्बद्ध विवरण इसमें दिया गया है । ग्रामगेय गानों के ऋषि-विवरण में अध्यायों और खंडों की व्यवस्था और विन्यास प्रायः समान है । दोनों शाखाओं की संहिताओं में कुछ अन्तर होने के कारण गानों के क्रम में अन्तर है। कौथुम शाखा के आर्षेय ब्राह्मण में गानों के वैकल्पिक नाम भी दिए हैं , वे इसमें नहीं हैं । यह कौथुम आर्षेय ब्राह्मण की अपेक्षा कुछ संक्षिप्त है ।

(११) जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण

इसको जैमिनीय तलवकार उपनिषद् ब्राह्मण भी कहते हैं । जैमिनीय ब्राह्मण के मंगलाचरण में जैमिनि को तलवकार ऋषि का गुरु बताया गया है । इस प्रकार यह जैमिनि ऋषि के शिष्य की रचना है ।

यह ब्राह्मण चार अध्यायों में विभक्त है । अध्यायों के उपविभाग अनुवाक और खंड है । प्रारम्भ में ओंकार और हिंकार के महत्त्व का प्रतिपादक किया गया है । सृष्टि-विद्या का संबन्ध तीनों वेदों से है । ओम् से गायत्री की रचना हुई । गायत्री से ही प्रजापति, देवता और ऋषि अमर हुए । गायत्री अमृत है ।

तदेतद् अमृतं गायत्रम् । एतेन वै प्रजापतिरमृतत्वम् अगच्छत् ।
एतेन देवाः । एतेन - ऋषयः। जैमि० उप० ब्रा० ३.७.३.१

इस ब्राह्मण में यह भी वर्णन है कि यह पवित्र ज्ञान ब्रह्म से कश्यप ऋषि तक किस क्रम से गया । इसके अनुसार ब्रह्म से > प्रजापति > परमेष्ठी > सविता > अग्नि > इन्द्र > कश्यप । तत्पश्चात् कश्यप से गुप्त लौहित्य तक यह ज्ञान किस परंपरा से गया , इसका भी विस्तृत विवरण दिया गया है । इसमें ऋषियों की लंबी सूची दी गई है । वंश ब्राह्मण ने भी मानवों में सर्वप्रथम कश्यप ऋषि को यह पवित्र ज्ञान प्राप्त होने का उल्लेख किया है । इसके पश्चात् 'केन उपनिषद्' है ।

इस ब्राह्मण में अन्य ब्राह्मण ग्रन्थों के तुल्य याग-विधियों का विशेष उल्लेख नहीं है । यह ब्राह्मण ग्रन्थ आरण्यक और उपनिषदों के अधिक निकट है । इस ब्राह्मण का

छान्दोग्य उपनिषद् से घनिष्ठ संबन्ध प्रतीत होता है । दोनों के वर्ण्य-विषयों में बहुत साम्य है ।

जैमिनीय उपनिषद्-ब्राह्मण के कुछ प्रमुख सन्दर्भ

१. ओम् का महत्त्व : इस ब्राह्मण में ओम् (ओंकार) के महत्त्व पर बहुत बल दिया गया है । ओम् ही परम ज्ञान और बुद्धि का आदि कारण है । ओम् से ऊपर कोई नहीं उठ सकता है । ओम् की उपासना पर बहुत बल दिया गया है । यह ओम् 'भूर्भुवः स्वः' (महाव्याहृतियों) का सार है, (१.२३.७) । ओम् अक्षर है । अविनाशी और अमृत है, (३.३६.५) । ओम् वेदों का मूर्धन्य है, (३.१९.७) । ओम् का ही विस्तार तीनों वेद हैं, (१.१८.१०) । जिस प्रकार कोमल पत्तों में सूई प्रविष्ट होती है, इसी प्रकार तीनों लोकों में 'ओम्' व्याप्त है । (१.१०.३) ।

२. गायत्री की महिमा : गायत्री गान करने वाली की रक्षा करती है । गय और गाय का अर्थ है - प्राण । प्राण की रक्षा करने के कारण यह गायत्री है, (३.३८.४) । ब्रह्म का ही नाम गायत्री है, (१.१.८) ।

३. इसमें वैदिक भाषा, शब्दावली और व्याकरण के प्राचीन रूप उपलब्ध हैं । इसमें अनेक प्राचीन देवशास्त्रीय आख्यान वर्णित हैं । इसमें प्राचीन मान्यताओं और रीतियों का उल्लेख है । जैसे - मृत व्यक्तियों का पुनः प्रकट होना , प्रेतात्माओं के द्वारा मार्गनिर्देशन, अतिमानवीय शक्तियों की प्राप्ति के लिए श्मशान-साधना आदि ।

(४) अथर्ववेदीय-ब्राह्मण (गोपथ ब्राह्मण)

पैप्पलाद शाखा के संबद्ध : अथर्ववेद का एकमात्र ब्राह्मण ग्रन्थ गोपथ ब्राह्मण है । पहले इसे शौनकीय शाखा से संबद्ध समझा जाता था, क्योंकि इसमें उस शाखा के कुछ मंत्रों के प्रतीक हैं । अब यह सुनिश्चित हो गया है कि यह पैप्पलाद शाखा से संबद्ध है । पैप्पलाद शाखा के अथर्ववेद का प्रथम मंत्र 'शं नो देवीरभिष्टय०' है । गोपथ ब्राह्मण में उल्लेख है कि अथर्ववेद का पाठ 'शं नो देवीरभिष्टय०' इस मंत्र से प्रारम्भ होता है ।[1] शौनकीय शाखा में 'शं नो देवीरभिष्टय०' मंत्र (१.६.१) पर आया है । वेंकट माधव की ऋग्वेदानुक्रमणी में 'पैप्पलादम् अथर्वणाम्' कह कर गोपथ ब्राह्मण को पैप्पलाद शाखा से संबद्ध बताया गया है ।[2]

गोपथ ब्राह्मण का नामकरण : गोपथ ब्राह्मण के नामकरण के विषय में चार मत हैं : १. इसके रचयिता गोपथ ऋषि हैं । शौनकीय अथर्ववेद के पाँच सूक्तों (कांड १९, सूक्त २५,४७,४८,४९ और ५०) के द्रष्टा गोपथ हैं । २. गोपथ गुप् धातु से बना है । अथर्वाङ्गिरसों को 'गोप्तारः' कहा गया है, ये रक्षक हैं । इस गुप् धातु से गोपथ है । ३. शतपथ के अनुकरण पर गोपथ नाम रखा गया है । इसमें पूर्व और उत्तर भाग मिलाकर ११ प्रपाठक हैं । गोपथ से ११ इन्द्रियों का ग्रहण है । ११ प्रपाठक हैं । अतः

---

१. शं नो देवीरभिष्टय इत्येवमादि कृत्वा अथर्ववेदमधीयते । गो०पू० १.२९

२. ऋग्वेदानुक्रमणी ८.१.१३

इसका नाम गोपथ पड़ा । ४. डा० सूर्यकान्त ने एक अन्य विचार प्रस्तुत किया है कि 'सरमा-पाणि' संवाद में पणियों द्वारा गायों का छिपाना और इन्द्र द्वारा उन्हें प्राप्त करने में अंगिरसों द्वारा सहायता करना तथा गायों का पथ (मार्ग) ढूंढ निकालना ही गोपथ नाम का रहस्य है । गायों का पथ (गोपथ) अंगिरस् जानते थे, अतः गोपथ नाम पड़ा ।[2] इनमें प्रथम मत ही ग्राह्य है । शेष अनुमान-प्रधान हैं ।

गोपथ ब्राह्मण का प्रतिपाद्य विषय

गोपथ ब्राह्मण दो भागों में विभक्त है : पूर्वभाग और उत्तरभाग । पूर्वभाग में ५ प्रपाठक हैं और उत्तरभाग में ६ । इस प्रकार कुल ११ प्रपाठक हैं । इनका विभाजन कंडिकाओं में हुआ है । पूर्वभाग में १३५ कंडिकाएँ हैं और उत्तरभाग में १२३ । इस प्रकार कुल २५८ कंडिकाएँ हैं ।

गोपथ ब्राह्मण का वर्ण्य-विषय इस प्रकार हैं : **पूर्वभाग**

प्रपाठक १ : सृष्टि-उत्पत्ति, प्रणव उपनिषद् और गायत्री उपनिषद् ।

प्रपाठक २ : ब्रह्मचारी के कर्तव्य, होता आदि की भूमिका, यज्ञिय तत्त्वों की मीमांसा ।

प्रपाठक ३ : यज्ञविवेचन, ब्रह्मा का महत्त्व, दर्श-पूर्णमास, अग्निहोत्र और अग्निष्टोम की रहस्यात्मक व्याख्या ।

प्रपाठक ४ : गवामयन आदि सत्रयागों की मीमांसा, आध्यात्मिक विवरण ।

प्रपाठक ५ : संवत्सर सत्र, अश्वमेध, अग्निष्टोम आदि का विवरण, अंगिरस् की उत्पत्ति, ऋत्विजों के कर्तव्यों का विवेचन ।

उत्तरभाग

प्रपाठक १ : ब्रह्मा का आसन, दर्श-पूर्णमास याग, काम्य इष्टियाँ, चातुर्मास्य ।

प्रपाठक २ : काम्य इष्टियाँ, सोमयाग, प्रायश्चित्त, दर्श-पूर्णमास ।

प्रपाठक ३ : वषट्कार और अनुवषट्कार, ऋतु-ग्रहादि, एकाहयज्ञ ।

प्रपाठक ४ : एकाह यज्ञ, तृतीय सवन, षोडशी याग ।

प्रपाठक ५ : अतिरात्र , वाजपेय, अप्तोर्याम, अहीन यज्ञ ।

प्रपाठक ६ : अहीन यज्ञ, उक्थ और शिल्प, षडह यज्ञ, कुन्ताप सूक्त ।

गोपथ ब्राह्मण का समय : गोपथ ब्राह्मण के रचनाकाल के संबन्ध में पर्याप्त विवाद है । प्रो० ब्लूमफील्ड गोपथ ब्राह्मण को वैतान श्रौतसूत्र से बाद की रचना मानते हैं , परन्तु डा० कीथ और कैलेन्ड प्रो० ब्लूमफील्ड के मत से सहमत नहीं हैं । वे इसे प्राचीन मानते हैं । यास्क ने निरुक्त में गोपथ ब्राह्मण का एक अंश उद्धृत किया है :

एतद् वै यज्ञस्य समृद्धं यद् रूपसमृद्धम् , यत्कर्म क्रियमाणम्
ऋग् यजुर्वाऽभिवदति । (निरुक्त १.१६, गोपथ० २.२.६)

---

१. अथर्वाङ्गिरसो गोप्तारः । गोपथ० १.१.१३

२. डा० सूर्यकान्त, अथर्ववेद एवं गोपथ ब्राह्मण, भूमिका पृ० ९

इससे स्पष्ट है कि यास्क गोपथ को पूर्ववर्ती और प्रामाणिक मानते हैं । यास्क का समय ८०० ई०पू० के लगभग माना जाता है । अतः यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि गोपथ का समय १००० ई०पू० के बाद नहीं है ।

गोपथ ब्राह्मण के प्रमुख सन्दर्भ

१. ओम् का महत्त्व : ओम् ब्रह्म का पर्याय है । ओम् शब्द आप् (पाना) धातु से बना है । यह सर्वव्यापी है । ओम् के अ से भू और ऋग्, उ से अन्तरिक्ष और यजुः, म् से द्युलोक और साम उत्पन्न हुए । इस प्रकार ओम् से सारी सृष्टि और सारे वेदों की उत्पत्ति हुई । (गो० १.१.१६ से २०)

(क) आपेरोंकारः सर्वमाप्नोति । गो० १.१.२६

(ख) ओम् इत्येतद् अक्षरं ... सर्वव्यापि ... ब्रह्म । गो० १.१.१६

२. ओम् के जप का महत्त्व : गोपथ का कथन है कि शान्तचित्त होकर एक हजार बार ओम् का प्रतिदिन जप करने से सारी कामनाएँ पूर्ण होती हैं ।

एतदक्षरं (ओंकारं) ... सहस्त्रकृत्व आवर्तयेत्, सिध्यन्त्यस्यार्थाः सर्वकर्माणि च । गो० १.१.२२

३. सावित्री (गायत्री) का महत्त्व : गायत्री वेदों की माता है । गायत्री की उपासना से सारे पाप नष्ट होते हैं । गायत्री का विराट् रूप सारा संसार है । द्यु, भू, अन्तरिक्ष सभी गायत्री के रूप हैं । गायत्री का जप सर्वसिद्धिप्रद है ।

सोऽपहतपाप्माऽनन्तां श्रियम् अश्नुते । यः ... वेदानां मातरं सावित्रीम् ... उपास्ते । गो० १.१.३९

४. याग-मीमांसा : गोपथ ने २१ प्रकार के यज्ञ बनाए हैं । ७ सुत्या, ७ पाकयज्ञ और ७ हविर्यज्ञ । इनका विस्तृत विवरण भी दिया है । अग्निष्टोम , वाजपेय आदि ७ सुत्या हैं । दैनिक अग्निहोत्र, पितृयज्ञ आदि ७ पाकयज्ञ हैं । दर्श-पूर्णमास, चातुर्मास्य आदि ७ हविर्यज्ञ हैं । (गोपथ० १.५.२३ और २५) ।

५. ऋत्विज् सुयोग्य हों : यज्ञ में योग्य ऋत्विज् ही रखें । अयोग्य या अकुशल ऋत्विज् रखने से यज्ञ और यजमान दोनों का नाश होता है । 'यज्ञेऽकुशला ऋत्विजो .... यज्ञस्य विरिष्टम्०' (गोपथ० १.१.१३)

६. ब्रह्मा चारों वेदों का ज्ञाता : ब्रह्मा चारों वेदों का ज्ञाता होता है, अतः उसे 'सर्ववित्' (सब कुछ जानने वाला) कहा गया है । 'एष ह वै विद्वान् सर्वविद् ब्रह्मा' (गो० १.२.१८)

७. ब्रह्मा विघ्ननाशक : ब्रह्मा यज्ञ के विघ्नों को नष्ट करता है । 'ब्रह्मा .. यज्ञस्य विरिष्टं शमयति' (गोपथ० १.२.९) ।

८. मंत्र के प्रारंभ में 'ओम्' अवश्य बोलें : गोपथ का कहना है कि ब्रह्मवादी मंत्र के प्रारम्भ में 'ओम्' अवश्य बोलते हैं । इससे शोक-भय आदि दूर होते हैं ।

'ब्रह्मवादिन ओंकारम् आदितः कुर्वन्ति' (गो० १.१.२८) । 'ओंकारः पूर्व उच्यते' (गो० १.१.२३)

९. महायज्ञ : गोपथ में १५ प्रकार के यज्ञों और महायज्ञों का क्रम बताया गया है । अग्न्याधान से लेकर दर्श-पूर्णमास, चातुर्मास्य, अग्निष्टोम, राजसूय, वाजपेय, अश्वमेध, पुरुषमेध, सर्वमेध आदि का क्रम बताया गया है कि इस क्रम से ये महायज्ञ किए जाएँ । 'अथातो यज्ञक्रमाः (गो० १.५.७)

१०. गायत्री उपनिषद् : गोपथ (१.१.३४ से १.१.३८ तक) में गायत्री उपनिषद् है । इसमें गायत्री मंत्र की विस्तृत व्याख्या की गई है । सविता और सावित्री के युगल के द्वारा मन-वाणी, अग्नि-पृथिवी आदि के सूक्ष्म संबन्धों का विवरण दिया गया है ।

११. मन का महत्त्व : गोपथ में मन के महत्त्व पर बहुत प्रकाश डाला गया है । मन को ब्रह्म, ब्रह्मा, सविता, इन्द्र, देवता आदि बताते हुए उसे संसार का सर्वस्व बताया गया है । (मनो ब्रह्म (१.२.१०), मन एव सर्वम् (१.५.१५) ।

१२. द्रव्य यज्ञ से अध्यात्म यज्ञ श्रेष्ठ : गोपथ में विविध यज्ञों का विवरण देने के बाद अध्यात्म यज्ञ को श्रेष्ठ बताया गया है । मनुष्य आत्मसमर्पणरूपी यज्ञ के द्वारा अनन्त सुख को प्राप्त करता है ।

आत्मानं दत्त्वा आनन्त्यम् आश्नुत । गो० १.५.८

१३. ब्रह्मा की श्रेष्ठता : अध्वर्यु, उद्‌गाता और होता ये तीन ऋत्विज् वाणी के द्वारा यज्ञ का संपादन करते हैं, परन्तु ब्रह्मा मन से यज्ञ को परिष्कृत करता है । मानस शुद्धि सर्वश्रेष्ठ परिष्कार है । अतएव ब्रह्मा सर्वश्रेष्ठ है ।

'मनसैव ब्रह्मा ब्रह्मत्वं करोति' । गो० १.२.११

१४. ब्रह्म की श्रेष्ठता : गोपथ में ब्रह्म को सर्वश्रेष्ठ माना गया है । उसी से सारी सृष्टि उत्पन्न हुई है । उसी से सारे वेदों की उत्पत्ति हुई है । वही संसार में सर्वश्रेष्ठ शक्ति है ।

'ब्रह्मैव सर्वम्' गो० १.५.१५ तथा १.१ से ३ ।

१५. ब्रह्मचारी के कर्तव्य : गोपथ (१.२.१ से ८) में ब्रह्मचारी की महिमा, ब्रह्मचारी के कर्तव्य आदि का विस्तृत वर्णन है । वह संयमी, तपस्वी, सांसारिक विषयभोगों से विरक्त और व्रती हो । ब्रह्मचारी ही मृत्यु पर विजय प्राप्त करता है । वह धर्म की रक्षा करता है और धर्म उसकी रक्षा करता है ।

'धर्मो हैनं गुप्तो गोपायति' गो० १.२.४ । इसी आधार पर सूक्ति है - **'धर्मो रक्षति रक्षितः '** ।

१६. दीक्षा का महत्त्व : गोपथ ब्राह्मण (१.३.१९) में दीक्षा और दीक्षित का बहुत महत्त्व वर्णन किया गया है । दीक्षा का अर्थ है : कर्तव्य के प्रति एकनिष्ठता या तन्मयता । दीक्षित के नैतिक कर्तव्यों का विस्तार से वर्णन किया गया है । श्रेष्ठ बुद्धि को ही दीक्षित कहते हैं, 'श्रेष्ठां धियं क्षियति इति ' (गो० १.३.१९) । दीक्षित सबका पूज्य हो जाता है ।

१७. परिष्कृत भाषण : गोपथ ब्राह्मण ने निर्देश दिया है कि दीक्षा लेने पर मधुर और परिष्कृत वाणी ही बोलें । परिष्कृत वाणी के लिए 'विचक्षण' शब्द दिया है । 'विचक्षणवतीं वाचं भाषन्ते ' गो० १.३.१९ ।

१८. देव परोक्षप्रिय : गोपथ में वर्णन किया गया है कि देवता (विद्वान्) परोक्ष या अध्यात्म के प्रेमी होते हैं । वे प्रत्यक्ष विषयों की उपेक्षा करते हैं । गोपथ आदि में यह सुभाषित बहुत प्रचलित है - ' परोक्षप्रिया इव हि देवा प्रत्यक्षद्विषः' गो० १.३.१९ ।

१९. भाषाशास्त्रीय वर्णन : गोपथ ब्राह्मण (१.१.२४) में भाषाशास्त्र और व्याकरण से संबद्ध विशाल सामग्री दी गई है । गोपथ में ओम् की व्याख्या में ये पारिभाषिक शब्द मिलते हैं : धातु, प्रातिपदिक, नाम, आख्यात, लिंग, वचन, विभक्ति, प्रत्यय, स्वर, उपसर्ग, निपात, व्याकरण, विकार, विकारी, मात्रा, वर्ण, अक्षर, पद, संयोग, स्थान, करण आदि । 'को धातुः, किं प्रातिपदिकम्, किं नामाख्यातम्० ' (गो० १.१.२४) ।

२०. वैज्ञानिक तथ्य : गोपथ ब्राह्मण (२.४.१०) और ऐतरेय ब्राह्मण (३.४४) में स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि सूर्य न कभी अस्त होता है और न कभी उदय । दिन के अन्त को सूर्यास्त और रात्रि के अन्त को सूर्योदय नाम दे दिया जाता है, वस्तुतः न सूर्य उदय होता है और न अस्त । पृथिवी की परिक्रमा के कारण ही सूर्योदय और सूर्यास्त होता है ।

स वा एष (आदित्यः) न कदाचनास्तमयति, नोदयति० । (गो०२.४.१०)

२१. ज्योतिष-विषयक उल्लेख : गोपथ (१.५.५) में ज्योतिष-विषयक अनेक तथ्य वर्णित हैं । यथा-संवत्सर, ऋतु, १२ मास, १३वाँ मलमास, अहोरात्र, अर्धमास, ३६० दिन का वर्ष, ७२० अहोरात्र, १४४० दिनार्ध और निशार्ध, १०,८०० मुहूर्त आदि ।

२२. भौगोलिक नाम : गोपथ (१.२.१०) में इन जनपदों का उल्लेख है : कुरु-पंचाल , अंग-मगध, काशी-कौसल्य, शाल्व-मत्स्य, शवस-उशीनर । इसी प्रसंग में चक्रवर्ती राजा मान्धाता का भी उल्लेख है ।

२३. विद्याओं के नाम : गोपथ (१.२.१०) में इन विद्याओं और शास्त्रों का उल्लेख है : वेद, वेदांग, कल्पसूत्र, ब्राह्मण, उपनिषद् , इतिहास, पुराण, निरुक्त, धर्मशास्त्र, वाकोवाक्य (प्रश्नोत्तर-विद्या) आदि ।

२४. निर्वचन : गोपथ में अनेक शब्दों के निर्वचन दिए गए हैं । यास्क ने निरुक्त में इसी पद्धति को अपनाया है । जैसे : १. **ओम्** (अव् और आप् धातु से) (१.१.२६) । २. **अंगिरस्** (अंगिरा): अंग+रस से (१.१.७) । ३. **दीक्षित** : धी + क्षित से (१.३.१९)। ४. **वरुण** : वृ (वरण) धातु से (१.१.७) । ५. **जाया** : जन् धातु से, जायते अस्याम्, पति ही पुनः गर्भ में आकर पुत्ररूप में उत्पन्न होता है, (१.१.२) । ६. **अथर्वन् (अथर्वा)** : अथ + अर्वाक् = अथर्वन् (१.१.४) ।

२५. अथर्ववेद के उपवेद : गोपथ (१.१.१०) में अथर्ववेद के ये ५ उपवेद बताए गए हैं : सर्पवेद, पिशाचवेद, असुरवेद, इतिहासवेद और पुराणवेद ।

अध्याय ४

आरण्यक ग्रन्थ

आरण्यक ग्रन्थों का उद्‌भव : आरण्यक ग्रन्थों का उद्‌भव नैसर्गिक प्रक्रिया के अनुरूप ब्राह्मणों ग्रन्थों के पश्चात् हुआ है । स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाना मानवीय प्रवृत्ति है । वेदों और ब्राह्मणों में वर्णित यज्ञप्रक्रिया कष्टसाध्य, दुर्बोध और नीरस होने के कारण अरुचिकर होती जा रही थी, अतः आत्मिक शान्ति के लिए अध्यात्म की आवश्यकता अनुभव की गई और स्थूल द्रव्यमय यज्ञ से सूक्ष्म अध्यात्मक-यज्ञ की ओर प्रवृत्ति हुई । दूसरा कारण यह था कि यज्ञ गृहस्थ के लिए है, वानप्रस्थ और संन्यासियों के लिए आत्मतत्त्व और ब्रह्मविद्या के ज्ञान के लिए अध्यात्मपरक ग्रन्थों की आवश्यकता थी । आवश्यकता आविष्कार की जननी है, अतः आरण्यकों की सृष्टि हुई ।

आरण्यक का अर्थ

आरण्यक शब्द का अर्थ है - अरण्य में होने वाला (अरण्ये भवम् आरण्यकम्) । अरण्य (वन) में होने वाले अध्ययन-अध्यापन, मनन, चिन्तन, शास्त्रीय चर्चा और अध्यात्मक-विवेचन आरण्यक के अन्तर्गत आते हैं । इन विषयों के संकलनात्मक ग्रन्थों को आरण्यक कहते हैं । यही भाव आचार्य सायण ने तैत्तिरीय आरण्यक के भाष्य में व्यक्त किया है कि अरण्य में इसका पठन-पाठन होने से इसे आरण्यक कहते हैं ।[१] इसमें आत्मविद्या, तत्त्वचिन्तन और रहस्यात्मक विषयों का वर्णन है, अतः आरण्यकों को 'रहस्य' भी कहा गया है । गोपथ ब्राह्मण में 'सरहस्याः' के द्वारा रहस्य शब्द से आरण्यकों का निर्देश है ।[२] निरुक्त (१.४) की टीका में दुर्गाचार्य ने ऐतरेय आरण्यक को 'ऐतरेयके रहस्यब्राह्मणे' कहकर इसे 'रहस्य-ब्राह्मण' नाम से संबोधित किया है । आरण्यकों में यज्ञ का गूढ रहस्य और ब्रह्मविद्या का प्रतिपादन है, अतः इन्हें 'रहस्य' कहा गया है ।

आरण्यकों का महत्त्व

वैदिक वाङ्मय में आरण्यक ग्रन्थों का कई दृष्टि से विशेष महत्त्व है । इसके प्रमुख कारण ये हैं :

---

१. अरण्याध्ययनादेतद् आरण्यकमितीर्यते ।
अरण्ये तदधीयीतेत्येवं वाक्यं प्रवक्ष्यते ।। तैत्ति०आर० भाष्य श्लोक ६

२. सर्वे वेदाः ... सरहस्याः सब्राह्मणाः सोपनिषत्काः । गोपथ० १.२.१०

१. आरण्यक ग्रन्थ : ब्राह्मणग्रन्थों और उपनिषदों को जोड़ने वाली कड़ी है । ब्राह्मणग्रन्थों में यज्ञों के दार्शनिक और आध्यात्मिक पक्ष का जो अंकुरण हुआ है, उसका पल्लवित रूप आरण्यक ग्रन्थ हैं । इनमें उस विषय का और विस्तृत विवेचन हुआ है । इसका ही सुविस्तृत रूप उपनिषदें हैं ।

२. सकाम से निष्काम की ओर प्रवृत्ति : श्रौत यज्ञ सकाम कर्म हैं , अतः निष्काम अध्यात्म की ओर प्रवृत्ति मानव की प्रकृति का अंग है । गृहस्थ के लिए सकाम कर्म ठीक हैं, परन्तु वानप्रस्थ और संन्यासी के लिए ये हेय हैं, अतः अध्यात्म-ज्ञान हेतु आरण्यकों की आवश्यकता हुई ।

३. स्थूल से सूक्ष्म की ओर : आरण्यक स्थूल से सूक्ष्म, भौतिकवाद से अध्यात्म की ओर, मूर्त से अमूर्त की ओर ले जाने वाले हैं ।

४. दार्शनिक चिन्तन : आरण्यकों में यज्ञ-प्रक्रिया के दार्शनिक पक्ष का विवेचन है । यज्ञ के गूढ भावार्थ को इनमें स्पष्ट किया गया है । इनमें ब्राह्मण ग्रन्थों में प्राप्त दार्शनिक संकेतों का विशदीकरण है ।

५. वेदों का नवनीत : महाभारत का कथन है कि आरण्यक ग्रन्थ वेदों के सारभाग हैं । जैसे दही से मक्खन, मलय से चन्दन और ओषधियों से अमृत प्राप्त होता है, वैसे ही वेदों से आरण्यक प्राप्त हुए हैं ।

नवनीतं यथा दध्नो मलयाच्चन्दनं यथा ।
आरण्यकं च वेदेभ्य ओषधिभ्योऽमृतं यथा ।। महा० १.३३१.३

आरण्यकों में पवित्र ब्रह्मविद्या का वर्णन है, अतः इसके पढ़ने और सुनने का अधिकार भी संयमी, व्रती और सात्त्विक प्रवृत्ति के व्यक्ति को ही है । सायण ने तैत्तिरीय आरण्यक की भूमिका में कहा है कि अव्रती को इसको पढ़ने और सुनने का अधिकार नहीं है ।

एतदारण्यकं सर्वं नाव्रती श्रोतुमर्हति । सायण, तैत्ति० आर० भूमिका ९

डा० राधाकृष्णन् ने आरण्यकों के महत्त्व के विषय में कहा है कि ये वानप्रस्थ और संन्यासियों के लिए आवश्यक अध्यात्म की सामग्री देते हैं ।[१] डा० मैकडानल और प्रो० ओल्डेनबर्ग ने भी आरण्यकों को अध्यात्म-ग्रन्थ बताते हुए इनकी प्रशंसा की है ।[२]

आरण्यक और उपनिषदों में विषय-साम्य होने पर भी अन्तर यह है कि आरणयकों में मुख्य विषय प्राणविद्या और प्रतीकोपासना है, जबकि उपनिषदों में निर्गुण ब्रह्म के स्वरूप और उसकी प्राप्ति का विवेचन मुख्य है ।

---

१. द्रष्टव्य, उनका ग्रन्थ, भारतीय-दर्शन भाग १, पृष्ठ ५९
२. द्रष्टव्य, Macdonell, A History of Sanskrit Literature. PP. 172-173

आरण्यकों का प्रतिपाद्य विषय

आरण्यक ग्रन्थ उपनिषदों के पूर्वरूप हैं । उपनिषदों में आत्मा, परमात्मा, सृष्टि-उत्पत्ति, ज्ञान, कर्म, उपासना और तत्त्वज्ञान का प्रतिपादन है । उसी तत्त्वज्ञान का प्रारम्भिक रूप हम आरण्यकों में पाते हैं ।

यज्ञ का दार्शनिक रूप : आरण्यकों में वैदिक यागों के आध्यात्मिक और दार्शनिक पक्ष का विवेचन प्राप्त होता है । ऐतरेय, शतपथ, तांड्य, गोपथ आदि ब्राह्मणों में यज्ञ को विष्णु या ब्रह्म का स्वरूप माना गया है ।[1] यज्ञ की दार्शनिक व्याख्या ब्रह्म के स्वरूप का ही विवेचन है । आरण्यक यही विवेचन प्रस्तुत करते हैं ।

प्राणविद्या : आरण्यकों में प्राणविद्या के महत्त्व पर विशेष प्रकाश डाला गया है । ऐतरेय आरण्यक में प्राणविद्या का विशेष वर्णन है । ऋग्वेद में प्राणविद्या के सूत्र हैं - 'आयुर्न प्राणः'[2] 'पुनः प्राणमिह नो धेहि'।[3] अथर्ववेद में एक पूरा सूक्त (११.४.१-२६) प्राणविद्या के महत्त्व का वर्णन करता है । इसमें प्राण को संसार का स्वामी और नियन्ता कहा गया है । प्राण ही संसार का आधार है ।[4] ऐतरेय आरण्यक में इसी प्राणविद्या का विशदीकरण है । प्राण संसार का धारक है । मनुष्य से लेकर चींटी तक सभी प्राण पर निर्भर हैं ।[5] जब तक प्राण है, तब तक ही जीवन है ।[6] सारा संसार प्राण से घिरा हुआ है । प्राण सर्वत्र व्याप्त है ।[7] प्राण से ही अन्तरिक्ष और वायु की उत्पत्ति हुई है । ये दोनों प्राणरूपी पिता की सदा सेवा करते हैं ।[8]

प्राण ही कालचक्र है । दिन और रात्रि प्राण एवं अपान हैं । प्राण की ब्रह्म के रूप में उपासना करनी चाहिए । प्राण ही सब देवों का रूप है । वही वाणी में अग्नि है, चक्षु में सूर्य है और मन में चन्द्रमा । प्राण ही ऋषियों के रूप में है । गृत्समद, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, भरद्वाज और वसिष्ठ आदि सभी ऋषि प्राण के ही रूप है । जैसे - प्राण विश्व का मित्र है, अतः वह विश्वामित्र है । प्राण शरीर में निवास करता है, अतः वह वसिष्ठ है । मैत्रायणी आरण्यक में प्राण को अग्नि और परमात्मा बताया गया है ।

प्राणोऽग्निः परमात्मा । मैत्रा० आर० ६.९

काल-ब्रह्म : जिस प्रकार अथर्ववेद के कालसूक्तों (१९.५३ और ५४) में काल को ब्रह्म, परमेष्ठी और परमदेव (महादेव) आदि कहा गया है, उसी प्रकार तैत्तिरीय आरण्यक में कालचक्र का विशद वर्णन है । काल ही अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु,

---

१. विष्णुर्वै यज्ञः । ऐत० १.१५ । यज्ञो वै विष्णुः । शत० १.१.२.१३ । तांड्य० ९.६.१० । गोपथ० २.४.६
२. ऋग्० १.६६.१
३. ऋग्० १०.५९.६
४. प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे । अ० ११.४.१ । प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् । अ० ११.४.१५
५. सर्वाणि भूतानि आपिपीलिकाभ्यः प्राणेन बृहत्या विष्टब्धानि । ऐत०आ० २.१.६
६. यावद् हि - अस्मिन् शरीरे प्राणो वसति तावद् आयुः । कौषी० उप० १२
७. सर्वं हीदं प्राणेनावृतम् । ऐत०आर०
८. प्राणे सृष्टावन्तरिक्षं च वायुश्च । ऐत० आर०

संवत्सर आदि के रूप में निरन्तर प्रवहमान है । वह महानदी के रूप में है, जिसमें मुहूर्त, दिनरात्रि आदि आकर मिलते हैं और एकाकार हो जाते हैं । पारमार्थिक काल अखंड संवत्सर-चक्र के रूप में नित्य है और एक है । व्यावहारिक काल अनेक और अनित्य है । इसका ही वर्णन है :

नदीव प्रभवात् काचिद् अक्षय्यात् स्यन्दते यथा ।
तां नद्योऽभिसमायान्ति सोरुः सती न निवर्तते ।।
एवं नाना समुत्थानाः कालं संवत्सरं श्रिताः ।। तैत्ति० आर० १.२

यज्ञोपवीत का उल्लेख : यज्ञोपवीत का सर्वप्रथम उल्लेख तैत्तिरीय ब्राह्मण (३.१०.९-१२) में आता है । तैत्तिरीय आरण्यक में भी यज्ञोपवीत का महत्त्व वर्णित है । यज्ञोपवीत धारण करके जो यज्ञ, पठन आदि किया जाता है, वह सब यज्ञ की श्रेणी में आता है ।

प्रसृतो ह वै यज्ञोपवीतिनो यज्ञः, यत् किं च ब्राह्मणो
यज्ञोपवीती - अधीते यजत एव तत् । तैत्ति० आर० २.१.१

श्रमण शब्द का प्रयोग : श्रमण शब्द का तपस्वी के अर्थ में प्रयोग सर्वप्रथम तैत्तिरीय आरण्यक और बृहदारण्यक उपनिषद् (४.३.२२) में हुआ है । बौद्ध काल में यह शब्द बौद्ध-भिक्षुओं के लिए प्रयुक्त होने लगा ।

वातरशना ह वा ऋषयः श्रमणाः ० । तैत्ति० आर० २.७.१

प्रव्रज्या का उल्लेख : बृहदारण्यक में संन्यासी के अर्थ में प्रव्रज्या शब्द का उल्लेख है । प्रव्रज्या का अर्थ है - घर छोड़कर जाना । इसका पारिभाषिक अर्थ है - तत्त्वदर्शन या ब्रह्मज्ञान के लिए घर छोड़कर वन आदि में जाना । अतएव संन्यासी के लिए परिव्राट् (परिव्राज्) और परिव्राजक शब्द हैं । बृहदारण्यक में कहा गया है कि आत्मतत्त्व का ज्ञान प्राप्त करने वाला ही मुनि होता है । इस आत्मतत्त्व के ज्ञान और ब्रह्मलोक की प्राप्ति की इच्छा से ही व्यक्ति संन्यासी होता है ।

एतमेव विदित्वा मुनिर्भवति । एतमेव प्रवाजिनो लोकमिच्छन्तः प्रव्रजन्ति ।
बृहदा० ४.४.२२

मैत्रायणी उपनिषद् (६.२८) में भी प्रव्रज्या शब्द का उल्लेख है ।

ऐतिहासिक तथ्य : आरण्यकों में कतिपय ऐतिहासिक तथ्यों का भी उल्लेख है । तैत्तिरीय आरण्यक में गंगा-यमुना के मध्यवर्ती प्रदेश को अत्यन्त पवित्र बताया गया है । इसी में कुरुक्षेत्र और खांडव वन का भी उल्लेख है ।

नमो गंगायमुनयोर्मध्ये ये वसन्ति० । तैत्ति० आर० २.२०

शांखायन आरण्यक (६.१) में उशीनर, कुरु-पांचाल, मत्स्य, काशी और विदेह जनपदों का वर्णन है ।

उशीनरेषु, मत्स्येषु, कुरुपांचालेषु, काशिविदेहेषु । शांखा० आ० ६.१

मैत्रायणी आरण्यक में भारत के चक्रवर्ती सम्राटों के नाम मिलत हैं । ये हैं :

अन्ये महाधर्नुधराः चक्रवर्तिनः । केचित् सुद्युम्न -भूरिद्युम्न- इन्द्रद्युम्न - कुवलयाश्व - यौवनाश्व - वध्र्यश्व - अश्वपति - शशबिन्दु - हरिश्चन्द्र - अम्बरीष - ननक्तु - शर्याति - ययाति - अनरण्य - अक्षसेनादयः । मरुत्त - भरत - प्रभृतयो राजानः । मैत्रा० आर० १.४

आरण्यकों के रचयिता

अधिकांश आरण्यक ग्रन्थ संबद्ध ब्राह्मणग्रन्थों के अन्तिम भाग हैं । अतः उन ब्राह्मणग्रन्थों के रचयिता ही आरण्यग्रन्थों के भी रचयिता माने जाते हैं । इसके कुछ अपवाद भी हैं ।

ऐतरेय ब्राह्मण के प्रवक्ता महिदास ऐतरेय हैं । उनको ही ऐतरेय आरण्यक (तृतीय आरण्यक तक) का प्रवक्ता माना जाता है । ऐतरेय आरण्यक में इसका उल्लेख भी है । 'एतद् ह स्म वै तद् विद्वान् आह महिदास ऐतरेयः (२.१.८) ।' ऐतरेय आरण्यक के चतुर्थ आरण्यक के प्रवक्ता आश्वलायन माने जाते हैं और पंचम आरण्य के शौनक । सायण ने भी ऐतरेयाण्यक के भाष्य में अपना यही मत प्रकट किया है ।

ताश्च पंचमे शौनकेन शाखान्तरमाश्रित्य पठिताः । सायण

शांखायन आरण्यक के प्रवक्ता 'गुण शांखायन' हैं । इनके गुरु का नाम 'कहोल कौषीतकि' था । इसी आरण्यक के १५वें अध्याय में इसका स्पष्ट उल्लेख है ।

गुणाख्यात् शांखायनाद् अस्माभिरधीतम् , गुणख्यः शांखायनः कहोलात् कौषीतकेः । शांखा० आर० अ० १५

बृहदारण्यक के प्रवचनकर्ता महर्षि याज्ञवल्क्य हैं । ये संपूर्ण शतपथ ब्राह्मण के प्रवक्ता हैं । उसी ब्राह्मण का अन्तिम भाग बृहदारण्यक है ।

तैत्तिरीय आरण्यक कृष्ण यजुर्वेदीय आरण्यक है । सायण ने अपने भाष्य में कठ ऋषि को इसका प्रवक्ता बताया है ।

कठेन मुनिना दृष्टं काठकं परिकीर्त्यते । सायण, भूमिका, श्लोक १०-११

मैत्रायणीय आरण्यक भी कृष्ण यजुर्वेदीय आरण्यक है । मैत्रायणीयों की गणना १२ कठों के अन्तर्गत है । अतः इसका प्रवक्ता भी कठ ऋषि ही समझना चाहिए । इसको 'मैत्रायणीय उपनिषद्' भी कहते हैं ।

'तलवकार आरण्यक' जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण ही है । इसके प्रवक्ता जैमिनि मुनि को ही समझना चाहिए ।

उपलब्ध आरण्यक ग्रन्थ

संप्रति केवल ६ आरण्यक ग्रन्थ प्राप्य हैं । वेदों के अनुसार इन्हें इस प्रकार रख सकते हैं :

१. **ऋग्वेदीय** : ऋग्वेद से संबद्ध दो आरण्यक ग्रन्थ हैं : ऐतरेय और शांखायन आरण्यक ।

२. शुक्लयजुर्वेदीय : बृहदारण्यक है । यह माध्यन्दिन और काण्व दोनों शाखाओं में प्राप्य है ।

३. कृष्ण यजुर्वेदीय : कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय और काठक शाखाओं का एक आरण्यक है – तैत्तिरीय आरण्यक । मैत्रायणीय शाखा का एक आरण्यक 'मैत्रायणीय आरण्यक' है । इसको ही 'मैत्रायणीय उपनिषद्' भी कहते हैं । मैत्रायणी संहिता के अन्त में परिशिष्ट के रूप में यह उपलब्ध है ।

४. सामवेदीय : सामवेद की जैमिनिशाखा का 'तलवकार आरण्यक' है । इसको 'जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण' भी कहते हैं । सामवेद की कौथुम शाखा का पृथक् आरण्यक नहीं है । छान्दोग्य उपनिषद् कौथुम शाखा से संबद्ध है । इसके कुछ अंशों को आरण्यक कहा जा सकता है ।

५. अथर्ववेदीय : अथर्ववेद का कोई पृथक् आरण्यक नहीं है । गोपथ ब्राह्मण के ही ब्रह्मविद्या-परक कुछ अंशों का आरण्यक कह सकते हैं ।

१. ऐतरेय आरण्यक

यह ऐतरेय ब्राह्मण का ही परिशिष्ट भाग है । इसमें पाँच भाग हैं । इन भागों को आरण्यक या प्रपाठक कहते हैं । ये पुनः अध्यायों में विभक्त हैं । इसमें ऋग्वेद के मंत्रों को बहुधा उद्धृत किया गया है । इसके लिए – 'तदुक्तम् ऋषिणा' संकेत दिया गया है ।

आरण्यकों के अनुसार वर्ण्य-विषय इस प्रकार हैं :

आरण्यक १ : इसमें महाव्रत का वर्णन है । यह महाव्रत 'गवामयन' सत्र का ही अंश है । इसमें प्रयोज्य मंत्रों की आध्यात्मिक और प्रतीकात्मक व्याख्या की गई है ।

आरण्यक २ : इसके प्रथम ३ अध्यायों में उक्थ (निष्केवल्य, प्राणविद्या और पुरुष) का विवेचन है । इसके ४ से ६ अध्यायों में ऐतरेय उपनिषद् है ।

आरण्यक ३ : इसको 'संहितोपनिषद्' कहते हैं । इसमें संहिता, पदपाठ, क्रमपाठ तथा स्वर और व्यंजनों के आदि के स्वरूप का विवेचन है । यह प्रातिशाख्यों से संबद्ध विषय है । इसमें शाकल्य और मांडूकेय आदि आचार्यों के मतों का भी उल्लेख है ।

आरण्यक ४ : इसमें 'महानाम्नी' ऋचाओं का संकलन है, जो महाव्रत में बोली जाती हैं ।

आरण्यक ५ : इसमें निष्केवल्य शस्त्र (मंत्रों) का वर्णन है ।

ऐतरेय आरण्यक के विशिष्ट सन्दर्भ

१. प्राणविद्या : इसमें प्राणविद्या का बहुत विस्तार से वर्णन किया गया है ।

२. प्रज्ञा का महत्त्व : पुरुष प्रज्ञा-संपन्न है, अतएव वह सभी पदार्थों को जान सकता है, देख सकता है और पा सकता है । (ऐत० आर० २.३.२)

३. आत्मस्वरूप का वर्णन : आत्मा अदृष्ट, अज्ञात और अश्रुत है, किन्तु वही

द्रष्टा, ज्ञाता और श्रोता है। वही जीव के अन्दर विद्यमान पुरुष आत्मा है।

स ... श्रोता, मन्ता, विज्ञाता, सर्वेषां भूतानाम् आन्तरपुरुषः,
स म आत्मेति विद्यात् । (ऐत०आर० ३.२.४)

४. वैदिक अनुष्ठान : इस विधि का उल्लंघन करने वाले पशु, पक्षी, सर्प आदि की योनि में जाते हैं। वैदिक मार्ग के अनुयायी उत्तम लोकों को प्राप्त करते हैं। (द्वितीय प्रपाठक)

५. स्त्रियों का महत्त्व : पत्नी को प्राप्त करके ही मनुष्य पूर्ण होता है, अन्यथा वह अपूर्ण है। 'पुरुषो जायां वित्त्वा कृत्स्नतरम् इवात्मानं मन्यते। (१.३.५))

६. शास्त्रीय महत्त्व : इसमें भाषाविज्ञान से संबद्ध कई विषय लिए गए हैं। यह प्रातिशाख्य और निरुक्त से पूर्ववर्ती है। इसमें अनेक पारिभाषिक शब्द दिये गए हैं। जैसे - निर्भुज (संहिता), प्रतृण्ण (पद) , संहिता, संधि आदि शब्द।

७. आचारसंहिता : इसमें नैतिकता और चारित्रिक उन्नति पर बल दिया गया है। सत्यभाषण का महत्त्व बताते हुए कहा गया है कि सत्यभाषण से लोक और परलोक दोनों सुधरते हैं। इस लोक में उसे श्री मिलती है और वह यशस्वी होता है। (२.३.६)

२. शांखायन आरण्यक

यह ऋग्वेदीय आरण्यक है। इसमें १५ अध्याय हैं। अध्याय ३ से ६ तक को 'कौषीतकि उपनिषद्' कहते हैं। अध्याय ७ से ८ को 'संहितोपरिषद्' कहते हैं। इसको कौषीतकि आरण्यक भी कहा जाता है। अध्याय के अनुसार वर्ण्य-विषय ये हैं :

अध्याय १ और २ : इनमें ऐतरेय आरण्यक के तुल्य महाव्रत का वर्णन है।

अध्याय ३ से ६ : कौषीतकि उपनिषद्। इसका विवरण उपनिषद्-प्रकरण में है।

अध्याय ७ से ८ : संहितोपनिषद्। इसका भी विवरण उपनिषद् प्रकरण में है।

अध्याय ९ : इसमें प्राण की श्रेष्ठता का वर्णन है।

अध्याय १० : इसमें आध्यात्मिक अग्निहोत्र का सांगोपांग वर्णन है।

अध्याय ११ : इसमें मृत्यु के निराकरण के लिए एक विशेष याग का विधान है।

अध्याय १२ : इसमें समृद्धि के लिए बिल्व (बेल) के फल से एक मणि बनाने का वर्णन है।

अध्याय १३ : इसमें श्रवण-मनन आदि के लिए शरीर-शुद्धि, तपस्या, श्रद्धा और दम आदि की आवश्यकता का वर्णन किया गया है।

अध्याय १४ : इसमें 'अहं ब्रह्मस्मि' और वेदों के अर्थज्ञान का महत्त्व बताया गया है।

अध्याय १५ : इसमें आचार्यों की वंश-परंपरा दी गई है।

शांखायन आरण्यक के विशिष्ट सन्दर्भ

१. आध्यात्मिक अग्निहोत्र का महत्त्व : इस आरण्यक में बताया गया है कि बाह्य अग्निहोत्र की अपेक्षा आभ्यन्तर (आध्यात्मिक) अग्निहोत्र का बहुत अधिक महत्त्व है। जो साधक आन्तरिक आत्मतत्त्व को न जानकर केवल बाहरी यज्ञ करता है, वह भस्म में हवन करता है। सारे देवता शरीर के अन्दर प्रतिष्ठित हैं। आध्यात्मिक यज्ञ से उन सबकी तृप्ति होती है। (अध्याय १०)

२. तत्त्वमसि और अहं ब्रह्मास्मि : वेदान्तदर्शन के महावाक्य ये दोनों सुभाषित इस आरण्यक में है। 'तत् त्वम् असि' वह ब्रह्म ही जीवरूप में है। 'अहं ब्रह्म अस्मि' मैं ब्रह्मरूप हूँ, यह अनुभूति साधना की पराकाष्ठा है।

यदयम् आत्मा स एष 'तत् त्वमसि' इत्यात्माऽवगम्यः
'अहं ब्रह्मास्मि'। (अ० १३)

३. 'अहं ब्रह्मास्मि' का महत्त्व : 'अहं ब्रह्मास्मि' महावाक्य है। यही सर्वोच्च उपदेश है। यही ऋचाओं, यजुष्, साम और अथर्वा का शिरोभाग है। जो इसको जाने बिना वेदाध्ययन करता है, वह मूर्ख है। (अ० १४)

४. अर्थज्ञान का महत्त्व : अर्थज्ञान के बिना वेदों का अध्ययन मूर्खता है। जो वेदार्थ का ज्ञानी है, उसके सारे पाप कट जाते हैं और वह मोक्ष का अधिकारी होता है।

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूद् , अधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम् ।
योऽर्थज्ञ इत् सकलं भद्रमश्नुते, नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा ।। (अ० १४)

५. आचार्यों की वंश-परंपरा : अध्याय १५ में आचार्यों की वंश-परंपरा इस प्रकार दी गई है : स्वयंभू ब्रह्मा , प्रजापति, इन्द्र, विश्वामित्र, देवरात, साकमश्व, व्यश्व, विश्वमना, सुम्नयु, बृहद्दिवा, प्रतिवेश्य, सोम, सोमपा, सोमापि, प्रियव्रत, उद्दालक, आरुणि, कहोल, कौषीतकि और गुण शांखायन। इस गुण शांखायन से ही शांखायन आरण्यक की परंपरा आगे चली। कौषीतकि शांखायन के गुरु हैं। अतः यह आरण्यक गुरु-शिष्य दोनों का संमिलित प्रयास है।

३. बृहदारण्यक

यह शुक्ल यजुर्वेदीय आरण्यक है। यह शतपथ ब्राह्मण के अन्तिम १४वें कांड के अन्त में दिया गया है। इसको आरण्यक की अपेक्षा उपनिषद् के रूप में अधिक मान्यता प्राप्त है। इसका विवरण उपनिषद् के प्रकरण में दिया गया है। इसमें आत्मतत्त्व की विशद व्याख्या है।

४. तैत्तिरीय आरण्यक

यह कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय शाखा का आरण्यक है। इसमें १० प्रपाठक (अरण) या परिच्छेद हैं। प्रपाठकों के उप विभाग अनुवाक हैं। प्रपाठकों का नामकरण उनके प्रथम पद के आधार पर किया गया है। १० प्रपाठकों के नाम ये हैं : १. भद्र,

२. सह वै, ३. चिति, ४. युञ्जते, ५. देव वै, ६. परे, ७. शिक्षा, ८. ब्रह्मविद्या, ९. भृगु, १०. नारायणीय । प्रथम प्रपाठक 'भद्रं कर्णेभि:०' मंत्र से प्रारम्भ हुआ है, अत: इस प्रपाठक का नाम 'भद्र' है । इसी प्रकार अन्य प्रपाठकों के नाम हैं ।

प्रपाठकों के अनुसार वर्ण्य-विषय इस प्रकार हैं :

प्रपाठक १ : इसमें आरुण -केतुक नामक अग्नि की उपासना और तदर्थ इष्टका-चयन का वर्णन है ।

प्रपाठक २ : इसमें स्वाध्याय और पंच महायज्ञों का वर्णन है ।

प्रपाठक ३ : इसमें चातुर्होत्र चिति से संबद्ध मंत्र हैं ।

प्रपाठक ४ : इसमें प्रवर्ग्य होम से संबद्ध मंत्र हैं ।

प्रपाठक ५ : इसमें यज्ञ- संबन्धी कतिपय संकेत दिए गए हैं ।

प्रपाठक ६ : इसमें पितृमेध-संबन्धी मंत्रों का संकलन है । इसमें ऋग्वेद के भी मंत्र दिए गए हैं ।

प्रपाठक ७-९ : यह 'तैत्तिरीय उपनिषद्' है ।

प्रपाठक १० : यह 'महानारायणीय उपनिषद्' है । इसको खिलकांड मानते हैं ।

तैत्तिरीय आरण्यक के कुछ विशिष्ट सन्दर्भ

१. दो उपनिषदें : प्रपाठक ७ से ९ 'तैत्तिरीय उपनिषद्' है और प्रपाठक १० 'महानारायणीय उपनिषद्' है । इस प्रकार दो उपनिषदों का इसमें अन्तर्भाव है । इस दृष्टि से तैत्तिरीय आरण्यक केवल ६ प्रपाठक तक ही है ।

२. पंच महायज्ञ : इसमें पाँच महायज्ञों के दैनिक अनुष्ठान का निर्देश है । पाँच महायज्ञ हैं : १. ब्रह्मयज्ञ (संध्या), २. देवयज्ञ (अग्निहोत्र), ३. पितृयज्ञ (मातृ-पितृ-सेवा, इसे श्राद्ध-तर्पण भी कहते हैं), ४. मनुष्ययज्ञ (अतिथि-सत्कार), ५. भूतयज्ञ (बलिवैश्वदेव यज्ञ, पशु-पक्षियों आदि को अन्नादि देना) । इन्हें प्रतिदिन करने का निर्देश है - 'पंच वा एते महायज्ञा: सतति प्रतायन्ते' ।

३. स्वाध्याय : वेदमंत्रों के अध्ययन को स्वाध्याय कहते हैं । यदि एक मंत्र का भी नियम से अध्ययन किया जाता है तो स्वाध्याय पूर्ण माना जाता है ।

४. अभिचार-प्रयोग : प्रपाठक ४ (४.२७ और ४.३७) में शत्रुनाश के लिए अभिचार-प्रयोगों का उल्लेख है । जैसे - भिन्धि, छिन्धि, जहि, फट् आदि । ये अभिचार-मंत्र हैं ।

५. भौगोलिक वर्णन : प्रपाठक ४ में कुरुक्षेत्र और खांडव वन का वर्णन है ।

६. निर्वचन : कुछ शब्दों के निर्वचन भी मिलते हैं । जैसे - कश्यप का अर्थ सूर्य है । 'सर्वं पश्यति इति पश्यक:' यह सबको देखता है । वर्णव्यत्यय (Metathesis) से पश्यक का कश्यप हो गया । इसमें वर्णों का स्थान-परिवर्तन हुआ है । । 'पश्यक: कश्यपो भवति' । (१.८.८)

७. **व्यास मुनि** : व्यास मुनि का पाराशर्य (पराशर के पुत्र) नाम से उल्लेख मिलता है । (१.९.२) । सूर्य-नमस्कार का भी उल्लेख है । (२.२) ।

५. मैत्रायणीय आरण्यक

यह कृष्ण यजुर्वेदीय मैत्रायणीय शाखा का आरण्यक है । इसको 'मैत्रायणीय उपनिषद्' भी कहते हैं । यह मैत्रायणी संहिता के परिशिष्ट के रूप में अन्त में उपलब्ध है । (सातवलेकर - संस्करण) ।

इसमें ७ प्रपाठक हैं । प्रपाठक खंडों में विभक्त हैं । वर्ण्य विषय ये हैं :

प्रपाठक १ : ब्रह्मयज्ञ । राजा बृहद्रथ को वैराग्य और मुनि शाकायन्य द्वारा उसे उपदेश ।

प्रपाठक २ : शाकायन्य द्वारा ब्रह्मविद्या का उपदेश ।

प्रपाठक ३ : जीवात्मा के स्वरूप का वर्णन । कर्मफल और पुनर्जन्म ।

प्रपाठक ४ : ब्रह्म-सायुज्य - प्राप्ति के उपाय ।

प्रपाठक ५ : कौत्सायनी स्तुति । ब्रह्म की नानारूपों में स्थिति ।

प्रपाठक ६ : ओम् , प्रणव, उद्गीथ और गायत्री की उपासना । आत्मयज्ञ का वर्णन । षडंग योग, शब्दब्रह्म, निर्विषय मन से मोक्षप्राप्ति ।

प्रपाठक ७ : आत्म-स्वरूप- वर्णन ।

मैत्रायणीय आरण्यक के विशिष्ट सन्दर्भ

१. **ओम् का महत्त्व** : ओम् ही प्रणव और उद्गीथ है । वही ब्रह्म है । ओम् के द्वारा ब्रह्म की उपासना करें ।

य उद्गीथः, स प्रणवः, एतद् ब्रह्म । तस्माद् 'ओम्' इत्यनेन एतद् उपासीत । (६.४)

२. **ब्रह्म के अनेक रूप** : ब्रह्म ही ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, प्रजापति, अग्नि, वरुण, वायु, इन्द्र और चन्द्रमा है ।

त्वं ब्रह्मा त्वं च वै विष्णुः, त्वं रुद्रस्त्वं प्रजापतिः ।
त्वमग्निर्वरुणो वायुः , त्वमिन्द्रस्त्वं निशाकरः ।। (५.१)

३. **चारों वेद ब्रह्म के निश्वास** : ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद (अथर्वाङ्गिरस वेद) को ब्रह्म का निश्वास बताया गया है ।

एतस्य महतो भूतस्य निश्वसितम् एतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः । (मैत्रा० आ० ६.३२)

४. **चक्रवर्ती राजाओं के नाम** : भारत के चक्रवर्ती १५ महाराजाओं के नाम दिए गए हैं । इनका विवरण पहले दिया जा चुका है । (मैत्रा० १.४)

५. **मन का महत्त्व** : मन ही सारी बौद्धिक क्रियाओं का संचालक है । देखना, सुनना आदि मन के कारण ही होता है । अतएव काम, संकल्प, विचिकित्सा (सन्देह), श्रद्धा-अश्रद्धा, धैर्य -अधैर्य, धी (बुद्धि, ज्ञान), ह्री (लज्जा), भी (भय), ये सब मन के ही स्वरूप हैं । (मैत्रा० ६.३०)

६. ज्ञान के विघ्न : इसमें ज्ञान के विघ्नों (ज्ञानोपसर्ग) की एक लंबी सूची दी गई है। इनमें से कुछ विघ्न ये हैं : मोह का प्रपंच, मनोरंजन-प्रियता, प्रवास, भिक्षावृत्ति, शिल्पों में विशेष अभिरुचि, पाखंडों में रुचि, चाटुकारिता, अभिनय में रुचि, कुतर्क की प्रवृत्ति, इन्द्रजाल (जादू दिखाना) आदि में रुचि। (मैत्रा० ७.८)

७. जीवात्मा अंगुष्ठमात्र : जीवात्मा अणु से भी अणु है। वह अंगुष्ठमात्र है। 'अंगुष्ठमात्रम् अणोरपि अणुम्०' (मैत्रा० ६.३८)

८. चित्तशुद्धि से मोक्ष : चित्त या मन ही बन्धन का कारण है। चित्तशुद्धि ही मोक्ष का सर्वोत्तम उपाय है। (मैत्रा० ६.३४)

६. तलवकार आरण्यक

यह सामवेद की जैमिनिशाखा का आरण्यक है। इसको 'जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण' भी कहते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों के वर्णन में इसका उल्लेख किया गया है। इसमें चार आध्याय हैं। अध्यायों के अवान्तर भेद अनुवाक और खंड हैं।

तलवकार के प्रमुख सन्दर्भ

१. ओम् और गायत्री का महत्त्व : ओम् परम ज्ञान और बुद्धि का कारण है। ओम् से ही गायत्री की उत्पत्ति हुई है। गायत्री से ही प्रजापति और देवों ने अमरता प्राप्त की।

तद् एतदमृतं गायत्रम्। एतेन वै प्रजापतिरमृतत्वम् अगच्छत्।
एतेन देवाः। एतेन-ऋषयः। जैमि० उप० ब्रा० ३.७.३
ब्रह्म उ गायत्री जैमि० उप० ब्रा० १.१.८

गायत्री के रूप में यह पवित्र ज्ञान सर्वप्रथम कश्यप ऋषि को प्राप्त हुआ। गायत्री की उपासना करनी चाहिए।

२. वेदों से सृष्टि-प्रक्रिया : इसमें वर्णन है कि सृष्टि-प्रक्रिया का प्रारम्भ वेदों से हुआ।

३. अतिमानवीय शक्ति प्राप्त करना : इसमें अतिमानवीय शक्तियों की प्राप्ति के लिए कतिपय साधनाओं का उल्लेख है। जैसे – अर्धरात्रि में श्मशान-साधना आदि।

४. प्राचीन धार्मिक मान्यताएँ : इसमें कतिपय प्राचीन धार्मिक मान्यताओं का उल्लेख है, जो अन्य ब्राह्मणों में अप्राप्य है। जैसे – प्रेतात्माओं द्वारा साधकों का मार्ग-निर्देशन, मृत व्यक्तियों का पुनः प्रकट होना आदि।

५. सामगान के तत्त्वों की व्याख्या : इसमें सामगान के तत्त्वों की आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक दृष्टि से व्याख्या की गई है।

६. प्राचीन भाषा और शब्दावली : इसमें प्राचीन भाषा, प्राचीन व्याकरण-संबन्धी रूप और प्राचीन शब्दावली प्राप्य है।

७. देवशास्त्रीय एवं ऐतिहासिक तथ्य : इसमें देवशास्त्र से संबद्ध अनेक आख्यान दिए गए हैं। अनेक ऐतिहासिक तथ्यों का भी इसमें समावेश है।

अध्याय ५

उपनिषद् ग्रन्थ

उपनिषद् का अर्थ

उपनिषद् शब्द उप + नि + सद् + क्विप् (०) अर्थात् उप और नि उपसर्गपूर्वक सद् धातु से क्विप् (०) प्रत्यय करने पर बनता है। इसका अर्थ है - उप = समीप, नि= निश्चय से या निष्ठापूर्वक, सद् = बैठना, अर्थात् तत्त्वज्ञान के लिए गुरु के पास सविनय बैठना।

श्री शंकराचार्य ने उपनिषद् का अर्थ ब्रह्मविद्या माना है। उन्होंने उपनिषद् शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है। सद् धातु (षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु) के तीन अर्थ हैं - १. विशरण - नाश होना, जिसमें संसार की मूलभूत अविद्या का नाश होता है। २. गति - पाना या जानना, जिससे ब्रह्म की प्राप्ति होती है या उसका ज्ञान होता है। ३. अवसादन - शिथिल होना, जिससे मनुष्य के दुःख या बन्धन शिथिल होते हैं। इस प्रकार श्री शंकराचार्य ने अविद्या का नाश, ब्रह्मप्राप्ति और उसका ज्ञान तथा दुःख-निरोध, इन तीन अर्थों को लेकर उपनिषद् को ब्रह्मविद्या का द्योतक माना है।[१]

उपनिषदों की संख्या

उपनिषदों की संख्या के विषय में मतभेद है। वास्तविक उपनिषदें कितनी हैं, यह बताना कठिन है। उपनिषदों की संख्या १०८ से लेकर २०० तक मानी जाती है। मुक्तिक उपनिषद् में उपनिषदों की संख्या १०८ बताई गई है और वेदों के अनुसार उनके नाम और संख्या बताई गई है, 'विदेहमुक्ताविच्छा चेद् अष्टोत्तरशतं पठ' (१.२९)। इनसे कम पढ़नी हों तो ३२ उपनिषदें पढ़ें। 'द्वात्रिंशाख्योपनिषदं समभ्यस्य निवर्तय' (१. २८)। अड्यार लाइब्रेरी (मद्रास) से लगभग ६० अप्रकाशित उपनिषदों का एक संग्रह प्रकाशित हुआ है।[२] इस प्रकार उपनिषदों की संख्या २०० के लगभग पहुँच जाती है।

प्रामाणिक उपनिषदें : श्री शंकराचार्य ने १० उपनिषदों को प्रामाणिक और प्राचीन माना है तथा इनका पांडित्यपूर्ण भाष्य लिखा है। मुक्तिक उपनिषद् ने भी 'दशोपनिषदं पठ' (१.२७) के द्वारा प्रामाणिक उपनिषदें १० मानी हैं तथा इनके ये नाम दिए हैं :

---

१. कठ उपनिषद्, शांकर भाष्य की प्रस्तावना।

२. अड्यार लाइब्रेरी मद्रास से ये उपनिषदें 'उपनिषद् ब्रह्मयोगी' की व्याख्या के साथ चार भागों में प्रकाशित हुई हैं।

ईश-केन-कठ-प्रश्न-मुण्ड-माण्डूक्य-तित्तिरिः ।
ऐतरेयं च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं तथा। मुक्तक० १.३०

इनके अतिरिक्त श्वेताश्वतर, कौषीतकि और मैत्रायणीय भी प्राचीन माने जाते हैं। श्री शंकराचार्य ने अपने भाष्य में श्वेताश्वतर और कौषीतकि के भी उद्धरण दिए हैं। अतः इन तीनों को लेकर प्राचीन उपनिषदों की संख्या १३ मानी जाती है।

श्री ह्यूम (Hume) ने जिन १३ उपनिषदों को मुख्य माना है और अंग्रेजी में अनुवाद किया है, उनमें पूर्वोक्त १० उपनिषदों के अतिरिक्त श्वेताश्वतर, कौषीतकि और मैत्रायणीय (या मैत्री) उपनिषदें हैं।[1]

उपनिषदों का वेदानुसार वर्गीकरण

प्रत्येक उपनिषद् का किसी विशिष्ट वेद से संबन्ध माना जाता है। यह आवश्यक नहीं है कि उस उपनिषद् में उस वेद से संबद्ध विषयों का ही वर्णन हो। प्रत्येक उपनिषद् में वेदों के आध्यात्मिक और दार्शनिक पक्ष का ही वर्णन है। मुक्तिक उपनिषद् में १०८ उपनिषदों का उल्लेख है। साथ ही यह भी उल्लेख है कि किस उपनिषद् का किस वेद की कौन सी शाखा से संबन्ध है। उनके नामों का उल्लेख है तथा उनके शान्तिपाठ का भी वर्णन है। संक्षेप में प्रत्येक वेद से संबद्ध उपनिषदें और शन्तिपाठ ये हैं :[2]

	वेद	उपनिषद् नाम	संख्या	शान्तिपाठ[3]
१.	ऋग्वेद	ऐतरेय, कौषीतकि आदि	१०	वाङ् मे मनसि०
२ (क)	शुक्ल यजुर्वेद	ईश, बृहदारण्यक आदि	१९	पूर्णमदः०
२ (ख)	कृष्ण यजुर्वेद	कठ, तैत्तिरीय आदि	३२	सह नाववतु०
३.	सामवेद	केन, छान्दोग्य आदि	१६	आप्यायन्तु०
४.	अथर्ववेद	प्रश्न, मुण्डक आदि	३१	भद्रं कर्णेभिः०

उपनिषदों का विषयानुसार वर्गीकरण

श्री वी० वरदाचार्य आदि ने १०८ उपनिषदों को विषयानुसार ६ भागों में बाँटा है।[4] तदनुसार विवरण निम्न है :

	विषय	संख्या	प्रमुख उपनिषदें
१.	वेदान्त-सिद्धान्त	२४	कौषीतकि, मैत्रायणी, आत्म, सूर्य, सावित्री
२.	योग-सिद्धान्त	२०	अमृतनाद, तेजोबिन्दु, त्रिशिख, ब्रह्मविद्या

---
१. The Thirteen Principal Upanisads, Robert Ernest Hume.
२. १०८ उपनिषदों के वर्गीकृत नाम के लिए देखें, मुक्तिक उप० २.१ से ५
३. शान्तिपाठ के पूरे मंत्र के लिए देखें, ईशादि - अष्टोत्तरशतोपनिषदः, व्यास प्रकाशन, वाराणसी, १९८३, पृष्ठ २ और ३
४. द्रष्टव्य, वरदाचार्य, संस्कृत साहित्य का इतिहास (हिन्दी), पृष्ठ ४२

३.	सांख्य एवं संन्यास सिद्धान्त	१७	शारीरक, वराह, याज्ञवल्क्य, ब्रह्म, जाबाल
४.	वैष्णव-सिद्धान्त	१४	नारायण, कृष्ण, रामरहस्य, वासुदेव, रामतापिनी
५.	शैव-सिद्धान्त	१५	अथर्वशिखा, कैवल्य, जाबालि, गणपति
६.	शाक्त एवं अन्य सिद्धान्त	१८	गायत्री, गायत्री-रहस्य, श्रीचक्र, आथर्वण

सभी संप्रदायों के आचार्यों का प्रयत्न रहा है कि उनके मन्तव्य का प्रतिनिधित्व करने वाली कोई न कोई उपनिषद् हो, अतएव छोटी-बड़ी अनेक उपनिषदों की रचना हुई है। कुछ उपनिषदों में दार्शनिक तत्त्वों का सूक्ष्मता से विवेचन हुआ है।

उपनिषदों का रचनाकाल

प्रो० वैद्य ने उल्लेख किया है कि मैत्रायणीय उपनिषद् में कुछ ज्योतिष संबन्धी तथ्यों के उल्लेख हैं। इनको ध्यान में रखकर उपनिषदों का काल-निर्णय होना चाहिए। श्री तिलक ने मैत्रायणीय उपनिषद् का काल १९०० वि०पू० (लगभग १९५० ई०पू०) माना है। तदनुसार उपनिषद् काल का प्रारम्भ २५०० ई०पू० मानना चाहिए।[१]

प्रो० रानाडे ने उपनिषदों के रचनाकाल के विषय में कहा है कि इनके रचनाकाल के विषय में ठीक-ठीक निश्चय करना कठिन है। उपनिषद् काल की दो सीमाएँ निर्धारित की जा सकती हैं। पूर्व सीमा १२वीं शती ई० पू० और अपर सीमा छठी शताब्दी ई० पू०।[२] उपनिषदों में बुद्ध, बौद्ध धर्म और बौद्ध दर्शन का कहीं उल्लेख नहीं है, अतः बुद्ध के आविर्भाव से पूर्व इनकी अपर सीमा है। इस प्रकार छठी शताब्दी ई०पू० से पहले मुख्य १३ उपनिषदें बन चुकी थीं। कुछ संप्रदायों की उपनिषदें बाद में भी बनती रही हैं।

उपनिषदों के प्राचीन भाष्य एवं अनुवाद

शांकर-भाष्य : उपनिषदों के प्राचीन भाष्यों में श्री शंकराचार्य के भाष्य सर्वोत्तम एवं प्रामाणिक हैं। श्री शंकराचार्य ने जिन १० उपनिषदों के भाष्य किए हैं, वे हैं : ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक।

दाराशिकोह : दाराशिकोह शाहजहाँ का पुत्र और औरंगजेब का बड़ा भाई था। उसने ५० उपनिषदों का फारसी में अनुवाद 'सिर्र-ए-अकबर' (महान् रहस्य) नाम से १६५७ ई० में किया था। उसका कथन था कि कुरान में 'किताबिम मक्नुनिन' (छिपी हुई किताब) का उल्लेख है और यह छिपी हुई किताब उपनिषदें ही हैं। इसका हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हुआ है। इसकी भाषा सरल और सुबोध है। अनुवाद के साथ टिप्पणियाँ नहीं है। श्री मुंशी महेशप्रसाद ने इन ५० उपनिषदों में से ४५ उपनिषदों के मूल नाम खोज निकाले हैं। इनमें बाष्कल, छागलेय और आर्षेय आदि उपनिषदों के भी अनुवाद हैं। दाराशिकोह के फारसी अनुवाद से आंकतिल दु पेरों (Anquetil du Perron) नामक

---

१. वैद्य, संस्कृत सहित्य का इतिहास, भाग २, पृष्ठ १७१-१७४

२. प्रो० रानाडे, *A Constructive Survey of Upanisadic Philosophy.*

फ्रेंच विद्वान् ने १८०२ में इसका फ्रेंच और लेटिन में आउपनेखत (Oupnekhat) नाम से अनुवाद किया। लेटिन अनुवाद ही प्रकाशित हुआ। इसके आधार पर ही प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक शोपेनहावर (Schopenhauer) उपनिषदों के प्रति बहुत आकृष्ट हुआ और उसने उपनिषदों को 'मानवीय वैदुष्य की सर्वोत्तम कृति' बताया था।

यहाँ स्मरण रखें कि 'आउपनेखत' यह 'उपनिषत्' का ही विकृत रूप है। इसी प्रकार उसने अपने इस ग्रन्थ में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के ये विकृत नाम दिए हैं - ऋग्वेद - Rak Beid, यजुर्वेद - Djedir Beids, सामवेद -Sam Beid, अथर्ववेद - Athrban Beid।[1]

उपनिषदों में दार्शनिक विवेचन

वेदों के पश्चात् आरण्यक ग्रन्थों में जो आध्यात्मिक जिज्ञासा, मनन, चिन्तन और स्वानुभूति की प्रक्रिया विकसित हुई, उसी का सुव्यवस्थित एवं परिपक्व स्वरूप उपनिषदों में दृष्टिगोचर होता है। उपनिषदों का दर्शन परस्पर विरोधी गुणों का समन्वय है। इसमें एक ओर ज्ञानमार्ग की उपयोगिता वर्णित है तो दूसरी ओर कर्ममार्ग और भक्तिमार्ग की, एक ओर प्रवृत्तिमार्ग की प्रधानता है तो दूसरी और निवृत्तिमार्ग की, एक ओर 'सर्वंखल्विदं ब्रह्म' वर्णित है तो दूसरी ओर द्वैत और त्रैत सिद्धान्तों का वर्णन है। उपनिषदों की प्रमुख विशेषता यह है कि यह सर्वत्र विवादास्पद विषयों पर समन्वय प्रस्तुत करता है, जैसे - विद्या और अविद्या, संभूति और असंभूति, श्रेय और प्रेय, ज्ञान और कर्म, प्रवृत्ति और निवृत्ति, एकत्व और अनेकत्व, अद्वैत और द्वैत सिद्धान्तों में समन्वय प्रस्तुत करता है। इसका अभिप्राय यह है कि एकांगी दृष्टिकोण हानिप्रद है। प्रत्येक वाद के दो पक्ष होते हैं। दोनों पक्षों के गुणों को ग्रहण करना चाहिए। अतएव ईश उपनिषद् में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यदि अविद्या (कर्म) का मार्ग अन्धकार का मार्ग है तो विद्या (ज्ञान) का मार्ग उससे अधिक अन्धकारमय है। अतः ज्ञान और कर्म दोनों का समन्वय अभीष्ट है। एक भौतिक जगत् के लिए लाभप्रद है तो दूसरा अध्यात्म के लिए। यहाँ उपनिषदों में प्रतिपादित दार्शनिक विचारों की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की जा रही है।

१. ब्रह्म का स्वरूप : उपनिषदों में मुख्य रूप से ब्रह्म के स्वरूप का प्रतिपादन है। बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है कि वह ब्रह्म न स्थूल है, न सूक्ष्म, न लघु है, न गुरु, उसमें न रस है न गन्ध, उसके न आँख है, न कान। वह नित्य है, उसमें आकाश ओत-प्रोत है।

अस्थूलम् , अनणु, अह्रस्वम्, अदीर्घम् ... अरसम् अगन्धम् अचक्षुष्कम् अश्रोत्रम्.. अस्मिन् नु खल्वरे गार्गि ! आकाश ओतश्च प्रोतश्च। बृहदा० ३.८.८-११

२. ब्रह्म से मन आदि में गति : ब्रह्म चक्षु, श्रोत्र, वाणी और मन आदि की पहुँच से परे है। उसकी सत्ता से ही चक्षु, श्रोत्र, वाणी और मन आदि कार्य कार्य करते हैं।

(केन० १.३-८)

---

१. द्रष्टव्य, Winternitz, History of Indian Literature, Vol. I P. 19-20

यन्मनसा न मनुते, येनाहुर्मनो मतम् ।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि, नेदं यददिमुपासते ।। (केन १.५)

३. ब्रह्म सर्वव्यापी है : ब्रह्म इस सारे चराचर जगत् में व्याप्त है। वह सारे जीवों के अन्दर विद्यमान है, वह अन्तर्यामी है, वह कर्मों का नियन्ता है, वह साक्षी है, वह चेतन है, वह अद्वितीय है और निराकार है ।

(क) ईशावास्यमिदं सर्वं, यत् किंच जगत्यां जगत् । ईश० १

(ख) एको देवः सर्वभूतेषु गूढः, सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः, साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ।।
श्वेताश्वतर० ६.११

४. ब्रह्म सृष्टिकर्ता : सृष्टि के आदि में ब्रह्म अकेला था । उसने कामना की । उसके ईक्षण से ही सृष्टि की रचना हुई ।

सदेव सोम्येदमग्र आसीद् , एकमेवाद्वितीयम् । तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति ।
तत् तेजोऽसृजत० । छान्दोग्य० ६.२.१-३

५. ब्रह्म-साक्षात्कार लक्ष्य : केन उपनिषद् का कथन है कि मानव-जीवन का लक्ष्य ब्रह्म-साक्षात्कार है । उसके बिना जीवन निरर्थक है ।

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति, न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः । (केन० २.५)

६. आत्मदर्शन से सर्वज्ञता : बृहदारण्यक का कथन है कि आत्मा का ही दर्शन, श्रवण, मनन और ध्यान करना चाहिए । उसके ज्ञान से सर्वज्ञता प्राप्त होती है ।

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः ।
आत्मनि ... दृष्टे श्रुते मते विज्ञाते इदं सर्वं विदितम् । बृहदा० ४.५.६

७. धन से अमरत्व नहीं : बृहदारण्यक का कथन है कि आत्मज्ञान में धन साधक नहीं, अपितु बाधक है । धन से अमरत्व की आशा मात्र दुराशा है ।

अमृतत्वस्य तु नाशाऽस्ति वित्तेन । बृहदा० ४.५.३

८. अद्वैत तत्त्व : वेदान्त दर्शन में जिस अद्वैत ब्रह्म का प्रतिपादन किया गया है, उसका बीज मांडूक्य उपनिषद् में प्राप्त होता है । इसमें ब्रह्म की जाग्रत् आदि ४ अवस्थाएँ, स्थूल आदि शरीर, वैश्वानर, तैजस प्राज्ञ आदि समष्टि और व्यष्टि रूप, आनन्दमय आदि कोश तथा तुरीय (चतुर्थ) शिव अवस्था का प्रतिपादन है, इसी आधार पर वेदान्त दर्शन में चतुष्पाद ब्रह्म की कल्पना की गयी है ।

प्रपंचोपशमं शान्तं शिवम् अद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः। मां०७

९. त्रैतवाद : त्रैतवाद के समर्थन में ऋग्वेद (१.१६४.२०) और अथर्ववेद (९.९.२०) में पठित प्रसिद्ध मंत्र 'द्वा सुपर्णा०' श्वेताश्वतर उपनिषद् में प्राप्त होता है । इसमें ईश्वर, जीव और प्रकृति इन तीन तत्त्वों का उल्लेख और इनके गुणों का वर्णन है । ईश्वर कर्मफल का अभोक्ता और साक्षीरूप है । जीव कर्मफलभोक्ता है । प्रकृति अचेतन है ।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते । तयोरन्यः पिप्पलं
स्वादु- अत्ति, अनश्नन् अन्योऽभिचाकशीति ।। श्वेताश्वतर ४.६

१०. माया और मायी : वेदान्त में प्रसिद्ध 'माया ' का सर्वप्रथम वर्णन श्वेताश्वतर उपनिषद् में प्राप्त होता है । इसमें प्रकृति को 'माया' और पुरुष (महेश्वर) को 'मायिन्' (मायावी, माया का स्वामी या कर्ता) कहा गया है ।

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् । श्वेता० ४.१०

११. प्रकृति त्रिगुणात्मक : श्वेताश्वतर में प्रकृति के तीन गुणों का सांकेतिक रूप में उल्लेख है । साथ ही यह भी निर्देश है कि यह प्रकृति अज (नित्य) है । सत्त्वगुण के लिए शुक्ल, रजस् के लिए लोहित (लाल) और तमस् के लिए कृष्ण शब्द हैं । सांख्य और योगदर्शन में इन्हीं तीन गुणों का विवेचन है ।

अजामेकां लोहित-शुक्ल-कृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।

श्वेता० ४.५

१२. 'तत् त्वमसि' : वेदान्त में प्रतिपादित 'तत् त्वमसि' महावाक्य का मूल छान्दोग्य उपनिषद् में प्राप्त होता है । इसमें उद्दालक मुनि ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को 'तत् त्वमसि' का विस्तृत उपदेश दिया है ।

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदं सर्वं तत् सत्यं स आत्मा तत् त्वमसि श्वेतकेतो इति । छान्दोग्य ६.६.८.७

१३. एकेश्वरवाद : श्वेताश्वतर उपनिषद् में एकेश्वरवाद का प्रतिपादन हुआ है । वह ईश्वर एक है । वह अपनी शक्तियों से नानारूपों को धारण करता है, वही अग्नि, सूर्य, वायु, चन्द्रमा, ब्रह्म और प्रजापति आदि अनेक रूपों में है ।

(क) य एकोऽवर्णो बहुधा शक्तियोगाद्
वर्णाननेकान् निहितार्थो दधाति । श्वेता० ४.१

(ख) तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद् वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदापस्तत् प्रजापतिः । श्वेता० ४.२

१४. कर्मफल : शुभ और अशुभ कर्मों का फल अवश्य प्राप्त होता है । शुभ कर्मों से पुण्य और अशुभ कर्मों से दुःख होता है ।

पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति, पापः पापेन । बृहदा० ३.२.१३

१५. श्रेय और प्रेय : कठ उपनिषद् में श्रेयस् और प्रेयस् दो मार्गों का उल्लेख है । भौतिक उन्नति को प्रेय मार्ग कहते हैं और अध्यात्म को श्रेय मार्ग । सामान्य व्यक्ति प्रेय मार्ग को अपनाते हैं , परन्तु ज्ञानी व्यक्ति श्रेय मार्ग को अपनाकर आत्मिक आनन्द पाते हैं ।

तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति ।
हीयतेऽर्थाद् य उ प्रेयो वृणीते ।। कठ० १.२.१

१६. गीता के आधार दो मंत्र : ईश उपनिषद् के दो मंत्र संपूर्ण गीता के आधार हैं । गीता में दो विषयों को मुख्यरूप से लिया गया है : १. आत्मा अमर है और

शरीर नश्वर है । २. निष्काम कर्मयोग । ईश उपनिषद् से ये दोनों भाव लेकर गीता का प्रणयन हुआ है । ये दो मंत्र हैं :

(क) वायुरनिलम् अमृतम् , अथेदं भस्मान्तं शरीरम् । ईश० १७

अर्थात् यह आत्मा अमर है और वायु के तुल्य है । यह शरीर नश्वर है, भस्म हो जाता है ।

(ख) कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ।। ईश० २

अर्थात् मनुष्य निष्काम भाव से कर्म करता हआ सौ वर्ष जीने की इच्छा करे । निष्काम कर्म करनेवाला कर्म के बन्धन में नहीं फँसता है ।

१७. विश्वबन्धुत्व : विश्वबन्धुत्व और समदर्शिता का संदेश सर्वप्रथम ईश उपनिषद् में प्राप्त होता है । मंत्र में कहा गया है कि जो सब जीवों में अपनापन देखता है और अपने में सब जीवों को समझता है, वह किसी से घृणा नहीं करता है ।

यस्तु सर्वाणि भूतानि - आत्मन्येवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ।। ईश० ६

१८. समन्वय की दृष्टि : उपनिषदों में सर्वत्र समन्वय की भावना है । दोनों पक्षों में जो ग्राह्य हो, उसे ले लेना चाहिए । इसी दृष्टि से ज्ञानमार्ग और कर्ममार्ग (विद्या और अविद्या) के समन्वय का उपदेश दिया गया है । कर्ममार्ग (अविद्या) से भौतिक जीवन सफल होता है और ज्ञानमार्ग (विद्या) से मोक्ष की प्राप्ति होती है । इसी प्रकार संभूति और असंभूति के समन्वय का उपदेश है । संभूति से अध्यात्मवाद और असंभूति से भौतिकवाद लिया गया है । भौतिकवाद से लौकिक उन्नति होती है और अध्यात्मवाद से पारलौकिक सुख ।

(क) अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते । ईश० ११

(ख) संभूतिं च विनाशं च यस्तद् वेदोभयं सह ।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा संभूत्याऽमृतमश्नुते ।। ईश० १४

१९. कर्मकांड की हीनता : उपनिषदों में ब्रह्मविद्या और अध्यात्म की अपेक्षा कर्मकांड को बहुत हीन बताया गया है । यज्ञ और कर्मकांड का फल अस्थायी है । यह जन्म और मरण के बन्धन में डालता है ।

प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा ....
एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा
जरामृत्युं ते पुनरेवापियन्ति । मुण्डक० १.२.७

२०. एकात्मवाद : ईश उपनिषद् में एकात्मवाद का प्रबल समर्थन किया गया है । उपनिषद् में कहा गया है कि जो सब प्राणियों में एकत्व की अनुभूति करने लगता है, उसे संसार में कहीं भी मोह और शोक नहीं होता है ।

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद् विजानतः ।

तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ।। ईश० ७

प्रो० विन्टरनित्स ने लिखा है कि लुड्विग स्टाइन (Ludwig Stein) ने एकात्मवाद (The Doctrine of Unity) को विश्व की समस्याओं के लिए महत्त्वपूर्ण माना है, किन्तु यह दार्शनिक विचार भारतीय उपनिषदों में ३ हजार वर्ष पूर्व ही प्रतिपादित हो चुका था ।[1]

प्रो० विन्टरनित्स ने उपनिषदों के महत्त्व के विषय में प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक शोपेनहावर (Schopenhauer) के विचार विस्तार से उद्धृत किए हैं, जिसमें उसने कहा था कि -उपनिषद् मेरे जीवन में शान्ति के साधन रहे हैं और मृत्यु में भी शान्ति के साधन रहेंगे ।[2]

प्रमुख उपनिषदों का संक्षिप्त विवरण

१. ईश उपनिषद्

यह उपनिषद् सारी उपनिषदों का आधार है । इसमें वर्णित सिद्धान्तों का ही सारी उपनिषदों में विशदीकरण है । यह मूलरूप में यजुर्वेद का ४०वाँ अध्याय है । क्रम आदि में थोड़ा अन्तर हुआ है । इसमें १८ मंत्र हैं, जिसका सारांश इस प्रकार है :

ईश्वर सारे चर-अचर जगत् में व्याप्त है । त्याग भाव से संसार का उपभोग करो । दूसरे के धन के लिए लालायित न हो, (मंत्र १) । सौ वर्ष तक निष्काम भाव से कर्म करते रहो, (मंत्र २) । आत्महत्या करने वाले घोर नरक में जाते हैं । इसका यह भी अभिप्राय है कि जो आत्मा की आवाज नहीं सुनते हैं, वे घोर नरक में जाते हैं, (मंत्र ३)। ईश्वर चल-अचल दूर -पास और बाहर-भीतर सर्वत्र है, (मंत्र ५) । सबको आत्मवत् देखने से कभी भी मोह-शोक नहीं होता, (मंत्र ७) । ईश्वर निराकार, सर्वव्यापक, शुद्ध और निष्पाप है । वही सबको कर्मानुसार ऐश्वर्य देता है, (मंत्र ८) । अविद्या (कर्ममार्ग) और विद्या (ज्ञानमार्ग) दोनों का समन्वय रखो । कर्ममार्ग से भौतिक सुख और ज्ञानमार्ग से मोक्ष की प्राप्ति होती है, (मंत्र ९ से ११) । संभूति (भौतिकवाद) और असंभूति का समन्वय रखो । असंभूति से लौकिक सुख और संभूति से अमरत्व मिलता है, (मंत्र १२ से १४), सत्य का मुख सुनहरे पात्र (भौतिक आकर्षण) से ढका हुआ है । इसको हटाकर सत्यरूप परमात्मा का दर्शन करें, (मंत्र १५) । जो पुरुष (शक्ति, ऊर्जा) सूर्य में है, वही जीव में भी है, (मंत्र १६) । शरीर नश्वर है, आत्मा अमर है । सदा ओम् का स्मरण करो, (मंत्र १७) । हम ऐश्वर्य के लिए सन्मार्ग पर चलें, (मंत्र १८) ।

(क) ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किं च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम् ।। ईश० १

(ख) विद्ययाऽमृतमश्नुते । ईश० ११

(ग) अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् । ईश० १८

---

1. Winternitz, History of Indian Literature. P. 267
2. वही, पृष्ठ 266-267 'It has been the solace of my life and will be the solace of my death'

२. केन उपनिषद्

इसको 'तलवकार उपनिषद्' भी कहते हैं। इसमें ४ खंड हैं। प्रथम दो खंड पद्यात्मक हैं और शेष दो गद्यात्मक। इसका संबन्ध सामवेद से है।

प्रथम खंड में बताया गया है कि ब्रह्म चक्षु-श्रोत्र-वाणी और मन की पहुँच से परे है। उसकी सत्ता से ही आँख, कान, वाणी, प्राण और मन अपना कार्य करते हैं। उस निर्गुण ब्रह्म को जानो।

द्वितीय खंड में बताया गया है कि ब्रह्म अवर्णनीय और अनिर्वचनीय है। जो यह मानता है कि मैं ब्रह्म को जानता हूँ, वह कुछ नहीं जानता है। इस जीवन की सार्थकता ब्रह्मज्ञान से है, अन्यथा यह निरर्थक है।

तृतीय और चतुर्थ खंड में कथा दी गई है कि ब्रह्म की विजय को अग्नि वायु आदि ने अपनी विजय समझा। ब्रह्म ने देवों की परीक्षा के लिए एक यक्ष को रखा और कहा कि यह कौन है? यक्ष ने अग्नि और वायु की परीक्षा के लिए तिनका रखा। उसे न अग्नि जला सका और न वायु उड़ा सका।

इन्द्र की परीक्षा के समय यक्ष के स्थान पर उमा प्रकट हुई। उसने बताया कि ब्रह्म की शक्ति के आधार पर ही अग्नि वायु आदि में शक्ति है, अन्यथा उनमें कोई शक्ति नहीं है। इन्द्र (जीवात्मा) ब्रह्म को समीप से जान पाता है। उसकी प्राप्ति के लिए ही जप संयम आदि हैं।

(क) यस्यामतं तस्य मतं, मतं यस्य न वेद सः।
अविज्ञातं विजानतां, विज्ञातमविजानताम्।। केन० २.३

(ख) इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति, न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः। केन० २.५

३. कठ उपनिषद्

यह कृष्ण यजुर्वेद की कठ शाखा से संबद्ध है। इसमें २ अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में ३ खंड (वल्ली) हैं। इसमें काव्यात्मक मनोरम शैली में गूढ़ दार्शनिक तत्त्वों का विवेचन है। अपनी रोचकता के कारण यह सुविख्यात है। इसमें सुप्रसिद्ध यम और नचिकेता (नचिकेतस्) की कथा है।

संक्षिप्त कथा : उद्दालक ऋषि के पुत्र वाजश्रवस सर्वमेध (विश्ववेदस्) यज्ञ के अन्त में ऋत्विजों को जीर्ण-शीर्ण गायें दक्षिणा में दे रहे थे। नचिकेता (नचिकेतस्) उनका पुत्र था। उसको पिता के इस कृत्य पर ग्लानि हई। उसने कहा - पिताजी, मुझे किसको दोगे। पिता ने क्रोध में कहा - यम को। नचिकेता यमराज के यहाँ पहुँच गया। यमराज ने अतिथि-सत्कार में उपेक्षा के प्रायश्चित्त के रूप में उसे तीन वर दिए। नचिकेता ने ये तीन वर माँगे - १. मेरे यमलोक से लौटने पर पिता मुझे देखकर प्रसन्न हों। २. दिव्य अग्निविद्या। ३. जीवन और मृत्यु का रहस्य। यमराज ने दो माँगें स्वीकार कर लीं। नचिकेता के बहुत हठ करने पर यम ने जीवन-मृत्यु का

रहस्य उसे बताया। तीसरे प्रश्न के उत्तर में सारी ब्रह्मविद्या आ गई है।

कठ उपनिषद् में दार्शनिक महत्त्व के सन्दर्भ

१. संसार अनित्य है। संसार के भोग-विलास क्षणिक हैं। धन से आत्मिक शान्ति नहीं मिलती।

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः। (१.१.२७)

२. श्रेय और प्रेय दो मार्ग हैं। सामान्य जन जीवनयापन के लिए प्रेय मार्ग (भौतिक सुख) को अपनाते हैं, परन्तु विद्वान् व्यक्ति श्रेयमार्ग (अध्यात्म मार्ग) को ही अपनाते हैं। श्रेयमार्ग आत्मिक शान्ति और मोक्ष का साधन है।

श्रेयो हि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते, प्रेयो मन्दो योगक्षेमौ वृणीते। (१.२.२)

३. ओम् सारे वेदों और शास्त्रों का सार है। ओम् (ईश्वर, ब्रह्म) के लिए ही सारे जप-तप आदि किए जाते हैं। वही संसार में सबसे बड़ा सहारा (आलम्बन) है।

सर्वे वेदा यत्पदम् आमनन्ति ..

तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीमि-ओम् इत्येतत्। (१.२.१५)

एतदालम्बनं श्रेष्ठम्, एतदालम्बनं परम्। (१.२.१७)

(४) आत्मा अजर और अमर है। न कभी उत्पन्न होता है और न कभी मरता है। यह सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान् से महान् है। इसको ज्ञानी ही जान पाते हैं। यह प्रत्येक जीव के अन्दर विद्यमान हैं।

न जायते म्रियते वा विपश्चित्० (१.२.१८ से २०)

अणोरणीयान् महतो महीयान्०। (१.२.२०)

(५) यह आत्मा ज्ञान-विज्ञान-मेधा आदि से प्राप्य नहीं है। आत्म-समर्पण से ही प्राप्य है। भक्त पर उसकी कृपा होती है और उसे आत्मदर्शन होता है।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः .... यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः०। (१.२.२२)

(६) जो मनुष्य ज्ञान (विवेक) को सारथि बनाता है, और मन को लगाम। वही परम पद को प्राप्त करता है। (१.३.९)

(७) आत्मज्ञान के लिए सदा जागरूक रहना और सत्संग में प्रवृत्त होना आवश्यक है। यह कठिन मार्ग है। तीक्ष्ण उस्तरे की धार पर चलने के तुल्य है।

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत।

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया०। (१.३.१४)

(८) यह आत्मा एक है। जो अनेकत्व देखते हैं, वे सदा दुर्गति को प्राप्त होते हैं। वह आत्मा अंगुष्ठमात्र है और शरीर में रहता है। उसको शुद्ध मन से ही प्राप्त कर सकते हैं।

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किंचन। (२.१.११-१२)

(९) कर्मानुसार मनुष्य को जन्म मिलता है। वह नाना योनियों में जाता है।

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते ... यथाकर्म यथाश्रुतम् । (२.२.७)

(१०) अग्नि और वायु जिस प्रकार एक होते हुए भी अनेक रूपों में हो जाते हैं, उसी प्रकार यह एक आत्मा असंख्य शरीर धारण करता है ।

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ।। (२.२.९)

(११) वह आत्मा ही सारे सूर्य चन्द्र तारों आदि का प्रकाशक है । उसकी ज्योति से ही ये सब तेजोमय हैं ।

तमेव भान्तमनुभाति सर्वं, तस्य भासा सर्वमिदं विभाति । (२.२.१५)

(१२) आत्मा मनुष्य के शरीर में विद्यमान है । उसको धैर्य से इसी प्रकार प्राप्त करें, जैसे मूंज में से सींक (पतली लकड़ी) को निकालते हैं ।

तं स्वात् शरीरात् प्रवृहेत् , मुंजादिवेषीकां धैर्येण । (२.३.१७)

४. प्रश्न उपनिषद्

ब्रह्मविद्या के ज्ञान के लिए ६ ऋषि महर्षि पिप्पलाद के पास आते हैं । उन्होंने अध्यात्म-विषयक ६ प्रश्न पूछे । महर्षि ने बहुत सुन्दरता से सबके प्रश्नों के उत्तर दिए हैं । ६ प्रश्न ये हैं : १. प्रजा (सृष्टि) की उत्पत्ति कहाँ से होती है । २. प्रजा के धारक और प्रकाशक कौन से देवता हैं और उनमें कौन श्रेष्ठ है । ३. प्राण की उत्पत्ति, उसका शरीर में आना और निकलना कैसे होता है । ४. स्वप्न, स्वप्न-दर्शन, जागना आदि क्रियायें कैसे होती हैं । कौन सोता-जागता है । ५. ओम् के ध्यान का क्या फल है । ६. षोडश कला वाला पुरुष कौन है, कहाँ रहता है ।

इस उपनिषद् में प्राण और रयि (अग्नि और सोम, धनात्मक और ऋणात्मक शक्ति) से सृष्टि की उत्पत्ति बताई है । प्राणशक्ति संसार का आधार है । सूर्य में प्राणशक्ति है, वही सारे संसार को प्राणशक्ति (जीवनी शक्ति) देता है । तपस्या, ब्रह्मचर्य, श्रद्धा और विद्या से ही आत्मतत्त्व का ज्ञान होता है ।

(क) प्राणः प्रजानाम् उदयत्येष सूर्यः । (१.८)
(ख) प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् । (२.६)
(ग) स मिथुनम् उत्पादयते, रयिं च प्राणं च । (१.४)
(घ) तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया विद्यया-आत्मानम् अन्विष्यात् । (१.१०)

५. मुण्डक उपनिषद्

यह अथर्ववेदीय उपनिषद् है । यह मुण्डित अर्थात् संन्यासियों के लिए विरचित हुई है । इसमें ३ मुण्डक (अध्याय) हैं और प्रत्येक दो खंडों में विभक्त हैं । इस उपनिषद् में ब्रह्मा ने अपने ज्येष्ठपुत्र अथर्वा (अर्थवन्) को ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया है ।

मुण्डक उपनिषद् के महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ

१. परा और अपरा विद्या : चारों वेद और वेदांग अपरा विद्या हैं । ब्रह्मविद्या ही परा विद्या है, जिससे अक्षर ब्रह्म का ज्ञान होता है । (१.१.३ और ४)

२. सृष्टि-उत्पत्ति : जैसे मकड़ी अपना जाल बनाती है और फिर खा लेती है, उसी प्रकार परमात्मा से सृष्टि होती है और फिर उसी में लीन हो जाती है ।

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च० । (१.१.७)

३. कर्मकांड हीन है : ब्रह्मविद्या की अपेक्षा यज्ञ आदि कर्मकांड हीन हैं । इसका फल अस्थायी है । इससे जीव पुनः जन्म-मृत्यु के बन्धन में आता है ।

प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपाः । (१.२.७)

४. परमात्मा अशरीरी है : परमात्मा अमूर्त है, दिव्य है, अनादि है, प्राण और मन से रहित है । वह संसार के अन्दर और बाहर सर्वत्र है ।

दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः ... अप्राणो ह्यमनाः० । (२.१.२)

५. जीवन का लक्ष्य ब्रह्म है : प्रणव (ओम्) को धनुष बनाओ, जीवात्मा को बाण और ब्रह्म को लक्ष्य । एकाग्रचित्त होकर लक्ष्य ब्रह्म को बींधो ।

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा, ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं, शरवत् तन्मयो भवेत् ।। (२.२.४)

६. ब्रह्म की ज्योति से ही सूर्य आदि में प्रकाश : सूर्य चन्द्र तारा आदि में अपना प्रकाश नहीं है । उसी ब्रह्म के प्रकाश से सबमें प्रकाश है ।

तमेव भान्तमनु भाति सर्वं, तस्य भासा सर्वमिदं विभाति । (२.२.१०)

७. सत्य और तप से ब्रह्मप्राप्ति : सत्य तप और ब्रह्मचर्य से ब्रह्म की प्राप्ति होती है । निष्पाप व्यक्ति ही हृदयस्थ उस ब्रह्म को देख पाते हैं ।

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा ... ब्रह्मचर्येण० । (३.१.५)

८. सत्य की विजय होती है : सत्य से ही देवयान प्राप्त होता है । सत्य से ही परम पद की प्राप्ति होती है ।

सत्यमेव जयते, नानृतम्० । (३.१.६)

९. त्रैतवाद : ऋग्वेद (१.१६४.२०) और अथर्ववेद (९.९.२०) में वर्णित त्रैतवाद का प्रतिपादक 'द्वा सुपर्णा०' मंत्र इस उपनिषद् में भी आया है । प्रकृतिरूपी वृक्ष पर दो पक्षी (जीवात्मा, परमात्मा) बैठे हैं । उनमें से एक कर्मफल का भोक्ता है और दूसरा केवल द्रष्टा एवं साक्षी है । (३.१.१)

१०. ब्रह्म समुद्रवत् है : तत्त्वज्ञानी पुरुष ब्रह्म में इसी प्रकार लीन हो जाता है, जैसे नदियाँ अपना नाम और रूप छोड़कर समुद्र में लुप्त हो जाती हैं ।

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति० । (३.२.८)

'वेदान्त' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 'वेदान्त-विज्ञान-सुनिश्चितार्थाः' (३.२.६) इसी उपनिषद् में है । अनेक श्लोक और भाव कठ और मुण्डक में सामानरूप से प्राप्त होते हैं ।

६. माण्डूक्य उपनिषद्

यह उपनिषद् लघुकाय होने पर भी भाव-गाम्भीर्य के कारण बहुत महत्त्वपूर्ण है । इसमें १२ वाक्य या खंड हैं । इसमें बताया गया है कि यह सारा संसार, वर्तमान भूत और भविष्यत् सब कुछ 'ओम्' की ही व्याख्या है । ओम् के अतिरिक्त और कुछ नहीं है । ओम् के एक-एक अक्षर अ उ म् की विभिन्न अवस्थाओं के फलस्वरूप सृष्टि के विभिन्न रूप हैं । आत्मा चतुष्पात् है । चतुर्थ अवस्था तुरीय अवस्था है । यह अवस्था अवर्णनीय है । आत्मा का यह शुद्ध शान्त अद्वैत शिव रूप है । इसी उपनिषद् के आधार पर वेदान्त दर्शन का प्रासाद खड़ा हुआ है । वेदान्त की मूल भावना इस उपनिषद् में प्राप्त होती है ।

संक्षेप में इसको इस प्रकार रख सकते हैं :

ओम् की मात्रा	अवस्था	आत्मा का स्वरूप	विषय
अ	जागरित	वैश्वानर	स्थूलभुक् (स्थूल)
उ	स्वप्न	तैजस	प्रविविक्तभुक् (सूक्ष्म)
म्	सुषुप्ति	प्राज्ञ	आनन्दभुक् (आनन्द)
--	तुरीय	अद्वैत शिव	अवर्णनीय

७. तैत्तिरीय उपनिषद्

तैत्तिरीय आरण्यक के ही तीन प्रपाठकों (७.८ और ९) को तैत्तिरीय उपनिषद् कहा जाता है । प्रपाठकों के नामों में परिवर्तन कर दिया गया है । संहितोपनिषद् (प्र० ७) को 'शीक्षावल्ली', वारुणी उपनिषद् (प्र० ८ और ९) को क्रमशः 'ब्रह्मानन्द वल्ली' और 'भृगुवल्ली' नाम दिया गया है । इसमें तीन प्रपाठकों के स्थान पर तीन वल्ली (अध्याय) हैं ।

इनके वर्ण्य-विषय ये हैं :

१. **शिक्षा वल्ली** : शिक्षाशास्त्र, संहिता के अनेक रूप, भूः भुवः स्वः तीन व्याहृतियाँ, आत्मा का निवास, ओम्-ब्रह्म की व्याख्या, सत्य तप और स्वाध्याय का महत्त्व, दीक्षान्त उपेदश ।

२. **ब्रह्मानन्द वल्ली** : अन्न, प्राण, मन, विज्ञान और आनन्दमय इन पाँच कोशों का वर्णन, ब्रह्म रसरूप है, सूर्य और पुरुष दोनों में एक ही शक्ति है ।

३. **भृगुवल्ली** : पंचकोशों का वर्णन, अन्न का स्वरूप, अन्न का विराट् रूप ।

तैत्तिरीय उपनिषद् के महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ

१. **भाषाविज्ञान** : शिक्षावल्ली में शिक्षा की व्याख्या करते हुए भाषाविज्ञान से संबद्ध ६ शब्द दिए हैं : १. **वर्ण** : वर्णमाला, २. **स्वर** : तीन स्वर, उदात्त, अनुदात्त और स्वरित । ३. **मात्रा** : तीन मात्रा - ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत । ४. **बल** : दो प्रकार के प्रयत्न, बाह्य और आभ्यन्तर । वर्णोच्चारण में आवश्यक प्रयत्न को बल कहते हैं ।

५. साम : सम सुस्पष्ट और निर्दोष उच्चारण । **६. सन्तान** : संहिता, पदों का सांनिध्य ।

वर्णः, स्वरः, मात्रा, बलम्, साम, सन्तानः, इत्युक्तः शिक्षाध्यायः। (१.२.१)

२. ब्रह्मचारी के गुण : वेदरक्षा, शम दम आदि गुणों को ग्रहण करना , तेजस्विता और यशस्विता । (१.४.१-३)

३. ब्रह्म का रूप आकाश : ब्रह्म का शरीर या स्वरूप आकाश है । यह यजुर्वेद के 'ओं खं ब्रह्म' (४०.१७) की ही व्याख्या है ।

आकाशशरीरं ब्रह्म । (१.५.२)

४. दीक्षान्त-प्रवचन : यह इस उपनिषद् का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रसंग है । इसके कुछ सुभाषित ये हैं : (सत्यं वद । धर्मं चर । स्वाध्यायात् मा प्रमदः । मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव । श्रद्धया देयम् । श्रिया देयम्) ।

५. पंचकोश : पाँच कोश हैं : अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय । ये पाँचों ब्रह्म के रूप हैं । अध्याय २ और ३ में इनका विस्तृत वर्णन है ।

६. अन्न ब्रह्म है : अन्न से प्रजा उत्पन्न होती है । अन्न से ही जीवित रहते हैं । अन्न ही जीवन का आधार है । यह ब्रह्म का रूप है ।

अन्नं ब्रह्म-उपासते । (२.२)

७. रसो वै सः : ब्रह्म का स्वरूप ही रस या आनन्द है । उसको प्राप्त कर पूर्ण तृप्ति हो जाती है । (२.७)

८. ईश्वरीय नियम कठोर : उपनिषद् का कथन है कि सूर्य, वायु, अग्नि, इन्द्र और मृत्यु, ये ईश्वरीय दंड के भय से नियमित रूप से कार्य करते हैं ।

भीषोदेति सूर्यः । .... मृत्युर्धावति पंचमः । (२.८)

९. अन्न-समृद्धि आवश्यक : अन्नरूपी ब्रह्म का बहुत विस्तार से वर्णन है । अन्न की निन्दा न करें । अन्न न फेंके । सदा अन्न-समृद्धि का ध्यान रखें । अन्नदान में असावधानी न करें । निर्धनों को अन्नदान करें ।

अन्नं न निन्द्यात् । अन्नं बहु कुर्वीत । न कंचन वसतौ प्रत्याचक्षीत ।

(३.६ से १०)

१०. सूर्य और पुरुष में एक ही शक्ति है : जो शक्ति या ऊर्जा सूर्य में है, वही प्रत्येक पुरुष में है।

यश्चायं पुरुषे, यश्चासावादित्ये, स एकः । (३.१०.४)

८. ऐतरेय उपनिषद्

यह ऐतरेय आरण्यक का एक अंश है । उसके द्वितीय अध्याय के चतुर्थ खंड से लेकर षष्ठ खंड तक का नाम 'ऐतरेय उपनिषद्' है । इसमें तीन अध्याय हैं । इनमें प्रतिपाद्य विषय ये हैं :

अध्याय १ : परमात्मा के ईक्षण से सृष्टि । सर्वप्रथम जल की सृष्टि । शरीर में सभी देवों का विभिन्न रूप में निवास । विदृति द्वार (ब्रह्मरन्ध्र) से आत्मा का इस शरीर

में प्रवेश । ब्रह्मरन्ध्र ही नन्दन वन है । शरीर में व्याप्त ब्रह्म के दर्शन से ही जीवात्मा का नाम 'इन्द्र' पड़ा ।

अध्याय २ : इसमें पुनर्जन्म के सिद्धान्त का प्रतिपादन है और कर्मानुसार विभिन्न योनियों में जन्म का वर्णन है ।

अध्याय ३ : इसमें प्रज्ञान-ब्रह्म का वर्णन है । मनोविज्ञान की दृष्टि से यह अध्याय महत्त्वपूर्ण है । मन ही ब्रह्मा, इन्द्र और प्रजापति है । मन के ही ये विभिन्न नाम हैं : विज्ञान, प्रज्ञान, मेधा, धृति, मति, मनीषा, स्मृति, संकल्प, काम, प्राण आदि । ४ प्रकार की सृष्टि : १. अण्डज, पक्षी आदि , .२. जरायुज : मनुष्य आदि । ३. स्वेदज : जूँ आदि । ४. उद्भिज्ज : वृक्ष आदि ।

९. छान्दोग्य उपनिषद्

यह सामवेदीय उपनिषद् है । इसमें ८ अध्याय या प्रपाठक हैं । यह प्राचीनता, प्रौढता, ब्रह्मज्ञान-प्रतिपादन और प्रमेय-बहुलता के कारण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानी जाती है ।

इसके वर्ण्य-विषय संक्षेप में इस प्रकार हैं :

अध्याय १ : ओम् (प्रणव, उद्गीथ) की उपासना, ऋक् और साम का युग्म, वाक् - मन और प्राण की उपासना, प्रणव और उद्गीथ की एकता, साम का आधार स्वर, प्राण-आदित्य और अन्न का महत्त्व, शौव उद्गीथ ।

अध्याय २ : पंचविध साम की उपासना, सप्तविध साम, त्रयी विद्या । धर्म के ३ स्कन्ध । ओम् ही वेदत्रयी का सार ।

अध्याय ३ : देवमधु के रूप में सूर्य की उपासना, गायत्री का महत्त्व । 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' का वर्णन, प्राण ही वसु रुद्र और आदित्य हैं, घोर आंगिरस द्वारा देवकी-पुत्र कृष्ण को अध्यात्म की शिक्षा । चतुष्पाद ब्रह्म ।

अध्याय ४ : रैक्व द्वारा अध्यात्म शिक्षा । सत्यकाम जाबाल की कथा । सत्यकाम जाबाल द्वारा उपकोसल को ब्रह्मज्ञान की शिक्षा । ब्रह्म के ४ पाद (चतुष्पाद ब्रह्म) ।

अध्याय ५ : प्राण की श्रेष्ठता । प्रवाहण जैबलि के दार्शनिक सिद्धान्त, परलोक-विज्ञान । राजा अश्वपति द्वारा सृष्टि- उत्पत्ति-विषयक प्रश्नों के उत्तर में ६ दार्शनिक सिद्धान्तों का समन्वय ।

अध्याय ६ : महर्षि आरुणि द्वारा अपने पुत्र श्वेतकेतु को अद्वैतवाद का उपदेश । 'तत् त्वमसि' का विस्तृत प्रतिपादन ।

अध्याय ७ : ऋषि सनत्कुमार का नारद को उपदेश । "यो वै भूमा तत् सुखम्' भूमा-दर्शनकी शिक्षा ।

अध्याय ८ : देवराज इन्द्र और असुरराज विरोचन को प्रजापति द्वारा आत्मज्ञान की शिक्षा । आत्मप्राप्ति के कुछ व्यावहारिक उपाय ।

छान्दोग्य उपनिषद् के विशिष्ट सन्दर्भ

१. उद्गीथ : उद्गीथ ओम् (परमात्मा) के लिए है। उद्गीथ का अर्थ है - उद्गीत, उत्कृष्ट गीत, सर्वोत्तम संगीत। परमात्मा ही सर्वोत्तम संगीत है। ओम् की ही उपासना करें। उद्गीथ (ओम्) ही सारे वेदों का सार है।

ओमिति-एतदक्षरम् उद्गीथम् उपासीत। (१.१.१)

एष रसानां रसतमः ..... य उद्गीथः। (१.१.३)

२. भूमा दर्शन : भूमा (भूमन्) का अर्थ है - महान् , महान् शक्ति, ब्रह्म। ब्रह्म ही सबसे महान् है। वही सबसे उच्च आनन्द और सुख है। थोड़े में अशान्ति और दुःख है। महान् में आनन्द है। सर्वत्र ब्रह्म का दर्शन करना 'भूमा दर्शन' है।

यो वै भूमा तत् सुखं नाल्पे सुखमस्ति। (७.२३.१)

३. दहर-विद्या : हृदयकमल के अन्दर विद्यमान आकाश को दहर कहते हैं। इसी में ब्रह्म का निवास माना जाता है, अतः दहर-विद्या का अर्थ है - आत्मविद्या।

अस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म०। (८.१.१)

४. अभय : उपनिषदों की सर्वोत्तम शिक्षा है ' अभय या निर्भयता'। ओम् के जप से निर्भयता आती है। ओम् के कारण देवता निर्भय हैं।

ओम् इति, एतद् अमृतम् अभयम्। देवा अमृता अभया अभूवन्। (१.४.४)

५. धर्म के तीन स्कन्ध : धर्म के तीन मुख्य रूप हैं : यज्ञ, अध्ययन और दान।

त्रयो धर्मस्कन्धाः। यज्ञोऽध्ययनं दानम् इति। (२.२३.१)

६. सर्वं खल्विदं ब्रह्म : यह सारा संसार ब्रह्मरूप है। संसार में ब्रह्म ही सर्वोत्तम शक्ति है। यह अद्वैतवाद का उद्घोष है। ब्रह्म को 'तत् जलान्' कहते हैं। वह ज + ल + अन् है। ज का अर्थ है - उससे सृष्टि उत्पन्न होती है। ल - ब्रह्म में सबका लय है। अन् - उसके कारण सबमें प्राणशक्ति है।

सर्वं खल्विदं ब्रह्म, तज्जलान् इति शान्त उपासीत। (३.१४.१)

७. प्राण का महत्त्व : प्राण ही सर्वदेवमय हैं। प्राण ही वसु, रुद्र और आदित्य देवता हैं।

प्राणा वाव वसवः, रुद्राः, आदित्याः। (३.१६.१ से ५)

८. दक्षिणा : दीक्षा की वास्तविक दक्षिणा तप, दान, आर्जव (सुशीलता), अहिंसा और सत्यभाषण हैं।

तपो दानम् आर्जवम् अहिंसा सत्यवचनम् इति ता अस्य दक्षिणाः। (३.१७.४)

९. तत् त्वमसि : यह महावाक्य माना जाता है। तत् - वह परमात्मा, त्वम् असि - तू जीव है, अर्थात् जीव परमात्मा का ही अंश है। सारे संसार में परमात्मा का सूक्ष्मरूप व्याप्त है। वह परमात्मा की शक्ति जीव में भी है।

ऐतदात्म्यमिदं सर्वम् , स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो। (६.८.७)

१०. मन, प्राण और वाक् : खाए हुए अन्न का सूक्ष्मतम भाग ही मन है।

पिए हुए जल का सूक्ष्मतम भाग प्राण है और खाए हुए तेज (आग्नेय अंश) का सूक्ष्मतम भाग वाणी है ।

अन्नमशितम् .. योऽणिष्ठस्तन्मनः । आपः पीताः ..योऽणिष्ठः स प्राणः । तेजोऽशितम् ... योऽणिष्ठः सा वाक् । (६.५.१ से३)

११. तीन प्रकार के जीव : अण्डज (पक्षी आदि) , जीवज (मनुष्य आदि), और उद्भिज्ज (वृक्ष आदि) । इनसे ही सृष्टि का विस्तार है ।

भूतानां त्रीण्येव बीजानि, अण्डजं जीवजम् उद्भिज्जम् इति । (६.३.१)

१२. एक तत्त्व के अनेक रूप : केवल मिट्टी से सैकड़ों प्रकार के मिट्टी के बर्तन बनते हैं । अलग-अलग नाम-रूप होते हैं । केवल मिट्टी के ज्ञान से सारे मिट्टी के पदार्थों का ज्ञान हो जाएगा । इसी प्रकार सब पदार्थों के मूल आत्मा के ज्ञान से सारे पदार्थों का ज्ञान हो जायेगा । भिन्न नाम-रूप केवल शब्दकृत भेद हैं ।

वाचारम्भरणं विकारो नामधेयम् । मृत्तिकेत्येव सत्यम् । (६.१.४)

१३. अर्थज्ञानपूर्वक यज्ञ करें : जो अर्थज्ञान के बिना मंत्रों से यज्ञ करता है, वह अग्नि के स्थान पर भस्म में आहुति डालता है । (५.२४.१)

१४. शौव उद्गीथ : संगीत का दुरुपयोग करने वालों पर यह मार्मिक व्यंग्य है । जो भौतिक उदे्श्यों से मंत्र-साधना, कर्मकाण्ड या संगीत करते हैं, उसे शौव उद्गीथ (कुक्कुर-गायन) समझना चाहिए । शौव शब्द श्वा (कुत्ता) से बना है । साम-संगीत आत्मिक उन्नति के लिए है, न कि तुच्छ विषयों के लिए ।

छान्दोग्य के प्रथम अध्याय के अन्त में इस शौव उद्गीथ का वर्णन है ।

अथातः शौव उद्गीथः० । (१.१२.१ से ५)

बृहदारण्यक उपनिषद्

यह शतपथ ब्राह्मण के १४वें कांड का अन्तिम भाग है । यह शुक्ल यजुर्वेद से संबद्ध है । ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् तीनों में इसकी चर्चा होती है । यह आकार में ही विशालकाय नहीं है, अपितु तत्त्वज्ञान में भी अग्रगण्य है । इसके विवेचन गंभीर, उदात्त और प्रामाणिक हैं । यह अध्यात्म-शिक्षा से ओतप्रोत है । इसमें ६ अध्याय हैं और उपखंडों (ब्राह्मणों) में विभक्त हैं ।

बृहदारण्यक उपनिषद् के वर्ण्य-विषय :

अध्याय १ : यज्ञिय अश्व के रूप में परम पुरुष का वर्णन, मृत्यु का विकराल रूप, जगत् की उत्पत्ति, प्राण की श्रेष्ठता का वर्णन ।

अध्याय २ : अभिमानी गार्ग्य और काशिराज अजातशत्रु का संवाद । ब्रह्म के दो रूप-मूर्त और अमूर्त, याज्ञवल्क्य का अपनी दोनों पत्नियों - कात्यायनी और मैत्रेयी, में संपत्ति का विभाजन, मैत्रेयी का संपत्ति लेने से अस्वीकार करना और याज्ञवल्क्य से ब्रह्मविद्या का उपेदश प्राप्त करना ।

अध्याय ३ : जनक की सभा में याज्ञवल्क्य का अपने प्रतिपक्षियों को हराना, गार्गी और याज्ञवल्क्य के प्रश्नोत्तर ।

अध्याय ४ : याज्ञवल्क्य का जनक को ब्रह्मविद्या का उपदेश, इसमें पुनः याज्ञवल्क्य का संपत्ति-विभाजन का वर्णन, मैत्रेयी को ब्रह्मविद्या का उपदेश ।

अध्याय ५ : प्रजापति का देव मनुष्य और असुरों को द द द का उपदेश । ब्रह्म के विभिन्न रूपों का वर्णन, प्राण ही वेदरूप हैं, गायत्री के विभिन्न रूप ।

अध्याय ६ : प्राण की श्रेष्ठता, ऋषि प्रवाहण जैबलि और श्वेतकेतु का दार्शनिक संवाद, पञ्चाग्नि-मीमांसा । उपनिषदीय ऋषियों की वंश-परंपरा का विस्तृत वर्णन ।

बृहदारण्यक के विशिष्ट सन्दर्भ

१. द द द : देवता मनुष्य और असुर तीनों पिता प्रजापति के पास पहुँचे कि हमें कुछ ज्ञानोपदेश दें । प्रजापति ने तीन बाद द द द कहा । देवों ने इसका अर्थ लिया 'दाम्यत' दम अर्थात् इन्द्रिय-संयम करो । मनुष्यों ने अर्थ लिया ' दत्त' दान करो । असुरों ने अर्थ लिया 'दयध्वम्' दया करो, दया का भाव हृदय में लावो । इस प्रकार तीनों ने क्रमशः दम, दान और दया की शिक्षा प्राप्त की । (बृ० ५.२. १ से ३)

२. आत्मा द्रष्टव्य : याज्ञवल्क्य ऋषि ने मैत्रेयी को उपदेश दिया कि आत्मा का ही दर्शन, श्रवण, मनन और ध्यान करना चाहिए । आत्मा के दर्शन, श्रवण , मनन और ध्यान से संसार की सभी वस्तुओं का ज्ञान हो जाता है ।

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो ...

आत्मनि दृष्टे श्रुते मते विज्ञाते इदं सर्वं विदितम् । (४.५.६)

३. याज्ञवल्क्य - मैत्रेयी संवाद : संपत्ति-विभाजन के समय मैत्रेयी ने कहा - मुझे भौतिक संपत्ति नहीं चाहिए । सारी संपत्ति भी मिल जाए तो मैं अमर नहीं हो सकूँगी । धन से अमरत्व नहीं मिलेगा, अतः मुझे ब्रह्मज्ञान दीजिए ।

अमृतत्वस्य तु नाऽऽशास्ति वित्तेन । (४.५.३)

४. आत्मा के लिए सभी कार्य : पति-प्रेम, स्त्री-प्रेम, धन-प्रेम, पुत्र-प्रेम आदि सारे प्रेम आत्मा की (अपनी) प्रसन्नता के लिए किए जाते हैं, वस्तु के लिए नहीं । अतः मूल तत्त्व आत्मा को जानना चाहिए ।

आत्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति० । (४.५.६)

५. मूल तत्त्व को पकड़ो : शब्द को नहीं पकड़ सकते हैं, परन्तु दुन्दुभि को पकड़ने से शब्द पकड़ में आ जाएगा । इसीलिए मूल कारण आत्मा को पकड़ो । उसको पकड़ने से सब कुछ पकड़ में आ जायेगा ।

दुन्दुभेर्ग्रहणेन ... शब्दो गृहीतः । (४.५.८)

६. असतो मा सद् गमय : इस उपनिषद् के सर्वोत्तम उपदेशों में से यह एक है । हे परमात्मन् ! हमें असत्य से सत्य की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर और मृत्यु से

बचाकर अमरत्व की ओर ले चलो, अर्थात् हम असत्य से सत्य की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर और मृत्यु से अमरत्व की ओर चलें। (१.३.२८)

असतो मा सद् गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्माऽमृतं गमय।

७. ब्रह्म एक है, मन से ही दृश्य : ब्रह्म एक है। अनेक मानना अज्ञान है। वह मन से ही देखा जा सकता है।

मनसैवानुद्रष्टव्यं नेह नानास्ति किंचन। (४.४.१९)

८. कर्मफल अवश्यंभावी : पुण्य और पाप का फल अवश्य मिलता है। पुण्य से पुण्य और पाप से पाप मिलता है। जैसा करेंगे, वैसा फल मिलेगा।

यथाकारी यथाचारी तथा भवति। .... पुण्यः पुण्येन कर्मणा भवति। पापः पापेन। (४.४.५)

८. मन वाणी और प्राण : मन वाणी और प्राण ये तीन ही सार हैं : प्राण जीवन है। वाणी भावप्रकाशन का एकमात्र साधन है और मन जीवन का नियन्ता है।

मनो वाचं प्राणं तान्यात्मने कुरुत। (१.५.३)

१०. आत्मा में ब्रह्म का निवास : जीवात्मा में परमात्मा (ब्रह्म) का निवास है। उसी ब्रह्म की उपासना करनी चाहिए।

आत्मनि पुरुषः, एतमेवाहं ब्रह्मोपासे। (२.१.१३)

११. आत्मा और ब्रह्म एक हैं : यह पुरुषस्थ आत्मा अमर है। यह ब्रह्म है। यही सब कुछ है।

योऽयमात्मा - इदम् अमृतम्, इदं ब्रह्म, इदं सर्वम्। (२.५.३)

१२. आत्मा ही ज्योति है : संसार में अजर और अमर आत्मा ही ज्योति है। यही एकमात्र पथ-प्रदर्शक है। मनुष्य के हृदय में ज्योतिरूप से विद्यमान आत्मा ही विज्ञानमय है और प्रकाशक है।

कतम आत्मा, योऽयं विज्ञानमयः ... हृदि अन्तर्ज्योतिः पुरुषः (४.३.७)

१३. ब्रह्म में संसार ओत-प्रोत है : गार्गी ने याज्ञवल्क्य से पूछा कि यह सारा संसार किसमें ओत-प्रोत है। उत्तर में याज्ञवल्क्य ने कहा कि यह संसार आत्मा (ब्रह्म) में ओत-प्रोत है। उस अक्षर ब्रह्म के प्रशासन में यह सारा संसार काल, द्यावापृथिवी, सूर्य आदि कार्य कर रहे हैं।

अक्षरे गार्गि - आकाश ओतश्च प्रोतश्च। (३.८.११)

११. श्वेताश्वतर उपनिषद्

यह महत्त्वपूर्ण उपनिषदों में से एक है। इसकी वर्णन शैली अतिमनोरम है। भाषा सरल और सुबोध होने से यह अतिप्रसिद्ध है। इसमें सांख्य, योग और वेदान्त के सिद्धान्तों का प्रतिपादन है। शिव (रुद्र) का परम पुरुष के रूप में वर्णन है। गीता पर इसका बहुत प्रभाव है। क्षर, अक्षर, प्रधान आदि तत्त्व इसी से लिए हैं। इसमें कपिल

ऋषि का स्पष्ट उल्लेख है। इसके वर्ण्य-विषय संक्षेप में ये हैं :

अध्याय १ : हंस, त्रैतवाद, माया, क्षर-अक्षर, सत्य और तप से आत्मदर्शन।

अध्याय २ : योग , योग-विधि, ब्रह्मतत्त्व का वर्णन।

अध्याय ३ : रुद्र विश्वरूप, जीव का स्वरूप, आत्मा का स्वरूप।

अध्याय ४ : एकेश्वरवाद, त्रैतवाद, प्रकृति, माया-मायी, शिव ब्रह्मरूप।

अध्याय ५ : क्षर-अक्षर, कपिल ऋषि, जीवात्मा का स्वरूप।

अध्याय ६ : ब्रह्म के अनेक नाम, हंस , ईश्वर प्रकृति एवं जीव का नियन्ता, गुरुभक्ति।

श्वेताश्वतर के महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ

१. हंस : ब्रह्म के लिए हंस शब्द का प्रयोग है। वह सर्वव्यापी है, सबको जीवन देता है, वह सृष्टि में निर्लेप हंस के तुल्य विचरण करता है।

सर्वाजीवे .. तस्मिन् हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे। (१.६)

२. त्रैतवाद : सृष्टि में तीन तत्त्व हैं : १. सर्वज्ञ ईश्वर, २. अल्पज्ञ जीवात्मा, ३.भोग्य प्रकृति। इनमें प्रकृति भोग्य है, जीवात्मा भोक्ता है और परमात्मा प्रेरक है। ब्रह्म के ये तीन रूप हैं। तीनों नित्य हैं।

(क) ज्ञाज्ञौ द्वावजौ ईशानीशावजा ह्येका भोक्तृभोगार्थयुक्ता। (१.९)

(ख) भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा .. त्रिविधं ब्रह्ममेतत्। (१.१२)

३. रुद्र (शिव) ही एक देव है : शिव ही एकमात्र देव है, अन्य कोई दूसरा नहीं। वह सर्वव्यापी है, अनन्त रूप है, सबके हृदय में विद्यमान हैं।

(क) एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुः। (३.२)

(ख) सर्वाननशिरोग्रीवः .. सर्वव्यापी स भगवान् ... शिवः। (३.११)

४. योगसाधना : मन और बुद्धि को एकाग्र करके प्राणायाम करें और मन की चंचलता को रोकें। शान्त एकान्त समभूमि पर बैठकर ध्यान करें। (२.१ से १०)

५. सत्य और तप से ब्रह्मदर्शन : वह परमात्मा तिल में तेल, दही में घी की तरह अदृश्य है। सत्य और तप से उसको देख सकते हैं।

तिलेषु तैलं ... सत्येनैनं तपसा योऽनुपश्यति। (१.१५)

६. माया -मायी : प्रकृति माया है और मायी (मायावी) ईश्वर है।

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्। (४.१०)

७. ईश्वर जीव और प्रकृति का स्वामी : ईश्वर प्रधान (प्रकृति) और क्षेत्रज्ञ (जीवात्मा) का स्वामी है। वही सृष्टि कर्ता, सर्वज्ञ बन्धन और मोक्ष का कर्ता है।

प्रधान-क्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः संसार-मोक्ष-स्थिति-बन्धहेतुः। (६.१६)

८. प्रकृति त्रिगुणात्मक : प्रकृति अज (नित्य) है। वह त्रिगुणात्मक है। उसमें शुक्ल (सत्त्व), लोहित (रजस्) और कृष्ण (तमस्) ये तीन गुण हैं। उससे ही नाना

प्रकार की सृष्टि होती है ।

अजामेकां लोहित-शुक्ल-कृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः । (४.५)

९. ईश्वर की प्रतिमा नहीं : ईश्वर सर्वव्यापी है । वह ऊपर -नीचे सर्वत्र व्याप्त है । उसका महान् यश है । उसकी कोई प्रतिमा (मूर्ति) नहीं है ।

न तस्य प्रतिमा अस्ति, यस्य नाम महद् यशः । (४.१९)

१०. गुरुभक्ति से आत्मज्ञान : जिसकी देवों और गुरुओं में परम भक्ति (श्रद्धा) है, उसको ही आत्मतत्त्व का बोध होता है ।

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ० । (६.२३)

१२. कौषीतकि उपनिषद्

यह शांखायन आरण्यक का अंश है । अध्याय ३ से ६ तक चार अध्याय कौषीतकि उपनिषद् है । इसमें ४ अध्याय हैं । संक्षेप में वर्ण्य-विषय इस प्रकार हैं ।

अध्याय १ : देवयान और पितृयाण का वर्णन ।

अध्याय २ : प्राण को ब्रह्म मानना । उक्थ (वेदमंत्र) ब्रह्म हैं ।

अध्याय ३ : प्राण और प्रज्ञा का महत्त्व । दोनों परस्पर पूरक ।

अध्याय ४ : काशिराज अजातशत्रु और बालाकि का दार्शनिक संवाद ।

कौषीतकि के महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ

१. प्राण ब्रह्म है : प्राण-ब्रह्म का मन दूत है । वाणी, श्रोत्र, चक्षु आदि सभी इन्द्रियाँ उसके सहायक हैं ।

प्राणस्य ब्रह्मणो मनो दूतम्० । (२.१)

२. उक्थ (मंत्रशक्ति) ब्रह्म है : वेदमंत्रों में शक्ति का वर्णन करते हुए कहा गया है कि मंत्रशक्ति ऋग् यजुः और साम के मंत्रों की आत्मा है ।

उक्थं ब्रह्म । स एष त्रयीविद्याया आत्मा (२.६)

३. ब्रह्म की शक्ति से सभी इन्द्रियों में शक्ति : मन, चक्षु आदि में मनन, देखने-सुनने आदि की जो शक्ति है, वह ब्रह्म की ही शक्ति है ।

ब्रह्म दीप्यते यन्मनसा ध्यायति० । (२.१३)

४. प्राण और प्रज्ञा का महत्त्व : प्राण आयु-दाता है और प्रज्ञा सत्य-संकल्प देती है । दोनों एक दूसरे के पूरक हैं । दोनों शरीर में साथ रहते हैं और साथ ही शरीर को छोड़ते हैं । अतएव प्राण और प्रज्ञा को एकरूप माना जाता है ।

यो वै प्राणः सा प्रज्ञा, या वा प्रज्ञा स प्राणः । (३.३)

५. प्राण और प्रज्ञा अनुस्यूत : प्राण और प्रज्ञा परस्पर अनुस्यूत हैं । जैसे, रथ की नाभि और उसके डंडे परस्पर अनुस्यूत हैं , उसी प्रकार प्राण और प्रज्ञा परस्पर संबद्ध हैं । प्रज्ञारूपी आत्मा अनन्त है, अजर और अमर है ।

एता भूतमात्राः प्रज्ञामात्रास्वर्पिताः । प्रज्ञामात्राः प्राणे अर्पिताः । (३.९)

१३. मैत्रायणी (मैत्री) उपनिषद्

इसको मैत्री उपनिषद् भी कहते हैं । इसमें ७ अध्याय हैं । मैत्रायणीय आरण्यक को ही मैत्रायणी उपनिषद् कहते हैं । इसके वर्ण्य-विषय आदि के लिए मैत्रायणीय आरण्यक का विवरण देखें ।

मैत्रायणी के विशिष्ट सन्दर्भ

१. मन ही बन्धन और मुक्ति का कारण : मन ही मनुष्यों के बन्धन और मुक्ति का कारण है । विषयों में आसक्त मन बन्धन का कारण है और विषयों की आसक्ति से रहित मन मुक्ति का साधन है ।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।

बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम् ।। (४.११)

२. चित्तनिरोध से शान्ति : जैसे इन्धनरहित अग्नि स्वयं बुझ जाती है, उसी प्रकार चित्तवृत्तियों के निरोध से चित्त स्वयं शान्त हो जाता है ।

तथा वृत्तिक्षयात् चित्तं स्वयोनावुपशाम्यति (४.३)

३. उपनिषद् ब्रह्मविद्या है : उपनिषद् का ही दूसरा नाम ब्रह्मविद्या है ।

इयं ब्रह्मविद्या सर्वोपनिषद् । (२.३)

४. कर्मफल : जीवात्मा अपने अच्छे और बुरे कर्मों के कारण ही उत्तम और अधम योनि में जाता है ।

अयमात्मा सितासितैः कर्मफलैः सदसद् योनिमापद्यते । (३.१)

५. पाँच प्राण : प्राण के पाँच भेद हैं : प्राण (हृदय में), अपान (मलद्वार में), समान (नाभि में), उदान (कण्ठ में), व्यान (सारे शरीर में) ।

प्राणोऽपानः समान उदानो व्यानः । (२.६)

६. प्रणव, उद्गीथ और ओम् समानार्थक : ईश्वर के ही ये तीनों नाम हैं : प्रणव, उद्गीथ और ओम् । उसको ही ब्रह्म और ज्योतिरूप कहते हैं ।

य उद्गीथः स प्रणवः । यः प्रणवः स उद्गीथः । (५.४)

इस उपनिषद् में कठ, बृहदारण्यक, ईश और मुण्डक आदि उपनिषदों के अनेक श्लोक उद्धृत हैं । अतः यह उपनिषद् इनसे परवर्ती मानी जाती है ।

अध्याय ६

वेदाङ्ग

वेदाङ्ग का अर्थ, महत्त्व और उनकी संख्या

वेदाङ्ग का अर्थ : वेदांग का अर्थ है - वेद के अंग (वेदस्य अंगानि)। अंग का अर्थ है - वे उपकारक तत्त्व जिनसे वस्तु के स्वरूप का बोध होता है (अंग्यन्ते ज्ञायन्ते एभिरिति अंगानि)। वेदों के गूढ एवं वास्तविक अर्थों को जानने के लिए जिन सहायक तत्त्वों की आवश्यकता होती है, उन्हें 'वेदांग' कहते हैं। वेदांगों के द्वारा मंत्रों का अर्थ, उनकी व्याख्या तथा यज्ञ में उनके विनियोग आदि का बोध होता है। प्रारम्भ में वेदांग स्वतंत्र विषय न होकर वेदाध्ययन के लिए विशिष्ट उपयोगी साधन थे। बाद में ये स्वतंत्र विषयों के रूप में विकसित हुए।

वेदांगों का महत्त्व : वेदों के मंत्रों के उच्चारण के ज्ञान के लिए, शुद्ध शब्दार्थ-ज्ञान के लिए, विनियोग के लिए, काल-निर्धारण के लिए तथा छन्दोज्ञान के लिए सहायक साहित्य की आवश्यकता प्रतीत हुई। अतएव एक-एक आवश्यकता की पूर्ति के लिए विभिन्न ६ वेदांगों का प्रणयन हुआ। शब्दों का शुद्ध उच्चारण किस प्रकार किया जाए, इसके लिए शिक्षा-ग्रन्थों की सृष्टि हुई। शब्दों का व्युत्पत्ति-लभ्य अर्थ क्या है तथा उदात्त आदि स्वर क्या हैं, इनके ज्ञान के लिए व्याकरण और प्रातिशाख्य ग्रन्थों की रचना हुई। वेदों में गायत्री, अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, जगती आदि छन्द हैं, उनकी रचना एवं उच्चारण आदि के लिए छन्द:शास्त्र का प्रणयन हुआ। शब्द कैसे बने, उनका मूल अर्थ क्या है, पारिभाषिक अर्थ क्या है, इसके ज्ञान के लिए एक स्वतंत्र निरुक्त-शास्त्र या निर्वचन-शास्त्र बना। यज्ञ कब किया जाए, शुभ मुहूर्त कब है, पूर्णिमा आदि दिन कब पड़ रहे हैं, इसके ज्ञान के लिए ज्योतिष शास्त्र की आवश्यकता अनुभव की गई, तदर्थ ज्योतिष शास्त्र बना। प्रत्येक यज्ञ की आद्योपान्त क्या विधि होगी, बड़े और छोटे यज्ञों के लिए क्या आवश्यक वस्तुएँ चाहिएँ, यज्ञ में कौन से मंत्र पढ़े जाएँ, मंत्रों के पाठ के लिए कितने ऋत्विज् (पंडित) चाहिएँ, यज्ञ की वेदी कैसी, किस आकार की, कितनी बड़ी होनी चाहिए इत्यादि का सूक्ष्मता से निर्देशन के लिए कल्प-ग्रन्थों का प्रणयन हुआ।

पाणिनीय-शिक्षा में कहा गया है कि मंत्र के उच्चारण में यदि स्वर या वर्ण की थोड़ी भी त्रुटि हो जाती है तो अर्थ का अनर्थ हो जाता है । उसका उदाहरण दिया है 'इन्द्रशत्रुर्वर्धस्व' । वृत्र ने इन्द्र को मारने के लिये यज्ञ किया कि इन्द्रशत्रु अर्थात् वृत्र की जीत हो । वेदपाठियों ने स्वर की त्रुटि कर दी, जिसका फल यह हुआ कि इन्द्र की जीत हुई और वृत्र मारा गया । अतः वेदों के स्वर, वर्ण, अर्थ आदि का स्पष्ट ज्ञान अनिवार्य है ।

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा
मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह ।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति
यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ।। (पा० शिक्षा ५२)

वेदांगों की संख्या और उनके नाम : वेदांग ६ हैं । इनके नाम हैं - १. शिक्षा, २. व्याकरण, ३. छन्द, ४. निरुक्त, ५. ज्योतिष, ६.कल्प ।

शिक्षा व्याकरणं छन्दो निरुक्तं ज्योतिषं तथा ।
कल्पश्चेति षडङ्गानि वेदस्याहुर्मनीषिणः ।।

ये वेदांग सामान्यतया सूत्रशैली में लिखे गए हैं । वैदिक कर्मकांड, मंत्रों का विनियोग एवं यज्ञ-विधि आदि के नियम बहुत विस्तृत और व्यापक थे, अतः संक्षेप में स्मरणार्थ सूत्रशैली को अपनाया गया है ।

पाणिनीय-शिक्षा में इन ६ वेदांगों का वेद-पुरुष के ६ अंगों के रूप में वर्णन है । जैसे - छन्द वेदपुरुष के पैर हैं, कल्प हाथ हैं, ज्योतिष नेत्र हैं, निरुक्त कान हैं, शिक्षा नाक है और व्याकरण मुख है ।

छन्दः पादौ तु वेदस्य, हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते ।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ।।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य, मुखं व्याकरणं स्मृतम् ।
तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते ।। (पा० शिक्षा ४१-४२)

वेदांगों का सर्वप्रथम उल्लेख मुण्डक उपनिषद् में अपरा विद्या के अन्तर्गत चार वेदों के नाम के बाद हुआ है ।

तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषम् इति । मुण्डक उप० १.१.५

१. शिक्षा

शिक्षा का अर्थ है - वर्णोच्चारण की शिक्षा देना । सायण ने ऋग्वेदभाष्यभूमिका में शिक्षा का अर्थ दिया है - जिसमें स्वर, वर्ण आदि के उच्चारण की शिक्षा दी जाती है, उसे "शिक्षा" कहते हैं ।

स्वरवर्णाद्युच्चारणप्रकारो यत्र शिक्ष्यते उपदिश्यते सा शिक्षा ।

(सायण, ऋग्वेदभाष्य० पृ० ४९)

अतएव शिक्षा का उद्देश्य है - वर्णोच्चारण की शिक्षा देना, किस वर्ण का किस स्थान से उच्चारण किया जाता है, उसमें क्या प्रयत्न करना पड़ता है, उनका विभाजन किस रूप में होता है, कितने स्थान और प्रयत्न हैं, शरीर-वायु किस प्रकार वर्ण के रूप में परिवर्तित होती है, कितने स्वर हैं, किस स्वर का किस प्रकार उच्चारण किया जाता है, इत्यादि ।

तैत्तिरीय उपनिषद् में शिक्षा के ६ अंगों का उल्लेख है । ये हैं : वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम और संतान ।

वर्णः, स्वरः, मात्रा, बलम् , साम, सन्तानः, इत्युक्तः शिक्षाध्यायः ।

(तैत्ति. उ० १.२)

इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

१. वर्ण (या ध्वनियाँ) : वेदों में ५२ वर्ण (ध्वनियाँ) प्राप्त होते हैं : स्वर - १३, स्पर्श (क से म तथा ल् और ल्ह्) - २७, य र ल व, श ष स ह - ८ , विसर्ग, अनुस्वार, जिह्वामूलीय और उपध्मानीय (क प से पहले आधे विसर्ग के चिह्न) - ४ = ५२ ।

पाणिनीय-शिक्षा में संस्कृत में वर्णों की संख्या ६३ (संवृत और विवृत अ को पृथक् मानने पर = ६४) मानी गई है । इनका विवरण यह है - स्वर, (ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत आदि भेद से) - २१, क से म - २५, य से ह - ८, य र ल व के द्वित्व रूप - ४, अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय और प्लुत ऌ -५ । इस प्रकार ये ६३ वर्ण होते हैं । (पा० शिक्षा २ से ५)

त्रिषष्टिश्चतुःषष्टिर्वा वर्णाः शंभुमते मताः । (पा० शि० ३)

२. स्वर : स्वर तीन हैं : उदात्त, अनुदात्त और स्वरित ।

३. मात्रा : स्वरों के उच्चारण में लगने वाले समय को मात्रा कहते हैं । ये तीन हैं : ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत । ह्रस्व की १ मात्रा, दीर्घ की २ मात्रा और प्लुत की ३ मात्रा होती है ।

४. बल : वर्णों के उच्चारण में होने वाले प्रयत्न और उनके उच्चारण स्थान को बल कहते हैं । प्रयत्न २ हैं - आभ्यन्तर और बाह्य । स्थान ८ हैं - कण्ठ, तालु आदि ।[१]

५. साम : साम का अभिप्राय है - समविधि से सुस्पष्ट एवं सुस्वर से उच्चारण। वर्णों का उच्चारण स्पष्ट हो, किसी वर्ण को दबाकर न बोलें, बहुत शीघ्रता से न बोलें, स्वर एवं अर्थज्ञान-सहित प्रत्येक वर्ण का स्पष्ट उच्चारण करें ।

---

१. इनके विशेष विवरण के लिए देखें : सिद्धान्त कौमुदी, संज्ञाप्रकरण ।

६. संतान : इसका अर्थ है संहिता अर्थात् पदपाठ में प्रयुक्त शब्दों में संधि - नियमों को लगाना। इसके लिए संधि-नियमों को जानना और उनका यथास्थान उपयोग करना।

पाठक के गुण : पाणिनीय-शिक्षा में मंत्रों आदि के पाठकर्ता के ६ गुण बताए गए हैं। ये हैं : **१. माधुर्य :** मधुर ध्वनि से बोलना। **२. अक्षरव्यक्ति :** अक्षरों का सुस्पष्ट उच्चारण। **३. पदच्छेद :** पदों को पृथक् पृथक् बोलना। **४. सुस्वर :** स्वर से बोलना। **५. धैर्य :** शान्तिपूर्वक बोलना। **६. लयसमर्थ :** लय या राग के साथ बोलना।

माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः ।
धैर्यं लयसमर्थं च षडेते पाठका गुणाः ।। पा०शिक्षा ३३

पाठक के दोष : पाणिनीय शिक्षा में ही पाठक के ६ दोषों का भी वर्णन है। इन दोषों का परित्याग करना चाहिए। ये हैं : **१. गीती :** सामान्य मंत्र को गाने के ढंग से बोलना। **२. शीघ्री :** शीघ्रतापूर्वक बोलना। **३. शिरःकम्पी :** बोलते समय सिर हिलाना। **४. लिखितपाठक :** मौखिक के स्थान पर लिखा हुआ पढ़ना। **५. अनर्थज्ञ :** अर्थज्ञान के बिना बोलना। **६. अल्पकण्ठ :** अधूरे याद किए हुए मंत्र को बोलना।

गीती शीघ्री शिरःकम्पी तथा लिखितपाठकः ।
अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाधमाः ।। पा०शिक्षा ३२

शिक्षा-ग्रन्थ

उपलब्ध शिक्षाग्रन्थ ३५ हैं। इनमें मंत्रों के उच्चारण आदि का विस्तृत वर्णन है। ३२ शिक्षा-ग्रन्थों का एक संकलन 'शिक्षा-संग्रह' नाम से प्रकाशित हुआ है।[1] इनमें ध्वनि-विज्ञान से संबद्ध अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्य दिए गए हैं। स्वर और व्यंजनों का भेद, स्वरों के उच्चारण-संबन्धी अनेक भेद, वर्णों के उच्चारण में स्थान-प्रयत्न आदि का विवरण, अनुस्वार-अनुनासिक का अन्तर, विसर्ग के विभिन्न रूप, वर्णोच्चारण की वैज्ञानिक प्रक्रिया, उदात्त स्वर आदि का सरगम के स्वरों से संबन्ध, ह्रस्व ए ओ का अस्तित्व, ओ-औ के संवृत-विवृत रूप, वर्णोच्चारण की विधि, संधियों का विवेचन आदि।

विशेष उल्लेखनीय शिक्षा-ग्रन्थ

१. पाणिनीय शिक्षा : यह अत्यन्त प्रसिद्ध शिक्षाग्रन्थ है। वैदिक और लौकिक दोनों के लिए उपयुक्त है। इसमें ६० श्लोक हैं। मुख्य विषय हैं : वर्णों की संख्या, उच्चारण -प्रक्रिया का ध्वनि-शास्त्रीय वर्णन, स्थान और प्रयत्न का विवरण, संवृत-विवृत,

---

1. युगलकिशोर पाठक द्वारा संपादित, बनारस सीरीज़ में काशी से १८९३ ई० में प्रकाशित।

घोष-अघोष, स्पष्ट-ईषत् स्पृष्ट आदि भेदों का वर्णन, पाठक के गुण-दोषों का वर्णन आदि ।

२. **भरद्वाज-शिक्षा** : इसमें पदों की शुद्धता तथा ध्वनि-भेंद से उदात्त आदि स्वरों में भेद का वर्णन है ।

३. **याज्ञवल्क्य-शिक्षा** : इसमें २३२ श्लोक हैं । इसमें वैदिक स्वरों का विवेचन है । वर्णों के भेद, स्वरूप, परस्पर साम्य-वैषम्य, लोप , आगम, विकार, प्रकृतिभाव आदि का वर्णन है ।

४. **प्रातिशाख्य-प्रदीप-शिक्षा** : इसमें स्वर-वर्ण आदि की शिक्षा का विस्तृत विवेचन है । प्राचीन वैयाकरणों के मतों का भी उल्लेख है ।

५. **नारदीय शिक्षा** : सामवेद के स्वरों का विस्तृत विवेचन है ।

अन्य कुछ मुख्य शिक्षा-ग्रन्थ ये हैं : १. व्यास शिक्षा, २. वासिष्ठी शिक्षा, ३. कात्यायनी, शिक्षा, ४. पाराशरी, शिक्षा, ५. माण्डव्य शिक्षा, ६. माध्यन्दिनी शिक्षा, ७. वर्णरत्न-प्रदीपिका, ८. केशवीशिक्षा, ९. स्वरांकन-शिक्षा, १०. स्वरभक्ति-लक्षण-शिक्षा आदि ।

इनके अतिरिक्त कुछ 'शिक्षा-सूत्र' भी मिलते हैं । इनमें आपिशलि, पाणिनि और चन्द्रगोमी के शिक्षासूत्र प्रकाशित हैं ।[१] इनमें ध्वनि-विज्ञान (Phonology) से संबद्ध अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्य प्राप्य हैं । इनमें अक्षरों की उत्पत्ति, स्थान और प्रयत्न, बाह्य और आभ्यन्तर करण आदि का विवेचन है ।

२. व्याकरण

(क) संस्कृत व्याकरण

व्याकरण शास्त्र के विवेचन को दो भागों में बाँटा जा सकता है - (क) लौकिक व्याकरण या संस्कृत व्याकरण , (ख) वैदिक व्याकरण । संस्कृत व्याकरण में पाणिनि आदि आचार्य हैं तथा अष्टाध्यायी महाभाष्य आदि ग्रन्थ हैं । वैदिक व्याकरण में 'प्रातिशाख्य' ग्रन्थ हैं । इनका यहाँ पृथक् विवेचन प्रस्तुत करना उपुयुक्त है ।

व्याकरण का अर्थ : 'व्याक्रियन्ते विविच्यन्ते शब्दा अनेनेति व्याकरणम्' अर्थात् जिस शास्त्र के द्वारा शब्दों के प्रकृति-प्रत्यय का विवेचन किया जाता है, उसे व्याकरण कहते हैं । इसमें यह विवेचन किया जाता है कि शब्द (Word) कैसे बनता है । इसमें क्या प्रकृति (Root) है और क्या प्रत्यय (Suffix) लगा है । तदनुसार शब्द का अर्थ निश्चित किया जाता है ।

---

१. द्रष्टव्य, शिक्षासूत्राणि ग्रन्थ, काशी, संवत् २००५

मुखं व्याकरणं स्मृतम् : पाणिनीय शिक्षा में व्याकरण को वेद-पुरुष का मुख बताया गया है । जिस प्रकार शरीर में मुख सौन्दर्य, भावाभिव्यक्ति और गौरव का प्रतीक है, उसी प्रकार व्याकरण-शास्त्र शब्दसाधुत्व, प्रकृति-प्रत्यय विवेचन और शब्दार्थज्ञान का साधन है । इसमें पद-पदार्थ, वाक्य-वाक्यार्थ आदि का विस्तृत विवेचन होता है । व्याकरण ही शुद्ध-अशुद्ध, संस्कृत-असंस्कृत , प्राकृत-अपभ्रंश, नाम- आख्यात आदि का विश्लेषण प्रस्तुत करता है ।

व्याकरण का दार्शनिक रूप : यजुर्वेद के एक मंत्र में व्याकरण का पारिभाषिक अर्थ दिया गया है कि यह सत्य और असत्य, नित्य और अनित्य, सूक्ष्म और स्थूल का व्याकरण (विवेचन, विश्लेषण) प्रस्तुत करता है । साथ ही यह भी बताता है कि इनमें से कौन सा ग्राह्य है और कौन सा अग्राह्य है । मंत्र का कथन है कि प्रजापति ने सत्य और अनृत (असत्य) का व्याकरण (विश्लेषण) किया । उसने सत्य को श्रद्धा के योग्य या ग्राह्य बताया और असत्य को अग्राह्य (त्याज्य) ।

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः ।
अश्रद्धामनृतेऽदधात् - श्रद्धां सत्ये प्रजापतिः । (यजु० १९.७७)

पतंजलि ने महाभाष्य (आ० १) में ऋग्वेद के एक मंत्र का व्याकरण-परक अर्थ किया है :

चत्वारि शृंगा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां आ विवेश ।। (ऋग्० ४.५८.३)

अर्थात् शब्दब्रह्म (व्याकरण)- रूपी वृषभ (बैल) के चार सींग हैं - नाम, आख्यात (क्रिया), उपसर्ग और निपात (अव्यय) । उसके तीन पैर हैं - वर्तमान , भूत और भविष्यत् काल । उसके दो सिर हैं : सुप् और तिङ् प्रत्यय (शब्द और धातु के अन्त में लगने वाले प्रत्यय) । उसके सात हाथ हैं : प्रथमा, द्वितीया आदि सात विभक्तियाँ । यह तीन स्थानों पर बँधा हुआ है - उर (छाती), कण्ठ और सिर में । ऐसा शब्दब्रह्मरूपी महादेव मनुष्यों के शरीर में व्याप्त है ।

व्याकरण के उद्देश्य : पतंजलि ने महाभाष्य (आह्निक १) में व्याकरण के ५ प्रयोजन बताए हैं : **१. रक्षा** - वेदों की रक्षा के लिए । **२. ऊह (तर्क)** - यथास्थान विभक्ति-परिवर्तन, वाच्य-परिवर्तन आदि के लिए । **३. आगम** - 'ब्राह्मण को निष्काम भाव से वेद पढ़ना चाहिए' इस आदेश की पूर्ति के लिए । **४. लघु** - सरल ढंग से शब्द-ज्ञान के लिए । **५. असन्देह** - शब्द और अर्थ-विषयक सन्देह के निराकरण के लिए ।

रक्षोहागमलघ्वसन्देहाः प्रयोजनम् । महा०आ० १

पतंजलि ने इनके अतिरिक्त भी व्याकरण के कुछ प्रयोजन बताए हैं : १. अपशब्दों के प्रयोग से बचना, २. शुद्ध-अशुद्ध शब्दों का ज्ञान कराना, ३. शब्दार्थ का ज्ञान कराना, ४. धर्मलाभ या उत्तम संस्कारों को जागृत करना , ५.शुद्ध नामकरण आदि की विधि को जानना ।

ब्राह्मणग्रन्थों में व्याकरण : ब्राह्मणग्रन्थों में व्याकरण की पारिभाषिक शब्दावली मिलती है । गोपथ ब्राह्मण (१.१.२४) में ये पारिभाषिक शब्द मिलते हैं : धातु, प्रातिपदिक, आख्यात, लिंग, वचन, विभक्ति, प्रत्यय, स्वर, उपसर्ग, निपात, व्याकरण, विकार, मात्रा, वर्ण, अक्षर, पद, संयोग, स्थान, नाद, करण आदि । ऐतरेय ब्राह्मण (७.७) में 'सप्तधा' (सात विभक्तियाँ) तथा मैत्रायणी संहिता (१.७.३) में 'षड् विभक्तय:' (६ विभक्तियाँ) का उल्लेख मिलता है । इससे ज्ञात होता है कि व्याकरण-विषयक विवेचन ब्राह्मण ग्रन्थों के समय से ही प्रारम्भ हो गया था ।

संस्कृत-व्याकरण के आचार्य एवं महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ[1]

पाणिनि से पूर्व वैयाकरण : आचार्य पाणिनि ने अष्टाध्यायी में अपने पूर्ववर्ती १० आचार्यों का उल्लेख किया है । इनमें मुख्य हैं :

१. आपिशलि, २. काश्यप, ३. गार्ग्य, ४. भरद्वाज, ५. शाकटायन ६. स्फोटायन ।

प्रातिशाख्य आदि में लगभग ७५ पूर्व-पाणिनि आचार्यों का उल्लेख है । इनमें प्रमुख हैं : १. शिव (महेश्वर), २. बृहस्पति, ३. इन्द्र, ४. आचार्य व्याडि, ५. आत्रेय, ६. कात्यायन, ७. काण्व, ८. गौतम, ९. यास्क, १०.वाल्मीकि, ११. शाकल्य, १२. शाकल, १३. शौनक, १४. शांखायन, १५. हारीत ।

इन आचार्यों में से ४ विशेष उल्लेखनीय हैं :

१. शिव या महेश्वर : शिव के व्याकरण को ऐशान (ईशान अर्थात् शिवसंबन्धी) व्याकरण कहा जाता था । 'अ इ उ ण्' आदि १४ सूत्रों को माहेश्वर सूत्र कहते हैं ।

२. इन्द्र : इनका 'ऐन्द्र व्याकरण' था । तिब्बतीय ग्रन्थों के अनुसार इसका परिमाण २५ हजार श्लोक था, अर्थात् पाणिनि की अष्टाध्यायी से लगभग २५ गुना बड़ा ।

३. व्याडि : आचार्य व्याडि महावैयाकरण और दार्शनिक थे । इनका अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ 'संग्रह' था । इसका परिमाण १ लाख श्लोक माना जाता है । यह 'वाक्यपदीय' के तुल्य व्याकरणदर्शन का प्रामाणिक ग्रन्थ था ।

४. स्फोटायन : ये 'स्फोटवाद' सिद्धान्त के आदि-प्रवक्ता हैं । 'यन्त्रसर्वस्व' के रचयिता भरद्वाज ने 'चित्रिण्येवेति स्फोटायनः' सूत्र के द्वारा आचार्य स्फोटायन को विमानशात्र का विशेषज्ञ वैज्ञानिक बताया है ।

आचार्य पाणिनि एवं परवर्ती आचार्य : इस काल के अतिमहत्त्वपूर्ण आचार्य ये हैं :

१. पाणिनि (५वीं शती ई०पू०) - आचार्य पाणिनि के अन्य नाम हैं : दाक्षीपुत्र, शालातुरीय और आहिक । इनका सुविख्यात ग्रन्थ 'अष्टाध्यायी' है । इसमें आठ अध्याय हैं, अतः इसे अष्टाध्यायी कहते हैं । इसमें सूत्रों की संख्या ३९९७ है, अर्थात् लगभग ४

---

१. विस्तृत विवरण के लिए देखें - लेखककृत 'संस्कृत व्याकरण' की भूमिका पृष्ठ १४ से ४४

हजार । अष्टाध्यायी का परिमाण १ हजार श्लोक माना जाता है ।

२. कात्यायन (चतुर्थ शती ई०पू०) - इन्होंने अष्टाध्यायी के सूत्रों पर 'वार्तिक' (व्याख्यात्मक सूत्र) लिखे हैं । इन्हीं वार्तिकों को आधार बनाकर महर्षि पतंजलि ने 'महाभाष्य' की रचना की है ।

३. पतंजलि (१५० ई०पू० के लगभग)- इनके अन्य नाम हैं : गोणिकापुत्र, गोनर्दीय, अहिपति, शेषाहि । आधुनिक विद्वान् गोनर्द का अर्थ वर्तमान 'गोंडा' मानते हैं और इन्हों गोंडा-निवासी बताते हैं । इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ अष्टाध्यायी के सूत्रों पर बृहदाकार भाष्य 'महाभाष्य' है । यह व्याकरणदर्शन का अतिप्रामाणिक ग्रन्थ है । इनको पातंजल-योगसूत्र (योगदर्शन) और चरक-संहिता का भी रचयिता माना जाता है । 'मुनित्रय' में पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि की गणना है । ये सबसे अधिक प्रामाणिक माने जाते हैं , 'यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम्' ।

४. भर्तृहरि (३४० ई० के लगभग) - ये उज्जैन के निवासी माने जाते हैं । इनकी कृति 'वाक्यपदीय' व्याकरणदर्शन का सर्वोत्तम ग्रन्थ है । इसमें तीन कांड हैं : १. ब्रह्मकांड (आगम कांड), २. वाक्यकांड, ३. पदकांड या प्रकीर्णकांड ।

५. जयादित्य और वामन (६६० ई० के लगभग) - दोनों ने अष्टाध्यायी की टीका 'काशिका' लिखी है । यह अष्टाध्यायी की सर्वोत्तम टीका है ।

६. कैयट (१०३५ ई० के लगभग) - इनकी महाभाष्य पर 'प्रदीप' नाम की बहुत प्रामाणिक टीका है । ये काश्मीरी पंडित थे ।

७. भट्टोजि दीक्षित (१४५० ई० के लगभग) - इन्होंने अष्टाध्यायी के सूत्रों को विषयानुसार १४ प्रकरणों में बाँटकर 'सिद्धान्तकौमुदी' ग्रन्थ की रचना की । ये महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे । इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं : १. शब्दकौस्तुभ (अष्टाध्यायी की टीका), २. सिद्धान्तकौमुदी, ३. प्रौढमनोरमा (सिद्धान्तकौमुदी की व्याख्या) ।

८. नागेश भट्ट : (१७०० ई० के लगभग) - ये महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे । ये व्याकरण के मर्मज्ञ थे । इनके ग्रन्थ हैं - १. उद्योत टीका (महाभाष्य की टीका), २. लघुशब्देन्दुशेखर, ३. बृहत्शब्देन्दुशेखर ४. परिभाषेन्दुशेखर, ५. स्फोटवाद ६. मंजूषा, ७. लघुमंजूषा, ८. परमलघुमंजूषा ।

९. वरदराज (१४७५ ई० के लगभग) - ये लघुसिद्धान्तकौमुदी और मध्यसिद्धान्तकौमुदी के रचयिता हैं ।

१०. अन्य वैयाकरणों में उल्लेखनीय हैं - १. वृषभदेव (वाक्यपदीय कांड १ के टीकाकार), २. पुण्यराज (वाक्यपदीय कांड २ के टीकाकार), ३. हेलाराज (वाक्यपदीय संपूर्ण के टीकाकार), ४. मण्डनमिश्र (स्फोटसिद्धि के रचयिता), ५. कौण्डभट्ट (वैयाकरणभूषण और वैयाकरणभूषणसार के रचयिता), ६. भट्टि (भट्टिकाव्य के रचयिता) ।

(ख) वैदिक व्याकरण (प्रातिशाख्य ग्रन्थ)

प्रातिशाख्यों का महत्त्व

प्रातिशाख्य शब्द का अर्थ है - प्रत्येक शाखा से संबद्ध व्याकरण आदि का बोध कराने वाले ग्रन्थ । चारों वेदों की अनेक शाखाएँ हैं, अतः प्रातिशाख्य ग्रन्थों की संख्या भी वेदानुसार अनेक है । वेदों के यथार्थज्ञान के लिए वर्णोच्चारणशिक्षा, संधिनियम, शब्दरूप, धातुरूप, उदात्तादि स्वर और छन्दों का ज्ञान अनिवार्य है । इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए प्रातिशाख्य ग्रन्थों की रचना हुई है । प्रातिशाख्य ग्रन्थों का शिक्षा, व्याकरण और छन्द तीनों से साक्षात् संबन्ध है, अतः इनका त्रिविध महत्त्व है । प्रत्येक प्रातिशाख्य में उस वेद से संबद्ध सभी आवश्यक बातें दी गई हैं ।

चारों वेदों के उपलब्ध प्रातिशाख्यों का संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है ।

१. ऋक्-प्रातिशाख्य

यह ऋग्वेद की शाकल शाखा का प्रातिशाख्य है । इसको पार्षद या पारिषद सूत्र भी कहते हैं । इसके रचयिता शौनक हैं । इसमें १८ पटल (अध्याय) हैं । इसमें मुख्य रूप से इन विषयों का वर्णन है : १. पारिभाषिक शब्दों के लक्षण, २. विभिन्न संधियों का विवेचन, ३. क्रमपाठ का विवरण, ४. पद-विभाग और व्यंजनों के स्वरूप का विचार , ५. वर्णोच्चारण में होने वाली त्रुटियों का उल्लेख, ६. वेद-पारायण की पद्धति का निर्देश, ७. अन्तिम तीन अध्यायों में छन्दःशास्त्र का वर्णन ।

इस पर दो भाष्य मिलते हैं : १. उवट (११वीं शती ई०) का भाष्य । उवट ने शुक्ल-यजुर्वेद का भी भाष्य किया है । २. विष्णुमित्र-कृत वृत्ति । यह प्रारम्भ के २ वर्गों पर ही प्राप्य है ।

२. शुक्ल यजुःप्रातिशाख्य (वाजसनेयि-प्रातिशाख्य)

इसके रचयिता कात्यायन हैं । इसमें ८ अध्याय हैं । इसमें मुख्य रूप से इन विषयों का वर्णन है : १. वर्ण-विचार, २. स्वर-विचार, ३. सन्धि-विचार, ४. पदपाठ-विचार, ५. क्रमपाठ-विचार, ६. वेदाध्ययन-विषयक विचार ।

भाषाशास्त्रीय दृष्टि से इस प्रातिशाख्य का विशेष महत्त्व है । इसमें १० प्राचीन आचार्यों के मतों का भी उल्लेख है । इनमें मुख्य हैं : काण्व, काश्यप, गार्ग्य, माध्यन्दिन, शाकटायन, शाकल्य और शौनक । इनके मतों का वर्णन तुलनात्मक अध्ययन के लिए विशेष उपयोगी है ।

आचार्य पाणिनि इस प्रातिशाख्य के ऋणी हैं । उन्होंने इस प्रातिशाख्य से अनेक पारिभाषिक शब्द लिए हैं । पाणिनि के कुछ सूत्र भी प्रायः एकरूप हैं । पाणिनि द्वारा गृहीत पारिभाषिक शब्द ये हैं : उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, लोप, उपधा, आम्रेडित, अपृक्त, । इसी प्रकार पाणिनि का सूत्र - अदर्शनं लोपः (१.१.६०) और वर्णस्यादर्शनं लोपः (वा०प्राति० १.१४१) प्रायः एक ही हैं ।

इसकी दो व्याख्याएँ प्राप्त होती हैं : १. उव्वट-कृत मातृवेदनामक भाष्य, २. अनन्तभट्ट-कृत पदार्थ-प्रकाशक नामक भाष्य ।

इससे संबद्ध दो छोटे ग्रन्थ भी मिलते हैं ।

१. प्रतिज्ञासूत्र : इसमें शुक्ल यजुर्वेद से संबद्ध स्वर आदि के नियम दिए हैं ।

२. भाषिक सूत्र : इसमें शतपथब्राह्मण के स्वर-संचार से संबद्ध नियम दिए हैं ।

३. तैत्तिरीय प्रातिशाख्य (कृष्ण यजुर्वेदीय)

इसका कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय संहिता से संबन्ध है । इसमें दो प्रश्नों (खंडों) में १२-१२ अध्याय हैं । इस प्रकार पूरे ग्रन्थ में २४ अध्याय हैं । इसमें मुख्य रूप से इन विषयों का वर्णन है :

१. वर्ण- समाम्नाय, २. स्वर, एवं व्यंजन संधियाँ आदि, ३. अनुस्वार - अनुनासिक का भेद, ४. स्वरों के भेद, ५. संहिता का स्वरूप आदि ।

वेदों के पाठ के दो प्रकार : १. प्रकृतिपाठ : अर्थात् मंत्र का मूलरूप में पाठ । संहितापाठ, पदपाठ और क्रमपाठ इस श्रेणी में आते हैं । **२. विकृतिपाठ :** इसके शिखा, माला, घनपाठ आदि आठ भेद हैं । इसमें मंत्र के पदों को आगे-पीछे, आदि में या अन्त में ले जाकर पढ़ते हैं । अतः इसे विकृतिपाठ कहते हैं । प्रातिशाख्यों का प्रतिपाद्य विषय प्रकृतिपाठ तथा उससे संबद्ध स्वर-संधि का विवेचन है ।

तैत्तिरीय प्रातिशाख्य की तीन व्याख्याएँ उपलब्ध हैं । ये हैं :

१. माहिषेय-कृत, 'पदक्रमसदन' भाष्य । २. सोमयार्य - कृत 'त्रिभाष्यरत्न' भाष्य । ३. गोपालयज्वा - कृत 'वैदिकाभरण' ।

४. सामवेदीय प्रातिशाख्य

सामवेद के कई प्रातिशाख्य हैं । इनमें मुख्य ये हैं :

(क) पुष्पसूत्र : इसके प्रणेता पुष्प ऋषि हैं । इसमें १० प्रपाठक (अध्याय) हैं । इसका सामगान से संबन्ध है । इसमें स्तोभ का विशेष रूप से विवेचन है । इसमें ग्रामगेयगान और अरण्य-गेयगान में प्रयुक्त सामों की विविध विधियों का विशदीकरण है । पुष्पसूत्र पर अजातशत्रु की एक व्याख्या उपलब्ध है ।

(ख) ऋक्तन्त्र : यह सामवेद की कौथुमशाखा का प्रातिशाख्य है । इसको 'ऋक्तन्त्र व्याकरण' भी कहते हैं । इसमें ५ प्रपाठक (अध्याय) और २८० सूत्र हैं । इसके रचयिता आचार्य शाकटायन हैं । इसके प्रतिपाद्य विषय ये हैं : १. वर्णोच्चारणशिक्षा, २. संधिविचार, ३. पदान्त वर्णों के विभिन्न परिवर्तन । जैसे ' न् का र् होना, विसर्ग का र् होना । अन्तिम स्वर का दीर्घ होना आदि ।

इसमें प्रयुक्त पारिभाषिक संज्ञाएँ तीन प्रकार की हैं : **१. कृत्रिम :** जैसे, संयोग के लिए 'सण्' , पदादि के लिए 'णि' । **२. आदि या अन्त का अक्षर :** जैसे उदात्त के लिए 'उत्', दीर्घ के लिए 'घ', लघु के लिए 'घु' आदि । **३. अन्वर्थक :** सार्थक परिभाषाएँ ।

जैसे - अन्तःस्थ, ऊष्म, घोष, सोष्म, अयोगवाह, अनुनासिक । यह यास्क से प्राचीन है । यास्क और पाणिनि पर इसका प्रभाव स्पष्ट है ।

(५) अथर्ववेदीय प्रातिशाख्य

इसके दो प्रातिशाख्य उपलब्ध हैं :

१. शौनकीय चतुरध्यायिका : इसके लेखक शौनक माने जाते हैं । इसका इंग्लिश् अनुवाद के सहित संस्करण डा० व्हिटनी ने प्रकाशित किया है । इसमें चार अध्याय हैं । इसके वर्ण्य विषय हैं : १. ध्वनि-विचार, २. संधि-विवेचेन, ३. संहितापाठ में दीर्घत्व, द्वित्व,णत्व, स्वरसंधि आदि का विवेचन, ४. अवग्रह, प्रगृह्य आदि का विवेचन ।

२. अथर्ववेद प्रातिशाख्य : डा० सूर्यकान्त ने इसका एक सुन्दर संस्करण १९४० में लाहौर से प्रकाशित किया था। इसमें सन्धि, स्वर और पदपाठ के नियम विशेष रूप से दिए गए हैं ।

३. छन्दःशास्त्र

छन्द का अर्थ : छन्दस् (छन्द) शब्द छद् (ढकना) धातु से बना है । यास्क ने निरुक्त (७.१२) में छन्दस् का निर्वचन दिया है । -**'छन्दांसि छादनात्'** अर्थात् छन्द भावों को आच्छादित करके उसे समष्टिरूप प्रदान करता है । इसके कारण छन्द गेय और सुपाठ्य हो जाता है । कात्यायन ने सर्वानुक्रमणी (१२.६) में छन्द का लक्षण दिया है - **'यदक्षरपरिमाणं तच्छन्दः'** जिसमें वर्णों या अक्षरों की संख्या निर्धारित होती है, उसे छन्द कहते हैं । इसका अभिप्राय यह है कि वैदिक छन्दों का आधार अक्षर या वर्णों की संख्या है । अक्षरों की संख्या के आधार पर ही छन्दों के नाम रखे गए हैं ।

छन्दोविषयक ग्रन्थ : वैदिक छन्दों से संबद्ध सामग्री इन ग्रन्थों में प्राप्त होती है : १. ऋक्प्रातिशाख्य (पटल १६ से १८), २. शांखायन श्रौतसूत्र (केवल ७.२७ में), ३. सामवेद का निदानसूत्र, ४. पिंगल-प्रणीत छन्दःसूत्र, ५. कात्यायन-कृत दो छन्दोऽनुक्रमणियाँ।

वैदिक छन्द वृत्तात्मक (वर्णवृत्त) हैं । वेदों में मात्रिक छन्दों का अभाव है । वैदिक छन्दों के प्रत्येक पाद में वर्णों की संख्या निर्धारित है । ऋक्प्रातिशाख्य के तीन पटलों (अध्यायों) में ऋग्वेद में प्रयुक्त छन्दों का विस्तृत विवेचन है । निदानसूत्र में छन्दों के नाम और लक्षण दिए हैं । इसमें छन्दों के अतिरिक्त सामवेद के अंग उक्थ, स्तोम, गान आदि का भी विवेचन है । कुछ प्राचीन लेखक इसे पतंजलि की रचना मानते हैं ।[1] पिंगल के छन्दःसूत्र के पूर्वभाग में वैदिक छन्दों का विवेचन है । उत्तरभाग में लौकिक छन्दों का विश्लेषण है । कात्यायन-कृत छन्दोऽनुक्रमणी में ऋग्वेद में प्रयुक्त छन्दों की नामावली है । उसकी ही कृति सर्वानुक्रमणी के प्रारम्भ के ९ अध्यायों में वैदिक छन्दों का विवेचन है ।

---

1. Winternitz. H.I.L. Vol. 1, Page 288

छन्दों का महत्त्व : छन्दों के महत्त्व के कई कारण हैं : १. छन्द हृदय के कोमल भावों की अभिव्यक्ति का मनोरम साधन है । २. छन्द विस्तृत भावों एवं विचारों को संक्षेप में सुसंबद्ध रूप से कथन की एक सुन्दर विधा है । ३. छन्द शब्दावली में माधुर्य लाता है । ४. छन्द संगीतात्मक होने से हृदयाह्लादक होता है । ५. छन्द विचारों को क्रमबद्धता देता है । ६. छन्द सरलता से स्मरणीय होता है । ७. छन्दों में नैगर्सिक सुषमा है, अतः देवाराधन के लिए छन्दोमयी वाणी प्रस्तुत की गई है । ८. वैदिक वाणी छन्दोमय है, अतः छन्दज्ञान के लिए शिक्षाग्रन्थों आदि में बहुत बल दिया है । इसीलिए कहा गया है कि देवता-छन्द आदि के ज्ञान के बिना न अध्यापन करना चाहिए और न जप करना चाहिए ।

अविदित्वा ऋषिं छन्दो दैवतं योगमेव च ।
योऽध्यापयेद् जपेद् वापि पापीयान् जायते तु सः ।।

यही भाव कात्यायन की सर्वानुक्रमणी (१.१) में भी प्रकट किया गया है । पाणिनीय शिक्षा (श्लोक ४१) में कहा गया है कि छन्द वेदपुरुष के पैर हैं, 'छन्दः पादौ तु वेदस्य' । जिस प्रकार पैर शरीर को स्थिरता प्रदान करते हैं , उसी प्रकार छन्द साहित्य को स्थिरता प्रदान करते हैं ।

ऋग्वेद में छन्दोविधान : ऋग्वेद में २० छन्दों का प्रयोग हुआ है । इनमें से केवल ७ छन्द ही मुख्यरूप से प्रयुक्त हैं । मंत्रसंख्या की दृष्टि से इनका क्रम यह है : १. त्रिष्टुप् (४२५१ मंत्र), २. गायत्री (२४४९), ३. जगती (१३४६), ४. अनुष्टुप् (८५८), ५. पंक्ति (४९८), ६. उष्णिक् (३९८), ७. बृहती (३७१) । ऋग्वेद में कुल मंत्र १०,४७२ हैं, जिनमें से उक्त सात छन्दों में १०,१७१ मंत्र हैं । शेष १३ छन्दों में कुल ३०१ मंत्र हैं । मुख्य ७ छन्दों में भी केवल ४ छन्द ही प्रमुख हैं : त्रिष्टुप् , गायत्री, जगती और अनुष्टुप् । इनमें ही ऋग्वेद के लगभग ९० प्रतिशत मंत्र हैं ।

छन्दोविषयक ज्ञातव्य बातें

१. वैदिक छन्दों में प्रत्येक पाद में वर्णों की संख्या गिनी जाती है । इसी के आधार पर छन्दों में भेद किया जाता है ।

२. एक चरण को 'पाद' कहते हैं । एक पाद में कम से कम ५ वर्ण होते हैं, प्रचलित गायत्री आदि छन्दों में प्रत्येक पाद में ८,११ या १२ वर्ण होते हैं ।

३. प्रत्येक छन्द में गति (या लय) होती है ।

४. वेद के छन्दों में प्रायः प्रत्येक पद के अन्तिम ४ या ५ वर्णों में नियमित क्रम पाया जाता है । अन्य वर्णों में निश्चित क्रम नहीं पाया जाता है ।

५. ११ और १२ वर्णों वाले त्रिष्टुप् और जगती छन्दों में ४ या ५ वर्णों के बाद यति (स्वल्पविराम) होती है । ५ या ८ वर्णों वाले छन्दों में इस प्रकार की यति नहीं होती है ।

६. ऋग्वेद में अधिकांश २० अक्षरों (५ X ४ =२०) वाले छन्दों से लेकर ४८ अक्षरों (१२ X ४ = ४८) वाले छन्द हैं। कुछ छन्द ६८,७२ और ७६ अक्षरों वाले भी हैं, परन्तु इनकी संख्या बहुत कम है।

छन्दोविषयक कुछ सामान्य नियम

१. पद के अन्त के साथ शब्द का भी अन्त होता है।

२. ह्रस्व (लघु) स्वर के बाद संयुक्त वर्ण होंगे तो पूर्ववर्ती लघु स्वर को गुरु (दीर्घ, द्विमात्रिक) माना जाता है। च्छ् और ल्ह् को संयुक्त वर्ण माना जाता है।

३. बाद में कोई स्वर हो तो पूर्ववर्ती दीर्घ स्वर को ह्रस्व कर दिया जाता है। बाद में आ होने पर पूर्वर्ती ए ओ को ह्रस्व एँ ओं पढ़ा जाता है। प्रगृह्य ई ऊ ए दीर्घ ही रहते हैं। तस्मै अदात् > तस्मा अदात् में मा का आ दीर्घ ही रहता है।

४. शब्द के अन्तर्गत और संधि-स्थानों में प्राप्त य् व् को आवश्यकतानुसार क्रमशः इ उ पढ़ा जाता है। जैसे, स्वर् को सुअर्, व्युषाः को वि उषाः।

५. एकादेश (दीर्घ या गुणसंधि) हुए स्वरों (विशेष रूप से ई और ऊ) को उच्चारण के समय आवश्यकतानुसार एकादेश से पूर्व की स्थिति में पढ़ा जाता है। जैसे - चाग्नये को च अग्नये, वीन्द्रः को वि इन्द्रः, एन्द्र को आ इन्द्र।

६. ए और ओ के बाद पूर्वरूप हुए अ (अवग्रह चिंह्न ऽ) को आवश्कतानुसार फिर अ पढ़ा जाता है। जैसे - नोऽव को नो अव।

कतिपय मुख्य छन्द

(१) गायत्री (२४ वर्ण ८, ८ । ८) : इसमें आठ वर्णों वाले ३ पाद होते हैं। २ पाद के बाद विराम होता है, ८, ८ । ८। गायत्री में २४ वर्ण होते हैं। इसमें सामान्यतया आठ वर्णों में से पंचम और सप्तम वर्ण लघु (।) होते हैं। षष्ठ गुरु तथा अष्टम लघु या गुरु (ऽ)। लघु गुरु के लिए क्रमशः ये संकेत हैं : ।, ऽ

२. उष्णिक् (उष्णिह्) (२८ वर्ण, ८.८ । १२)

इसमें २८ अक्षर होते हैं। इसमें ३ पाद होते हैं - २ में ८ और एक में १२। दो पाद के बाद विराम। बढ़े हुए अक्षर के अनुसार इसके कई भेद हैं। जैसे -

(क) उष्णिक् - ८, ८ । १२ (ऋग्० १.७९.४से ६)

(ख) पुर उष्णिक् १२,८ । ८ (ऋग्० ७.६६.१६)

(ग) ककुभ् उष्णिक् ८, १२ । ८ (ऋग्० ५.५३.५)

३. अनुष्टुप् (अनुष्टुभ्) (३२ अक्षर, ८,८ । ८.८)

इसमें ८ अक्षर वाले ४ पाद होते हैं। २ पाद से पूर्वार्ध होता है और अन्तिम २ पाद से उत्तरार्ध। सामान्यतया प्रथम और तृतीय पाद में २,४, ६ और ७ वर्ण गुरु होते हैं, शेष लघु या गुरु। द्वितीय और चतुर्थ पाद में २,४,६ गुरु, ५,७ लघु, शेष लघु या गुरु।

४. बृहती (३६ अक्षर, ८,८ । १२.८)

इसमें ४ पादों में कुल ३२ अक्षर होते हैं, किसी पाद में ८ और किसी में १२।

किस पाद में १२ अक्षर होंगे, इस आधार पर इसके कई भेद हैं । जैसे -

(क) पुरस्ताद् बृहती - १२,८।८.८ (ऋग्० १०.९३.१५)
(ख) पथ्या बृहती ८.८ । १२.८ (ऋग्० ८.८.१)
(ग) उपरिष्टाद् बृहती ८.८ । ८.१२ (ऋग्० १.९१.१७)

५. पंक्ति (४० अक्षर, ८.८ । ८,८,८)

इसमें ४ या ५ पाद होते हैं । कुल ४० अक्षर होते हैं । २ पाद के बाद विराम होता है । विभिन्न पादों में अक्षरों की संख्या के भेद से इसके कई भेद हैं । जैसे -

(क) पंक्ति (पथ्या पंक्ति) ८,८ । ८,८,८ (ऋग्० १.८१. १ से ९)
(ख) विराट् पंक्ति १०,१० । १०,१० (ऋग्० ८.९६.४)
(ग) सतोबृहती पंक्ति १२,८ । १२.८ (ऋग्० १.३६.१८)
(घ) विपरीता पंक्ति ८,१२ । ८,१२ (ऋग्० ८.४६.१२)
(ङ) प्रस्तार पंक्ति १२,१२ । ८,८ (ऋग्० १०.९३ ६ से ८)
(च) विष्टार पंक्ति ८,१२ । १२,८ (ऋग्० १०.१४०.१ और २)

६. त्रिष्टुप् (त्रिष्टुभ्) (४४ अक्षर, ११,११ । ११,११)

इसमें ४४ अक्षर होते हैं और ११ अक्षर वाले ४ पाद होते हैं । ४ या ५ अक्षर के बाद यति होती है । दो पाद के बाद पूर्वार्ध और शेष दो पाद के बाद उत्तरार्ध पूर्ण होता है । ऋग्वेद में यह सबसे अधिक मंत्रों (४२५१) में प्रयुक्त हुआ है । इसमें प्रथम विराम ४ या ५ पर, दूसरा सात पर और तीसरा ११वें अक्षर पर ।

७. जगती (४८ अक्षर, १२,१२ । १२.१२)

इसमें ४८ अक्षर होते हैं और १२ अक्षर वाले ४ पाद होते हैं । २ पाद के बाद पूर्वार्ध और पाद ४ के बाद उत्तरार्ध पूर्ण होता है । ऋग्वेद में प्रचलन की दृष्टि से यह तीसरे नम्बर पर है । ऋग्वेद में १३४६ मंत्रों में जगती छन्द का प्रयोग है । त्रिष्टुप् में ही एक अक्षर और जोड़ देने से ११ के स्थान पर १२ अक्षर का वह छन्द हो गया है । इसमें भी ४ या ५ पर प्रथम यति (विराम), ७ पर द्वितीय और १२ पर तृतीय विराम होता है ।

८. जगती से अधिक अक्षर वाले अन्य ७ छन्द ऋग्वेद में प्राप्य हैं ।[1] इनका प्रयोग बहुत कम है । केवल जानकारी के लिए इनका विवरण दिया जा रहा है :

१. अति जगती : ५२ अक्षर, ५ पाद (१३,१३,१०,८,८) (ऋग्० ८.९७.१३)
२. शक्वरी : ५६ अक्षर, ७ पाद (८ अक्षर वाले ७ पाद) (ऋग्० १०.१३३.१)
३. अतिशक्वरी : ६० अक्षर, ५ पाद (१६,१६,१२,८,८) (ऋग्० २.२२ २ और ३)
४. अष्टि : ६४ अक्षर, ५ पाद (१६,१६,१६, ८,८)(ऋग्० २.२२ १ और ४)
५. अत्यष्टि : ६८ अक्षर, ७ पाद (१२ वाले ३, ८ वाले ४) (ऋग्० १.१३६.१से ६)
६. धृति : ७२ अक्षर, ७ पाद (१२ वाले २, १६ वाला १, ८ वाले ४) (ऋग्०४.१.३)
७. अतिधृति : ७६ अक्षर, ७ पाद (ऋग्० १.१२७.६)

1. वैदिक छन्दों के विस्तृत विवरण के लिए देखें, युधिष्ठिर मीमांसक - कृत वैदिक छन्दोमीमांसा, अमृतसर, १९५९ ।

९. इनसे भी बड़े ७ छन्द हैं, परन्तु इनका ऋग्वेद में प्रयोग नहीं है। प्रत्येक में ४ अक्षर बढ़ते गए हैं। इनके नाम और अक्षरसंख्या यह है :

१. कृति (८० अक्षर), २. प्रकृति (८४), ३. आकृति (८८), ४. विकृति (९२), ५. संस्कृति (९६), ६. अभिकृति (१००), ७. उत्कृति (१०४ अक्षर)।

१०. छन्द में अक्षर कम या अधिक होना : इसके लिए ये पारिभाषिक शब्द हैं :

१ अक्षर कम – निचृत्। १ अक्षर अधिक – भुरिक्।

२ अक्षर कम – विराट्। २ अक्षर अधिक – स्वराट्।

जैसे – गायत्री के ३ पाद में २४ अक्षर होते हैं। २३ अक्षर होने पर – निचृत् गायत्री। २५ अक्षर होने पर – भुरिक् गायत्री। २२ अक्षर होने पर – विराट् गायत्री। २६ अक्षर होने पर – स्वराट् गायत्री।

११. मुख्य छन्दों के नाम तथा प्रत्येक पाद में वर्ण-संख्या की सारणी :

क्र०	छन्द	अक्षर	पाद १	२	३	४	५
१.	गायत्री	२४	८	८	८	–	–
२.	उष्णिक् (ह्)	२८	८	८	१२	–	–
३.	पुर उष्णिक् (ह्)	२८	१२	८	८	–	–
४.	ककुभ् उष्णिक्	२८	८	१२	८	–	–
५.	अनुष्टुप् (भ्)	३२	८	८	८	८	–
६.	बृहती (पथ्या)	३६	८	८	१२	८	–
७.	पंक्ति	४०	८	८	८	८	८
८.	सतोबृहती	४०	१२	८	१२	८	–
९.	प्रस्तार पंक्ति	४०	१२	१२	८	८	–
१०.	विराट् पंक्ति	४०	१०	१०	१०	१०	–
११.	त्रिष्टुप् (भ्)	४४	११	११	११	११	–
१२.	जगती	४८	१२	१२	१२	१२	–
१३.	अतिजगती	५२	१३	१३	१०	८	८
१४.	अतिशक्वरी	६०	१६	१६	१२	८	८
१५.	अष्टि	६४	१६	१६	१६	८	८

४. निरुक्त

निरुक्त का अर्थ : निरुक्त का अर्थ है – निर्वचन, व्युत्पत्ति। शब्द के मूलरूप का ज्ञान कराना, शब्द में प्रकृति-प्रत्यय का स्पष्टीकरण, धात्वर्थ और प्रत्ययार्थ का विशदीकरण, समानार्थक और नानार्थक शब्दों का विवेचन आदि कार्य निरुक्त का है। इसके लिए इंग्लिश् शब्द (Etymology, एटिमॉलाजी) है। जिसका अर्थ है – शब्द की उत्पत्ति

और उसके विकास की प्रक्रिया का अध्ययन । इसे ही शब्द-व्युत्पत्ति-शास्त्र भी कहा जाता है । प्राचीन काल में इस शास्त्र को निरुक्त कहते थे ।

निरुक्त का महत्त्व : भाषाशास्त्र की दृष्टि से निरुक्त का बहुत महत्त्व है । इसमें शब्द के मूल का ज्ञान कराया जाता है । इसमें अर्थविज्ञान (Semantics) की अनेक विधाओं का समावेश है । शब्द के अर्थ का किस प्रकार विकास होता है, किस प्रकार एकार्थक शब्द अनेकार्थक हो जाते हैं और विभिन्न अर्थों वाले शब्द एकार्थक हो जाते हैं, समानार्थक शब्दों में सूक्ष्म भेद क्या हैं, शब्दों के अर्थों में परिवर्तन कैसे होता है, इत्यादि का इसमें विवेचन होता है । यास्क ने स्पष्ट किया है कि गो आदि शब्द कैसे नानार्थक हुए । यह शास्त्र प्राचीन आचार्यों के भाषावैज्ञानिक दृष्टिकोण और उनके चिन्तन-मनन का द्योतक है ।

यास्क का निरुक्त : यास्क का 'निरुक्त' ग्रन्थ ही संप्रति उपलब्ध है । इसमें १२ अध्याय हैं । अन्त में परिशिष्ट के रूप में २ अध्याय हैं । इस प्रकार यह १४ अध्यायों में विभक्त है ।

इसका वर्ण्य-विषय संक्षेप में यह है :

अध्याय १ : निघण्टु, नाम आख्यात आदि चार पदविभाग, शब्दनित्यता का विवेचन, षड्भाव-विकार, उपसर्गों का अर्थविवेचन, सभी नाम धातुज हैं, इसका प्रतिपादन, मंत्रों की सार्थकता का प्रतिपादन , अर्थज्ञान का महत्त्व ।

अध्याय २ और ३ : नैघण्टुक कांड । अध्याय २ के प्रारम्भ में निर्वचन और वर्ण-परिवर्तन आदि से संबद्ध भाषाशास्त्रीय विवेचन । शेष में निघंटु में पठित शब्दों की व्याख्या आदि ।

अध्याय ४ से ६ : नैगम कांड या ऐकपदिक कांड । इन तीन कांडों में वेदों के निघंटु में पठित कठिन शब्दों की सोदाहरण व्याख्या ।

अध्याय ७ से १२ : दैवत कांड । इन अध्यायों में देवतावाचक शब्दों की विस्तृत व्याख्या। द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथिवी-स्थानीय देवों का विवेचन ।

अध्याय १३ और १४ : इनमें निर्वचन-प्रक्रिया, सृष्टि-उत्पत्ति तथा दार्शनिक महत्त्व के अनेक विषयों का विवेचन है । ये दो अध्याय परिशिष्ट में हैं ।

निघंटु और निरुक्त : यास्क का निरुक्त वस्तुतः निघंटु ग्रन्थ की व्याख्या या भाष्य है । निघंटु वैदिक शब्द-कोश या वैदिक शब्दों का संकलन है । इसमें ५ अध्याय हैं । इसमें संगृहीत शब्दों की संख्या १७६८ है । अध्यायों के अनुसार इनकी संख्या है : प्रथम में ४१४, द्वितीय में ५१४, तृतीय में ४१०, चतुर्थ में २७९, पंचम में १५१ । महाभारत शान्तिपर्व (अध्याय ३४२, श्लोक ८८ और ८९) के अनुसार निघंटु के रचयिता 'प्रजापति कश्यप' हैं ।

नैघण्टुकपदाख्याने .. प्राह कश्यपो मां प्रजापतिः । श्लोक ८८-८९

निघंटु के अध्यायों का विषयानुसार वर्णन है :

अध्याय १ : पृथिवी, हिरण्य, मेघ आदि १७ पदार्थों के समानार्थक शब्द ।

अध्याय २ : मनुष्य, अन्न, धन, गो आदि २२ के समानार्थक शब्द ।

अध्याय ३ : बहु, ह्रस्व, प्रज्ञा, यज्ञ आदि ३० के समानार्थक शब्द।

अध्याय ४ : कठिन या व्याख्या के योग्य २७९ शब्दों का संकलन ।

अध्याय ५ : देवता-वाचक १५१ शब्दों का संकलन ।

निरुक्त का प्रथम अध्याय भूमिका है । अध्याय २ और ३ में निघंटु के प्रथम, द्वितीय और तृतीय अध्याय में पठित शब्दों का विवेचन है । अतः निरुक्त के अध्याय २ और ३ को '**नैघण्टुक कांड**' कहते हैं । निरुक्त के अध्याय ४ से ६ को '**नैगम कांड**' कहते हैं । इनमे निघंटु के अध्याय ४ के शब्दों की व्याख्या है । निरुक्त के अध्याय ७ से १२ को "**दैवत कांड**" कहते हैं । इन ६ अध्यायों में निघंटु के अध्याय ५ में संकलित १५१ देवविषयक शब्दों की सोदाहरण व्याख्या है । इस प्रकार निघंटु और निरुक्त अन्योन्य-संबद्ध ग्रन्थ हैं ।

यास्क से पूर्ववर्ती निरुक्तकार : निरुक्त के व्याख्याकार दुर्गाचार्य ने 'निरुक्तं चतुर्दशप्रभेदम्' (दुर्ग० १.१३) कहा है । इसका अभिप्राय है कि यास्कसहित १४ निरुक्तकार हैं । इनमें से १२ का उल्लेख यास्क ने अपने निरुक्त में किया है । यास्क के पूर्ववर्ती मुख्य निरुक्तकार हैं : आग्रायण , औपमन्यव, और्णवाभ, गार्ग्य, गालव, वार्ष्यायणि, शाकपूणि आदि । यास्क ने निरुक्त में यथास्थान इनके मतों का उल्लेख किया है ।

यास्क निरुक्तकार : महाभारत शान्तिपर्व (अध्याय ३४२, श्लोक ७२-७३) में यास्क ऋषि के निरुक्तकार होने का स्पष्ट उल्लेख है । साथ ही यह भी उल्लेख है कि यास्क ने नष्ट हुए निरुक्त-शास्त्र का पुनरुद्धार किया ।

यास्को मामृषिरव्यग्रो नैकयज्ञेषु गीतवान् ।..

यास्क ऋषिरुदारधीः ... नष्टं निरुक्तमधिजग्मिवान् ।। (श्लोक ७२-७३)

यास्क पाणिनि से पूर्ववर्ती हैं । इनका समय ८०० ई०पू० के लगभग माना जाता है ।

निरुक्त को टीकाकार : निरुक्त की संप्रति ३ टीकाएँ उपलब्ध हैं । ये हैं :

१. दुर्गाचार्य : इनकी टीका का नाम 'ऋज्वर्थ-वृत्ति' है । इसमें निरुक्त के प्रत्येक शब्द को उद्धृत करके उसकी व्याख्या की गई है । यह टीका अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण और प्रामाणिक है ।

२. स्कन्द महेश्वर : इनकी टीका लाहौर से प्रकाशित हुई है । ये स्कन्द ऋग्वेद के भाष्यकार भी हैं ।

३. वररुचि : इनकी टीका का नाम 'निरुक्त-निचय' है । इसमें १०० श्लोकों में निरुक्त के सिद्धान्तों की व्याख्या है ।

निरुक्त के प्रतिपाद्य विषय : संक्षेप में निरुक्त के प्रतिपाद्य विषय पाँच बताए गए हैं । ये हैं : १. वर्णागम-विचार, २. वर्ण-विपर्यय-विचार, ३. वर्ण-विकार-विचार, ४. वर्णनाश-विचार, ५. धातुओं का अनेक अर्थों में प्रयोग ।

वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च, द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ ।

धातोस्तदर्थातिशयेन योगस्तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्तम् ।।

निरुक्त द्वितीय अध्याय के प्रारम्भ में इस विषय का विस्तृत विवेचन है और इनके उदाहरण आदि दिए हैं ।

निरुक्त का भाषाशास्त्रीय महत्त्व

१. यह व्युत्पत्तिशास्त्र (Etymology) का आदि-ग्रन्थ है । संसार में व्युत्पत्तिशास्त्र का इससे प्राचीन कोई ग्रन्थ नहीं मिलता है । प्रसिद्ध भाषाशास्त्री डा० सिद्धेश्वर वर्मा ने निरुक्त का भाषाशास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया है । उनके अनुसार निरुक्त में ११५८ शब्दों की व्युत्पत्तियाँ दी गई हैं । इनमें ७६२ व्युत्पत्तियाँ प्राचीन ढंग की हैं । १९९ पूर्णतया वैज्ञानिक हैं और १९९ अस्पष्ट हैं ।[1] डा० वर्मा ने इन व्युत्पत्तियों की प्राचीन भाषाओं ग्रीक, लेटिन, अवेस्ता आदि से तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया है ।

२. निरुक्त में वैदिक मंत्रों की निर्वचनात्मक व्याख्या की गई है । यास्क ने वैदिक देवतावाचक शब्द अग्नि, इन्द्र, वरुण, सविता आदि को निर्वचनात्मक मानकर इनसे संबद्ध मंत्रों के चार प्रकार के अर्थ प्रस्तुत किए हैं : आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक और अधियज्ञ, अर्थात् परमात्मा, देवता, पंचभूत और यज्ञ से संबद्ध । इस पद्धति को नैरुक्त-पद्धति कहा जाता है । स्वामी दयानन्द सरस्वती ने यास्क की इस व्याख्या - पद्धति को आदर्श पद्धति माना है और तदनुसार ही ऋग्वेद और यजुर्वेद का भाष्य किया है ।

३. निरुक्त में सर्वप्रथम पद-विभाजन (Parts of speech) प्रस्तुत किया गया है । पद के ४ भेद बताए हैं : नाम, आख्यात (क्रिया), उपसर्ग और निपात ।

चत्वारि पदजातानि नामाख्याते चोपसर्गनिपाताश्च । निरुक्त १.१

४. निरुक्त अर्थविज्ञान (Semantics) का प्रथम ग्रन्थ है । शब्दों के निर्वचन आदि में अर्थ पर सबसे अधिक ध्यान दें । (**अर्थनित्यः परीक्षेत,** निरुक्त, २.१)

५. निर्वचन व्याकरण-संमत होना चाहिए । निर्वचन करते समय स्वर एवं व्याकरण के नियमों का भी ध्यान रखें । जैसे - गुण, वृद्धि, संप्रसारण आदि ।

येषु पदेषु स्वरसंस्कारौ समर्थौ प्रादेशिकेन विकारेणान्वितौ

स्यातां तथा तानि निर्ब्रूयात् । निरुक्त २.१

६. प्रत्येक शब्द का निर्वचन होना चाहिए । निर्वचन अज्ञात है, यह कहकर न छोड़ें । निर्वचन की अनेक विधियों का भी यास्क ने वर्णन किया है ।

---

1. *Dr. S. Varma,* The Etymologies of Yaska, 1953. PP. 10-32

न त्वेव न निर्ब्रूयात् । निरुक्त २.१

७. यास्क ने वस्तुओं के नामकरण पर भी सुन्दर ढंग से प्रकाश डाला है । इसी सन्दर्भ में उन्होंने निरुक्त (१.११ से १४) में यौगिक और रूढ शब्दों का भाषाशास्त्रीय ढंग से विवेचन प्रस्तुत किया है ।

८. ध्वनिविज्ञान की अनेक विधियों का सर्वप्रथम वर्णन निरुक्त में हुआ है । जैसे- वर्णविकार, वर्ण-लोप, वर्ण-परिवर्तन, वर्णागम, आदिलोप, अन्तलोप, उपधालोप, अनेक वर्णों का लोप, उपधा में विकार, आदि के अक्षर में परिवर्तन, अन्त्य-अक्षर में परिवर्तन आदि । यास्क ने इनके उदाहरण भी दिए हैं । (निरुक्त २.१)

९. निरुक्त में यास्क का सबसे महत्त्वपूर्ण भाषाशास्त्रीय निर्णय यह है कि सारे नाम धातुज हैं । अतएव भाषा की उत्पत्ति धातुओं (Roots) से मानी जाती है । धातु या क्रिया में जब भाव या क्रिया की प्रधानता होती है, तब उसे क्रिया-वाचक शब्द कहते हैं । परन्तु जब शब्द में सत्त्व या द्रव्य की प्रधानता होती है तो उसे संज्ञाशब्द कहते हैं । जैसे - गम् (जाना) धातु के गच्छति (जाता है) आदि में क्रिया प्रधान है, अतः यह धातुरूप या क्रियाशब्द है । परन्तु गम् धातु से ही बने गति, गमन, प्रगति, संगति, संगम, उद्गम आदि में सत्त्व की प्रधानता है, अतः ये संज्ञाशब्द हैं ।

सभी निरुक्तकार और वैयाकरणों में शाकटायन इस मत के प्रतिपादक हैं कि सारे नाम धातुज हैं । पतंजलि ने भी यही विचार व्यक्ति किए हैं ।

(क) तत्र नामानि- आख्यातजानीति शाकटायनो नैरुक्तसमयश्च ।

निरुक्त १.१२

(ख) नाम च धातुजमाह निरुक्ते, व्याकरणे शकटस्य च तोकम् । महाभाष्य

यास्क ने नाम और आख्यात का अन्तर बताते हुए कहा है :

भावप्रधानम् आख्यातम् । सत्त्वप्रधानानि नामानि । निरुक्त १.१

अर्थात् आख्यात (क्रियाशब्द) में भाव की प्रधानता होती है और नामों में सत्त्व या द्रव्य की ।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि निरुक्त व्युत्पत्तिशास्त्र (Etymology), भाषाशास्त्र (Linguistics) और अर्थविज्ञान (Semantics) का सबसे प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थ है ।

५. ज्योतिष

ज्योतिष का अर्थ : ज्योतिष का अर्थ है - ज्योतिर्विज्ञान । सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र आदि आकाशीय पदार्थों की गणना ज्योतिर्मय पदार्थों में है । इनसे संबद्ध विज्ञान को ज्योतिष या ज्योतिर्विज्ञान (Astronomy) कहते हैं । लगध ने इसको 'ज्योतिषाम् अयनम्' (श्लोक ३) अर्थात् नक्षत्रों आदि की गति का विवेचन करने वाला शास्त्र कहा

है । लगध ने ज्योतिष के लिए एक दूसरा शब्द दिया है - कालज्ञानशास्त्र या कालविज्ञान-शास्त्र (कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि, श्लोक २) । इसमें कालचक्र, संवत्सरचक्र तथा कालसंबन्धी तथ्यों का विवेचन किया जाता है । इस प्रकार ज्योतिष में कालविज्ञान और ज्योतिर्विज्ञान दोनों का समन्वय है ।

ज्योतिष का महत्त्व : वेदों में यज्ञ का सर्वाधिक महत्त्व है । यज्ञों के लिए समय निर्धारित हैं । तैत्तिरीय ब्राह्मण का कथन है कि ब्राह्मण वसन्त में अग्नि की स्थापना करे, क्षत्रिय ग्रीष्म में और वैश्य शरद् ऋतु में ।[1] इसी प्रकार तांड्य ब्राह्मण में कथन है कि दीक्षा एकाष्टका (माघ कृष्णा ८)के दिन या फाल्गुन की पूर्णिमा को ले ।[2] इसी प्रकार अन्य यज्ञों के लिए काल निर्धारित हैं । काल के ज्ञान के लिए ज्योतिष की अत्यन्त आवश्यकता है । अतएव वेदांग ज्योतिष में कहा गया है कि यज्ञ के निर्धारित काल के ज्ञान के लिए ज्योतिष का ज्ञान आवश्यक है । उसी में यह भी कहा गया है कि जिस प्रकार मोर की शिखा और सर्पों की मणि सिर के सर्वोपरि स्थान में हैं, उसी प्रकार गणित (गणितज्योतिष) सारे वेदांगों में मूर्धन्य है । पाणिनि ने इसे विराट् पुरुष के नेत्र का स्थान दिया है, क्योंकि यह यज्ञादि के लिए मार्गदर्शन करता है ।

(क) वेदा हि यज्ञार्थमभि प्रवृत्ताः , कालानुपूर्व्या विहिताश्च यज्ञाः ।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं, यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञम् ।।
वेदांग ज्योतिष, याजुष० श्लोक ३

(ख) यथा शिखा मयूराणां, नागानां मणयो यथा ।
तद्वद् वेदांगशास्त्राणां, गणितं मूर्धनि स्थितम् ।। वेदांग० या० ४

(ग) ज्योतिषामयनं चक्षुः । पा० शिक्षा ४१

लगध का वेदांग-ज्योतिष

ज्योतिष-विषयक केवल एक ही प्राचीन ग्रन्थ उपलब्ध है । वह है महर्षि लगध-कृत 'वेदांग-ज्योतिष' । यह ग्रन्थ दो भागों में मिलता है । एक का नाम है ' आर्च ज्योतिष' अर्थात् ऋग्वेद-संबन्धी ज्योतिष, दूसरे का नाम है 'याजुष ज्योतिष' अर्थात् यजुर्वेद-संबन्धी ज्योतिष । प्रथम भाग में ३६ श्लोक हैं और द्वितीय भाग में ४३ । बहुत से श्लोक दोनों भागों में समान हैं । इसके लेखक महर्षि लगध माने जाते हैं ।[3] ग्रन्थ की भाषा बहुत क्लिष्ट और दुरूह है , अतः अनेक विशेषज्ञों के प्रयत्न के बाद भी कुछ श्लोक अभी तक अस्पष्ट हैं । दोनों भागों में कहा गया है कि यह ग्रन्थ यज्ञकार्य के लिए शुभ मुहूर्त आदि का ज्ञान कराने हेतु लिखा गया है ।

ज्योतिषामयनं कृत्स्नं, प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ।
विप्राणां संमतं लोके, यज्ञकालार्थसिद्धये ।। आर्च० ३, याजुष २

---

१. वसन्ते ब्राह्मणोऽग्निमादधीत, ग्रीष्मे राजन्यः, शरदि वैश्यः । तैत्ति० ब्रा० १.१
२. एकाष्टकायां दीक्षेरन् , फाल्गुने दीक्षेरन् । तां० ब्रा० ५.९.१,७
३. कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मनः । आर्च० श्लोक २

इस पर एक प्राचीन टीका सोमाकर की प्राप्त होती है । इस ग्रन्थ पर अनेक पाश्चात्त्य और भारतीय विद्वानों ने बहुत परिश्रम किया है । इनमें विशेष उल्लेखनीय हैं : सर विलियम जोन्स, प्रो० वेबर, प्रो० व्हिटनी, प्रो० कोलब्रुक, डा० थीबो, पं० शंकर बालकृष्ण दीक्षित, लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, पं० सुधाकर, द्विवेदी, श्री शामशास्त्री, डा० सत्यप्रकाश सरस्वती, प्रो० टी०एस० कुप्पन्न शास्त्री आदि ।

वेदांग-ज्योतिष का समय : प्रो० कुप्पन्न शास्त्री ने विभिन्न मतों के आलोचनात्मक अध्ययन के बाद वेदांग-ज्योतिष का समय १३७० ई० पूर्व निर्धारित किया है ।[१] श्री शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने भी सप्रमाण सिद्ध किया है कि इसका रचनाकाल १४०० ई०पू० है ।[२]

वेदांग-ज्योतिष के वर्ण्य विषय : इसके मुख्य वर्ण्य-विषय ये हैं :

१. काल का विभाजन, २. नक्षत्र और नक्षत्र-देवता , ३. युग के वर्ष, ४. काल और तिथि का निर्णय, ५. अयन और पर्व-निर्धारण, ६. नक्षत्रों का काल-विभाजन , ७. तिथि-नक्षत्र, ८. नक्षत्र और पर्व का काल-निर्धारण, ९. अधिक मास आदि ।

काल-विभाजन : काल-विभाजन इस प्रकार दिया हैं :

१० मात्रा = १ काष्ठा, १२४ काष्ठा = १ कला, , १०+१/२ कला = १ नाडिका (२४ मिनट), २ नाडिका = १ मुहूर्त (४८ मिनट), ३० मुहूर्त = १ दिन (अहोरात्र, २४ घंटे), ३६६ दिन = १ सौर वर्ष (अर्थात् १२ सौर मास, ६ ऋतु, २ अयन - उत्तरायण और दक्षिणायन), ५ सौर वर्ष = १ युग ।

एक युग के ५ सौर वर्षों के नाम :

वेदांग ज्योतिष का कथन है कि ५ सौर वर्षों का एक युग होता है ।

युगस्य पंचवर्षस्य कालज्ञानं प्रचक्षते । याजुष ५, आर्च० ३२

इन ५ वर्षों के नाम यजुर्वेद में ये दिए हैं :

संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, इद्वत्सर और वत्सर ।[३] यजु० २७.४५

यही नाम शतपथ ब्राह्मण (८.१.४.८) में भी दिए हैं । तैत्तिरीय ब्राह्मण (३.१०.४.१) और तैत्तिरीय आरण्यक (४.१९.१) में एक नाम में थोड़ा अन्तर है । इनमें चतुर्थ वर्ष का नाम अनुवत्सर और पंचम का नाम इद्वत्सर दिया है । ये नाम इस प्रकार हैं :

संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, अनुवत्सर और इद्वत्सर ।

५ वर्ष का युग मानने का कारण यह है कि ठीक ५ वर्ष बाद सूर्य और चन्द्रमा राशिचक्र के उसी नक्षत्र पर पुनः एक सीध में होते हैं ।

---

१. द्रष्टव्य, T.S.K. Shastri, Vedanga Jyotisa of Lagadha, P. 13

२. द्रष्टव्य , शंकर बालकृष्ण दीक्षित-कृत 'भारतीय ज्योतिषशास्त्र' ।

३. संवत्सरोऽसि, परिवत्सरः, इदावत्सरः, इद्वत्सरः, वत्सरः । यजु० २७.४५

२७ नक्षत्रों के नाम : इसमें एक ही श्लोक में २७ नक्षत्रों के नाम दिए गए हैं । प्रत्येक नक्षत्र का आदि, मध्य या अन्त का एक अक्षर लिया गया है । यह श्लोक लगध के पांडित्य का प्रदर्शक है कि एक छोटे से अनुष्टुप् (३२ अक्षर वाले) छन्द में २७ नक्षत्रों के नाम दे दिए हैं और शेष ५ अक्षर में अपनी शेष बात भी पूरी कह दी है ।

जौ द्रा गः खे श्वे ऽही रो षा
चिन् मू ष ण्यः सू मा धा णः ।
रे मृ घाः स्वा ऽऽपो ऽजः कृ ष्यो
ह ज्ये ष्ठा इत्यृक्षा लिंगैः । याजुष १८, आर्च १४

इसका विवरण इस प्रकार है । जौ = अश्वयुजौ (अश्विनी), द्रा = आर्द्रा, गः = भगः (उत्तरा फल्गुनी), खे = विशाखे (विशाखा), श्वे = विश्वेदवाः (उत्तरा अषाढा), अहिः = अहिर्बुध्न्य (उत्तरा भाद्रपदा), रो = रोहिणी, षा = आश्लेषा, चित् = चित्रा, मू = मूल , ष = शतभिषक् , ण्यः = भरण्यः (भरणी), सू = पुनर्वसू (पुनर्वसु), मा = अर्यमा (पूर्वा फल्गुनी), धा = अनुराधा, णः = श्रवणः (श्रवणा), रे = रेवती, मृ = मृगशिरस् (मृगशिरा), घाः = मघाः (मघा), स्वा = स्वाति, आपः = आपः (पूर्वा अषाढा), अजः = अज एकपाद् (पूर्वा भाद्रपदा), कृ = कृत्तिकाः (कृत्तिका) ष्यः = पुष्य, ह = हस्त, ज्ये = ज्येष्ठा, ष्ठाः = श्रविष्ठा ।

ज्योतिष के परकालीन ग्रन्थों में १२ राशियों का मुख्यरूप से उल्लेख मिलता है, परन्तु वेदांग-ज्योतिष में राशियों का कहीं भी नामोल्लेख नहीं है ।

ज्योतिष-संबन्धी महत्त्वपूर्ण तथ्य : वेदों में ज्योतिष संबन्धी कुछ महत्त्वूपर्ण तथ्य दिए गए हैं ।[1] यहाँ संक्षेप में कुछ तथ्यों का उल्लेख किया जा रहा है :

१. काल ब्रह्म है : ज्योतिष काल-विज्ञान-शास्त्र है । अथर्ववेद (कांड १९, सूक्त ५३,५४) और मैत्रायणी उपनिषद् में काल को ब्रह्म बताया गया है । काल (Time) ही सृष्टि का कर्ता-धर्ता है । सूर्य ही काल का आधार है ।

(क) कालो ह ब्रह्म भूत्वा बिभर्ति परमेष्ठिनम् । अथर्व० १९.५३.९

(ख) कालं ब्रह्म-इति-उपासीत । मैत्रा० उप० ६.१४

(ग) सूर्यो योनिर्वै कालस्य । मैत्रा० उप० ६.१४

२. ज्योतिष विज्ञान है : यजुर्वेद का कथन है कि ज्योतिष विज्ञान (प्रज्ञान) है । इसमें ग्रह, नक्षत्रों आदि की गति का अध्ययन होता है ।

प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शम् । यजु० ३०.१०

३. सूर्य संसार की आत्मा है : ऋग् यजुः और अथर्व वेदों में वर्णन है कि सूर्य चर और अचर जगत् की आत्मा है ।

---

१. इस विषय के विस्तृत विवेचन के लिए देखें - लेखककृत , 'वेदों में विज्ञान' पृष्ठ २०६ से २२६ ।

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च । ऋग्० १.११५.१ । यजु० ७.४२

४. सात सौर मण्डल : अथर्ववेद का कथन है कि सात सौर मण्डल हैं अर्थात् हमारे सौर-मण्डल की तरह सात बड़े सौर मंडल हैं।

यस्मिन् सूर्या अर्पिताः सप्त साकम् । अथर्व० १३.३.१०

५. सूर्य अनेक हैं : ऋग्वेद के एक मंत्र में कहा गया है कि सूर्य अनेक हैं। सात दिशाएँ हैं। उनमे अनेक सूर्य हैं।

सप्त दिशो नानासूर्याः । ऋग्० ९.११४.३

६. सूर्य की किरणें सात रंग की हैं : अथर्ववेद का कथन है कि सूर्य की सात किरणें हैं और इनके कारण वर्षा होती है।

अव दिवस्तारयन्ति सप्त सूर्यस्य रश्मयः । अथर्व० ७.१०७.१

७. सूर्य की किरणों से सारे रंग बनते हैं : अथर्ववेद का कथन है कि सूर्य की ७ x ३ = २१ प्रकार की किरणों से ही सारे रंग बनते हैं। सूर्य ही संसार की सभी वस्तुओं को रंग देता है। इसका अभिप्राय यह है कि सूर्य की सात रंग की किरणें ही गहरी, मध्यम और हल्की इन तीन रूपों में होकर २१ प्रकार की हो जाती हैं। ये ही सभी वस्तुओं को रंग देती हैं।

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः । अथर्व० १.१.१

८. सूर्य के आकर्षण से पृथिवी रुकी है : ऋग्वेद और यजुर्वेद में वर्णन है कि सूर्य अपनी किरणों से पृथ्वी को रोके हुए है।

(क) सविता यन्त्रैः पृथिवीम् - अरम्णात् । ऋग्० १०.१४९.१

(ख) त्वम् ...चकृषे भूमिम् (ऋग्० १.५२.१२)

(ग) दाधर्थ पृथिवीम् अभितो मयूखैः । यजु० ५.१६

९. सूर्य और पृथिवी दोनों में आकर्षण शक्ति है : ऋग्वेद के एक मंत्र में स्पष्ट उल्लेख है कि सूर्य और पृथिवी दोनों में आकर्षण शक्ति है। दोनों एक-दूसरे को सदा अपनी ओर खींच रहे हैं।

एको अन्यत् - चकृषे विश्वम् आनुषक् । ऋग्० १.५२.१४

१०. पृथिवी सूर्य की प्रदक्षिणा करती है : ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में उल्लेख है कि पृथिवी सूर्य की प्रदक्षिणा करती है।

(क) क्षाः ... शुष्णं परि प्रदक्षिणित् । ऋग्० १०.२२.१४

(ख) आयं गौः पृश्निरक्रमीद् असदन् मातरं पुरः ।
पितरं च प्रयन् स्वः । ऋग्० १०.१८९.१ । यजु० ३.६ । अ० ६.३१.१

इसी बात को आर्यभट्ट (४७६ ई०) ने आर्यभटीय में लिखा है कि पृथिवी १ प्राण (४ सेकेण्ड) में १ कला घूमती है और २१,६०० प्राण (२४ घंटे) में अपना एक चक्र (३६० अंश) पूरा कर लेती है।

(क) प्राणेनैति कलां भूः । आर्यभटीय, दशगीतिका ४

(ख) भूमिः प्राङ्मुखी भ्रमति । आर्यभटीय के टीकाकार मक्की भट्ट

११. सूर्य और सारा संसार घूमता है : यजुर्वेद ने एक महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक तथ्य का उल्लेख किया है कि सूर्य, पृथिवी और सारा संसार घूमता है । ऋग्वेद का कथन है कि सूर्य अपने सौर-चक्र (सौर मंडल) को घुमाता है ।

(क) **समाववर्ति पृथिवी समुषाः समु सूर्यः ।**
समु विश्वमिदं जगत् । यजु० २०.२३

(ख) **अवर्तयत् सूर्यो न चक्रम् ।** ऋग्० २.१२.२०

१२. वर्षचक्र घूमता है : ऋग्वेद में उल्लेख है कि यह वर्षचक्र द्युलोक में निरन्तर घूम रहा है ।

वर्वर्ति चक्रं परि द्याम् ऋतस्य । ऋग्० १.१६४.११

१३. सूर्य से चन्द्रमा में प्रकाश है : यजुर्वेद का कथन है कि सूर्य की सुषुम्ण नाम की किरण चन्द्रमा को प्रकाशित करती है । यास्क ने निरुक्त में भी उल्लेख किया है कि सूर्य की एक किरण चन्द्रमा को प्रकाशित करती है ।

(क) **सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः ।** यजु० १८.४०

(ख) **आदित्यतोऽस्य दीप्तिर्भवति ।** निरुक्त २.६

१४ सूर्य न उदय होता है और न अस्त होता है : ऐतरेय ब्राह्मण और गोपथ ब्राह्मण में उल्लेख है कि सूर्य न कभी उदय होता है और न अस्त होता है । रात्रि के अन्त को सूर्योदय कह देते हैं और दिन के अन्त को सूर्यास्त कह देते हैं । सूर्य अपने स्थान पर सदा ज्योतिर्मय है ।

(क) **स वा एष (आदित्यः) न कदाचनास्तमेति नोदेति ।** ऐत०ब्रा० ३.४४

(ख) **स वा एष (आदित्यः) न कदाचनास्तमयति नोदयति ।**
गोपथ ब्रा० २.४.१०

१५. अहोरात्र में तीस मुहूर्त : एक अहोरात्र (दिनरात) में तीस मुहूर्त होते हैं । मंत्र में मुहूर्त के लिए 'धाम' शब्द है ।

त्रिंशद् धाम विराजति वाक् .... प्रतिवस्तोः ० । यजु० ३.८

१६. एक वर्ष में बारह मास : ऋग्वेद का कथन है कि वर्षचक्र में १२ अरे अर्थात् मास होते हैं ।

द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य । ऋग्० १.१६४.११

१७. विषुवत् रेखा : ऋग्वेद और अथर्ववेद में विषुवत् रेखा (मध्यवर्ती रेखा) का उल्लेख है । मंत्र में उत्तरायण या ऊपरी भाग की ओर जाने के लिए 'पर' और दक्षिणायन या नीचे की ओर जाने के लिए 'अवर' शब्द है ।

विषूवता पर एनावरेण । ऋग्० १.१६४.४३ । अ० ९.१०.२५

१८. उत्तरायण और दक्षिणायन : वेदांग ज्योतिष का कथन है कि सूर्य और चन्द्रमा दोनों श्रविष्ठा नक्षत्र के आदि में उत्तर की ओर गति करते हैं, अर्थात् तब उत्तरायण प्रारम्भ होता है और आश्लेषा (सार्प) के मध्य में दक्षिणायन प्रारम्भ होता है। सूर्य माघ में उत्तर की ओर और श्रावण में दक्षिण की ओर गति प्रारम्भ करता है। यही भाव मैत्रायणी उपनिषद् (६.१४) में भी प्रकट किया गया है।

प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्याचन्द्रमसावुदक्।
सार्पार्धे दक्षिणार्कस्तु माघश्रावणयोः सदा ।। वेदांग० आर्च० ६

१९. ग्रहों का उल्लेख : अथर्ववेद में 'शं नो दिविचरा ग्रहाः' (१९.९.७) में आकाशीय ग्रहों का उल्लेख है। एक मंत्र (अ० १९.९.१०) में चार ग्रहों के नाम दिए हैं : चन्द्रमा, सूर्य, राहु, धूमकेतु या केतु। शतपथ ब्राह्मण (१४.६.२.१) में 'अष्टौ ग्रहाः' के द्वारा आठ ग्रहों का निर्देश है।

२०. बारह राशियाँ : ऋग्वेद के एक मंत्र में 'द्वादश प्रधयः चक्रमेकम्०' (१.६४.४८) में 'प्रधि' (हाल, इत्त्ब, ऊबे) शब्द से १२ राशियों का उल्लेख माना जाता है।

२१. नक्षत्रों के नाम और देवता : अथर्ववेद, (१९.७.१ से ५), तैत्तिरीय संहिता (४.४.१०.१ से ३) और मैत्रायणी संहिता (२.१३.२०) में २८ नक्षत्रों के नाम दिए गए हैं। तैत्तिरीय संहिता में केवल २७ नक्षत्र और उनके देवताओं का उल्लेख है। इनमें अभिजित् नक्षत्र को छोड़ दिया गया है।[१]

२२. सावन दिन, मास, वर्ष : सूर्योदय से लेकर अगले दिन सूर्योदय तक के २४ घंटे के समय को सावन दिन कहते हैं। सावन शब्द सवन (यज्ञ) शब्द से बना है। ऐसे ३० दिन का एक मास और ऐसे १२ मास का एक वर्ष माना जाता है। सावन वर्ष में केवल ३६० दिन होते हैं।

६. कल्प (कल्पसूत्र)

कल्प का अर्थ : आचार्य सायण ने कल्प का अर्थ दिया है – जिन ग्रन्थों में यज्ञ-संबन्धी विधियों का समर्थन या प्रतिपादन किया जाता है, उन्हें 'कल्प' कहते हैं। ऋग्वेद प्रातिशाख्य की टीका में विष्णुमित्र ने कहा है कि जिन ग्रन्थों में वैदिक कर्मों (यज्ञ आदि) का सांगोपांग विवेचन किया जाता है, उन्हें 'कल्प' कहते है। अभिप्राय यह है कि वेदों में वर्णित छोटे और बड़े यज्ञों के सर्वांगपूर्ण विधि-विधान का जिन ग्रन्थों में वर्णन किया गया है, उन्हें 'कल्प' ग्रन्थ कहते हैं। ये सूत्र रूप में लिखे गये हैं। अतः इन्हें सूत्र कहते हैं।

---

१. विशेष विवरण के लिए देखें : लेखककृत 'वेदों में विज्ञान' पृष्ठ २०६ से २२६

(क) कल्प्यते समर्थ्यते यागप्रयोगोऽत्र इति व्युत्पत्तेः । सायण

(ख) वेदविहितानां कर्मणाम् आनुपूर्व्येण कल्पनाशास्त्रम् ।

विष्णु० ऋक्०पृ० १३

कल्पसूत्रों के भेद : कल्पसूत्रों के प्रमुख चार भेद हैं :

१. श्रौतसूत्र : श्रौत का अर्थ है - श्रुति-प्रतिपादित या वेदों में वर्णित । श्रुति से श्रौत शब्द बना है । श्रौतसूत्रों में वेदों में वर्णित बड़े यज्ञ-याग-इष्टियों का विस्तृत विवेचन और वर्णन है । इनमें प्रारम्भ से अन्त तक क्या-क्या करना है, इसका क्रमानुसार पूर्ण विवरण दिया गया है । इन विशिष्ट यागों में मुख्य हैं : दर्श-पूर्णमास, सोमयाग, वाजपेय, राजसूय, अश्वमेध, सौत्रामणी आदि ।

२. गृह्यसूत्र : इनमें गृहस्थ से सम्बद्ध १६ संस्कारों, ५ महायज्ञ , ७ पाकयज्ञ, गृहनिर्माण , गृह-प्रवेश , पशुपालन , और कृषिकर्म आदि से सम्बद्ध यज्ञों की विधियाँ दी गई हैं ।

३. धर्मसूत्र : ये आचारसंहिता से सम्बद्ध ग्रन्थ हैं । ये स्मृतियों के पूर्वरूप हैं । इनमें वर्णाश्रम के कर्तव्यों, आचार-विचार, मान्यताओं और सामाजिक जीवन के कर्तव्य-अकर्तव्यों का विशद वर्णन है ।

४. शुल्बसूत्र : ये शुद्ध रूप से गणितशास्त्रीय वैज्ञानिक ग्रन्थ हैं । इनमें गणितशास्त्र के अंग ज्यामितिशास्त्र (Geometry) से सम्बद्ध अनेक प्रमेय दिये गये है । इनमें छोटी-बड़ी सभी प्रकार की वेदियों के निर्माण की पूरी विधि दी गई है । सभी पाश्चात्त्य विद्वान् इन ग्रन्थों में वर्णित ज्यामिति से सम्बद्ध प्रमेयों आदि के वर्णन पर मंत्र-मुग्ध हैं । पैथागोरस आदि के प्रमेयों का इनमें स्पष्ट उल्लेख है ।

कल्पसूत्रों का महत्त्व

कल्पसूत्रों का धार्मिक, शास्त्रीय और समाजशास्त्रीय दृष्टि से बहुत महत्त्व है । उसका संक्षिप्त दिग्दर्शन इस प्रकार है :

१. शास्त्रीय महत्त्व : कल्पसूत्र, मुख्यरूप से श्रौत और गृह्यसूत्र, ब्राह्मणग्रन्थों और आरण्यकग्रन्थों को जोड़ने वाली कड़ी हैं । ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञ-यागों का जो विधान है, उसकी समग्रता श्रौत और गृह्यसूत्रों में प्राप्त होती है । कल्पसूत्र ही बताते हैं कि प्रत्येक याग में किस क्रम से कौन-कौन से कार्य किए जाएँ, प्रत्येक ऋत्विज् के क्या कार्य हैं, किस मंत्र का किस विधि में कहाँ विनियोग है, प्रारम्भ से अन्त तक पूरी विधि का स्पष्ट निर्देश कल्पसूत्रों में है । इनके बिना श्रौत और गृह्य यज्ञादि में एकरूपता आनी असंभव थी ।

२. संक्षेपण : बड़े यज्ञों की विधियाँ बहुत विस्तृत थीं। उनको स्मरण रखना और उनको क्रमबद्ध करना कठिन कार्य था। यह कार्य कल्पसूत्रों ने किया। उन्होंने इसके लिए सूत्र-पद्धति को अपनाया और सारी विधि को सूत्ररूप में संक्षेप में प्रस्तुत किया है।

३. धार्मिक महत्त्व : यज्ञ-याग कितने हैं, उनके कितने भेद-उपभेद हैं , उनकी क्या क्या विधियाँ हैं, आदि का संकलन कल्पसूत्रों ने किया है, अतः धार्मिक दृष्टि से इनका बहुत महत्त्व है।

४. समाजशास्त्रीय महत्त्व : धर्मसूत्रों में उस समय की सभ्यता और संस्कृति का विशद वर्णन है। इनसे सांस्कृतिक विकास के अध्ययन में बहुत सहायता मिलती है। प्राचीन परम्पराएँ, मान्यताएँ, रूढ़ियाँ या अंधविश्वास क्या थे, इनका प्रामाणिक संकलन धर्मसूत्रों में है। विवाह आदि की विभिन्न परंपराओं का ज्ञान धर्मसूत्रों से ही होता है। धर्मसूत्र स्मृतिग्रन्थों के पूर्वरूप हैं।

५. वैज्ञानिक ग्रन्थ : शुल्ब सूत्र प्राचीन गणितशास्त्र और विशेष रूप से ज्यामिति (Geometry) शास्त्र के आद्य ग्रन्थ हैं। इनकी प्रामाणिकता और वैज्ञानिकता पर किसी भी प्राच्य या पाश्चात्त्य विद्वान् को कोई आपत्ति नहीं है। पाश्चात्त्य विद्वान् शुल्बसूत्रों में पैथागोरस के प्रमेय को समग्र रूप में पाकर नतमस्तक हैं और स्वीकार करते हैं कि बौधायन शुल्बसूत्र आदि के समय में भारत में गणितशास्त्र बहुत उत्कर्ष पर था।

६. कर्मकांड के आधार ग्रन्थ : श्रौत और गृह्यसूत्र कर्मकांड के दिशानिर्देशक प्रामाणिक ग्रन्थ हैं।

७. भाषा सरल, सुबोध : कल्पसूत्रों की भाषा सरल, सुबोध और संक्षिप्त है। सरल शब्दावली का प्रयोग है। क्लिष्ट पारिभाषिक शब्दों को व्याख्या के द्वारा स्पष्ट किया गया है।

८. संक्षेप में भी गहन पांडित्य : बड़े यज्ञों की जटिल विधियों को सरल भाषा में प्रस्तुत करना बड़े पांडित्य का सूचक है।

श्रौतसूत्र सामान्यतया ब्राह्मणग्रन्थों में निर्धारित क्रम का अनुसरण करते हैं, परन्तु कभी-कभी वे संहिता के क्रम का भी अवलंबन करते हैं। इनमें कर्मकाण्ड के विकास का इतिहास प्राप्य है। इनमें अपाणिनीय प्रयोग भी प्राप्त होते हैं।

(क) श्रौतसूत्र

श्रौतसूत्रों का वेदानुसार वर्गीकरण

१. ऋग्वेद : इसके दो श्रौतसूत्र हैं : १. आश्वलायन, २. शांखायन श्रौतसूत्र।

२. (क) शुक्ल यजुर्वेद : माध्यन्दिन और काण्व दोनों शाखाओं का एक ही श्रौतसूत्र है - कात्यायन श्रौतसूत्र।

(ख) कृष्ण यजुर्वेद : इसके श्रौतसूत्र ये हैं : १. बौधायन, २. वाधूल, ३. मानव (मैत्रायणीय), ४. भारद्वाज, ५. आपस्तम्ब, ६. काठक, ७. सत्याषाढ (हिरण्यकेशी), ८. वैखानस, ९. वाराह श्रौतसूत्र।

३. **सामवेद :** इसके श्रौतसूत्र ये हैं : १. आर्षेय (मशक) कल्प, २. क्षुद्रकल्प, ३. जैमिनीय-श्रौतसूत्र, ४. लाट्यायन श्रौतसूत्र, ५. द्राह्यायण श्रौतसूत्र ।

४. **अथर्ववेद :** इसका एक ही श्रौतसूत्र है : वैतान श्रौतसूत्र ।

१. ऋग्वेदीय श्रौतसूत्र (आश्वलायन श्रौतसूत्र)

इसमें होता के द्वारा प्रतिपाद्य विषयों का वर्णन है । इसके रचयिता आश्वलायन ऋषि हैं । आश्वलायन को शौनक ऋषि का शिष्य माना जाता है । आश्वलायन गृह्यसूत्र का रचयिता भी आश्वलायन को माना जाता है । इस श्रौतसूत्र का संबन्ध ऋग्वेद की शाकल और बाष्कल दोनों शाखाओं से है । इसमें १२ अध्याय हैं ।

इसके वर्ण्य-विषयों में मुख्य याग ये हैं : दर्श-पूर्णमास, अग्न्याधेय, अग्निहोत्र, आग्रयणेष्टि, काम्य इष्टियाँ, चातुर्मास्य, सौत्रामणी, ज्योतिष्टोम, सत्रयाग, एकाह, अहीन याग, गवामयन आदि ।

इन श्रौतयागों में ये ऋत्विज् होते हैं : होता, मैत्रावरुण, अच्छावाक और ग्रावस्तुत । इनके कार्यकलाप का इनमें वर्णन है । ब्रह्मा और यजमान के भी कर्तव्य निर्दिष्ट हैं । ऋग्वेद के मंत्र प्रतीकरूप में दिए गए हैं । इसमें ऐतरेय ब्राह्मण में निर्दिष्ट कर्मों से संबद्ध सामग्री अधिक है ।

२. शांखायन श्रौतसूत्र

यह शांखायन (कौषीतकि) ब्राह्मण पर आश्रित है । इसके रचयिता सुयज्ञ शांखायन माने जाते हैं । इसमें १८ अध्याय हैं । इसमें १२ मंत्र ऐसे हैं , जो शाकल शाखा में नहीं मिलते हैं, अतः इसका संबन्ध अन्य शाखाओं से भी माना जाता है । इसके मुख्य प्रतिपाद्य विषय ये हैं :

दर्श-पूर्णमास याग, अग्निहोत्र, आग्रयणेष्टि, चातुर्मास्य, अग्निष्टोम, अतिरात्र, द्वादशाह, विश्वजित्, हविर्याग, वाजपेय, बृहस्पति सव, सोम संस्थाएँ, अप्तोर्याम, राजसूय, अश्वमेध, सर्वमेध, पुरुषमेध आदि ।

इसकी शैली ब्राह्मणग्रन्थों के तुल्य है, अतः यहं अत्यन्त प्राचीन माना जाता हं अनेक नवीन सव (याग) भी इसमें वर्णित हैं, जो अन्य ब्राह्मण ग्रन्थों में नहीं मिलते हैं । इसमें कुछ अपाणिनीय प्रयोग और अप्रसिद्ध सन्धियाँ भी हैं । इसका प्रो० हिलेब्रांट का संस्करण विशेष प्रसिद्ध है ।

२. (क) शुक्ल यजुर्वेदीय कात्यायन श्रौतसूत्र

कात्यायन श्रौतसूत्र का संबन्ध शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन और काण्व दोनों शाखाओं से है । विनियोग के मंत्र अधिकांशतया काण्व संहिता से लिए गए हैं । श्रौतसूत्रों के वर्ण्य-विषय के ज्ञान के लिए कात्यायन श्रौतसूत्र सर्वोत्तम ग्रन्थ है । यह श्रौतसाहित्य का प्रतिनिधि ग्रन्थ माना जाता है । कात्यायन श्रौतसूत्र की मुख्य आधारशिला शतपथ ब्राह्मण है, परन्तु इसके तीन अध्याय (२२ से २४) सामवेद के तांड्य ब्राह्मण पर निर्भर

हैं । इसके गूढ रहस्यों को समझने के लिए कर्काचार्य का विस्तृत भाष्य विशेष उपयोगी है । इसमें २६ अध्याय हैं । प्रत्येक अध्याय का विभाजन कंडिकाओं में हुआ है । इसके मुख्य वर्ण्य-विषय ये हैं :

याग-संबन्धी परिभाषाएँ , दर्श-पूर्णमास याग, दाक्षायण यज्ञ, आग्रयणेष्टि, अग्निहोत्र, चातुर्मास्य, अग्निष्टोम, द्वादशाह, गवामयन, वाजपेय, राजसूय, सौत्रामणी, अश्वमेध, पुरुषमेध, सर्वमेध, एकाह, अहीन, प्रवर्ग्य ।

इस पर पूर्वमीमांसा का भी प्रभाव है । उसके श्रुति, लिंग , वाक्य, प्रकरण, स्थान और समाख्या इन ६ प्रमाणों का इसमें उल्लेख है । यजुर्वेदीय श्रौतसूत्रों में कात्यायन और आपस्तम्ब श्रौतसूत्र ही सर्वाधिक प्रचलित हैं ।

२. (ख) कृष्ण यजुर्वेदीय श्रौतसूत्र

कृष्ण यजुर्वेद से संबद्ध श्रौतसूत्र ८ हैं । इनके नाम हैं : १. बौधायन, २. आपस्तम्ब, ३. सत्याषाढ या हिरण्यकेशी, ४. वैखानस, ५. भारद्वाज, ६. वाधूल, ७. वाराह, ८. मानव श्रौतसूत्र । इनमें प्रारम्भ के ६ का संबन्ध तैत्तिरीय शाखा से है, वाराह और मानव का संबन्ध मैत्रायणी शाखा से है ।

१. बौधायन श्रौतसूत्र : प्राचीन श्रौतसूत्रों में इसका स्थान सर्वोपरि है । इसकी रचना ब्राह्मणग्रन्थों के तुल्य प्रवचन शैली में हुई है । इसके रचयिता बोधायन का समय ९०० ई०पू० से ८५० ई०पूर्व के मध्य माना जाता है । डा० कैलेन्ड द्वारा संपादित संस्करण ही प्रसिद्ध है । यह ३० प्रश्नों (अध्यायों) में विभाजित है । इसके मुख्य वर्ण्य-विषय ये हैं :

दर्श-पूर्णमास याग, अग्न्याधेय, अग्निहोत्र, चातुर्मास्य, अग्निष्टोम, प्रवर्ग्य, वाजपेय, राजसूय, औपानुवाक्य, अश्वमेध, द्वादशाह, अतिरात्र, एकाह, शुल्ब एवं प्रवर ।

औपानुवाक्य में याग के अनुष्ठानों का रहस्यात्मक एवं दार्शनिक विवेचन भी प्रस्तुत किया गया है । इसमें १०० से लेकर परार्ध तक के संख्यावाचक शब्दों का भी उल्लेख है ।

२. आपस्तम्ब श्रौतसूत्र : इसकी कात्यायन श्रौतसूत्र और भारद्वाज कल्प से बहुत समानता है । आपस्तम्ब को बोधायन का शिष्य कहा जाता है । इसका समय ७वीं शती ई०पू० माना जाता है । इसमें अनेक अपाणिनीय प्रयोग मिलते हैं । इसमें अन्य शाखाओं से विधियाँ, मंत्र और उद्धरण निःसंकोच लिए गए हैं । इसमें परिभाषाओं का विवरण सुव्यवस्थित रूप से दिया गया है । आपस्तम्ब कल्पसूत्र में ३० प्रश्न (अध्याय) हैं । २४ प्रश्न तक श्रौतसूत्र है, २५ और २६ प्रश्नों में गृह्यकर्म से संबद्ध मंत्रों का संकलन है । २७वाँ प्रश्न (अध्याय) गृह्यसूत्र है । २८ और २९ प्रश्न धर्मसूत्र है । प्रश्न ३० आपस्तम्ब शुल्बसूत्र है । इस प्रकार आपस्तम्ब कल्पसूत्र श्रौत, गृह्य, धर्म और शुल्ब सूत्रों का

समन्वित रूप है। इसमें एक ही स्थान पर कल्प के चारों भेद प्राप्य हैं। इस श्रौतसूत्र का वर्ण्यविषय बौधायन श्रौतसूत्र के ही तुल्य है। इस पर धूर्तस्वामी का प्रसिद्ध भाष्य उपलब्ध है।

३. सत्याषाढ या हिरण्यकेशी श्रौतसूत्र : इसका संबन्ध कृष्ण यजुर्वेद से है। इसमें आपस्तम्ब श्रौतसूत्र से अनेक सूत्र अक्षरशः ले लिए गए हैं। इसमें २४ प्रश्न (अध्याय) हैं। वर्ण्यविषय प्रायः बौधायन के तुल्य है। इसके सूत्र सुसंबद्ध और नियताक्षर नहीं है। इसमें श्रौतकृत्यों के मध्य में गृह्यसूत्र भी दिए हैं। पितृमेधसूत्रों से पहले धर्मसूत्रों का समावेश है। इसका एक अच्छा संस्करण अनेक टीकाओं से युक्त आनन्दाश्रम (पुणे) से १९३२ ई० में १० खंडों में प्रकाशित हुआ है।

४. वैखानस श्रौतसूत्र : यह भी तैत्तिरीय शाखा से संबद्ध है। इस पर बौधायन, आपस्तम्ब और सत्याषाढ तीनों श्रौतसूत्रों का प्रभाव पड़ा है। इसका वैष्णवों के विशिष्टाद्वैतवादी संप्रदाय से संबद्ध है। इसके व्याख्याकार श्रीनिवास ने इसका दूसरा नाम 'औखेय सूत्र' भी दिया है। इसके गृह्यसूत्र में इसके रचयिता का नाम 'विखनस' दिया है। यह वैखानस कल्पसूत्र का एक भाग है। वैखानस- कल्प में ३२ अध्याय हैं। उनमें से १२ से ३२ अर्थात् २१ अध्यायों में यह श्रौतसूत्र है। वर्ण्य-विषय प्रायः बौधायन के तुल्य हैं। इसमें अश्वमेध का निरूपण नहीं है। अनेक स्थलों पर विष्णु के ध्यान का विधान है। इसमें अनेक अपाणिनीय प्रयोग हैं। इसमें प्रयुक्त अग्निरूप्र (१०.८), अवकाविल (१२.६) आदि कुछ शब्दों का अर्थ अस्पष्ट है। इसका डा० कैलेन्ड द्वारा संपादित संस्करण कलकत्ता से १९४१ ई० में प्रकाशित हुआ है।

५. भारद्वाज श्रौतसूत्र : यह भी तैत्तिरीय शाखा से संबद्ध है। इसमें तैत्तिरीय संहिता से अनेक मंत्र उद्धृत हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण के वाक्यों को 'इति विज्ञायते' संकेत के साथ उद्धृत किया गया है। इसमें कृष्ण यजुर्वेद की अन्य शाखाओं से संबद्ध मैत्रायणी एवं काठक संहिताओं के भी मंत्र उद्धृत किए गए हैं। इस श्रौतसूत्र की भाषा, शैली आदि की परीक्षा से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि यह श्रौतसूत्र बौधायन के बाद का है और आपस्तम्ब से पूर्ववर्ती। यह १५वें प्रश्न (अध्याय) की ५वीं कंडिका तक ही उपलब्ध है। इसके वर्ण्य-विषय हैं - दर्श-पूर्णमास, अग्न्याधेय, अग्निहोत्र, आग्रयण, निरूढ पशुबन्ध, चातुर्मास्य, पूर्वप्रायश्चित्त और ज्योतिष्टोम। इसकी कुछ अंशों में बौधायन श्रौतसूत्र से समानता है। इसका गृह्यसूत्र और परिशिष्ट सूत्र भी मिलता है। इन तीनों सूत्रग्रन्थों का संकलन करके अंग्रेजी-अनुवाद के साथ डा० चिन्तामणि गणेश काशीकर ने वैदिक संशोधन मंडल, पूना से १९६४ ई० में प्रकाशित कराया है।

६. वाधूल श्रौतसूत्र : यह बौधायन के तुल्य प्राचीन है। इसकी रचनाशैली भी बौधायन के सदृश है। इसमें मंत्र पूरे दिए गए हैं। इसमें १५ प्रपाठक (अध्याय) हैं। इनके उपविभाग अनुवाक और पटल हैं। इसके वर्ण्यविषय हैं - अग्न्याधेय, अग्निहोत्र,

पुरोडाशी, याजमान, आग्रयण, ब्रह्मत्व, चातुर्मास्य, पशुबन्ध, ज्योतिष्टोम, वाजपेय, राजसूय, अश्वमेध, पवित्रेष्टि, अग्निष्टोम, अहीन, एकाह आदि । इसे डा० ब्रजबिहारी चौबे ने संपादित करके होशियारपुर से १९९३ में प्रकाशित किया है ।

७. वाराह श्रौतसूत्र : यह मैत्रायणी शाखा से संबद्ध है । इसमें तीन अध्याय हैं और उनके उपखंड हैं । प्रथम अध्याय 'प्राक्सौमिक' में ये विषय वर्णित हैं : परिभाषा, याजमान, ब्रह्मत्व, दर्श-पूर्णमास, अग्न्याधेय, अग्निहोत्र, आग्रयण, पशुबन्ध और चातुर्मास्य । द्वितीय में अग्निचयन से संबद्ध सामग्री है । तृतीय में वाजपेय, द्वादशाह, गवामयन, उत्सर्गाणाम् अयन, महाव्रत, सौत्रामणी , राजसूय और अश्वमेध का वर्णन है । इसमें अपत्नीक को भी अग्न्याधान का अधिकार दिया गया है । डा० कैलेन्ड और डा० रघुवीर के द्वारा संपादित इसका संस्करण १९३३ में मेहरचन्द लक्ष्मणदास, लाहौर ने प्रकाशित किया था ।

८. मानव श्रौतसूत्र : इसका संबन्ध मैत्रायणी शाखा से है । यह प्राचीनतम श्रौतसूत्रों में गिना जाता है । इसमें ५ भाग और ११ अध्याय हैं । उनके उप-खंड भी है । ५ भागों के नाम हैं : १. प्राक्सोम, २. इष्टिकल्प, ३. अग्निष्टोम, ४. राजसूय, ५. चयन । इसके वर्ण्य-विषय हैं : दर्श-पूर्णमास, अग्न्याधेय, अग्निहोत्र, आग्रयण, चातुर्मास्य, पितृयज्ञ, पशुबन्ध, अग्निष्टोम, प्रायश्चित्त, प्रवर्ग्य, वाजपेय, राजसूय, अश्वमेध, एकाह, अहीन, सत्र, शुल्बसूत्र, परिशिष्ट आदि ।

इसका रचनाकाल आपस्तम्ब से प्राचीन माना जाता है । इसकी शैली कृष्ण यजुर्वेद के ब्राह्मणग्रन्थों के सदृश है । इसमें आख्यान नहीं है ।

आचार्य कुमारिल भट्ट की व्याख्या इसके प्रथम भाग प्राक्सोम पर प्राप्य है । इसके प्रारम्भिक ५ अध्यायों को फ्रीड्रिश क्नाउएर ने सेंट पीटर्सबर्ग से प्रकाशित किया था । संपूर्ण मानव श्रौतसूत्र जे०एम०फॉन गेल्डर द्वारा संपादित १९६१ में दिल्ली से प्रकाशित हुआ है । श्रीमती गेल्डर ने इसका अंग्रेजी में अनुवाद भी किया है ।

३. सामवेदीय श्रौतसूत्र

सामवेदीय प्रकाशित श्रौतसूत्रों की संख्या ४ है । ये हैं : १. आर्षेय कल्प, २. लाट्यायन श्रौतसूत्र, ३. द्राह्यायण श्रौतसूत्र, ४. जैमिनीय श्रौतसूत्र । इनके अतिरिक्त कुछ छोटे ग्रन्थ हैं । ये भी महत्त्वपूर्ण हैं । इनके नाम हैं : कल्पानुपद सूत्र , उपग्रन्थ सूत्र, निदानसूत्र, अनुपद सूत्र, उपनिदान सूत्र ।

१. आर्षेय कल्प सूत्र या मशक कल्पसूत्र

यह सामवेदीय तांड्य महाब्राह्मण से संबद्ध है । इसके कुछ अंशों का षड्विंश ब्राह्मण से भी संबन्ध है । इसके रचयिता मशक ऋषि माने जाते हैं , अतः इसे मशक कल्पसूत्र भी कहते हैं ।

आर्षेय कल्पसूत्र वस्तुतः दो भागों में विभक्त है : १. आर्षेय कल्प, २. क्षुद्र कल्पसूत्र । आर्षेय कल्प में बड़े यागों का वर्णन है और क्षुद्र कल्पसूत्र में छोटे यागों का ।

सामवेदीय कल्पसूत्रों में इसका अत्यन्त आदरणीय स्थान है । यह विशाल ग्रन्थ है । इसमें ११ अध्याय हैं । आर्षेय कल्प का मुख्य उद्देश्य यह बताना है कि किस याग में किस विशेष साम का गान किया जाता है । इस विषय का पूरा विवरण इस ग्रन्थ में दिया गया है ।

सोमयाग तीन प्रकार के होते हैं : १. एकाह : एक दिन में पूर्ण होने वाले । **२. अहीन :** दो दिन से लेकर ११ दिनों तक चलने वाले । इन्हें 'क्रतु' भी कहते हैं । **३. सत्र :** १२ दिन से लेकर एक वर्ष या उससे भी अधिक समय तक चलने वाले ।

आर्षेयकल्प तांड्य महाब्राह्मण में वर्णित क्रम का अनुसरण करता है । इसमें चार अभिचार यागों का भी वर्णन है । ये हैं - श्येन, इषु, संदंश और वज्र । इनका वर्णन षड्विंश ब्राह्मण में ही मिलता है ।

आर्षेय-कल्प सामयोनि ऋचाओं का उल्लेख प्रतीक के द्वारा देता है । यह प्रतीक एक ऋचा का द्योतक न होकर एक तृच का संकेत करता है । सामयोनि मंत्र वे कहे जाते हैं, जो आधारभूत या मूल ऋचा हैं, जिसके आधार पर सामगान होता है । अधिकांश सामगान सामवेद के उत्तरार्चिक पर निर्भर हैं । इनमें तीन मंत्रों का एक समूह होता है । इन तीन ऋचाओं के समूह को 'तृच' कहते हैं । जब इन तीन ऋचाओं का संकेत करना होता है, तो इनमें से पहली ऋचा के प्रारम्भ के दो या तीन पदों को लेकर संकेत रूप में रख देते हैं । इनको उस तृच का प्रतीक (संकेत करने वाला) कहा जाता है । जैसे - 'भद्रं कर्णेभिः०' प्रतीक से 'भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः०' (साम०मंत्र १८७४) यह मंत्र या ऋचा या तृच अर्थ लिया जाएगा ।

सामगान से संबद्ध पारिभाषिक शब्दों के लिए सामवेद-संहिता के वर्णन में दिए गए सामगान-विवरण को देखें । वहीं पर ग्रामगेयगान, अरण्यगेयगान, ऊह, ऊह्य आदि का विवरण दिया गया है । साथ ही स्तोत्र, स्तोम, स्तोभ, विष्टुति, प्रस्ताव, उद्‌गीथ, प्रतीहार, उपद्रव और निधन आदि का भी विवरण वहाँ दिया गया है ।

ज्योतिष्टोम संस्था के चार प्रकार : अग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी और अतिरात्र । जिस संस्था का सोमयाग होगा, उसका अन्त उसी के सामगान से होगा । जैसे - अग्निष्टोम संस्था वाले सोमयागों का अन्त अग्निष्टोम नामक सामगान से ही होगा । उक्थ्य का अन्त उक्थ्य स्तोमों से, षोडशी का अन्त षोडशी स्तोमों से और अतिरात्र याग का अन्त अतिरात्र स्तोमों से । ज्योतिष्टोम में 'ज्योतिः' शब्द पारिभाषिक है और यह त्रिवृत् (३ आवृत्ति), पंचदश (१५ आवृत्ति), सप्तदश (१७ आवृत्ति) और एकविंश (२१ आवृत्ति) स्तोमों का वाचक है, जो अग्निष्टोम संस्था में बहिष्पवमान आदि सामों के साथ नियतक्रम में सम्बद्ध रहते है । यह आर्षेय कल्प विभिन्न भागों में प्रयुक्त सामों का विधिवत् अनुष्ठान और प्रयोग बताता है । यह कल्पसूत्र एक प्रकार से तांड्य महाब्राह्मण का

पूरक है। यह ताड्ंय महाब्राह्मण में निर्दिष्ट यागों में प्रयुक्त होने वाले सामों का विवरण प्रस्तुत करता है।

आर्षेय कल्प में ११ अध्याय हैं। इसके प्रतिपाद्य विषय ये हैं :

अध्याय १ और २ : इनमें 'गवाम् अयन' सत्र (एक वर्ष चलने वाला) का निरूपण है। इसका प्रारम्भ अतिरात्र से होता है और समापन 'महाव्रत' के अनुष्ठान से होता है। इसके मध्य में ये अनुष्ठान होते हैं – प्रायणीय इष्टि, अभिप्लव षडह (ज्योतिः, गौ, आयु आदि), पृष्ठ्य षडह, अभिजित् , स्वरसाम, विषुवत् , विश्वजित् , गोष्टोम आदि।

अध्याय ३ : अध्याय ३ से ५ तक 'एकाह' यागों का वर्णन है। इस अध्याय में ज्योतिष्टोम , गौः आयुः, श्येन, चार व्रात्य स्तोम, बृहस्पतिसव और इषु यागों का वर्णन है।

अध्याय ४ : इसमें चातुर्मास्य, वाजपेय और राजसूय का वर्णन है।

अध्याय ५ : इसमें राज्, विराज् , गरुत्स्तोम, इन्द्रस्तोम, संदंश और वज्र यागों का वर्णन है।

अध्याय ६ : अध्याय ६ से ८ तक अहीन (२ से ११ दिन चलने वाले) यागों का वर्णन है। अध्याय ६ में ज्योतिष्टोम, अतिरात्र, अप्तोर्याम, द्विरात्र, त्रिरात्र यागों का वर्णन है।

अध्याय ७ : इसमें चतूरात्र, पंचरात्र, षडह, सप्तरात्र, अष्टरात्र और नवरात्र यागों का वर्णन है।

अध्याय ८ : इसमें दशरात्र और एकादशरात्र नामक अहीन यागों का वर्णन है।

अध्याय ९ : इसमें १२ दिन से लेकर ६० दिन तक चलने वाले द्वादशरात्र से षष्टिरात्र याग तक का वर्णन है। इससे आगे बढ़कर १०० दिन से बढ़ते हुए एक हजार दिनों तक चलनेवाले शतरात्र और संवत्सररात्र यागों का वर्णन है।

अध्याय १० और ११ : इनमें १० प्रकार के अयन-संज्ञक यागों का वर्णन है। इनमें मुख्य हैं : आदित्यानाम् अयन, अंगिरसाम् अयन, सारस्वतम् अयन, सर्परात्र अयन, प्राजापत्य अयन (१ हजार वर्ष चलने वाला), विश्वसृजाम् अयन आदि।

आर्षेय कल्प पर वरदराज की एक विद्वत्तापूर्ण 'विवृति' नामक टीका प्राप्य है।

क्षुद्रकल्पसूत्र

इसके रचयिता भी मशक ऋषि हैं। यह वस्तुतः आर्षेय कल्प का ही दूसरा भाग है। आर्षेय कल्प में जिन छोटे यागों का वर्णन नहीं किया गया है, उनका इसमें वर्णन है। ग्रन्थ के नाम से भी स्पष्ट है कि इसमें क्षुद्र (छोटे) सोमयागों का वर्णन है। यह ग्रन्थ तीन प्रपाठकों और ६ अध्यायों में विभक्त है। इसके वर्ण्य-विषय ये हैं :

अध्याय १ और २ : विभिन्न काम्य इष्टियाँ और प्रायश्चित्त।

अध्याय ३ और ४ : पृष्ठ्य षडह, द्वादशाह अनुकल्प आदि ।

अध्याय ५ और ६ : विभिन्न द्वादशाह (१२ दिन चलने वाले) याग ।

इसमें ८५ एकाह (एक दिन वाले) यागों, २२ पृष्ठ्य षडह (६ दिन चलने वाले) और अनेक द्वादशाह यागों का वर्णन है । काम्य और प्रायश्चित्तों के सन्दर्भ में इसने तांड्य ब्राह्मण का अनुसरण किया है ।

इसमें छोटे यागों के विषय में बहुत विस्तृत सूचना है । इसमें कुछ ऐसे याग भी दिए हैं, जो किसी अन्य श्रौतसूत्र में नहीं दिए गए हैं । जैसे - ऋत्विग् अपोहन, पुरस्तात् ज्योतिः, शुक्रजातयः आदि ।

भाषा और शैली की दृष्टि से इसका अन्तिम भाग ब्राह्मण ग्रन्थों के तुल्य है, न कि सूत्रग्रन्थवत् । इसमें अनेक अपाणिनीय प्रयोग भी मिलते हैं । जैसे - जामितायाः' के स्थान पर 'जामितायै' । इस पर ताताचार्य के पुत्र श्रीनिवास की एक विस्तृत टीका मिलती है । इसका एक संस्करण डा० बी०आर० शर्मा द्वारा संपादित विश्वेश्वरानन्द संस्थान, होशियारपुर से १९७४ में प्रकाशित हुआ है ।

२. लाट्यायन श्रौतसूत्र

कुमारिल भट्ट ने कथनानुसार इसका यह नाम लाट प्रदेश (गुजरात) के आधार पर पड़ा है । इसके लेखक कोई गुजराती ब्राह्मण हैं, (तंत्रवार्तिक १.३.११) । इसमें १० प्रपाठक और २६४१ सूत्र हैं । इसके वर्ण्य-विषय ये हैं :

प्रपाठक १ : परिभाषाएँ और ऋत्विग्वरण ।

प्रपाठक २ : अग्निष्टोम और उससे संबद्ध याग ।

प्रपाठक ३ : षोडशी-विषयक द्रव्य-विधान ।

प्रपाठक ४ : वाजिभक्षण ।

प्रपाठक ५ : चातुर्मास्य, वरुण प्रघास और सोमचमस ।

प्रपाठक ६ : सामविधान और द्व्यक्षर-प्रतिहार ।

प्रपाठक ७ : चतुरक्षर प्रतिहार और गायत्र गान ।

प्रपाठक ८ : एकाह, अहीन और वाजपेय याग ।

प्रपाठक ९ : राजसूय याग ।

प्रपाठक १० : सत्रयाग और उसकी परिभाषाएँ ।

विषयवस्तु की दृष्टि से यह प्रायः तांड्य ब्राह्मण का अनुसरण करता है । सायणाचार्य जैसे भाष्यकार भी ब्राह्मणोक्त विधियों के स्पष्टीकरण के लिए इसी श्रौतसूत्र को उद्धृत करते हैं । इसमें अनेक प्राचीन आचार्यों के मतों का भी उल्लेख हुआ है । इनमें विशेष उल्लेखनीय हैं - तांड्य, धानंजय्य, गौतम, कौत्स, वार्षगण्य, शाट्यायनि और शालंकायनि ।

इस श्रौतसूत्र पर अग्निस्वामी का प्राचीन भाष्य प्राप्त होता है । संपूर्ण लाट्यायन

श्रौतसूत्र , अग्निस्वामी के भाष्य के साथ , 'बिब्लियोथिका इंडिका' ग्रन्थमाला में सन् १८७०-७२ में प्रकाशित हुआ था ।

(३) द्राह्यायण श्रौत्रसूत्र

यह राणायनीय शाखा से सम्बद्ध है । इसके अन्य नाम हैं : छान्दोग सूत्र, प्रधान सूत्र और वाशिष्ठ सूत्र । इसका प्रचार दक्षिण भारत में अधिक है, मुख्यरूप से कर्नाटक, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश और उड़ीसा के कुछ भागों में । द्राह्यायण श्रौत्रसूत्र में ३१ पटल (अध्याय) हैं । इसके कुछ उपविभाग (खंड) हैं । इसके प्रतिपाद्य विषय ये हैं :

अध्याय १ से ७ : ज्योतिष्टोम (अग्निष्टोम) ।

अध्याय ८ से ११ : गवामयन सत्रयाग ।

अध्याय १२ से २१ : ब्रह्मा के कार्य, हविर्याग और सोमयाग से संबद्ध कार्यकलाप ।

अध्याय २२ से २५ : एकाह याग ।

अध्याय २६ से २७ : अहीन याग ।

अध्याय २८ से २९ : सत्र याग

अध्याय ३० से ३१ : अयन याग ।

अध्याय २४,२५ और २७ में वाजपेय, राजसूय और अश्वमेध आदि प्रसिद्ध यागों का वर्णन है ।

लाट्यायन श्रौतसूत्र इसका उपजीव्य ग्रन्थ है । दोनों में विषय-प्रतिपादन में समानता है । दोनों के सूत्रों से भी प्रायः साम्य है । द्राह्यायण श्रौतसूत्र में सूत्र अधिक हैं । इसमें २५० सूत्र ऐसे हैं, जिनके समानान्तर सूत्र लाट्यायन श्रौतसूत्र में नहीं हैं ।

इस पर धन्विन्-कृत भाष्य उपलब्ध है । धन्विन् - कृत 'दीप' भाष्य - सहित द्राह्यायण श्रौतसूत्र का एक परिष्कृत संस्करण प्रो० बी०आर० शर्मा द्वारा संपादित गंगानाथ झा विद्यापीठ, प्रयाग से १९८३ में प्रकाशित हुआ है ।

(४) जैमिनीय श्रौतसूत्र

यह सामवेद की जैमिनीय शाखा से संबद्ध है । इसके रचयिता जैमिनि मुनि माने जाते हैं । इसकी शैली ब्राह्मण ग्रन्थों के तुल्य है । बौधायन श्रौतसूत्र के साथ इसका घनिष्ठ संबन्ध है । इसमें तांड्य ब्राह्मण को भी उद्धृत किया गया है ।

यह श्रौतसूत्र ३ खंडों में विभाजित हैं : १. सूत्रखंड, २. कल्पखंड, ३. पर्याध्याय या परिशेष खंड । इसमें १८ अध्याय हैं । ३ खंडों का संक्षिप्त विवरण यह है :

१. सूत्रखंड : इसमें लम्बे वाक्यों वाली २६ कंडिकाएँ हैं । इनमें ज्योतिष्टोम, अग्न्याधान और अग्निचयन से संबद्ध सामों का विवरण है ।

२. कल्पखंड : इसके ४ मुख्य उपखंड हैं : **(१) स्तोम कल्प :** इसमें विभिन्न

स्तोत्रों के लिए स्तोमों का विवरण है । इसमें समस्त सोमयागों के याग-दिवसों और यज्ञानुष्ठान के क्रम का भी वर्णन है ।

(२) प्रकृति कल्प : इसमें एकाह, अहीन और सत्रयागों की प्रकृतियों अर्थात् ज्योतिष्टोम, द्वादशाह और गवामयन में प्रयोग होने वाले सामों का विवरण दिया गया है ।

(३) संज्ञाकल्प : इसमें पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या दी गई है ।

(४) विकृतिकल्प : इसमें एकाह, अहीन और सत्रयागों की विकृतियों में प्रयुक्त होने वाले सामों का निरूपण है ।

३. पर्याध्याय या परिशेष खंड : इसमें १२ अध्याय हैं । इसमें यज्ञ के दिनों का निर्देश, सामगान के विभिन्न नियमों, सामगान की विभिन्न विभक्तियों तथा प्रयुक्त होने वाले सामों का विवरण आदि दिया गया है ।

इस प्रकार यह श्रौतसूत्र सोमयागों के समग्र कर्मकांड का निर्देशक है । जैमिनीय श्रौतसूत्र पर एक प्राचीन और महत्त्वपूर्ण टीका भवत्रात की वृत्ति है । इनके अपूर्ण कार्य को उनके शिष्य जयन्त भारद्वाज ने पूर्ण किया है ।

इसे दो संस्करण प्राप्य हैं : (१) प्रो० ग्रास्ट्रा ने १९०६ में डच भाषा में अनुवाद के साथ अग्निष्टोम प्रकरण तक का अंश प्रकाशित कराया था ।

(२) प्रेमनिधि शास्त्री ने भवत्रात की वृत्ति के साथ इसे सरस्वती विहार ग्रन्थमाला, दिल्ली से १९६६ में प्रकाशित कराया है ।

(५) कल्पानुपदसूत्र : इसमें २ प्रपाठक हैं और प्रत्येक प्रपाठक में १२ पटल हैं । डा० कैलेण्ड के अनुसार यह आर्षेय कल्प और क्षुद्रकल्प का परिशिष्ट है । इसमें केवल एक बार मशक के नाम का उल्लेख है ।

(६) उपग्रन्थसूत्र : इसमें ४ प्रपाठक हैं । सायण ने इसका रचयिता कात्यायन को माना है, (तांड्य ब्राह्मण भाष्य ७.४.८) । प्रथम तीन प्रपाठक क्षुद्रकल्पसूत्र के परिशिष्ट हैं और अन्तिम प्रपाठक 'प्रतिहारसूत्र' में प्रतिहार भक्ति पर विशेष विचार किया गया है । श्री सत्यव्रत सामश्रमी ने १८९७ में इसे 'उषा' पत्रिका में प्रकाशित किया था । प्रो० बी० आर० शर्मा ने अन्तिम भाग 'प्रतिहारसूत्रम्' का संपादन किया है और केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, तिरुपति ने इसे प्रकाशित किया है ।

(७) अनुपदसूत्र : इसमें १० प्रपाठक हैं । प्रो० कैलेण्ड का कथन है कि यह तांड्य ब्राह्मण की एक प्रकार की संक्षिप्त व्याख्या है ।

(८) निदानसूत्र : निदानसूत्र में 'निदान' शब्द लक्षण या परीक्षण अर्थ में है । इसमें छन्दों, गानों, उक्थ्यों और स्तोमों के लक्षण एवं समीक्षात्मक विवरण प्रस्तुत किए गए हैं । इसमें अनेक प्राचीन ग्रन्थों और ग्रन्थकारों के मतों का विवेचन किया गया है, अतः श्रौतयागों के विवेचनात्मक अध्ययन के लिए यह महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है । कैलेन्ड ने

व्याकरण और कोश की दृष्टि से इसको उपादेय माना है ।[१]

तांड्य ब्राह्मण के भाष्य (१४.५.१२) में सायण ने एक उद्धरण दिया है, वह निदानसूत्र (४.७) में मिलता है । वह उद्धरण है :

तथा निरालम्बरूपता भगवता पतंजलिना उक्तं सप्तमेऽहनि अर्कः कृताकृतो भवति, अब्राह्मणविहितत्वादिति ।

इसमें यह वचन पतंजलि का माना गया है । इस आधार पर निदानसूत्र का रचयिता पतंजलि को माना जाता है । 'छन्दोविचिति' में अनेक सन्दर्भों में 'निदानं पतञ्जलिकृतं सूत्रम्' आदि कहकर निदानसूत्र को पतंजलिकृत बताया गया है । इसके व्याख्याकारों और प्रो० कैलेन्ड ने भी इसे पतंजलिकृत माना है ।

यागनिरूपणकी दृष्टि से इसका तांड्य ब्राह्मण से घनिष्ठ संबन्ध है । इसमें तांड्य ब्राह्मण के अनेक उद्धरण दिए गए हैं । तांड्य के अनेक यागों के उपभेद इसमें नहीं दिए हैं । लाट्यायन श्रौतसूत्र से भी इसकी बहुत अंशों में समानता है । इसमें १० प्रपाठक (अध्याय) हैं । इसके प्रथम प्रपाठक को 'छन्दोविचिति' कहते हैं । इसमें सोमयाग से संबद्ध सामगानों की प्रक्रिया पर बहुत पांडित्यपूर्ण विवेचन है ।

इसके तीन संस्करण प्राप्य हैं : १. सत्यव्रत सामश्रमी द्वारा संपादित, २. 'इंडिशे स्तुदिएन' में वेबर – द्वारा संपादित , ३. कैलाशनाथ भटनागर द्वारा संपादित, १९७१ में दिल्ली से पुनर्मुद्रित ।

४. अथर्ववेदीय वैतान-श्रौतसूत्र

यह अथर्ववेद का एकमात्र श्रौतसूत्र है । इसे वैतानसूत्र भी कहते हैं । यह गोपथ ब्राह्मण पर आश्रित है । इसके पूर्वार्ध पर कात्यायन श्रौतसूत्र का बहुत प्रभाव है । इस पर 'कौशिकसूत्र' का भी बहुत प्रभाव है । कुछ हस्तलिखित प्रतियों में इसे 'कौशिकीय सूत्र' ही कहा गया है ।

इसमें ८ अध्याय और ४३ कंडिकाएँ हैं । इसके प्रतिपाद्य विषय ये हैं : परिभाषा, दर्श–पूर्णमास, अग्न्याधेय, अग्निहोत्र, आग्रयणीय, इष्टि, चातुर्मास्य, पशुबन्ध, अग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी ,अतिरात्र, वाजपेय, अप्तोर्याम, अग्निचयन, सौत्रामणी, गवामयन, राजसूय, अश्वमेध , पुरुषमेध, सर्वमेध, एकाह, अहीन याग और काम्य इष्टियाँ ।

प्रो० गार्बे की गणना के अनुसार वैतानसूत्र में ऋग्वेद के १६ मंत्र, शुक्ल यजुर्वेद के ३४, तैत्तिरीय और उसके ब्राह्मण तथा आरण्यक के १९ मंत्र हैं । इसके अधिकांश मंत्र अथर्ववेद के २०वें कांड से लिए गए हैं ।

आचार्य विश्वबन्धु ने वैतानसूत्र की भूमिका (पृष्ठ १९) में विचार व्यक्त किया है कि वैतानसूत्र और कौशिकसूत्र दोनों ही ग्रन्थ कौशिक या उसके किसी वंशज की कृति

---

१ कैलेन्ड - संपादित आर्षेयकल्प की भूमिका ।

है। यह श्रौतसूत्रों में सबसे बाद की कृति है।

इसके दो संस्करण प्राप्य हैं : १. प्रो० रिचार्ड गार्बे द्वारा संपादित और जर्मन भाषा में अनूदित संस्करण १८७८ में लन्दन से प्रकाशित। २. आचार्य विश्वबन्धु द्वारा संपादित, सोमादित्य के भाष्य-सहित, विश्वेश्वरानन्द संस्थान, होशियारपुर से १९६७ में प्रकाशित संस्करण।

(ख) गृह्यसूत्र

गृह्यसूत्रों का महत्त्व : गृह्यसूत्रों का अनेक कारणों से विशेष महत्त्व है। संक्षेप में ये कारण हैं :

१. गृह्यसूत्रों का संबन्ध गृहस्थ-जीवन से है। गृहस्थ-जीवन से संबद्ध सभी संस्कार इसमें संगृहीत हैं, अतः जीवन के सबसे बहुमूल्य काल का यह पथप्रदर्शक है।

२. इनमें जीवन से संबद्ध सभी १६ संस्कार आते हैं। संस्कार जीवन को परिष्कृत करने की एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। उस प्रक्रिया का आधार होने के कारण ये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

३. इनमें संस्कारों की समग्र विधि दी गई है, जो किसी समाज या राष्ट्र की सांस्कृतिक चेतना के उद्घोषक हैं।

४. ये वैदिक संस्कृति और सभ्यता के परिचायक हैं।

५. इनसे आर्यों की सामाजिक स्थिति और परम्पराओं का ज्ञान होता है।

६. इनसे भारोपीय समुदाय में प्रचलित धार्मिक और सामाजिक परंपराओं, रीति-रिवाजों और प्रथाओं पर प्रकाश पड़ता है। प्रो० विन्टरनित्स ने अपने एक निबन्ध में सिद्ध किया है कि भारोपीय आर्यों में गहरे धार्मिक और सामाजिक संबन्ध विद्यमान थे।[१] अतएव रोमन, जर्मन, यूनानी और स्लावों के विवाह-संस्कार में अनेक समानताएँ हैं। जैसे, विवाह में अग्नि की परिक्रमा, पाणिग्रहण, लाजाहोम, सप्तपदी आदि।

७. गृह्यसूत्रों से जनपदों और ग्रामों में प्रचलित लोकधर्म और प्रथाओं का ज्ञान होता है। आश्वलायन गृह्यसूत्र ने स्पष्ट निर्देश दिया है कि विवाह आदि में जनपद और ग्रामों में प्रचलित रीति-रिवाजों एवं प्रथाओं का पालन करना चाहिए। 'अथ खलु उच्चावचा जनपदधर्मा ग्रामधर्माश्च, तान् विवाहे प्रतीयात्' (आश्व० १.५.१-२)। इसी प्रकार आपस्तम्ब और पारस्कर गृह्यसूत्रों ने भी लोकधर्मों को मान्यता प्रदान की है। साथ ही निर्देश दिया है कि ऐसे लोकधर्मों की जानकारी वृद्ध स्त्रियों आदि से प्राप्त करें।

८. गृह्यसूत्रों आदि को ही यह श्रेय है कि हजारों वर्ष बाद भी पूरे भारत में विभिन्न गृह्य संस्कारों, विशेषतः विवाह एवं उपनयन संस्कारों आदि, में एकरूपता आजतक अक्षुण्ण है।

---

१. Winternitz, A Comparative Study of Indo-European Customs with special reference to marriage customs. International Folk Congress. 1891, Papers and Transactions. P.P. 267-291.

९. इनका वैदिक धर्म और संस्कृति की सुरक्षा में बहुत बड़ा योगदान है ।

१०. गृह्यकर्मों के लिए अनेक ऋत्विजों की आवश्यकता नहीं होती । अनेक संस्कारों का संपादन स्वयं यजमान ही कर सकता है ।

ऋग्वेदीय गृह्यसूत्र

ऋग्वेद के संप्रति तीन गृह्यसूत्र उपलब्ध हैं : १. आश्वलायन, २. शांखायन, ३. कौषीतकि । इनका संक्षिप्त विवरण यह है :

१. आश्वलायन गृह्यसूत्र

इसके रचयिता आश्वलायन ऋषि हैं । ये शौनक के शिष्य थे । यह गृह्यसूत्रों में प्राचीनतम माना जाता है । अन्य गृह्यसूत्रों की अपेक्षा आश्वलायन गृह्यसूत्र में वर्णित विवाह आदि संस्कारों की विधियाँ कुछ सरल हैं ।

इसमें चार अध्याय हैं । इसके मुख्य प्रतिपाद्य-विषय ये हैं :

अध्याय १ : पाकयज्ञ, दैनिक होम, स्थालीपाक, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, अन्नप्राशन, मुंडन, उपनयन, ब्रह्मचर्यनियम, मधुपर्क ।

अध्याय २ : श्रवणाकर्म, अष्टका, वास्तुनिर्माण, गृह-प्रवेश ।

अध्याय ३ : पंच महायज्ञ, ऋषितर्पण, उपाकर्म, समावर्तन ।

अध्याय ४ : दाहकर्म, श्राद्ध ।

इसमें कुछ महत्त्वपूर्ण बातें वर्णित हैं । यथा - १. ऋषितर्पण (३.३) में प्राचीन आचार्यों के नाम वर्णित हैं, जो अन्यत्र नहीं मिलते । २. अध्याय ३ में वेदाध्ययन के विशिष्ट नियम । ३. उपाकर्म (श्रावणी) का विस्तृत विवरण ।

इसकी मुख्य ये ४ टीकाएँ मिलती हैं : १. जयन्त-स्वामी कृत 'विमलोदय-माला । २. देवस्वामी का भाष्य । ३. नारायण -कृत 'विवरण' टीका । ४. प्रसिद्ध वैयाकरण हरदत्त-कृत 'अनाविला' टीका ।

इसके कलकत्ता और बम्बई से चार संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं ।

२. शांखायन गृह्यसूत्र

इसका संबन्ध ऋग्वेद की बाष्कल शाखा से है । इसके रचयिता 'सुयज्ञ' हैं । इसमें ६ अध्याय हैं । प्रतिपाद्य विषय प्रायः वही हैं । टीकाकार नारायण का कथन है कि पंचम अध्याय परिशिष्ट है । षष्ठ अध्याय में वैदिक संहिताओं और उपनिषदों आदि के अध्ययन के नियम हैं । इस प्रकार इसके चार अध्यायों में ही गृह्यसूत्रों में वर्ण्य विषयों का उल्लेख है । पंचम अध्याय में कूप, तडाग, उद्यान आदि की स्थापना जैसे विषयों का वर्णन है, जो धर्मसूत्रों आदि का विषय है ।

प्रो० ओल्डेनबर्ग ने इसका जर्मन भाषा में अनुवाद किया है । इसका एक संस्करण सीताराम सहगल द्वारा संपादित दिल्ली से १९६० में प्रकाशित हुआ है ।

३. कौषीतकि गृह्यसूत्र

इसके लेखक शाम्भव्य या शांबव्य हैं । इसमें ५ अध्याय हैं । इसके प्रथम चार अध्यायों के विषय प्रायः शांखायन के तुल्य हैं । इसके अन्तिम अध्याय में अन्त्येष्टि का निरूपण है । इसका पंचम अध्याय शांखायन से भिन्न है । अतः शांखायन और कौषीतकि गृह्यसूत्रों को एक ही ग्रन्थ नहीं कहा जा सकता है ।

इसके २ संस्करण प्राप्य हैं : १. टी०आर० चिन्तामणि द्वारा संपदित एवं मद्रास विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित । २. पं०रत्नगोपाल द्वारा संपादित, काशी संस्कृत सीरीज में प्रकाशित ।

शुक्ल-यजुर्वेदीय गृह्यसूत्र

पारस्कर गृह्यसूत्र

शुक्ल यजुर्वेद की दोनों शाखाओं, वाजसनेयी और काण्व, का यही एक गृह्यसूत्र है । इसमें ३ कांड हैं । प्रत्येक कांड का विभाजन कंडिकाओं में हुआ है । तीनों कांडों में ५१ कंडिकाएँ हैं । इसके रचयिता आचार्य पारस्कर हैं । पारस्कर का समय २०० ई०पू० के लगभग माना जाता है । इस गृह्यसूत्र में लगभग ६६ विषयों का वर्णन है ।

इसके मुख्य प्रतिपाद्य विषय ये हैं :

कांड १ : होम के सामान्य नियम, विवाह-विधि, गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन ।

कांड २ : चूडाकर्म, उपनयन, समावर्तन, पंच महायज्ञ, उपाकर्म, अनध्याय, इन्द्रयज्ञ, सीतायज्ञ ।

कांड ३ : आग्रहायणी कर्म, अष्टका, शाला-कर्म, दाहविधि, सभाप्रवेश, रथारोहण, हस्ति-आरोहण ।

परिशिष्ट में वापी-कूप-तडाग आदि की स्थापना, ब्रह्मयज्ञविधि, तर्पणविधि, श्राद्धसूत्र आदि हैं ।

प्रायः संपूर्ण उत्तर भारत में इसकी पद्धति के अनुसार गृह्यकर्मों का अनुष्ठान होता है ।

इस पर पाँच विद्वानों ने भाष्य किए हैं । इनके नाम हैं : १. कर्क, २. जयराम, ३. हरिहर, ४. गदाधर, ५. विश्वनाथ । इनमें हरिहर का भाष्य अधिक लोकप्रिय है ।

इसके दो संस्करण मुख्य हैं : १. गुजराती प्रिंटिंग प्रेस मुम्बई से प्रकाशित, पाँचों भाष्यों से युक्त संस्करण । २. चौखम्बा, वाराणसी से प्रकाशित ।

इसके कतिपय अनुवाद भी प्रकाशित हुए हैं । इनमें मुख्य हैं : १. अंग्रेजी में ओल्डेनबर्ग - कृत, २. जर्मन में स्टेन्त्सलर -कृत, ३. हिन्दी में ओमप्रकाश पाण्डेय कृत ।

बैजवाप गृह्यसूत्र : शुक्ल यजुर्वेद का यह एक अन्य गृह्यसूत्र है । यह पूर्णरूप से प्राप्य नहीं है । इसके कुछ अंश जो अन्य ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं , उनका संकलन

पं० भगवद्दत्त ने 'बैजवाप-गृह्यसूत्र - संकलनम्' नाम से १९२८ में लाहौर से प्रकाशित किया है । कुमारिल भट्ट ने अपने तंत्रवार्तिक (१.३.१०) में बैजवाप के कल्पसूत्र का सर्वप्रथम उल्लेख किया है ।

कृष्ण-यजुर्वेदीय गृह्यसूत्र

कृष्ण यजुर्वेद के लगभग ९ गृह्यसूत्र उपलब्ध हैं ।

१. बौधायन गृह्यसूत्र

इसके रचयिता बौधायन हैं । इनका समय ९०० ई०पू० के लगभग माना जाता है । यह बोधायन कल्पसूत्र का एक विशिष्ट अंश है । श्री शामशास्त्री द्वारा संपादित इसका संस्करण १९२० ई० में मैसूर से प्रकाशित हुआ था । इसमें चार प्रश्न (अध्याय) हैं । कुछ हस्तलिखित प्रतियों में इसके दस प्रश्न भी हैं । इसमें मुख्य वर्ण्य-विषय ये हैं : विवाह, गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, उपनयन, समावर्तन, वैश्वदेव, पंच महायज्ञ, गोदान, दीक्षा, वास्तुशमन, श्राद्ध, प्रायश्चित्त ।

इसके पश्चात् गृह्य-परिभाषासूत्र है । इसके मुख्य विषय हैं : ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, पाकयज्ञ, स्नातक के धर्म, स्मार्तकृत्य, यज्ञोपवीत धारण के प्रकार, अतिथि-सत्कार के प्रकार, पुत्र-प्राप्त्यर्थ होम ।

इस गृह्यसूत्र का प्रचार दक्षिण भारत में रहा है ।

२. मानव गृह्यसूत्र

यह मैत्रायणी शाखा से संबद्ध है । इसको मैत्रायणीय मानव गृह्यसूत्र भी कहते हैं । इसके रचयिता आचार्य मानव माने जाते हैं । इस पर अष्टावक्र का भाष्य है । इसमें दो पुरुष (अध्याय) हैं । इनके उप-विभाग (खंड) ४१ हैं । इसके मुख्य प्रतिपाद्य-विषय ये हैं : ब्रह्मचारी के कर्तव्य,समावर्तन संस्कार, प्रायश्चित्त, वेदाध्ययनविधि, अनध्याय, विवाह, वर-वधू के लक्षण, गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन, पुंसवन, जातकर्म, नामकरण , अन्नप्राशन, चौलकर्म, उपनयन, चातुर्मास्य, शालाकर्म, पंच महायज्ञ, विनायक-शान्ति, पुत्रेष्टियाग, सामान्य परिभाषाएँ ।

इसके चार संस्करण प्राप्य हैं : १. फ्रीड्रिश क्राउएर (Friedrich knauer) द्वारा संपादित अष्टावक्र के भाष्य के उद्धरणों सहित सेंट पीटर्सबर्ग से प्रकाशित । २. विनयतोष भट्टाचार्य द्वारा संपादित, अष्टावक्र-भाष्ययुक्त, गायकवाड़ सीरीज में बड़ौदा से १९२६ में प्रकाशित । ३. रामकृष्ण हर्षे द्वारा संपादित अष्टावक्र-भाष्य-युक्त १९२६ में प्रकाशित । ४. पं० भीमसेन शर्मा-कृत हिन्दी अनुवाद-सहित ।

३. भारद्वाज गृह्यसूत्र

यह भारद्वाज कल्पसूत्र का एक अंश है । इसमें तीन प्रश्न (अध्याय) हैं । इनमें मुख्य वर्ण्यविषय ये हैं : उपनयन, विवाह, सीमन्तोन्नयन, पुंसवन, जातकर्म, नामकरण,

अन्नप्राशन, चौलकर्म, शालाकर्म, गृहप्रवेश, रथारोहण, प्रायश्चित्त, श्राद्ध आदि ।

इसमें अनेक नए मंत्रों का विनियोग है । रचनाशैली सरल और सुबोध है । इसकी बौधायन गृह्यसूत्र से बहुत समानता है । कात्यायन ने भारद्वाज के मत का उल्लेख किया है, अतः भारद्वाज कात्यायन से पूर्ववर्ती हैं । इसका एक संस्करण डा० सालोमन्स द्वारा संपादित लाइडेन से प्रकाशित हुआ है ।

४. आपस्तम्ब गृह्यसूत्र

यह आपस्तम्ब कल्पसूत्र का एक अंश है । इस कल्पसूत्र में ३० प्रश्न (अध्याय) हैं । इनमें से २५,२६ और २७ अध्याय गृह्यसूत्र हैं । २७वें अध्याय में गृह्यकर्मों का वर्णन है । २५ और २६ अध्यायों में विनियोज्य मंत्रों का निर्देश है ।

इसके मुख्य वर्ण्य-विषय ये हैं : परिभाषाएँ, पाकयज्ञ, विवाह, स्थालीपाक, वैश्वदेव कर्म, उपाकरण, उपनयन, गायत्री-उपदेश, ब्रह्मचर्य के नियम, ऋषितर्पण, समावर्तन, मधुपर्क, सीमन्तोन्नयन, पुंसवन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चौलकर्म, होम, स्विष्टकृत्, रथारोहण आदि, प्रायश्चित्त ।

इसका हिरण्यकेशि-गृह्यसूत्र के साथ घनिष्ठ संबन्ध है । इस पर दो टीकाएँ हैं : १. हरदत्तमिश्र कृत 'अनाकुला' टीका । २. सुदर्शनाचार्य - कृत 'तात्पर्यदर्शन' टीका । इसके ४ संस्करण प्राप्य हैं : १. प्रो० विन्टरनित्स द्वारा संपादित, उक्त दोनों टीकाओं से युक्त, वियेना से १८८७ में प्रकाशित । २. श्री महादेव शास्त्री द्वारा संपादित, हरदत्त की टीका-युक्त, मैसूर से १८९३ में प्रकाशित । ३. श्री चिन्नस्वामी शास्त्री द्वारा संपादित, दोनों टीकायुक्त , १९२८ में प्रकाशित । ४. दोनों टीका से युक्त, डा० उमेशचन्द्र पांडेय-कृत हिन्दी अनुवाद-सहित, चौखंबा से प्रकाशित ।

५. काठक गृह्यसूत्र

इसका ही दूसरा नाम 'लौगाक्षि-गृह्यसूत्र' है । इसका कठ (काठक) शाखा से संबन्ध है । पतंजलि मुनि ने महाभाष्य में कठ शाखा का नाम बड़े आदर के साथ लिया है और कहा है कि ग्राम-ग्राम में कठ और कालापक का प्रचार है । 'ग्रामे-ग्रामे काठकं कालापकं च प्रोच्यते' (अष्टा० ४.३.१०१ पर भाष्य) । मानव और वाराह गृह्यसूत्रों में इसका घनिष्ठ संबन्ध है । बहुत से स्थलों पर शब्दशः साम्य मिलता है ।

इसमें ५ अध्याय और ७५ कंडिकाएँ (खंड) हैं । मुख्य वर्ण्यविषय ये हैं : ब्रह्मचर्य के नियम, समावर्तन, उपाकर्म, पाकयज्ञ, विवाह, गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन, पुंसवन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, उपनयन, वेदाध्ययन, होम, स्वस्त्ययन, श्राद्ध ।

इसकी तीन व्याख्याएँ प्राप्य हैं : १. आदित्यदर्शन - कृत 'विवरण' , २. ब्राह्मणबल - कृत 'गृह्यपद्धति', ३. देवपाल -कृत 'भाष्य' । डा० कैलेन्ड ने तीनों

व्याख्याओं के सारांश के साथ संपादित कर १९२२ में लाहौर से प्रकाशित किया ।

६. आग्निवेश्य गृह्यसूत्र

इसके रचयिता आचार्य अग्निवेश हैं । इसमें ३ प्रश्न (अध्याय) हैं । बौधायन, हिरण्यकेशी और भारद्वाज गृह्यसूत्रों से इसका बहुत साम्य है । इसमें अनेक नए विषयों का प्रतिपादन हुआ है । इसमें मूर्तिपूजा का भी विधान है । इसमें तांत्रिक यंत्रों का उल्लेख है तथा तांत्रिक शब्दावली भी है । इस पर धार्मिक संप्रदायों का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है । इसके मुख्य वर्ण्यविषय ये हैं : उपनयन, समावर्तन, विवाह, गृहप्रवेश, बलिवैश्वदेव, दर्श-पूर्णमास, स्थालीपाक, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चौलकर्म, शाला-निर्माण, यज्ञोपवीत-विधि, गृहयज्ञ, भूतबलि, देवयज्ञ, मधुपर्क, प्रायश्चित्त, वानप्रस्थ-विधि, संन्यासविधि, अन्त्येष्टि, श्राद्ध, नारायण- बलि आदि ।

यह श्री एल०ए० रविवर्मा द्वारा संपादित १९४० में त्रिवेन्द्रम से प्रकाशित हुआ है ।

७. हिरण्यकेशि-गृह्यसूत्र

इसको ही 'सत्याषाढ गृह्यसूत्र' भी कहते हैं । यह 'हिरण्यकेशि-कल्पसूत्र' का एक अंश प्रश्न १९ और २० है । इन दो प्रश्नों (अध्यायों) में प्रत्येक में ८ पटल (खंड) हैं । इसका भारद्वाज और आपस्तम्ब गृह्यसूत्रों में घनिष्ठ संबन्ध है । इसमें सूत्रशैली का विकसित रूप दृष्टिगोचर होता है । इसमें विनियोग वाले मंत्र पूरे दिए हैं । इसमें अनेक अपाणिनीय प्रयोग भी हैं । इसके मुख्य प्रतिपाद्य विषय ये हैं :

प्रश्न १ : उपनयन, समावर्तन, प्रायश्चित्त, विवाह, शालाकर्म ।

प्रश्न २ : सीमन्तोन्नयन, पुंसवन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, उपाकरण ।

इस पर मातृदत्त की प्रौढ व्याख्या है । डा० जे० किर्स्ते ने मूलग्रन्थ मातृदत्त की टीका-सहित वियेना से १८८९ में प्रकाशित किया था । डा० ओल्डेनबर्ग ने इसका अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया है । इसका एक संस्करण आनन्दाश्रम पूना ने 'हिरण्यकेशी स्मार्तसूत्र' नाम से प्रकाशित किया है ।

८. वाराह गृह्यसूत्र

इसका संबन्ध मैत्रायणीय संहिता से है । इसमें उसी के मंत्रों का प्रयोग है । इसका मानवगृह्यसूत्र से घनिष्ठ संबन्ध है । इसमें एक नया संस्कार 'दन्तोद्गमन' (दाँत निकलना) दिया गया है । इसके विषय मानव गृह्यसूत्र के तुल्य हैं ।

इसके दो संस्करण निकले हैं : १. डा० शामशास्त्री द्वारा संपादित १९२० में मैसूर से प्रकाशित । २. डा० रघुवीर द्वारा संपादित १९३२ में लाहौर से प्रकाशित ।

९. वैखानस गृह्यसूत्र

इसका संबन्ध तैत्तिरीय शाखा से है । इसके रचयिता विखनस् मुनि माने जाते हैं । इसमें विनियोग वाले मंत्र प्रतीकरूप में दिए गए हैं । इन मंत्रों का एक संकलन 'वैखानसीया मंत्रसंहिता' नाम से प्रकाशित हुआ है । इस गृह्यसूत्र में ७ प्रश्न (अध्याय) और १२० खंड हैं । मुख्य वर्ण्यविषय ये हैं :

१. संस्कार : ये १८ हैं । इन्हें 'शारीर' नाम दिया है । मुख्य ये हैं - गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तकर्म, जातकर्म, नामकरण, चूडाकर्म, उपनयन, उपाकर्म, समावर्तन, पाणिग्रहण ।

२. यज्ञ : ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ, मनुष्ययज्ञ ।

३. हविर्यज्ञ : अग्न्याधेय, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, आग्रयणेष्टि, चातुर्मास्य, पशुबन्ध, सौत्रामणी ।

४. सोमयज्ञ : अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, अप्तोर्याम । भाषा, रचनाशैली आदि की दृष्टि से इसे परकालीन माना जाता है ।

डा० कैलेन्ड ने इसका संपादन करके अंग्रेजी अनुवाद के साथ इसे कलकत्ता से १९२९ में प्रकाशित किया है ।

सामवेदीय गृह्यसूत्र

सामवेद के ये गृह्यसूत्र उपलब्ध हैं : गोभिल, खादिर, द्राह्यायण और जैमिनीय डा० सूर्यकान्त ने 'कौथुमगृह्यम्' नाम से एक अन्य गृह्यसूत्र का भी संपादन किया है । इनका संक्षिप्त विवरण यह है :

१. गोभिल गृह्यसूत्र

यह सामवेद की कौथुम शाखा से संबद्ध है । यह सामवेद का सबसे प्रसिद्ध गृह्यसूत्र है । 'मन्त्रब्राह्मण' नामक एक सामवेदीय ग्रन्थ है , जिसमें गृह्यकर्मों में प्रयोज्य मंत्रों का संकलन है । उसमें से ही यह मंत्रों का सन्दर्भ देता है । इसमें मंत्र प्रतीकरूप में दिए हैं । सामसंहिता के भी मंत्र इसमें हैं ।

इसमें चार प्रपाठक और उनमें ३९ खंड हैं । इसके मुख्य वर्ण्य-विषय ये हैं :

प्रपाठक १ : सामान्य विधियाँ, होम के अधिकारी, अग्न्याधान, आचमनविधि, वैश्वदेव विधि, दर्श-पूर्णमास । **प्रपाठक २ :** विवाह, गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, उपनयन । **प्रपाठक ३ :** गोदान, ब्रह्मचारी के कर्म, उपाकर्म, अनध्याय, समावर्तन । **प्रपाठक ४ :** पितृयज्ञ, काम्यकर्म, वास्तुनिर्माण, वास्तुयाग, यशस्काम कर्म ।

वर्ण्यविषयों की दृष्टि से इसमें वर्णित विषयों की संख्या बहुत अधिक है । गृह्यसूत्रों में यह अत्यन्त प्राचीन गृह्यसूत्र माना जाता है ।

इसके कई संस्करण निकले हैं : १. क्नाउएर-संपादित १८८५ । २. सत्यव्रत सामश्रमी -संपादित १९०६ । ३. चिन्तामणि एवं भट्टाचार्य-संपादित, कलकत्ता १९२६ । ४. ओल्डेनबर्ग-कृत अंग्रेजी अनुवाद 'सेक्रेड बुक्स ऑफ ईस्ट सीरीज' खंड ३० ।

२. खादिर गृह्यसूत्र

यह सामवेद की राणायनीय शाखा से संबद्ध है। यह वस्तुतः गोभिल गृह्यसूत्र का संक्षिप्त संस्करण है। इस पर रुद्रस्कन्द की वृत्ति प्राप्त होती है। श्री महादेव शास्त्री ने इसका एक संस्करण मैसूर से १९१३ में प्रकाशित किया है।

३. द्राह्यायण गृह्यसूत्र

यह खादिर गृह्यसूत्र के तुल्य ही है। दोनों में प्रायः वही पाठ्य है। इसके २ संस्करण मिलते हैं : १. आनन्दाश्रम पूना, १९१४। २. हिन्दी अनुवाद-सहित, मुजफ्फरपुर १९३४।

४. जैमिनीय गृह्यसूत्र

यह गोभिल गृह्यसूत्र से कई रूपों में संबद्ध है। इसमें दो अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में २४ और द्वितीय में ९ कंडिकाएँ हैं। प्रथम अध्याय में संस्कारों का वर्णन है। द्वितीय में श्राद्ध, अष्टकाएँ, अन्त्येष्टि और शान्तिकृत्य। मंत्रों के उद्धरण बहुत हैं। इनमें से मंत्रब्राह्मण में कुछ ही मंत्र प्राप्य हैं। इसपर श्रीनिवासाध्वरी-कृत 'सुबोधिनी' टीका प्राप्त होती है। डा० कैलेन्ड ने इसका एक संस्करण, टीका के कुछ उद्धरणों सहित, १९२२ में लाहौर से प्रकाशित किया है।

५. कौथुम गृह्यसूत्रम्

डा० सूर्यकान्त ने इसका संपादन किया है और एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता से प्रकाशित कराया है। वर्ण्यविषयों का क्रम गोभिल से भिन्न है। इसमें सबसे पहले 'अथातः प्रायश्चित्तानि' प्रायश्चित्तों का वर्णन किया है। यह गृह्यसूत्र बहुत संक्षिप्त है। संभवतः किसी प्राचीन पद्धति का अवशेष मात्र है।

अथर्ववेदीय कौशिक गृह्यसूत्र (कौशिक सूत्र)

अथर्ववेद का एकमात्र यही गृह्यसूत्र है। यह गृह्यसूत्र कई दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। अथर्ववेद में वर्णित शान्तिकर्म और अभिचार कर्मों का इसमें विशद विवेचन है। इसमें गृह्यकर्मों का वर्णन कम है, अभिचार कर्मों, यातुविद्या अर्थात् जादू-टोने, मंत्र-तंत्र, रोगनाशक उपाय, अभयप्राप्ति हेतु कर्म, पुष्टिकर्म, जय-पराजय के उपाय, मांडलिक राजाओं के अभिषेक आदि कर्मों का वर्णन बहुत अधिक है। इसमें अथर्ववेद से संबद्ध क्रिया-कलापों का वर्णन अधिक है और गृह्यकर्मों का वर्णन कम। इसको 'वैतान सूत्र' का उपजीव्य ग्रन्थ माना जाता है। यह अथर्ववेद की सभी शाखाओं के कर्मकाण्ड का विशद वर्णन करता है। इसको ही 'कौशिक सूत्र' भी कहते हैं।

इसमें १४ अध्याय हैं। उनका विभाजन १४१ कंडिकाओं में हुआ है। आचार्य सायण ने कौशिकसूत्र में वर्णित विषयों का सार अथर्ववेद-भाष्य की भूमिका में दिया है।[१] विषयानुसार उनका संक्षिप्त विवरण यह है :

१. सायण, अथर्ववेद-भाष्य-भूमिका, पृष्ठ २३ से २५

१. यज्ञ, अनुष्ठान एवं संस्कार से संबद्ध विषय : स्थालीपाक, दर्श-पूर्णमास विधि, ब्रह्मौदन आदि २२ सवन यज्ञ, इन्द्रमह, गर्भाधान से लेकर विवाह, पितृमेध आदि संस्कार ।

२. पौष्टिक विधि : चित्राकर्म आदि पौष्टिक कृत्य ।

३. शान्त्यर्थ कर्म और अनिष्ट-निवारण : पाप, शाप, राजक्रोध आदि के निवारणार्थ कर्म , गृहशान्तिविधि, कुस्वप्न-निवारण, अपशकुन की शान्ति, विविध उत्पातों और अनिष्टों की शान्ति ।

४. अर्थशास्त्रीय विषय : गोसमृद्धि कर्म, लक्ष्मीसाधक कर्म, वृष्टि-साधक कर्म, कृषिवर्धक कर्म ।

५. राजतंत्रीय विषय : राजा के कर्तव्य, शत्रुसेना-संमोहन और शत्रुनाशन, शत्रुसेनानाशार्थ अभिमन्त्रित जाल आदि डालना, निर्वासित राजा को पुनः राजगद्दी पर बैठाना, राजा का अभिषेक ।

६. अभ्युदय और अभीष्टसिद्धि के लिए कार्य : ग्राम, नगर और राष्ट्र की सुरक्षा के कार्य, पुत्र-पशु-धन-धान्यादि के लाभ हेतु कर्म, लक्ष्मीवर्धक कर्म, स्त्री-सौभाग्य-वर्धक कर्म, सभाजय, व्यापार लाभ हेतु कर्म, कुशलता, दीर्घायुष्य आदि ।

७. शिक्षा : मेधाजनन, ब्रह्मचारी के कर्तव्य, अध्ययनविधि ।

८. सामंजस्य, एकता : जनकल्याण और एकता-संपादनार्थ कर्म ।

९. भैषज्य : विविध रोगों की चिकित्सा । ज्वर, बहुमूत्र, हृदयरोग, वात-पित्त-कफज रोग, विषमज्वर, राजयक्ष्मा आदि की चिकित्सा, सभी प्रकार के विष का निवारण आदि ।

१०. कृत्या-प्रयोग और कृत्या-परिहार : विभिन्न कर्मों के लिए अभिचार-कर्म (जादू-टोना आदि करना) और दूसरे के द्वारा प्रयुक्त अभिचारों का निवारण, शाप-निवारण, राजक्रोध-निवारण आदि ।

११. नारी : सुखप्रसव, पुत्रलाभ, गर्भाधान आदि, स्त्री-कुलक्षण-नाशन, सपत्नी-नाशन, पतिवशीकरण, सौभाग्यलाभ ।

१२. शालानिर्माण : नवशालानिर्माण, गृहशद्धिकर्म, गृहप्रवेश, गृहशान्ति ।

१३. प्रायश्चित्त : निषिद्ध दान लेना, अयाज्य के यहाँ यज्ञ कराना, विविध पापों के लिए प्रायश्चित्त ।

१४. भविष्यवाणी : कार्य में सफलता या असफलता की भविष्यवाणी ।

इसकी रचना यास्क (८०० ई०पू०) से पूर्व मानी जाती है । इस पर दारिल और केशव का भाष्य प्राप्त होता है । इस पर एक अज्ञात लेखक की 'आथर्वण पद्धति' भी मिलती है । इसके दो संस्करण प्राप्य हैं : १. एम० ब्लूमफील्ड द्वारा संपादित, भाष्यों के कतिपय उद्धरणों के साथ, मोतीलाल बनारसीदास द्वारा पुनः १९७२ में प्रकाशित ।

२. दिवेकर एवं लिमये द्वारा संपादित, तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ पुणे द्वारा १९७२ में प्रकाशित ।

(ग) धर्मसूत्र

धर्मसूत्रों का महत्त्व : कई दृष्टि से धर्मसूत्रों का बहुत महत्त्व है । इनमें विशेष उल्लेखनीय तत्त्व ये हैं :

१. शास्त्रीय महत्त्व : ये आचारशास्त्र (Ethics) के विश्व के सबसे प्राचीन ग्रन्थ हैं, जिनमें सांस्कृतिक चेतना के निर्देशक तत्त्व विद्यमान हैं ।

२. धार्मिक महत्त्व : इनमें धर्म के शाश्वत स्वरूप का वर्णन किया गया है । वे गुण या धर्म जो विश्व को शान्ति, सद्भाव, समुन्नति और सुरक्षा प्रदान कर सकें, वे सभी तत्त्व धर्म के अन्दर संगृहीत हैं, अतएव कहा गया है कि समाज के धारक तत्त्वों को धर्म कहते हैं । जो गुण या धर्म समाज को स्थिरता प्रदान करते हैं, वे सभी गुण सत्य, अहिंसा, परोकार, सहिष्णुता, उद्योग आदि धर्म के मूलभूत तत्त्व हैं ।

धारणाद् धर्म इत्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः ।
यः स्याद् धारण-संयुक्तः , स धर्म इति निश्चयः।।

३. सांस्कृतिक महत्त्व : ये धर्मसूत्र वर्णों और आश्रमों के कर्तव्यों का निर्धारण करते हैं । संस्कृति का स्वरूप बतलाते हैं और अभ्युदय का मार्ग प्रशस्त करते हैं ।

४. स्मृतियों के आधार : ये धर्मसूत्र स्मृतिग्रन्थों की आधारशिला हैं । इनके आधार पर ही स्मृति ग्रन्थों का प्रणयन हुआ है ।

५. राजनीतिक महत्त्व : धर्मशास्त्रों का उद्देश्य है - समाज को शान्ति और स्थिरता प्रदान करना, इसके लिए एक राजा की आवश्यकता है । अतएव इनमें राजा के कर्तव्य, प्रशासन-व्यवस्था, न्याय और दंड का विधान, देश की सुरक्षा, अपराध-नियंत्रण आदि विषयों का समावेश हुआ है ।

६. आर्थिक महत्त्व : इनमें राष्ट्र की अर्थ-व्यवस्था पर भी विचार हुआ है । जैसे - कर-निर्धारण, कर के प्रकार , कर का उपयोग, संपत्ति का विभाजन, स्त्रीधन का स्वरूप, दायभाग आदि विषयों का भी इनमें विवेचन हुआ है ।

७. सामाजिक महत्त्व : ये धर्मसूत्र समाजशास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत करते हैं । सामाजिक समस्याओं पर अपने विचार रखते हैं । विवाह के प्रकार, उनके गुण-दोष, वैवाहिक समस्याओं आदि का विवेचन प्रस्तुत करते हैं । वर्णों और आश्रमों के कर्तव्यों का विशद वर्णन करते हैं । साथ ही आपद्धर्म की भी व्यवस्था करते हैं ।

इस प्रकार धर्मसूत्र सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि विषयों का परिष्कृत रूप प्रस्तुत करने के कारण विशेष संमानास्पद हैं ।

उपलब्ध धर्मसूत्रों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है ।

१. गौतम धर्मसूत्र

इसका संबन्ध सामवेद से है । इसके प्रणेता आचार्य गौतम हैं । यह धर्मसूत्रों में प्राचीनतम है । इसका २६वाँ अध्याय सामविधान ब्राह्मण के सदृश है । इसमें २८ अध्याय और एक हजार सूत्र हैं । सूत्रात्मक शैली में लिखा गया है । भाषा परिष्कृत है । अनेक धर्मशास्त्रकारों ने इससे उद्धरण लिए हैं । इसमें मुख्यरूप से विषय वर्णित हैं :

अध्याय १ से ५ : धर्म के स्रोत, उपनयन, चार आश्रमों का वर्णन, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, भिक्षु और वैखानस के कर्तव्य, ८ प्रकार के विवाह, पंचमहाव्रत ।

अध्याय ६ से १० : माता-पिता-गुरु का सत्कार, आपद्धर्म, ४० संस्कार , चारों वर्णों के कर्तव्य, राजधर्म, कर , संपत्ति की सुरक्षा ।

अध्याय ११ से १५ : अपराध और दंड-विधान, साक्षी, साक्ष्य के नियम, श्राद्ध के प्रकार, उपाकर्म और अनध्याय ।

अध्याय १६ से २० : भक्ष्याभक्ष्य-विचार, स्त्रीधर्म, नियोग, विविध पातक और प्रायश्चित्त ।

अध्याय २१ से २८ : विविध पातक और प्रायश्चित्त, कृच्छ्र आदि व्रत, चान्द्रायण व्रत, संपत्ति का विभाजन, दायभाग ।

इस पर हरदत्त-कृत 'मिताक्षरा' व्याख्या और मस्करी के भाष्य उपलब्ध हैं । इसके चार संस्करण प्रकाशित हैं : १. स्टेन्त्सलर द्वारा संपादित लन्दन से , २. जीवानन्द विद्यासागर द्वारा संपादित कलकत्ता से, ३. मस्करी के भाष्य-सहित मैसूर से, ४. वेदमित्र - संपादित दिल्ली से ।

२. बौधायन धर्मसूत्र

यह बौधायन कल्पसूत्र का ही अंश है । इसमें उसके चार अध्याय (प्रश्न) ४६ से ४९ हैं । इन चार प्रश्नों (अध्यायों) में वर्ण्य-विषय ये हैं :

प्रश्न १ : ब्रह्मचर्य के नियम, दायभाग, भक्ष्याभक्ष्य, चातुर्वर्ण्य-विचार, वर्णसंकर, राजा के कर्तव्य, ५ महापाप और उनके दंड, ८ प्रकार के विवाह ।

प्रश्न २ : महापातकों के प्रायश्चित्त , कृच्छ्र आदि व्रत, उत्तराधिकार -नियम, नियोग, गृहस्थ के धर्म, पंच महायज्ञ, श्राद्ध, संन्यास के नियम ।

प्रश्न ३ : वानप्रस्थ और संन्यासी के धर्म, चान्द्रायण आदि व्रत ।

प्रश्न ४ : प्रायश्चित्त, काम्य सिद्धियाँ ।

डा० काणे ने चतुर्थ प्रश्न को प्रक्षिप्त माना है । यह पद्यात्मक है और इसमें पूर्व प्रश्नों के ही विषय हैं । यह आपस्तम्ब से पूर्ववर्ती है और गौतम से परकालीन । इस पर गोविन्द स्वामी की 'विवरण' नामक व्याख्या है । इसके अनेक संस्करण प्रकाशित हुए हैं : १. लीपृजिग से १९८४, २. मैसूर से १९०७, ३. आनन्दाश्रम पूना से १९२९ , ४. चौखंबा वाराणसी से १९९१, ५. दिल्ली से ।

३. आपस्तम्ब धर्मसूत्र

आपस्तम्ब कल्पसूत्र के ही अन्त के दो प्रश्न (अध्याय) २८ और २९ आपस्तम्ब धर्मसूत्र कहे जाते हैं। इसके रचयिता आपस्तम्ब हैं। दोनों प्रश्नों में ११-११ पटल हैं और इनके उपभेद ३२ और २९ खंडिकाएँ हैं। इनमें बीच-बीच में पद्य भी हैं। इनका वर्ण्य-विषय प्रायः बौधायन धर्मसूत्र के ही तुल्य है। विषयों के क्रम में अन्तर है। शैली ब्राह्मण ग्रन्थों के तुल्य है।

इसमें प्राचीन १० आचार्यों कण्व, कौत्स, हारीत, श्वेतकेतु आदि के मतों का उल्लेख है। इसमें मीमांसादर्शन के अनेक पारिभाषिक शब्दों श्रुति, अंग, विधि आदि का उल्लेख है। इसमें प्राजापत्य और पैशाच विवाहों को अवैध माना है। नियोग-प्रथा की भी निन्दा है। असत्य साक्ष्य देने पर दिव्य परीक्षा का विधान है। ब्याज (सूद) लेना निन्द्य बताया है।

इस पर हरदत्त मिश्र की "उज्ज्वला" व्याख्या मिलती है। इसके अनेक संस्करण प्राप्य हैं : १. ब्यूह्लर -संपादित, बम्बई १९३२, २. ए०आर० शास्त्री-संपादित बनारस १९३२ , ३. मगनलाल शास्त्री - संपादित पूना, ४. महादेव शास्त्री - संपादित मैसूर, ५. हिन्दी अनुवाद-सहित, उमेशचन्द्र पांडेय, वाराणसी।

४.वासिष्ठ धर्मसूत्र

यह महर्षि वसिष्ठ की कृति माना जाता हे। इसके विभिन्न संस्करणों में अध्यायों की संख्या ६,१०,२० या ३० है। आनन्दाश्रम और फ्यूहरर के संस्करणों में ३०-३० अध्याय हैं। इसका संबन्ध ऋग्वेद से माना जाता है। विषय-वस्तु अन्य धर्मसूत्रों के तुल्य ही है। इसके चार अध्याय २५ से २८ पद्यात्मक हैं। अध्याय २९-३० में गद्य-पद्य दोनों हैं। इसके २६-२७ अध्यायों में प्राणायाम की प्रशंसा है तथा गायत्री के जप का विधान है। इसमें 'आचारः परमो धर्मः' (६.१) कहकर सदाचार पर बहुत बल दिया गया है। इसके अनेक संस्करण प्राप्य हैं : १. फ्यूहरर -संपादित बम्बई, १९१६, २. हिन्दी अनुवाद -सहित, लाहौर, ३. पूना आदि के संस्करण।

५. वैखानस धर्मसूत्र

यह धर्मसूत्र वैखानस स्मृतिसूत्र के ८ से १० अध्याय हैं। यह स्मृतिसूत्र डा० कैलेन्ड द्वारा संपादित हुआ है। इन तीन अध्यायों में गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमों के अवान्तर भेदों का विशद वर्णन हुआ है। वर्णों के कर्तव्यों का भी विशद निरूपण है। वर्णसंकर जातियों का भी वर्णन है। इसके बहुत से श्लोक मनुस्मृति के श्लोकों से मिलते हैं। डा० कैलेन्ड ने इसका संपादन किया है और अंग्रेज़ी अनुवाद के साथ कलकत्ता से १९२९ में प्रकाशित किया है।

६. विष्णु धर्मसूत्र

इसमें गद्य और पद्य का मिश्रण है । इस धर्मसूत्र के १६० श्लोक मनुस्मृति से अक्षरशः मिलते हैं । इसमें मनुस्मृति से ही अधिकांश श्लोक उद्धृत हुए हैं । इसमें याज्ञवल्क्य स्मृति, गौतम धर्मसूत्र और वासिष्ठ धर्मसूत्र के भी श्लोक एवं सूत्र उद्धृत हैं । यह परकालीन रचना है । डा० जोली ने अंग्रेजी अनुवाद के साथ इसे प्रकाशित किया है ।

७. हारीत धर्मसूत्र

बौधायन, आपस्तम्ब और वासिष्ठ धर्मसूत्रों ने इस धर्मसूत्र का उल्लेख किया है । इसकी कुछ प्रतियों में ३० अध्याय हैं । इसमें कुछ पद्यात्मक वचन भी हैं । इसमें ८ प्रकार के विवाहों में आर्ष और प्राजापत्य के स्थान पर 'क्षात्र' और 'मानुष' नाम दिए हैं ।

हारीत के कई संस्करण प्रकाशित हुए हैं । इनके नाम भिन्न-भिन्न हैं । आनन्दाश्रम पूना-संस्करण 'वृद्ध हारीत' नाम से प्रकाशित हुआ है । इसमें १० अध्याय हैं । जीवानन्द ने इसके दो संस्करण प्रकाशित किए हैं - १. लघु हारीत स्मृति । इसमें ७ अध्याय और २५० श्लोक हैं । २. वृद्ध हारीत स्मृति । इसमें ८ अध्याय और २६०० श्लोक हैं ।

इनके अतिरिक्त ये दो ग्रन्थ भी महत्त्वपूर्ण हैं :

१. हिरण्यकेशी धर्मसूत्र । २. शंखलिखित धर्मसूत्र ।

धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में कतिपय अन्य धर्मसूत्रकारों के भी नाम मिलते हैं । इनमें विशेष उल्लेखनीय ये हैं : अत्रि, उशनस् (उशना), कश्यप, कण्व, गार्ग्य, देवल, च्यवन, जातूकर्ण्य, बृहस्पति, भारद्वाज, सुमन्तु, पैठीनसि आदि ।

(घ) शुल्बसूत्र

शुल्बसूत्रों का महत्त्व : शुल्बसूत्रों का कई दृष्टि से विशेष महत्त्व है :

१. शास्त्रीय महत्त्व : वेदों का केन्द्र बिन्दु यज्ञ है । यज्ञ के लिए वेदी आवश्यक है । वेदी के निर्माण के लिए ऊँचाई-निचाई, लम्बाई-चौड़ाई, कोण आदि का ज्ञान आवश्यक है । साथ ही सामान्य यज्ञ है या विशाल यज्ञ है, थोड़े दिन चलने वाला यज्ञ है या मासभर या वर्षभर । उसी हिसाब से वेदी बनाई जाती थी । प्रत्येक यज्ञ के लिए पृथक् आकार की वेदी का विधान है, अतः वेदी-निर्माता को रेखागणित (Geometry) का ज्ञान आवश्यक है । इस शास्त्रीय आवश्यकता की पूर्ति के लिए शुल्बसूत्रों का प्रणयन हुआ है ।

२. धार्मिक महत्त्व : यज्ञ को ब्रह्म या विष्णु का प्रतीक माना जाता है । ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार यज्ञ-वेदी के आकार-प्रकार में पुरुष के अंग-प्रत्यंगों की कल्पना की जाती है । तदनुसार वेदी का स्वरूप निर्धारित होता है । सोमयाग के लिए महावेदी बनती है । सौत्रामणी याग के लिए उसकी एक-तिहाई वेदी । इसी प्रकार विभिन्न यागों के लिए विभिन्न आकार की वेदी बनती हैं । इनके फल की भी पृथक् होते हैं । धार्मिक दृष्टि से इनके निर्माण में पूर्ण शुद्धता अपेक्षित है ।

३. वैज्ञानिक महत्त्व : शतपथ ब्राह्मण आदि में वेदियों के निर्माण की जो विधियाँ दी गई हैं। उनको ही पूर्ण वैज्ञानिक रूप से प्रस्तुत करने का श्रेय शुल्बसूत्रों को है। ये ग्रन्थ शुद्धरूप से गणितशास्त्रीय वैज्ञानिक ग्रन्थ हैं। इनमें ज्यामितिशास्त्र (Geometry) के सरल से लेकर अतिजटिल तक प्रमेय दिए गए हैं। ईसा से लगभग एक हजार पूर्व लिखे गए ये ग्रन्थ भारतीय ऋषियों के वैज्ञानिक चिन्तन के प्रतीक हैं। इनमें पैथागोरस के प्रमेय जैसे अनेक विलक्षण प्रमेय विद्यमान हैं।

शुल्बसूत्रों के विषय में कुछ ज्ञातव्य बातें

१. शुल्ब : शुल्ब को शुल्व भी लिखा जाता है। शुल्ब का अर्थ है - रस्सी। भूमि आदि के नाप के लिए जो रस्सी (नापने का फीता या टेप) प्रयोग में आती थी, उसके आधार पर इस शास्त्र का नाम 'शुल्ब शास्त्र' (माप-शास्त्र) पड़ा। यह वर्तमान ज्यामिति शास्त्र (Geometry) का प्राचीन रूप है।

२. यज्ञवेदी : ऋग्वेद[१] और तैत्तिरीय संहिता[२] में अग्नि को त्रिषधस्थ अर्थात् तीन स्थान वाला या तीन प्रकार का कहा गया है। तीन प्रकार की यज्ञिय अग्नियाँ हैं : १. गार्हपत्य अग्नि, २. आहवनीय अग्नि, ३. दक्षिण अग्नि। शतपथ ब्राह्मण में इनके आकार का वर्णन है।[३] गार्हपत्य अग्नि की वेदी मंडलाकार या वृत्ताकार (Circle), आहवनीय अग्नि की वेदी समचतुरस्र या चतुष्कोण (Square) और दक्षिणाग्नि की वेदी अर्धवृत्ताकार या अर्धचन्द्राकार (Semi-circle) होती है। इसके लिए यह भी विधान है कि इनका क्षेत्रफल भी बराबर हो और यह एक वर्ग व्याम हो।[४] (एक व्याम = ९६ अंगुल या ४ हाथ अर्थात् ६ फीट)।

इसके लिए यह आवश्यक था कि वेदी बनाने वाले को रेखागणित का ज्ञान हो, जिससे वह वृत्त को चतुर्भुज में बदल सके और उसको अर्धवृत्ताकार बना सके।

शतपथ ब्राह्मण में महावेदी-सहित कुछ वेदियों के निर्माण की विधि दी गई है।[५] इस महत्त्वपूर्ण कार्य के संपादन के लिए शुल्बसूत्रों की रचना की गई और ये एक स्वतंत्र शास्त्र के रूप में विकसित हुए। इनमें विभिन्न प्रकार के वेदियों के निर्माण की विस्तृत विधि दी हुई है। साथ ही यह भी बताया गया है कि वृत्त को चतुष्कोण, चतुष्कोण को त्रिकोण और चतुष्कोण को वृत्त में कैसे परिवर्तित किया जा सकता है। इस प्रकार इन शुल्बसूत्रों में सरल से जटिलतम वेदियों के निर्माण आदि की पूरी विधि दी गई है।

---

१. अग्ने .... त्रिषधस्थ। ऋग्० ५.४.८
२. अग्निं नरः त्रिषधस्थे समिन्धते। तैत्ति० सं० ४.४.४.३
३. गार्हपत्यः परिमण्डलम्० । शत०ब्रा० ७.१.१.३७
४. शत०ब्रा० ३.५.१ से ६
५. शत०ब्रा० कांड ३ और कांड ७

३. महत्त्वपूर्ण शुल्बसूत्र : रेखागणित की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण ये ४ शुल्बसूत्र हैं : १. बौधायन, २. आपस्तम्ब, ३. कात्यायन, ४. मानव शुल्बसूत्र ।

विभिन्न प्रकार की वेदियों के निर्माण की विधि, उनके आकार-परिवर्तन आदि के नियमों की विस्तृत जानकारी के लिए कुछ उपयोगी ग्रन्थ लिखे गए हैं ।[1] उनसे विस्तृत विवरण प्राप्त करें ।

१. बौधायन शुल्बसूत्र

इसका संबन्ध कृष्ण यजुर्वेद से है । इसके रचयिता बोधायन मुनि हैं । बोधायन का समय ९०० ई०पू० से ८५० ई०पू० के मध्य माना जाता है । अतएव बोधायन के शुल्बसूत्र को बहुत महत्त्व दिया जाता है । यह सबसे प्राचीन शुल्बसूत्र है । इसमें ३ परिच्छेद हैं और उनमें कुल सूत्रसंख्या ५१९ है । प्रथम में ११३, द्वितीय में ८३, तृतीय में ३२३ । इसके वर्ण्य-विषय इस प्रकार हैं :

परिच्छेद १ : विविध मानों का वर्णन, यज्ञिय वेदियों के निर्माण के लिए रेखागणितीय तथ्य, विविध वेदियों के आकार-प्रकार ।

परिच्छेद २ : विभिन्न वेदियों के निर्माण से संबद्ध सामान्य नियम, गार्हपत्य चिति और छन्दश्चिति के निर्माण की प्रक्रिया का वर्णन ।

परिच्छेद ३ : काम्य इष्टियों के १७ प्रभेदों के लिए विभिन्न वेदियों के निर्माण की विधि ।

इस पर दो टीकाएँ प्राप्त होती हैं : १. द्वारकानाथ यज्वा - कृत 'शुल्बदीपिका', २. वेंकटेश्वर दीक्षित -कृत 'शुल्बमीमांसा' ।

२. आपस्तम्ब शुल्बसूत्र

इसका भी संबन्ध कृष्ण यजुर्वेद से है । आपस्तम्ब का समय ७वीं शती ई०पू० माना जाता है । इसमें ६ पटलों में २१ अध्याय और ४९८ सूत्र हैं । इसके वर्ण्य-विषय ये हैं :

पटल १ : इसके १ से ३ अध्यायों में वेदियों की रचना के आधारभूत रेखागणितीय सिद्धान्तों का विवरण है ।

पटल २ : इसके तीन अध्यायों (अ० ४ से ६) में वेदियों के क्रमिक स्थान और उनकी विभिन्न आकृतियों का वर्णन है तथा उनके बनाने के ढंग का वर्णन है ।

अध्याय ३ से ६ : इनके १५ अध्यायों में काम्य इष्टियों के लिए आवश्यक विभिन्न वेदियों के आकार-प्रकार का विस्तृत वर्णन है ।

---

१. विस्तृत विवरण के लिए देखें :

(क) डा० विभूतिभूषण दत : The Science of the Sulba.

(ख) डा० सत्यप्रकाश : The Founders of Sciences in Ancient India, PP. 603-675

(ग) डा० सत्यप्रकाश : The Sulba Sutras, Intro. PP. 1-73

बौधायन और आपस्तम्ब दोनों में प्रायः सभी काम्य इष्टियों के लिए उपयोगी वेदियों का वर्णन है । बौधायन में विस्तार अधिक है और विभेदों की संख्या भी अधिक है । आपस्तम्ब में कुछ संक्षेप है ।

आपस्तम्ब शुल्बसूत्र पर ये टीकाएँ मिलती हैं : १. कपर्दिस्वामी कृत - 'शुल्बव्याख्या' टीका, २. करविन्द स्वामी - कृत 'शुल्बप्रदीपिका' टीका, ३. सुन्दरराज-कृत 'शुल्बप्रदीप' टीका, ४. गोपाल - कृत ' आपस्तम्बीय शुल्बभाष्य' ।

३. कात्यायन शुल्बसूत्र

इसका संबन्ध शुक्ल यजुर्वेद से है । कात्यायन का समय चतुर्थ शती ई०पू० माना जाता है । इस शुल्बसूत्र को 'कात्यायन शुल्ब-परिशिष्ट' या 'कातीय शुल्ब-परिशिष्ट' भी कहते हैं । इसके दो भाग हैं । प्रथम भाग सूत्रों में है । इसमें ६ कंडिकाओं (खंडों) में १०२ सूत्र हैं । इसमें वेदियों के निर्माण के लिए आवश्यक रेखागणितीय निर्देश हैं । वेदियों के आकार-प्रकार का पूरा वर्णन है । द्वितीय भाग श्लोकात्मक है । इसमें ४० श्लोक हैं । इसमें वेदिनिर्माता के गुण एवं कर्तव्यों का वर्णन है । कात्यायन ने वेदिनिर्माण के नियमों का विशेष क्रमबद्ध रूप से वर्णन किया है । अतः इसकी प्रसिद्धि है ।

इस पर तीन टीकाएँ मिलती हैं : १. राम (राम वाजपेय) - कृत, २. महीधर - कृत , ३. पं० विद्याधर गौड - कृत ।

४. मानव शुल्बसूत्र

यह गद्य - पद्य- मिश्रित एक छोटा ग्रन्थ है । इसमें अनेक नवीन वेदियों का वर्णन मिलता है, जो अन्य शुल्बसूत्रों में नहीं हैं । इसमें प्रसिद्ध 'सुपर्णचिति' (या श्येनचिति) वेदी का विवरण है , जो अन्यत्र अप्राप्य है ।

इनके अतिरिक्त दो अन्य शुल्बसूत्र भी मिलते हैं : **१. मैत्रायणीय शुल्बसूत्र :** यह मानव शुल्बसूत्र का ही रूपान्तर है । विषयवस्तु वही है, क्रम में थोड़ा अन्तर है । **२. वाराह शुल्बसूत्र :** इसके वर्ण्यविषय मानव और मैत्रायणीय के तुल्य हैं ।

शिवदास ने मानव शुल्बसूत्र पर और उसके भाई शंकर भट्ट ने मैत्रायणीय शुल्बसूत्र पर टीका लिखी है ।

शुल्बसूत्रों के संस्करण : १. प्रो० थीबो द्वारा संपादित बौधायन शुल्बसूत्र, 'शुल्बदीपिका' सहित वाराणसी से १८७५ में प्रकाशित हुआ था । इसका पुनः प्रकाशन दिल्ली से १९६८ में हुआ है । २. मानव शुल्बसूत्र, इन्टरनेशनल एकेडमी ऑफ इन्डियन कल्चर, नई दिल्ली से १८७५ में प्रकाशित हुआ हैं । इसके संपादक जे०एम० गेल्डर हैं । ३. आपस्तम्ब शुल्बसूत्र नई दिल्ली और मैसूर से प्रकाशित हुआ है । ४. कात्यायन शुल्बसूत्र, अच्युतग्रन्थमाला वाराणसी से प्रकाशित हुआ है । ५. डा० सत्यप्रकाश सरस्वती ने बौधायन, आपस्तम्ब, कात्यायन और मानव शुल्बसूत्र , अंग्रेजी भूमिका के साथ, एक जिल्द में १९७९ में इलाहाबाद से प्रकाशित किए हैं ।

शुल्बसूत्रों में वर्णित वेदियाँ

डा० ए०के० बाग (A.K. Bag) ने शुल्बसूत्रों में वर्णित प्रमुख वेदियों के आकार और परिमाण की संक्षिप्त सारणी प्रस्तुत की है ।[1] इसमें ३ वर्ग किए गए हैं : सामान्य; बृहत् और अन्य । साथ ही ज्यामिति के पारिभाषिक शब्द भी सुबोधता के लिए दिए गए हैं । एक व्याम = ६ फीट । एक पुरुष = ६ फीट । एक पद = २ फीट । उपयोगी होने के कारण यह सारणी यहाँ दी जा रही है ।

वेदी का नाम	आकार	परिमाण
वर्ग १		
१. आहवनीय अग्नि	चतुर्भुज (Square)	१ वर्ग व्याम (६ वर्ग फीट)
२. गार्हपत्य अग्नि	वृत्त (Circle)	१ वर्ग व्याम (६ वर्ग फीट)
३. दक्षिणाग्नि	अर्धवृत्त (Semi-circle)	१ वर्ग व्याम (६ वर्ग फीट)
वर्ग २		
१. महावेदी या सौमिक वेदी	समद्विबाहु चतुर्भुज, (Isosceles Trapezium)	९७२ वर्ग पद
२. सौत्रामणी वेदी	(Isosceles Trapezium)	३२४ वर्ग पद
३. पैतृकी वेदी	(Isosceles Trapezium)	३६ वर्ग पद
४. प्राग्वंश वेदी	आयत (Rectangle)	३६ वर्ग पद
वर्ग ३		
१. चतुरस्र श्येनचित्	पक्षी का आकार	साढ़े सात वर्ग पुरुष (४५ वर्ग फीट)
२. वक्रपक्ष - व्यस्त-पुच्छश्येन	पक्षी का आकार	साढ़े सात वर्ग पुरुष
३. कंकचित्	पक्षी का आकार	साढ़े सात वर्ग पुरुष
४. प्रउग	त्रिभुज (Triangle)	साढ़े सात वर्ग पुरुष
५. उभयतः प्रउग	समबाहु चतुर्भुज (Rhombus)	साढ़े सात वर्ग पुरुष
६. रथचक्रचित्	वृत्त (Circle)	साढ़े सात वर्ग पुरुष
७. द्रोणचित्	दोने की आकृति (Trough)	साढ़े सात वर्ग पुरुष
८. श्मशानचित्	समद्विबाहु चतुर्भुज (Isosceles Trapezium)	साढ़े सात वर्ग पुरुष

१. A.K. Bag, Mathematics in Ancient and Medieval India. P. 106

महावेदी

समद्विबाहु चतुर्भुज (Isosceles Trapezium)

शुल्बसूत्रों में यह वेदी अतिमहत्त्वपूर्ण है । इस वेदी का संबन्ध सोमयाग से है, अतः इसे सौमिकी वेदी भी कहते हैं । इसकी रचना समद्विबाहु चतुर्भुज (Isosceles Trapezium) होती है । शतपथ ब्राह्मण[१], बौधायन शुल्बसूत्र[२] और आपस्तम्ब शुल्बसूत्र[३] में इसका नाप दिया गया है ।

इसका मुख पूर्व दिशा की ओर होता है । लंबाई -चौड़ाई का विवरण यह है :

१. लम्बाई - ३६ पग या पद (३६ x २ = ७२ फीट)
२. चौड़ाई, पूर्व दिशा - २४ पग (२४ x २ = ४८ फीट, २४ -२४ फीट के दो भाग)
३. चौड़ाई, पश्चिम दिशा - २४ + ६ = ३० पग (३० x २ = ६० फीट, ३० -३० फीट के दो भाग)

इसमें ७२ फीट लम्बा और ४८ फीट चौड़ा एक चतुष्कोण निकलता है । पश्चिम की ओर की चौड़ाई ६ पग अर्थात् १२ फीट बढ़ जाती है, अतः ४८ + १२ = ६० फीट हो जाती है । पश्चिम के मध्य भाग से दोनों ओर ३०-३० फीट । इस प्रकार पूर्व और पश्चिम के कोण ४८ एवं ६० फीट होने के कारण विषम कोण है । उत्तर और दक्षिण के भाग सम हैं, अतः समद्विबाहु चतुर्भुज हो जाता है । शुल्बसूत्रों में पद (पैर, Step) के लिए प्रक्रम और विक्रम शब्द हैं ।

यह सोमयाग की वेदी है, अतः इसका बहुत महत्त्व है । शुल्बसूत्रों में यह सबसे बड़ी वेदी है । इसका परिमाण ९७२ पर्ग पद (पग) माना गया है । इसकी विशालता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि सौत्रामणी याग की वेदी इसकी तिहाई अर्थात् ३२४ वर्ग पद होती है और पैतृकी याग की वेदी इसका २७वाँ हिस्सा अर्थात् ३६ वर्ग पद होती है ।

शतपथ ब्राह्मण का कथन है कि जो सामान्य सप्तविध वेदी है, उससे यह महावेदी १४ गुनी बड़ी होती है ।[४] लम्बाई के लिए ३६ पग (७२ फीट) लंबी रस्सी लेते हैं, पूर्व की चौड़ाई नापने के लिए २४ पग (४८ फीट) लंबी रस्सी का प्रयोग होता है और पश्चित की लंबाई के लिए ३० पग (६० फीट) लंबी रस्सी ली जाती है । इसी प्रकार पूर्व से पश्चिम की ओर दोनों छोरों को नापने के लिए रस्सी बिछाकर ईंटें लगाई जाती हैं ।

प्रत्येक वेदी में किस आकार की, कितनी लंबाई-चौड़ाई और ऊँचाई वाली कितनी ईंटें लगेंगी, इसका भी विवरण ब्राह्मणग्रन्थों और शुल्बसूत्रों में दिया गया है ।

---

१. शत०ब्रा० ३.५.१.१ से ६ और कांड १०.२.३.७ से १४
२. त्रिंशत् पदानि प्रक्रमा वा पश्चात् तिरश्ची भवति । षट्त्रिंशत् प्राची चतुर्विंशतिः पुरस्तात् तिरश्चीति महावेदेर्विज्ञायते । बौधा० १.४.३
३. आप० शुल्ब० ५.१ से ५
४. यावत्येषा सप्तविधस्य वेदिस्तावतीं चतुर्दश कृत्वा एकशतविधस्य वेदिं विमिमीते । शत० १०.२.३.७

कर्ण (Hypotenuse) निकालने की विधि

पैथागोरस का प्रमेय (Pythagorean Theorem)

बौधायन , आपस्तम्ब और कात्यायन शुल्बसूत्रों में आयत (Rectangle) के कर्ण (Hypotenuse) के विषय में कहा गया है कि आयत का कर्ण दोनों क्षेत्रफलों को उत्पन्न करता है, जिसे उसकी लम्बाई और चौड़ाई अलग-अलग उत्पन्न करती हैं ।

दीर्घचतुरस्रस्याक्ष्णया रज्जुस्तिर्यङ्मानी पार्श्वमानी च यत्
पृथग्भूते कुरुतः, तदुभयं करोतीति क्षेत्रज्ञानम् ।

बौधायन शुल्ब० १.४८ ; कात्यायन शुल्ब० २.११ ; आप० शुल्ब १.७

अर्थात् किसी आयत के कर्ण पर खींचा गया वर्ग, क्षेत्रफल में उन दोनों वर्गों के योग के बराबर होता है, जो दोनों भुजाओं पर खींचे जायें ।

उक्त सूत्र में दीर्घचतुरस्र का अर्थ है - आयत (Rectangle), अक्ष्णया रज्जु का अर्थ - तिरछा नापना, एक कोने से तिरछे दूसरे कोने तक नापना (Diagonal) । तिर्यङ्मानी = चौड़ाई, पार्श्वमानी = लंबाई ।

यदि एक आयत को बीच में से तिरछा काटा जाय तो उसमें से दो विषम-बाहु त्रिभुज निकलेंगे । दोनों का पृथक्-पृथक् जितना क्षेत्रफल निकलेगा, उसका योग ही आयत का क्षेत्रफल होगा । इस प्रकार एक आयत दो त्रिभुजों का जोड़ा मानना चाहिए ।

कात्यायन शुल्बसूत्र में इस बात को दो अन्य सूत्रों के द्वारा स्पष्ट किया गया है कि यदि लंबाई और चौड़ाई ज्ञात हो तो कर्ण (Hypotenuse) क्या होगा ।

(१) यदि चौड़ाई १ हो और लंबाई ३ हो तो उसका कर्ण १० का वर्गमूल होगा । अर्थात् चौड़ाई और लंबाई दोनों का वर्ग करके जोड़ लो, वही कर्ण का वर्ग होगा । $क^२ + ख^२ = ग^२$, यदि चौड़ाई 'क' है और लंबाई 'ख' है तो कर्ण 'ग' का वही वर्गमूल होगा । जैसे - $१^२ \times ३^२ = १०$ का वर्गमूल ।

अर्थात् $१ \times १ = १$ और $३ \times ३ = ९$ । $१ + ९ = १०$ । १० का वर्गमूल ३.३ । यह चौड़ाई १ और लंबाई ३ का कर्ण हुआ ।

(२) इसी प्रकार दूसरा उदाहरण दिया है कि यदि किसी आयत की चौड़ाई २ पद हो और लंबाई ६ पद हो तो उसका कर्ण ४० का वर्गमूल होगा । २ और ६ का वर्ग निकालकर जो जोड़ होगा, वह कर्ण का वर्ग होगा ।

$२^२ \times ६^२ = ४०$

अर्थात् $२ \times २ = ४$ । $६ \times ६ = ३६$ । $४ + ३६ = ४०$ । यह कर्ण का वर्ग हुआ । इसका वर्गमूल निकालने पर ६.६६ पद कर्ण हुआ ।

शुल्बसूत्रों में कर्ण के लिए 'करणी' शब्द का प्रयोग है । आर्यभट आदि ने करणी के लिए 'कर्ण' शब्द ही दिया है ।

(क) पदं तिर्यङ्मानी, त्रिपदा पार्श्वमानी, तस्याक्ष्णया रज्जुर्दश करणी ।

(ख) एवं द्विपदा तिर्यङ्मानी, षट्पदा पार्श्वमानी, तस्याक्ष्णया रज्जुः चत्वारिंशत् करणी । कात्या० शुल्ब० २.८ और ९

आर्यभट ने आर्यभटीय में इस बात को और अधिक सरल शब्दों में स्पष्ट किया है कि समकोण त्रिभुज में भुजा (Base) के वर्ग और कोटि (Perpendicular) के वर्ग का योग कर्ण (Hypotenuse) के वर्ग के बराबर होता है । अर्थात् लंबाई और चौड़ाई के वर्ग का योग ही कर्ण का वर्ग है । $क^2 + ख^2 = ग^2$

यश्चैव भुजावर्गः कोटीवर्गश्च कर्णवर्गः सः ।

आर्यभटीय, गणितपाद १७

यह प्रमेय पैथागोरस प्रमेय के नाम से जाना जाता है । इस प्रमेय का ज्यामिति में बहुत महत्त्व है । पैथागौरस का प्रमेय यह है :

"That the square on the hypotenuse of a right-angled triangle is equal to the sum of the squares on the other two sides."

अर्थात् समकोण त्रिभुज के कर्ण के ऊपर खींचा गया वर्ग दो समकोण त्रिभुजों के वर्ग के बराबर होता है ।

शुल्बसूत्रों के उपर्युक्त उद्धरणों के स्पष्ट है कि यह पूरा नियम बौधायन, आपस्तम्ब और कात्यायन शुल्बसूत्रकारों को वैदिक काल में ही ज्ञात हो चुका था ।

(ङ) अनुक्रमणियाँ

वेदों की रक्षा के लिए जो विविध उपाय किए गए, उनमें यह अनुक्रमणी-साहित्य भी है । इन अनुक्रमणियों में प्रत्येक वेद के ऋषि, देवता, छन्द, अनुवाक, सूक्त आदि का उल्लेख है । इतना ही नहीं, अपितु इसके आगे जाकर उन्होंने मंत्रों की संख्या , पदों की संख्या और वर्णों की संख्या तक की गणना प्रस्तुत की है । अतएव वेदों में किसी प्रकार का प्रक्षेप नहीं हो सका ।

प्रमुख अनुक्रमणी-ग्रन्थ ये हैं :

१. शौनककृत ५ अनुक्रमणियाँ : शौनक ने पाँच अनुक्रमणियों की रचना की है । ये हैं : **१. आर्षानुक्रमणी, २. छन्दोऽनुक्रमणी, ३. देवतानुक्रमणी, ४. अनुवाक-अनुक्रमणी, ५. सूक्ताऽनुक्रमणी** । इनमें ऋग्वेद के दसों मंडलों के ऋषियों, छन्दों, देवताओं, अनुवाकों और सूक्तों की संख्या, नाम तथा विस्तृत विवरण अनुष्टुप् श्लोकों में दिया गया है ।

२. ऋग्विधान : यह भी शौनक की कृति है । इसमें ऋग्वेद के मंत्रों का विभिन्न याग आदि में विनियोग बताया गया है ।

३. बृहद्देवता : यह भी शौनक की कृति है । यह अतिमहत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है । इसमें ८ अध्यायों में १२०० पद्य हैं । इसमें देवताओं का स्वरूप, उनका स्थान और उनकी विशेषताओं का वर्णन है । इसमें देवों से संबद्ध आख्यानों का भी संकलन पद्यों में है । यह देवशास्त्र का प्रामाणिक ग्रन्थ है । कात्यायन ने अपनी 'सर्वानुक्रमणी' में बृहद्देवता का बहुत उपयोग किया है ।[१]

४. सर्वानुक्रमणी : यह कात्यायन की कृति है ।[२] इसमें ऋग्वेद के प्रत्येक सूक्त के प्रथम पद, प्रत्येक सूक्त में ऋचाओं की संख्या, सूक्त के ऋषि का नाम और उसका गोत्र, सूक्त के मंत्रों के देवता और छन्दों का विस्तृत विवरण दिया गया है । यह सूत्रशैली में है । यह अतिप्रसिद्ध और प्रामाणिक ग्रन्थ है ।

५. ऋग्वेदानुक्रमणी : यह माधव भट्ट की कृति है ।[३] इसमें ऋग्वेद के स्वर, आख्यात, निपात, शब्द, ऋषि, छन्द, देवता और मन्त्रार्थ से संबद्ध आठ अनुक्रमणियों का संग्रह है ।

६. शुक्ल यजुःसर्वानुक्रमसूत्र : इसके भी रचयिता कात्यायन मुनि ही माने जाते हैं । इसमें शुक्ल यजुर्वेद की माध्यंदिनसंहिता के ऋषि, देवता और छन्दों का विस्तृत विवरण दिया गया है ।

७. सामवेद की अनुक्रमणियाँ : सामवेद के श्रौतयाग से संबद्ध अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं, जो सामवेद की अनुक्रमणी का कार्य सिद्ध करते हैं । ये हैं : कल्पानुपदसूत्र, उपग्रन्थ-सूत्र , अनुपदसूत्र, निदानसूत्र, उपनिदानसूत्र, पंचविधान सूत्र, लघु ऋक्तंत्रसंग्रह, सामसप्त-लक्षण ।

८. अथर्ववेद की अनुक्रमणियाँ : अथर्ववेद की अनुक्रमणियों में ये ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं : **१. पञ्चपटलिका :** इसमें ५ पटल (अध्याय) हैं । इसमें अथर्ववेद के कांडों और उनमें मंत्रों की संख्या का विवरण दिया गया है । **२. दन्त्योष्ठविधि :** इसमें ब व आदि के उच्चारण-संबन्धी नियमों का निर्देश है ।

९. बृहत्सर्वानुक्रमणी : यह अथर्ववेद की अनुक्रमणी है । इसमें प्रत्येक कांड के सूक्तों के मंत्र,ऋषि, देवता एवं छन्दों का विस्तृत विवरण दिया गया है । अथर्ववेदीय साहित्य में यह महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है ।

---

१. डा० मैकडानल द्वारा संपादित, अंग्रेजी अनुवाद के साथ, दो भागों में १९०४ में प्रकाशित ।
२. डा० मैकडानल द्वारा संपदित, आक्सफोर्ड से १८८६ में प्रकाशित ।
३. मद्रास विश्वविद्यालय संस्कृत ग्रन्थमाला में १९३२ में प्रकाशित ।

१०. अथर्ववेदीय महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ : सायण ने अथर्व-भाष्य के प्रारम्भ में इन पाँच ग्रन्थों का उल्लेख किया है । ये हैं : **१. कौशिक सूत्र, २. वैतानसूत्र** । इनका विवरण दिया जा चुका है । **३. नक्षत्रकल्प** : इसमें ३० महाशक्तियों का वर्णन है । **४. आंगिरस कल्प** : इसमें आत्मरक्षा और अभिचारों के निवारण के उपाय वर्णित हैं । **५. शान्तिकल्प** : इसमें ग्रह-शान्ति का वर्णन है ।

११. चरणव्यूह-सूत्र : यह महर्षि शौनक-रचित है । इसमें ५ खंड हैं । इसमें चारों वेदों की शाखाओं का विस्तृत विवरण है, अतः यह महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ माना जाता है ।

१२. नीतिमंजरी : इसके लेखक द्याद्विवेद हैं । इसमें ऋग्वेद के आख्यानों का संकलन है । साथ ही आख्यानों से प्राप्त होने वाली शिक्षाओं का भी उल्लेख किया गया है । इसकी रचना १४९४ ई० में हुई है । अर्वाचीन रचना होने पर भी आख्यान-साहित्य की दृष्टि से इसका बहुत महत्त्व है ।

अध्याय ७

वैदिक संस्कृति

७. भूगोल एवं सामाजिक जीवन (क) भूगोल

वेदों में भूगोल-संबन्धी सामग्री अत्यल्प है । अतः इस विषय पर कुछ अधिक लिखना संभव नहीं है । जो स्फुट सन्दर्भ मिलते हैं; उनके आधार पर कुछ तथ्य स्पष्ट होते हैं । उनका ही यहाँ संक्षेप में वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है ।

१. राष्ट्र और देश

वेदों में राष्ट्र और देश की स्पष्ट कल्पना है । राष्ट्र की उन्नति, राष्ट्र की सुरक्षा, राष्ट्र-संचालन, राष्ट्रीय भावना आदि का अनेक मंत्रों में उल्लेख है ।[१] यजुर्वेद में राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए सदा जागरूक रहने का निर्देश है ।[२] अथर्ववेद में 'राष्ट्राणि' के द्वारा अनेक राष्ट्रों का संकेत है ।[३] अथर्ववेद में देश शब्द का भी प्रयोग है और देश पर आने वाले संकटों के निवारण की प्रार्थना की गई है ।[४]

२. विविध भूखण्ड या द्वीप

अथर्ववेद में भूमि के ३, ६ और ९ भागों का उल्लेख है । किसी भाष्यकार ने इसकी स्पष्ट व्याख्या नहीं की है । वर्तमान भौगोलिक दृष्टि से इनकी आनुमानिक व्याख्या की जा सकती है । अथर्ववेद का कथन है 'तिस्रः पृथिवीः'[५] अर्थात् पृथिवी के ३ खण्ड हैं । पृथिवी के तीन भूखण्ड ये माने जा सकते हैं-१. यूरेशिया (यूरोप और एशिया), २. अफ्रीका, ३. अमेरिका (उत्तरी और दक्षिणी) ।

अथर्ववेद का अन्यत्र कथन है- 'षड उर्व्यः' अर्थात् पृथ्वी के ६ खंड हैं ।[६] इन भूखंडों को महाद्वीप मानने पर ये ६ भूखण्ड माने जा सकते हैं-१. उत्तरी अमेरिका, २. दक्षिणी अमेरिका, ३. अफ्रीका, ४. यूरोप, ५. एशिया, ६. आस्ट्रेलिया ।

अथर्ववेद का यह कथन विशेष महत्वपूर्ण है कि पृथिवी के ६ खंड हैं और उनमें

---

१. राष्ट्रं मे देहि । यजु० १०.२ से ४

२. वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः । यजु० ९.२३

३. त्वं राष्ट्राणि रक्षसि । अथर्व० १९.३०.३

४. देशोपसर्गाः शमु नो भवन्तु । अथर्व० १९.९.९

५. तिस्रः पृथिवीः । अथर्व० १९.२७.३

६. षड् उर्व्यः । अथर्व० ११.७.१८

से एक अधिक बड़ा है ।[१] पूर्वोक्त ६ भूखंडों में यूरोप और एशिया का मिला हुआ भूखंड यूरेशिया वस्तुतः बड़ा है ।

भारतीय परम्परा के अनुसार पृथिवी पर ७ बड़े द्वीप हैं । अतएव पतंजलि ने महाभाष्य (आह्निक १) में 'सप्तद्वीपा वसुमती' अर्थात् पृथिवी पर सात द्वीप हैं, यह लिखा है । अग्निपुराण (१०८ श्लोक १ से ३) में इस सात द्वीपों के ये नाम दिए हैं - १. जम्बू द्वीप, २. प्लक्ष, ३. महान् शाल्मलि, ४. कुश, ५. क्रौंच, ६. शाक, ७. पुष्कर द्वीप । भारतवर्ष जम्बूद्वीप का एक अंश माना जाता है ।

३. पर्वत

अथर्ववेद में 'गिरयः' 'पर्वता हिमवन्तः' से हिमाच्छादित अनेक पर्वतों का ज्ञान होता है ।[२]

१. हिमवत् - अथर्ववेद के १० मंत्रों में 'हिमवत्' शब्द का प्रयोग हुआ है । इसमें हिमालय की पर्वत-श्रेणियों का उल्लेख है । कुष्ठ (कूठ) ओषधि हिमालय पर होती थी ।[३] प्रार्थना की गई है कि हिमालय से निकलने वाली नदियों का जल सुखद हो ।[४]

२. त्रिककुद् - यह पर्वतों में श्रेष्ठ माना जाता था ।[५] इस पर्वत पर अंजन (सुरमा) होता था ।[६] यह सुलेमान पर्वत ज्ञात होता है, जहाँ आज भी सुरमा होता है । कीथ ने इसे वर्तमान त्रिकोट माना है ।

३. मूजवत् - ऋग्वेद, यजुर्वेद, तैत्तिरीय संहिता आदि में मूजवत् पर्वत का उल्लेख मिलता है ।[७] यह हिन्दूकुश पर्वत की एक शाखा है, जो भारतवर्ष के उत्तर-पश्चिम में है । इस पर्वत पर सोमलता होती थी, अतः सोमलता को मौजवत कहा गया है ।[८]

४. महामेरु - तैत्तिरीय आरण्यक (१.७) में महामेरु का स्पष्ट उल्लेख है । इसके लिए कहा गया है कि कश्यप नामक सूर्य इसे कभी नहीं छोड़ता । यह 'उत्तरी ध्रुव' की पर्वतमाला के लिए है ।

५. क्रौंच आदि पर्वत - तैत्तिरीय आरण्यक (१.३१) में क्रौंच, मैनाक और सुदर्शन पर्वतों के नाम मिलते हैं ।

६. दक्षिण पर्वत - विन्ध्य पर्वत का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है । जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में उत्तर पर्वत और दक्षिण पर्वत का उल्लेख है । दक्षिण पर्वत से विन्ध्य

---

१. षड् उर्वीः एकमिद् बृहत् । अथर्व० १८.२.६
२. गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तः । अथर्व० १२.१.११
३. कुष्ठो हिमवतस्परि । अथर्व० १९.३९.१
४. शं त आपो हैमवतीः । अथर्व० १९.२.१
५. वर्षिष्ठः पर्वतानां त्रिककुत् । अ० ४.९.८
६. यदाञ्जनं त्रैककुदं जातं हिमवतस्परि । अ० ४-९-९
७. यजु० ३.६१ । तैत्ति० सं० १.८.६.२ । काठक सं० ९.७
८. सोमस्येव मौजवतस्य भक्षः० । ऋग्० १०.३४.१

पर्वत का ही उल्लेख ज्ञात होता है।

४. समुद्र

ऋग्वेद और अथर्ववेद में दो, तीन और चार समुद्रों का उल्लेख है।

दो समुद्र - ऋग्वेद और अथर्ववेद के अनेक मन्त्रों में २ समुद्रों का उल्लेख मिलता है। 'उभी समुद्रौ०' आदि से पूर्व और पश्चिम समुद्रों का उल्लेख है।[१] पूर्व समुद्र से बंगाल की खाड़ी और पश्चिम समुद्र से अरब सागर ज्ञात होता है।

तीन समुद्र - अथर्ववेद के एक मंत्र में तीन समुद्रों का उल्लेख मिलता है।[२] उपर्युक्त दो समुद्रों के अतिरिक्त तीसरा समुद्र उत्तर की ओर था। यह समुद्र विशाल भूमध्यसागर के अवशेष काला सागर (Black Sea), कैस्पियन सी (काश्यप समुद्र) और अराल सागर के रूप में आज भी विद्यमान है।

चार समुद्र - ऋग्वेद और अथर्ववेद में चार समुद्रों को धन का भण्डार कहा गया है।[३] 'चतुःसमुद्रम्' और 'समुद्रान् चतुरः' से चार समुद्रों का स्पष्ट उल्लेख है। चतुर्थ समुद्र हिन्द महासागर लेना उचित प्रतीत होता है।

समुद्री धन मुक्ता आदि - ऋग्वेद (१.४७.६) और अथर्ववेद (४.१०.४ और ५) में समुद्र से प्राप्त मोती और शंख आदि का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

समुद्री व्यापार - ऋग्वेद में स्पष्ट उल्लेख है कि समुद्री व्यापार होता था। सौ डांड़ों (अरित्र) वाले विशाल पोत होते थे। ऐसे पोत कभी-कभी टूट भी जाते थे और भुज्यु जैसे व्यापारी को सुरक्षित निकालने की व्यवस्था भी की जाती थी।[४]

५. नदियाँ

ऋग्वेद और अथर्ववेद में अनेक नदियों का उल्लेख है। प्रमुख नदियों का विवरण दिया जा रहा है।

सप्त सिन्धवः - ऋग्वेद और अथर्ववेद में 'सप्त सिन्धवः' अर्थात् सात नदियों का कई बार उल्लेख है।[५] एक मंत्र में कहा गया है कि ये सात नदियाँ हिमालय से निकलती हैं और सिन्धु में मिलती हैं।[६] इन्हें सिन्धु की पत्नी और सिन्धु को इनकी रानी भी कहा गया

---

१. उभा समुद्रावा क्षेति यश्च पूर्व उतापरः। ऋग्० १०.१३६.५
उभा समुद्रौ०। अथर्व० १.२.१०; ४.१६.३; ९.५.२०

२. त्रीन् समुद्रान्। अथर्व० १९.२७.४
पूर्वस्माद् हंसि-उत्तरस्मिन् समुद्रे। अथर्व० ११.२.२५

३. चतुःसमुद्रं धरुणं रयीणाम्। ऋग्० १०.४७.२
रायः समुद्रान् चतुरः। ऋग्० ७.३३.६। चतुरः समुद्रान्०। अ० १९.२७.३

४. अनारम्भणे तदवीरयेथाम् अनास्थाने अग्रभणे समुद्रे।
यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्तं शतारित्रां नावमातस्थिवांसम्॥ ऋग्० १.११६.५

५. सप्त सिन्धून्। ऋग्० १.३५.८। अथर्व० ४.६.२; ६.६१.३

६. हिमवतः प्रस्रवन्ति, सिन्धौ समह संगमः। अथर्व० ६.२४.१

है ।[1] इन सात नदियों में पंजाब की ५ नदियाँ शुतुद्री (सतलज), विपाशा (व्यास), इरावती (राप्ती), चन्द्रभागा (चेनाब) और वितस्ता (झेलम) ली जाती हैं। इनके अतिरिक्त दो नदियाँ सिन्धु और सरस्वती ली जाती हैं । ये सात मिलकर 'सप्त सिन्धु' होती हैं ।

सरस्वती नदी - ऋग्वेद में उल्लेख है कि सरस्वती नदी पर्वत से निकलती है और समुद्र में मिलती है ।[2] अथर्ववेद में उल्लेख है कि देवों ने सरस्वती नदी के किनारे सर्वप्रथम जौ की खेती की । वहाँ की भूमि अत्यन्त उर्वरा थी ।[3] ऋग्वेद में सरस्वती नदी का बड़ा महत्व है । इसे सर्वोत्तम देवी, सर्वोत्तम नदी और सर्वोत्तम माता के तुल्य पूज्य बताया गया है ।[4] ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार सरस्वती 'प्लक्ष प्रास्रवण' नामक स्थान से उत्पन्न हुई और विनशन नामक स्थान पर लुप्त हुई है । विनशन कुरुक्षेत्र में वर्तमान सिरसा नामक स्थान है । डॉ० सूर्यकान्त ने लिखा है कि यह थानेश्वर के पश्चिम में बहने वाली और भटनेर में रेगिस्तान में विलीन हो जाने वाली 'सरसुति' नदी हो सकती है, जिसमें पटियाला के समीप घग्घर नदी आ मिलती है । वहाँ से सिन्धु तक एक सूखी नदी का मार्ग या घग्घर नदी का निशान अब भी विद्यमान है । कुछ विद्वानों का मत है कि घग्घर नदी ही सरस्वती नदी कही जाती थी । प्रो० मैक्समूलर का मत है कि सरस्वती सतलज जैसी विशाल नदी थी और वह समुद्र तक पहुँचती थी ।[5]

गंगा आदि नदियाँ - ऋग्वेद का १०.७५ सूक्त 'नदी सूक्त' कहा जाता है । इसमें एक साथ अनेक नदियों का उल्लेख है । मन्त्र है-

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति, शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयाऽऽर्जीकीये शृणुह्या सुषोमया।।

ऋग्० १०.७५.५

इसमें इन नदियों का उल्लेख है- गंगा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्रि (सतलज), परुष्णी (इरावती या रावी), असिक्नी (चन्द्रभागा या चेनाब), मरुद्वृधा (वर्तमान मरुबर्दवान्, चेनाबकी एक सहायक नदी), वितस्ता (झेलम), आर्जीकीया (झेलम और सिन्ध के बीच की एक नदी, यास्क ने इसका अर्थ विपाशा अर्थात् व्यास माना है), सुषोमा (अटक जिले में बहने वाली सोहन नदी) ।

सिन्धु की सहायक नदियाँ-नदीसूक्त के ही अगले (ऋग्० १०.७५.६) मंत्र में सिन्धु की पश्चिमी सहायक नदियों का उल्लेख है ।

तृष्टामया प्रथमं यातवे सजूः सुसर्त्वा रसया श्वेत्या त्या ।
त्वं सिन्धो कुभया गोमतीं क्रुमुं मेहत्न्वा सरथं याभिरीयसे ।।

---

१. सिन्धुपत्नीः सिन्धुराज्ञीः सर्वा या नद्यः स्थन । अथर्व० ६.२४.३
२. एकाचेतत् सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात् । ऋग्० ७.९५.२
३. देवा इमं मधुना संयुतं यवं, सरस्वत्यामधिमणावचर्कृषुः ।। अ० ६.३०.१
४. अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति ।ऋग्० २.४१.१६
५. डॉ० सूर्यकान्त, वैदिक कोश, पृ० ५४८-५४९

इस मंत्र में सिन्धु नदी की पश्चिमी सहायक इन नदियों का उल्लेख है- तृष्टामा (जासकार नदी), सुसर्तु (सुरु नदी), रसा (वर्तमान 'शेषक' नदी, कुछ विद्वानों ने 'रन्हा' नदी माना है), श्वेती (कश्मीरी नदी गिलगिल), कुभा (काबुल), गोमती (वर्तमान 'गोमाल' नदी), क्रुमु (कुर्रम नदी), मेहत्नु (सम्भवतः सवान नदी)।

अन्य नदियाँ- उपर्युक्त नदियों के अतिरिक्त इन नदियों का भी उल्लेख मिलता है।

१. सुवास्तु[१]-यह अफगानिस्तान की 'स्वात' नदी है।

२. सरयू[२]-यह कुभा (काबुल) की एक सहायक नदी है। अवेस्ता में इसे 'हरीयु' कहते हैं। यह वर्तमान 'हरिरुद' नदी है।

३. विपाश[३]- यह पंजाब की 'व्यास' नदी है।

४. आपया[४]- यह सरस्वती की एक सहायक बरसाती नदी है, जो कुरुक्षेत्र के पास बहती है।

५. दृषद्वती[५]- सरस्वती की एक सहायक नदी है। सरस्वती और आपया के साथ इसका उल्लेख है। घग्घर या चितंग नदी हो सकती है।

६. सदानीरा[६]- शतपथ ब्राह्मण में इसे कोसल और विदेह राज्यों के बीच की सीमा कहा गया है। यह गंडक नदी मानी जाती है।

७. अंशुमती- अथर्ववेद के तीन मंत्रों में अंशुमती नदी का उल्लेख है। इसके किनारे पर सोम होता था।[७] इस नदी के किनारे इन्द्र ने बृहस्पति की सहायता से असुरों को हराया था।[८]

८. ९० और ९९ नदियाँ- अथर्ववेद और ऋग्वेद में ९० और ९९ नदियों का उल्लेख है।[९] ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि ये सप्त सिन्धुओं में मिलने वाली छोटी पहाड़ी नदियाँ हैं।[१०] अथर्ववेद और ऋग्वेद में इनको 'नाव्याः' अर्थात् नौका चलाने योग्य कहा है।[११]

६. जनपद एवं स्थान नाम

वैदिक साहित्य में कतिपय जनपदों और स्थानों के नाम प्राप्त होते हैं। उनका

१. ऋग्० ८.१९.२७। निरुक्त ४.१५
२. ऋग्० ५.५३.९; १०.६४.९
३. ऋग्० ३.३३.१; ४.३०.३१
४. ऋग्० ३.२३.४
५. ऋग्० ३.२३.४। लाट्या० श्रौत० १०.१९.९। कात्या० श्रौत० २४.११८
६. सैषाऽप्येतर्हि कोसलविदेहानां मर्यादा। शत० १.४.१.१७
७. अव द्रप्सो अंशुमतीम्०। अथर्व० २०.१३७.७ से ९
८. अथर्व० २०.१३७.८ और ९
९. नवतिं नाव्या अति। अथर्व० ८.५.९। ऋग्० १.३२.१४
१०. ऋग्० १०.१०४.८
११. पारं नवतिं नाव्यानाम्। ऋग्० १.१२१.१३

संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है-

१. **गन्धारि-** अथर्ववेद में गन्धारि, मूजवत्, अंग और मगध इन स्थानों का एक साथ उल्लेख मिलता है।[१] इन स्थानों पर ज्वर के भेदों को भेजने का वर्णन है। ऋग्वेद और अथर्ववेद में गन्धार देश का प्राचीन नाम गन्धारि मिलता है। ऋग्वेद में गन्धार देश की ऊन वाली भेड़ों का उल्लेख है।[२] वर्तमान कन्धार नाम गन्धारि का ही विकृत रूप है। प्राचीन समय में तक्षशिला से काबुल तक का प्रदेश गन्धार कहलाता था। गन्धार प्रदेश में रावलपिंडी और पेशावर जिले हैं।[३]

२. **मूजवत्-** यह वर्तमान मुंजान इलाका है, जो वंक्षु (आक्सस, आमू) नदी के दक्षिण में गलचा भाषा-भाषी क्षेत्र है। मूजवत् यह हिन्दूकुश की एक शाखा का नाम है, जो भारत के उत्तर-पश्चिम में है। इस पर्वत पर सोमलता होती थी, अतः सोम को मौजवत कहा गया है।[४]

३. **अंग-** गोपथ ब्राह्मण (२.१०) में 'अंगमगधेषु' समस्त पद मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि ये दोनों स्थान समीपस्थ हैं। बिहार में गंगा का दक्षिण-पूर्वी मैदान भाग अंग देश था, जिसमें आजकल मुंगेर और भागलपुर जिले सम्मिलित हैं। इसकी प्राचीन राजधानी चम्पा थी।[५]

४. **मगध-** यह बिहार में गंगा का दक्षिण-पश्चिमी भाग माना जाता है, जिसमें पटना और गया जिले हैं। यजुर्वेद में मागध को अतिक्रुष्ट (उच्च स्वर से गाना) का काम दिया गया है।[६] इससे ज्ञात होता है कि मागध का सम्बन्ध चारण या भाट के काम से रहा है।

५. **महावृष-** अथर्ववेद के तीन मंत्रों में महावृष का उल्लेख है।[७] इन मंत्रों में निर्देश है कि ज्वर के मूल स्थान मूजवत् और महावृष देश हैं। मूजवत् के साथ ही महावृषों का उल्लेख करने से ज्ञात होता है कि महावृष प्रदेश मूजवत् के समीप ही था। वह मूजवत् पर्वत के समीप का तराईवाला स्थान ज्ञात होता है।

६. **बल्हिक-** अथर्ववेद के तीन मंत्रों में बल्हिक नाम का उल्लेख है।[८] मूजवत् के साथ ही बल्हिक के उल्लेख से ज्ञात होता है कि यह मूजवत् के समीप का प्रदेश है। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल का मत है कि कम्बोज के पश्चिम, वंक्षु (आक्सस, आमू) नदी के दक्षिण की ओर हिन्दूकुश के उत्तर-पश्चिम का प्रदेश बाल्हीक महाजनपद था।[९] यह वंक्षु

१. गन्धारिभ्यो मूजवद्भ्योऽङ्गेभ्यो मगधेभ्यः। अथर्व० ५.२२.१४
२. गन्धारीणामिवाविका। ऋग्० १.१२६.७
३. वासुदेवशरण अग्रवाल, पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ४२, ५०, ६२
४. सोमस्येव मौजवतस्य भक्षः०। ऋग्० १०.३४.१
५. जर्नल ऑफ बिहार रिसर्च सोसाइटी, भाग १, पृ० १५०
६. अतिक्रुष्टाय मागधम्। यजु० ३०.५
७. महावृषान् मूजवतो०। अथर्व० ५.२२.८; ५.२२.४ और ५
८. तक्मन् मूजवतो गच्छ बल्हिकान् वा०। अथर्व० ५.२२.७; ५.२२.५ और ९
९. पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ६२

नदी के किनारे वर्तमान बलख (उत्तर-पश्चिमी अफगानिस्तान) का प्रदेश माना जाता है, बल्हिक को बाल्हीक और वाल्हीक भी कहते हैं।

७. कुरु-पंचाल- ऐतरेय ब्राह्मण में मध्यदेश में कुरु-पंचालों के राज्य का उल्लेख है। वहाँ राज्य नामक शासन-प्रणाली प्रचलित थी।[१] कुरु-पंचालों की यागपद्धति सर्वश्रेष्ठ मानी गई है।[२] इस देश के राजा राजसूय यज्ञ करते थे।[३] कुरु-पंचाल समीपस्थ प्रदेश रहे हैं और परस्पर मित्र रहे हैं। कुरुओं की राजधानी 'आसन्दीवन्त' थी। कुरुक्षेत्र वाला प्रदेश कुरु राजाओं का था। पंचालों की राजधानी मध्यप्रदेश में 'काम्पिल' (वर्तमान कंपिल) थी। ऐतरेय, शतपथ आदि में वर्णन है कि आसन्दीवन्त में ही परीक्षित् और जनमेजय ने अश्वमेघ यज्ञ किया था और वहाँ इनका अभिषेक हुआ था।[४]

८. उत्तरकुरु, उत्तरभद्र- ऐतरेय ब्राह्मण में हिमालय के ऊपरी भाग में उत्तर कुरु और उत्तर मद्र जनपदों का उल्लेख है। वहाँ वैराज्य शासन प्रणाली प्रचलित थी।[५] संभवतः कुरु और मद्रों की एक शाखा इस भाग में आ बसी थी।

९. मद्र- यह वर्तमान पंजाब का एक छोटा भाग था। इसकी राजधानी शाकल (वर्तमान स्यालकोट) थी। शाकल के वैभव का वर्णन बौद्ध-ग्रन्थ 'मिलिन्द प्रश्न' में मिलता है। इसकी एक शाखा संभवतः हिमालय के उत्तरी भाग में 'उत्तरमद्र' नाम से बस गई है।

१०. प्राच्य, नीच्य और सत्वत् जनपद- ऐतरेय ब्राह्मण में प्राच्य (अंग, बंग, मगध), नीच्य (पश्चिमी जनपद, सुराष्ट्र, कच्छ, सौवीर आदि) और सत्वत् (दक्षिणी जनपद, सत्वत् या यादव) जनपदों का भी उल्लेख है।[६] इन सबकी शासन-प्रणाली पृथक्-पृथक् थी।

११. कोसल और विदेह- शतपथ ब्राह्मण में कोसल और विदेह जनपदों का नाम एक साथ मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि ये दोनों जनपद आस-पास थे। सदानीरा (गंडक) नदी को इन दोनों जनपदों की विभाजक रेखा बताया गया है।[७] विदेह विहार का वर्तमान 'तिरहुत' जनपद है। वहीं ब्रह्मवादी राजा जनक हुए थे।

१२. काशी (काशि, काश्य)- अथर्ववेद, शतपथ, जैमिनीय ब्राह्मण और बृहदारण्यक उपनिषद में काशी का उल्लेख है।[८] यह वर्तमान काशी या वाराणसी है।

---

१. मध्यमायां दिशि ये के च कुरुपंचालानां राजानः, राज्यायैव तेऽभिषिच्यन्ते। ऐत० ब्रा० ८.३.१४
२. शत०ब्रा० १.७.२.८
३. शत०ब्रा० ५.५.२.३
४. ऐत० १९.७। शत० १३.५.४.२
५. परेण हिमवन्तं जनपदा उत्तरकुरव उत्तरमद्राः। ऐत० ब्रा० ८.३.१४
६. प्राच्यानां राजानः, नीच्यानां राजानः, सत्वतां राजानः। ऐत०ब्रा० ८.३.१४
७. सैषाऽप्येतर्हि कोसलविदेहानां मर्यादा। शत० १.४.१.१७
८. अथर्व. पैप्लादशाखा ५.२२.१४। शतपथ० १३.५.४.१९। जैमिनीय ब्रा० २.३११। बृहदारण्यक उप० २.१.१

काशी निवासियों को 'काशि' और काशी के राजा को 'काश्य' कहते थे। बृहदारण्यक उपनिषद् में अजातशत्रु को काशी का राजा बताया गया है।

१३. कीकट- ऋग्वेद में कीकट जनपद का उल्लेख है।[1] यह विपाश (व्यास) और शुतुद्री (सतलज) नदी के पास कोई अनार्यों का निवास स्थान था। यहाँ पर गायों की बहुलता थी।

१४. चेदि- ऋग्वेद में चेदिराज कशु के दान का गुणगान है।[2] 'चेदि' बुन्देलखण्ड का एक भाग था।

१५. विदर्भ- जैमिनीय ब्राह्मण में विदर्भ नाम आया है।[3] यह वर्तमान बरार जनपद माना जाता है।

१६. मत्स्य- शतपथ और गोपथ ब्राह्मण में मत्स्य देश का नाम आया है।[4]

१७. कौशाम्बी और वरणावती- ब्राह्मण ग्रन्थों में कौशाम्बी और वरणावती (वरुणा नदी) के किनारे काशी-नरेशों की राजधानी का उल्लेख है।

१८. काम्पिल- यह पंचाल राजाओं की राजधानी (वर्तमान कंपिल) थी।[5]

१९. नैमिष- काठक संहिता और छान्दोग्य उपनिषद् में इसका उल्लेख है।[6] यह प्रसिद्ध नैमिषारण्य (वर्तमान निमिसार) है।

२०. पंचजन- वेदों में अनेक बार 'पंचजन' का उल्लेख है, 'पंचजना मम होत्रं जुषध्वम्' (ऋग्० १०.५३.४)। ऐतरेय ब्राह्मण ने इस विषय को स्पष्ट किया है।[7] इसका अभिप्राय है- पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण के राजा एवं प्रजा तथा 'ध्रुवा मध्यमा प्रतिष्ठा' अर्थात् मध्यदेश कुरु-पंचाल। इस प्रकार पंचजन में सारी प्रजा का प्रतिनिधित्व हो जाता था। सायण ने पंचजन में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद को लिया है। प्रो० रोठ और गेल्डनर ने आर्यों को मध्य में रखकर चारों दिशाओं के चार जनों को लेकर 'पंजजन' बनने का उल्लेख किया है।[8]

(ख) सामाजिक जीवन

वैदिक साहित्य में समाजशास्त्रीय सामग्री बहुत अधिक है। यहाँ विस्तृत विवेचन अभीष्ट नहीं है, अतः मुख्य विषय बहुत संक्षेप में प्रस्तुत किए जा रहे हैं-

---

१. किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावः। ऋग्० ३.५३.१४
२. ऋग्० ८.५.३७
३. जैमि० ब्रा० २.४४२
४. शत० १३.५.४९। गोपथ० १.२.९
५. तैत्ति० सं० ७.४.१९.१
६. काठक सं० १०.६। छान्दोग्य उप० १.२.१३
७. ऐत ब्रा० ८.३.१४
८. डॉ० सूर्यकान्त, वैदिक कोश, पृ० २५५

१. वर्ण-व्यवस्था

वर्ण-व्यवस्था का सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद में प्राप्त होता है।[१] यजुर्वेद और अथर्ववेद में चारों वर्णों का उल्लेख अनेक बार हुआ है। यजुर्वेद में इन चारों वर्णों के कर्तव्यों का बहुत सुन्दर वर्णन हुआ है।

ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रम्। यजु० ३०.५

अर्थात् १. ब्राह्मण का कर्तव्य है- ब्रह्मन्, ज्ञान, शिक्षा और धर्म-सम्बन्धी सभी कार्य, २. क्षत्रिय का कर्तव्य है- क्षत्र, राष्ट्र और देश की सुरक्षा, ३. वैश्य का कर्तव्य है- मरुत्, मरुत् देवों की तरह देश-देशान्तर से व्यापार और धन की वृष्टि करना, राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को सँभालना, ४. शूद्र का कर्तव्य है-तपस्, श्रमसाध्य सभी कार्य, शिल्प आदि। अथर्ववेद में ब्रह्मगवी के प्रसंग में ब्राह्मण के इन गुण-कर्मों का उल्लेख है-श्रम, तपस्या, ज्ञान, सत्य, श्री, यश, श्रद्धा, दीक्षा और यज्ञनिष्ठा।[२] अथर्ववेद में निर्देश है कि आवश्यकता पड़ने पर ब्राह्मणों को भी धनुष रखने, शस्त्रास्त्र चलाने और शत्रुओं को नष्ट करने का अधिकार है।[३]

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि वैदिक वर्णव्यवस्था 'कर्मणा' थी। यह गुण और कर्म पर आश्रित थी। इसका आधार वृत्ति या पेशा था, न कि 'जन्मना' जन्म से। कोई भी शिक्षाक्षेत्र को चुनने वाला ब्राह्मण हो सकता था और सैन्य-सेवा से संबद्ध होने पर क्षत्रिय। तपोबल के आधार पर विश्वामित्र को ब्रह्मर्षि माना गया और वे ऋग्वेद के वैदिक ऋषियों में मान्य हुए।

वैदिक काल में चारों वर्णों में सामंजस्य, प्रेम और सद्भाव था। ऊँच-नीच, छोटे-बड़े, स्पृश्य-अस्पृश्य आदि के भाव सर्वथा नहीं थे। चारों वर्णों को वेदाध्ययन का अधिकार था।[४] अतएव यजुर्वेद और अथर्ववेद में चारों वर्णों की सुख-समृद्धि और तेजस्विता की प्रार्थना की गई है।[५] चारों वेदों में जाति-व्यवस्था, जातिप्रथा या जन्मना जाति का उल्लेख नहीं है।

---

१. ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ।। ऋग्० १०.९०.१२। यजु० ३१.११

२. श्रमेण तपसा सृष्टा ब्रह्मणा वित्ता-ऋते श्रिता।
सत्येनावृता श्रिया प्रावृता यशसा परीवृता।
श्रद्धया पर्यूढा दीक्षया गुप्ता यज्ञे प्रतिष्ठिता ।। अथर्व० १२.५.१ से ३

३. तीक्ष्णेषवो ब्राह्मणा हेतिमन्तो यामस्यन्ति शरव्यां न सा मृषा। अथर्व० ५.१८.९

४. यथेमां वाचं कल्याणीमा वदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च०। यजु० २६.२

५. (क) रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु, रुचं राजसु नस्कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु, मयि धेहि रुचा रुचम् ।। यजु० १८.४८

(ख) प्रियं मा कृणु देवेषु, प्रियं राजसु मा कृणु।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ।। अथर्व० १९.६२.१

वेदों में ब्राह्मण के लिए ब्राह्मण, ब्रह्मन्, विप्र (विप्-बुद्धि, र-युक्त अर्थात् बुद्धिमान् या ज्ञानी) और देव शब्दों का प्रयोग है। क्षत्रिय के लिए क्षत्र, क्षत्रिय और राजन्य शब्द हैं। वैश्य के लिए वैश्य, विश्, अर्य, समर्य (संम् + अर्य, समृद्ध वैश्य) शब्दों का प्रयोग है।

वेदों में कुछ रोचक प्रसंग हैं। उनमें विप्रराज्य (ब्राह्मण-राज्य) और समर्य-राज्य (वैश्य-राज्य, समृद्ध वैश्यों का राज्य) का उल्लेख है। ऋग्वेद और अथर्ववेद में विप्रराज्य का उल्लेख है और कहा गया है कि यह समुद्र की तरह फैला हुआ था। इसमें यज्ञ और धार्मिक क्रियाकलाप पर विशेष बल दिया जाता था।[१] समर्यराज्य के विषय में कहा गया है कि यह महान् या उत्कृष्ट था। इसमें धनधान्य की समृद्धि और सैन्यशक्ति प्रबल थी।[२] कुछ न्यूनताओं के कारण ये दोनों शासन-पद्धतियाँ लोकप्रिय नहीं हुईं और समाप्त हो गईं।

उल्लेखनीय है कि वेदों में शूद्रों को समानता का अधिकार दिया गया है। उन्हें कहीं भी हीन या निकृष्ट नहीं माना गया है। उन्हें वेद पढ़ने का अधिकार दिया गया है।[३] उनको राजकृत् अर्थात् राजा के निर्वाचकों में स्थान दिया गया है। इनमें रथकार (बढ़ई), कर्मार (शिल्पी), सूत (सारथि) शूद्र वर्ग से हैं।[४] इसी प्रकार रत्नियों (राज्य-संचालकों) में भी तक्षा (बढ़ई), रथकार (बढ़ई, शिल्पी) और सूत को स्थान दिया गया है।[५] ये सभी शूद्रवर्ग से संबद्ध हैं।

२. आश्रम-व्यवस्था

वेदों में आश्रम-व्यवस्था का उल्लेख मिलता है। ब्रह्मचर्य और गृहस्थ आश्रम के विषय में बहुत सामग्री मिलती है। वानप्रस्थ और संन्यास के विषय में बहुत कम सामग्री उपलब्ध है।

ब्रह्मचर्य आश्रम- यह उपनयन संस्कार से प्रारम्भ होकर समावर्तन संस्कार के साथ समाप्त होता था। उपनयन संस्कार (जनेऊ-धारण) शिक्षारम्भ का प्रतीक था। इस संस्कार के बाद शिष्य और शिष्याएँ वेद और शास्त्रों का अध्ययन करते थे। बालकों के तुल्य ही बालिकाओं का भी यज्ञोपवीत होता था। वे भी मेखला पहनती थीं।[६] बालिकाओं को गृहकार्य और ललित कलाओं की शिक्षा देकर सुयोग्य गृहिणी बनाया जाता था। जिस

---

१. अयं....समुद्र इव पप्रथे।....शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये। ऋग्० ८.३.४। अथर्व० २०.१०४.२

२. अनु.....मदामसि, महे समर्यराज्ये। ऋग्० ९.११०.२

३. यथेमां वाचं कल्याणीम् ......शूद्राय चार्याय च। यजु० २६.२

४. ये धीवानो रथकाराः, कर्मारा ये मनीषिणः।
ये राजानो राजकृतः सूता ग्रामण्यश्च ये ।। अथर्व० ३.५.६ और ७

५. अराजानो राजकृतः सूतग्रामण्यः। शत० ३.४.१.७
तक्षरथकारयोर्गृहे। मैत्रा०सं० २.६.५

६. (क) पुराकल्पे तु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते।
(ख) पत्न्यै व्रतोपनयनम्। तैत्ति० ब्रा० ३.३.३.२

प्रकार विवाह से पूर्व बालकों को ब्रह्मचर्य का पालन करना पड़ता था, उसी प्रकार बालिकाएँ भी ब्रह्मचारिणी रहती थीं।[१] वेदों में ब्रह्मचर्य एवं संयम पर बहुत बल दिया गया है। केवल बालक और बालिका ही नहीं, अपितु आचार्य के लिए भी अनिवार्य था कि वह पूर्ण संयमी हो।[२] यज्ञोपवीत के तीन धागे तीन ऋणों के प्रतीक हैं। ये ३ ऋण हैं- १. ऋषि-ऋण, २. देव-ऋण, ३. पितृ-ऋण। तैत्तिरीय संहिता में कहा गया है कि मनुष्य पर ये तीन ऋण जन्म से ही होते हैं।[३] इन्हें उतारना उसका कर्तव्य है। इन्हें उतारने का प्रकार यह है-१. ब्रह्मचर्य-पालन और ज्ञान-प्रसार से ऋषि-ऋण उतरता है। २. यज्ञ करने से देव-ऋण उतरता है। ३. माता-पिता ही सेवा और उत्तम सन्तान को जन्म देने से पितृ-ऋण उतरता है।

ब्रह्मचर्य के नियमों में मुख्य हैं- संयमी और तपस्वी जीवन बिताना, भोग-विलास की सामग्री से दूर रहना तथा अनुशासित दिनचर्या। यह कठोर अनुशासित जीवन ही उनके भावी जीवन को सुखमय बनाता है। बालक स्नातक होने पर विवाह करते थे, कुछ आजीवन ब्रह्मचारी रहते थे। इसी प्रकार बालिकाएँ भी स्नातक होकर कुछ विवाह कर लेती थीं, उन्हें 'सद्योद्वाहा' कहते थे और कुछ आजन्म ब्रह्मचारिणी रहती थीं, उन्हें 'ब्रह्मवादिनी' कहा गया है। ये तपोमय जीवन बिताते हुए शास्त्रचर्चा में मग्न रहती थीं। ऐसी ब्रह्मवादिनी नारियों में गार्गी, मैत्रेयी आदि उल्लेखनीय हैं।

गृहस्थ आश्रम- विवाह के पश्चात् गृहस्थ आश्रम प्रारम्भ होता है। वेदों में गृहस्थ-दम्पती के कर्तव्यों का बहुत विस्तार से वर्णन है। पति के कर्तव्यों में उल्लेखनीय बातें ये हैं- पत्नी के भरण-पोषण का पूर्ण उत्तरदायित्व निभाना, परिवार की उन्नति की व्यवस्था करना, सन्तान की सुशिक्षा का प्रबन्ध करना, संयमी जीवन बिताना। पत्नी के कर्तव्यों में विशेष उल्लेखनीय बातें ये हैं-ऋग्वेद का कथन है कि 'जायेदस्तम्' अर्थात् जाया-पत्नी, इत् -ही, अस्तम्- घर है।[४] इसको ही संस्कृत में कहा गया है-'न गृहं गृहम् इत्याहुः, गृहिणी गृहमुच्यते' घर को घर नहीं, अपितु गृहिणी को गृह कहते हैं। घर की पूरी व्यवस्था सँभालना पत्नी का कर्तव्य है। वह बड़ों की सेवा करे, पति की आवश्यकताएँ पूरी करे, सन्तान का भरण-पोषण और शिक्षा की व्यवस्था करे। वह परिवार की स्वामिनी होती है, अतः उसे गृहस्वामिनी, गृहलक्ष्मी, सम्राज्ञी आदि कहा गया है। सास-ससुर भी उसका कहना मानने को बाध्य हैं।

अथर्ववेद में पारिवारिक जीवन को सुखद बनाने के लिए कुछ सुन्दर उपदेश दिए हैं। संक्षेप में वे ये हैं- पति-पत्नी सदा उद्यमशील हों, नवीन उद्योग करें, उद्यमी को ही इस

---

१. ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्। अथर्व० ११.५.१८

२. आचार्यो ब्रह्मचारी०। अथर्व० ११.५.१६

३. जायमानो ह वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणैर्ऋणवान् जायते। ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्य एष वा अनृणः। तैत्ति० सं ६.३.१०.५

४. जायेदस्तम्। ऋग्० ३.५३.४

संसार में सुख मिलता है।[१] परिवार में मधुरता का वातावरण हो, परस्पर मधुर वचन बोलें।[२] हास्य और आमोद का वातावरण हो।[३] पति-पत्नी सुशिक्षित हों और व्यवहार-कुशल हों। पत्नी विदुषी, तेजस्विनी और वक्ता हो।[४] भाई-बहिनों और भाई-भाईयों में द्वेष न हो।[५] बालक माता-पिता के आज्ञाकारी हों।[६] पत्नी पति की आज्ञाकारिणी हो और पति से सदा मधुर वचन बोले।[७] घर की सुरक्षा के विषय में दोनों सदा सावधान रहें।[८] अधिक विषय-भोग में न फँसें।[९]

वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम- वेदों में इस विषय की सामग्री अत्यल्प है। भिक्षुक, परिवाजक आदि शब्द वेदों में नहीं हैं। यति, मुनि और मुमुक्षु शब्दों का भी प्रयोग दो-तीन बार है।[१०] यति शब्द का सम्बन्ध यम्-धातु से है। संयमी जीवन बिताने वाले को यति कहते थे। मुनि का सम्बन्ध मनन से है। जो मनन, चिन्तन और स्वाध्याय में मग्न रहते थे, उन्हें मुनि कहा जाता था। अथर्ववेद में 'मुनिकेशम्' शब्द आया है।[११] इससे ज्ञात होता है कि मुनि जटा रखते थे। संन्यासी मोक्ष के लिए प्रयत्नशील रहता था, अतः उसे मुमुक्षु (मुक्ति का इच्छुक) कहा गया है।

३. वेदों में नारी का गौरव

वेदों में नारी को बहुत आदरणीय स्थान दिया गया है। वह पुरुष की सहयोगी और सहायक है। 'जायेदस्तम्' (ऋग्० ३.५३.४) स्त्री को ही घर कहा गया है। विवाह के पश्चात् उसे पतिगृह में गृहपत्नी, गृहस्वामिनी का अधिकार प्राप्त होता है।[१२] एक ओर उसे पति, सास-ससुर आदि की सेवा-शुश्रूषा तथा उनकी देखरेख का उत्तरदायित्व दिया जाता है, तो दूसरी ओर उसे गृहस्वामिनी के रूप में सास-ससुर, ननद आदि की सम्राज्ञी (स्वामिनी) कहा गया है।[१३]

---

१. अन्वारभेथाम्........एतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते। अथर्व० ६.१२२.३
२. मधुमतीं वाचम् उदेयम्। अथर्व० १६.२.२
३. हसामुदौ महसा मोदमानौ। अथर्व० १४.२.४३
४. अहं केतुरहं मूर्धाऽहमुग्रा विवाचनी। ऋग्० १०.१५९.२
५. मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षत्, मा स्वसारमुत स्वसा। अथर्व० ३.३०.३
६. अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः। अथर्व० ३.३०.२
७. (क) पत्युरनुव्रता भूत्वा० प्रियवादिनी-अनुव्रता। अ० १४.१.४२; ३.२५.४
(ख) जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्। अ० ३.३०.२
८. स्वे गये जागृहि-अप्रयुच्छन्। अ० २.६.३
९. मा शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतं नः। ऋग्० ७.२१.५
१०. यतिभ्यः, अथर्व० २०.९.३; २०.४९.६। मुनेः अ० ७.७४.१; मुनीनाम्, ऋग्० ८.१७.१४; मुमुक्ष्वः, ऋग्० १.१४०.४। मुमुक्षुः श्वेता० उप० ६.१८
११. अथर्व० ८.६.१७
१२. गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासः। ऋग्० १०.८५.२५
१३. सम्राज्ञी श्वशुरे भव, सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव, सम्राज्ञी अधि देवृषु॥ ऋग्० १०.८५.४६

स्त्री सहधर्मिणी होती है। उसे अर्धांगिनी कहते हैं।[१] इसलिए पत्नी के बिना यज्ञ अपूर्ण माना जाता है।[२] ऋग्वेद में स्त्री का गौरव बताते हुए उसे 'ब्रह्मा' कहा गया है।[३] इसका अभिप्राय यह है कि वह ज्ञान में उत्कृष्ट होती है। वह बालकों के शिक्षण के अतिरिक्त यज्ञ में भी ब्रह्मा का स्थान ग्रहण कर सकती है और विभिन्न संस्कार करा सकती है। वेदों में इन्द्राणी को आदर्श नारी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। उसका कथन है कि मैं समाज में मूर्धन्य हूँ। मैं अग्रगम्य हूँ और मैं प्रखर वक्ता हूँ।[४] इन्द्राणी का ही कथन है कि कोई मुझे अबला न समझे, मैं सबला हूँ और वीरपुत्रों की जननी हूँ।[५]

वेदों में नारियों के शौर्य की बहुत चर्चा है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में इन्द्राणी को सेना की देवता कहा गया है। साथ ही यह भी कहा गया है कि ऐसा करने से सेना के शौर्य में निखार आता है।[६] इन्द्राणी को सेनानी बताते हुए कहा गया है कि वह अजेय और अधृष्य है।[७] इन्द्राणी के लिए कहा गया है कि वह शत्रुसेना को काटती हुई आगे बढ़ती है।[८] ऋग्वेद में स्त्री-सेना का भी उल्लेख है। असुरों ने स्त्री-सेना को आगे किया।[९] ऋग्वेद में वर्णन है कि शत्रुओं से युद्ध करते हुए विश्पला का पैर कट गया था। अश्विनीकुमारों ने उसे नकली लोहे की टाँग लगा दी और वह फिर युद्ध में भाग ले सकी।[१०] इसी प्रकार मुद्गलानी (मुद्गल की पत्नी) के लिए कहा गया है कि उसने असुरों से युद्ध करके गायें छुड़ा लीं।[११]

अथर्ववेद में वर्णन है कि स्त्री पति के साथ सामूहिक यज्ञों और युद्धों में जाती थी।[१२] मंत्र में 'समन' शब्द का प्रयोग है। इसके दो अर्थ हैं- सभा या समारोह और युद्ध। दोनों अर्थ यहाँ संगत हैं। ऋग्वेद और यजुर्वेद में स्त्री के लिए ये विशेषण दिए गए हैं, इनसे उनके शौर्य और गौरव पर प्रकाश पड़ता है। इनमें नारी को अषाढा (अजेय), सहमाना (विजयिनी), सहस्रवीर्या (असंख्य पराक्रम वाली), असपत्ना (अशत्रु), सपत्नघ्नी

---

१. अर्धो ह वा एष आत्मनो यज्जाया। शत० ५.२.१.१०

२. अयज्ञो वा ह्येष योऽपत्नीकः। तैत्ति० ब्रा० २.२.२.६

३. स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ। ऋग्० ८.३३.१९

४. अहं केतुरहं मूर्धाऽहमुग्रा विवाचनी। ऋग्० १०.१५९.२

५. अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते।
उताहमस्मि वीरिणी०। अथर्व० २०.१२६.९

६. इन्द्राणी वै सेनायै देवता। सैवास्य सेनां संश्यति। तैत्ति० सं० २.२.८.१

७. इन्द्राण्येतु प्रथमाऽजीताऽमुषिता पुरः। अथर्व० १.२७.४

८. विषूच्येतु कृन्तती, पिनाकमिव बिभ्रती। अथर्व० १.२७.२

९. स्त्रियो हि दास आयुधानि चक्रे। ऋग्० ५.३०.९

१०. सद्यो जंघाम् आयसीं विश्पलायै...प्रत्यधत्तम्। ऋग्० १.११६.१५

११. रथीरमूद् मुद्गलानी गविष्टौ० अजयत् सहस्रम्। ऋग्० १०.१०२.२

१२. संहोत्रं स्म पुरा नारी समनं वाव गच्छति। अथर्व० २०.१२६.१०

(शत्रुनाशक), जयन्ती (विजेता), अभिभूवरी (हरा देने वाली) आदि कहा गया है।[१]

वेदों में मंत्रद्रष्टा ऋषि के रूप में भी उनका योगदान स्पृहणीय है। ४२२ मंत्रों की द्रष्टा ऋषिकाएँ हैं।[२] इनमें विशेष उल्लेखनीय ये हैं- इन्द्राणी, शची, अपाला, घोषा काक्षीवती, लोपामुद्रा, श्रद्धा कामायनी, वाग् आम्भृणी, सूर्या सावित्री, विश्ववारा आत्रेयी, उर्वशी, अदिति।

४. विवाह

ऋग्वेद और अथर्ववेद के विवाह सूक्तों में विवाह से संबद्ध अनेक तथ्यों का वर्णन है।[३] वेदों में बाल-विवाह निषिद्ध है। विवाह वर और कन्या के पूर्ण यौवन को प्राप्त करने पर ही होता था। विवाह माता-पिता की स्वीकृति से होता था। सगोत्र-विवाह निषिद्ध था। उपर्युक्त विवाह सूक्तों में पति-पत्नी के कर्तव्यों का विस्तार से वर्णन है। वैवाहिक कृत्यों में मधुपर्क, पाणिग्रहण, अग्नि-परिक्रमा, शिलारोहण, लाजा-होम, सप्तपदी, ध्रुवदर्शन, सुमंगलीकरण मुख्य थे। वैदिक विवाह अविच्छेद्य होता था। यह जीवनभर के लिए होता था। पत्नी के लिए पतिव्रता धर्म है तो पति के लिए पत्नीव्रतत्व। दोनों जीवनभर के लिए सहचर होते हैं। एक विवाह का प्रचलन था।

राज-परिवार आदि में बहुविवाह का भी प्रचलन था।[४] शतपथ ब्राह्मण आदि में राजा की चार पत्नियों का उल्लेख मिलता है।[५] ये हैं-महिषी (राजा की मुख्य पत्नी), वावाता (राजा की द्वितीय पत्नी), परिवृक्ता (अपुत्रा या परित्यक्ता), पालागली (चतुर्थ पत्नी, दूत-पुत्री या सामान्य परिवार की)। ब्राह्मणों आदि में भी बहुविवाह के उदाहरण मिलते हैं। बृहदारण्य उपनिषद् में महर्षि याज्ञवल्क्य की दो पत्नियों, कात्यायनी और मैत्रेयी, का उल्लेख मिलता है।[६]

५. स्वयंवर

अथर्ववेद के एक मंत्र से स्वयंवर विवाह का संकेत मिलता है। मंत्र में कहा गया है कि आए हुए जनों का नाम लेता हूँ और उनमें से वृत्रहन्ता इन्द्र को चुनता हूँ।[७]

---

१. अषाढासि सहमाना......सहस्रवीर्यासि। यजु० १३.२६
असपत्ना सपत्नघ्नी जयन्ती-अभिभूवरी। ऋग्० १०.१५९.५
२. विवरण के लिए देखें, लेखक-कृत 'वेदों में नारी' भूमिका पृ० ५
३. ऋग्वेद १०.८५.१ से ४७। अथर्व० १४ सूक्त १ और २
४. पतिं न नित्यं जनयः सनीडाः। ऋग्० १.७१.१
जनीरिव पतिरेकः समानः। ऋग्० ७.२६.३
५. चतस्रो जाया उपक्लृप्ता भवन्ति। महिषी, वावाता, परिवृक्ता, पालागली। शत० १३.४.१.८
६. बृहदा० उप० ४.५.१
७. आगच्छत आगतस्य नाम गृह्णाम्यायतः।
इन्द्रस्य वृत्रघ्नो वन्वे०। अथर्व० ६.८२.१

इससे ज्ञात होता है कि स्वयंवर में आए हुए प्रार्थियों का नाम लेकर उनका परिचय दिया जाता था और कन्या उनमें से किसी एक को अपना पति चुनती थी। ऋग्वेद में इसी प्रकार के एक स्वयंवर का वर्णन है। राजा पुरुमित्र की कन्या शुन्ध्यु या कमद्यु ने स्वयंवर-सभा में विमद ऋषि को अपना पति चुना था।[१] विवाह करके लौटते समय कुछ अन्य राजाओं ने विमद पर आक्रमण किया था। अश्विनाकुमारों की सहायता से विमद को विजय प्राप्त हुई थी।

६. विधवा-विवाह

वेदों में विधवा-विवाह का समर्थन प्राप्त होता है। अथर्ववेद के एक मंत्र में कहा गया है कि पति की मृत्यु के बाद पत्नी सन्तान के लिए और अपने जीवन-निर्वाह के लिए नवीन पति से विवाह कर सकती है।[२] ऋग्वेद में कहा गया है कि हे नारी! मृत पति को छोड़कर, विवाह के इच्छुक दूसरे पति को स्वीकार करो।[३] अथर्ववेद में एक मंत्र में सम्बन्ध-विच्छेद करके दूसरे पति से विवाह करने का उल्लेख है। इसमें पुनर्विवाह करने वाली स्त्री को 'पुनर्भू' कहा गया है।[४] इससे ज्ञात होता है कि स्वभाव या आचार-विचार में विरोध होने पर सम्बन्ध-विच्छेद करके पुनर्विवाह किया जा सकता था।

७. शिक्षा-पद्धति

शिक्षा का उद्देश्य- प्राचीन शिक्षा का उद्देश्य था- शिष्य का सर्वांगीण विकास। उसकी ज्ञान-ज्योति को प्रबुद्ध करना, उसे प्रखर से प्रखर बनाना और उसके जीवन को सर्वथा सौभाग्यशाली बनाना।[५] विद्या के साथ ही व्युत्पत्ति (सुमति, विवेक) का भी समन्वय हो, अतः कहा गया है कि सरस्वती के साथ धी (विवेक) भी हो।[६] इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वेद ने दो साधन बनाए हैं- तप (कठोर अनुशासन, Discipline) और दीक्षा (समर्पण, Dedication)।[७] कठोर अनुशासन और आत्मसमर्पण ही इस उद्देश्य की पूर्ति कर सकता है।

प्राचीन शिक्षा-पद्धति में संयम और चरित्र को बहुत महत्त्व दिया गया है। गुरु और शिष्य दोनों के लिए यह अनिवार्य गुण बताया गया है।[८] वेदों में धी (बुद्धि, Power

---

१. युवं रथेन विमदाय शुन्ध्युवं न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषणाम्। ऋग्० १०.३९.७

२. इयं नारी पतिलोकं वृणाना....तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि। अथर्व० १८.३.१

३. हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूव। ऋग्० १०.१८.८

४. समानलोको भवति पुनर्भुवापरः पतिः। अ० ९.५.२८

५. वर्धयैनं ज्योतयैनं महते सौभगाय।
संशितं चित् संतरं शिशाधि।। अथर्व० ७.१६.१

६. शं सरस्वती सह धीभिरस्तु। अथर्व० १९.११.२

७. भद्रमिच्छन्त ऋषयः, तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे। अथर्व० १९.४१.१

८. आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणमिच्छते। अथर्व० ११.५.१६ और १७

of learning), मेधा (धारणा शक्ति, Power of retention), सुमति (विवेक, Power of discrimination) को शिक्षा का आधार माना है, अतः अनेक मंत्रों में इनकी प्रार्थना की गई है।[1] एक मंत्र में इससे आगे जाकर 'ऋतम्भरा प्रज्ञा' का उल्लेख किया गया है और इससे सूर्यवत् तेजस्विता प्राप्त होने का उल्लेख है।[2] 'ऋतम्भरा प्रज्ञा' योगियों और महर्षियों को ही प्राप्त हो पाती है। शिक्षा के विषयों को देखने से ज्ञात होता है कि इसमें शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक सभी शक्तियों के विकास का समावेश है। प्राणायाम, योगविद्या, शस्त्रास्त्र विद्या, मल्ल विद्या, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गणित, ज्योतिष आदि सभी शिक्षा के विषय थे।

शिक्षा के विषय-अथर्ववेद, गोपथ ब्राह्मण और छान्दोग्य उपनिषद् में इन विद्याओं का उल्लेख हुआ है। छान्दोग्य की सूची सबसे बृहत् है।[3] इसमें इन विषयों का उल्लेख हुआ है-१. ऋग्वेद, २. यजुर्वेद, ३. सामवेद, ४. अथर्ववेद, ५. इतिहास (History), ६. पुराण (पुरातत्त्व, Archaeology), ७. वेदांग (शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, व्याकरण), ८. पितृविद्या (नृवंश-विज्ञान, Anthropology), ९. राशि-विद्या (गणितशास्त्र, Maths), १०. दैव-विद्या (वर्षाविज्ञान आदि, Meteorology), ११. निधिविद्या (खनिजशास्त्र, Mineralogy), १२. वाकोवाक्य (विधि एवं तर्कशास्त्र, Law & Logic), १३. एकायन (नीतिशास्त्र, Ethics), १४. देवविद्या (देवशास्त्र, Mythology), १५. ब्रह्मविद्या (अध्यात्म, Spiritual Science), १६. भूतविद्या (जन्तुशास्त्र, Zoology), १७. क्षत्रविद्या (शस्त्रविद्या, Military Science), १८. नक्षत्र-विद्या (ज्योतिष, Astronomy), १९. सर्पविद्या (विष-विज्ञान, Toxicology), २०. देवजनविद्या (गन्धर्वविद्या, Music)।

इस विषयसूची से ज्ञात होता है कि शिक्षा का क्षेत्र महान् है। प्रत्येक मनुष्य कुछ चुने हुए विषय ही पढ़ सकता है।

निरुक्तकार यास्क ने उल्लेख किया है कि विद्या बहुमूल्य निधि है। यह योग्य, जिज्ञासु, संयमी, अप्रमादी, मेधावी, गुरुभक्त एवं व्युत्पन्न शिष्यों को ही दी जाय, अयोग्यों को नहीं, तभी यह फलवती होगी।

यमेव विद्याः शुचिमप्रमत्तं मेधाविनं ब्रह्मचर्योपपन्नम् (निरुक्त २.४)

८. अन्न-पान (भोज्य एवं पेय पदार्थ)

यजुर्वेद और तैत्तिरीय संहिता में इन १२ अन्नों का उल्लेख है[4]-१. व्रीहि

---

१. अथर्व० ६.४.३। ६.१०८.२। १७.१.७

२. मेधाम् ऋतस्य जग्रभ। अहं सूर्य इवाजनि। अ० २०.११५.१

३. ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदम् आथर्वण चतुर्थम् इतिहासपुराणं पंचमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यम् एकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां सर्पदेवजनविद्याम् एतद् भगवोऽध्येमि। छान्दो० उप० ७.१.२

४. व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे०। यजु० १८.१२। तैत्ति० ४.७.५

(धान), २. यव (जौ), ३. माष (उड़द), ४. तिल (तिल), ५. मुद्ग (मूँग), ६. खल्व (चना), ७. प्रियंगु (कंगुनी), ८. अणु (पतला या छोटा चावल), ९. श्यामाक (साँवा), १०. नीवार (कोदों या तिन्नी धान), ११. गोधूम (गेहूँ), १२. मसूर (मसूर)। तैत्तिरीय संहिता में ४ अन्य अनाजों के नाम भी मिलते हैं[1]-१. कृष्ण व्रीहि (काला धान, बगरी धान), २. आशु व्रीहि (साठी धान), ३. महाव्रीहि (संभवतः बासमती चावल), ४. गवीधुक (जंगली गेहूँ, गड़हेरुआ या गोभी)।

भोज्य पदार्थ- भोज्य पदार्थों में घृत, दुग्ध, दधि और नवनीत (मक्खन) के अतिरिक्त इन पदार्थों का उल्लेख मिलता है-अपूप (पूआ), स्थालीपाक (मिष्टान्न, हलुआ आदि), मधुपर्क, धानाः (धान की लाई), सक्तु (सत्तू), करम्भ (जौ की लप्सी), आमिक्षा (गाढ़ी दही), परीवाप (भुने दाने), क्षीरौदन (खीर), मुद्गौदन (मूँग की खिचड़ी), पक्ति (रोटी, लिट्टी), मधु (शहद), गव्य (गाय के दूध से बनी वस्तुएँ), मन्थ (मट्ठा, तक्र), पुरोडाश (चावल के आटे का लड्डू), इक्षु (गन्ना), इक्षुरस (गन्ने का रस), खल्व (भुने चने)।

अथर्ववेद में दूध-दही आदि से बने व्यंजनों के लिए ये नाम दिए हैं[2]-क्षीरवान्, दधिवान्, द्रप्सवान् (दही के घोल से बने व्यंजन), रसवान् (रसीले व्यंजन), मधुमान् (मधु मिलाकर बने व्यंजन), मधुपर्क (घी, शहद या दही मिश्रित भोज्य)। सोमरस में दूध, दही और जौ का सत्तू मिलाकर पेय बनाए जाते थे, इन्हें 'आशिर्' कहते थे। दूध-मिश्रित को गवाशिर्, दही-मिश्रित को दध्याशिर् और जौ के सत्तूमिश्रित को यवाशिर् कहते थे। इनका सामूहिक नाम 'त्र्याशिर्' था।

दालों में मुद्ग (मूँग), माष (उड़द) और मसूर की दालें चलती थीं। यव (जौ) का प्रचलन अधिक था, गोधूम (गेहूँ) का कम। गेहूँ का नाम बहुत कम आया है।

पेय पदार्थ- पेय पदार्थों में सोम और गव्य दूध-दही-मट्ठा मुख्य थे। सुरा असुरों के पेय में थी। ओषधि के रूप में भी इसका प्रयोग होता था। ऋग्वेद (७.८६.६) में सुरा को द्यूत आदि तुल्य हेय और त्याज्य बताया गया है।

फल-वेदों में इन फलों का उल्लेख है[3]-बिल्व (बेल), उदुम्बर (गूलर), पीलु (पंजाबी में पिलकना), कर्कन्धु (बेर), उर्वारुक या उर्वारू (ककड़ी, खरबूजा या तरबूज), पिप्पल (पीपल का फल), कुवल (बेर)।

९. वस्त्र और परिधान

वेदों से ज्ञात होता है कि वैदिक काल में वस्त्र-उद्योग पर्याप्त उन्नत अवस्था में

---

१. कृष्णानां व्रीहीणाम्० । तैत्ति० १.८.१०.१

२. अथर्व० १८.४.१६ से २४

३. इस अध्याय के सन्दर्भों के लिए देखें, लेखककृत-अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन, अध्याय २, ३ और ४

था। वस्त्र बनाने का काम अधिकांशतः स्त्रियाँ करती थीं। त्रे पति और पुत्रों के लिए वस्त्र बनाती थीं। वेदों में तीन प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख है- सूती, रेशमी और ऊनी। सूती वस्त्र के लिए 'वासस्' शब्द है।[१] रेशमी वस्त्र के लिए 'तार्प्य' शब्द है।[२] यह तृपा नामक पौधे के तन्तुओं से बनता था। गोल्डस्टूकर और एग्लिंग ने भी तार्प्य का अर्थ क्षौम वस्त्र या रेशमी वस्त्र लिया है।[३] ऊनी वस्त्र के लिए 'ऊर्णायु' शब्द है।[४] ऋग्वेद और यजुर्वेद में ऊन के कोमल वस्त्रों के लिए 'ऊर्णम्रदस्' शब्द का प्रयोग हुआ है।[५]

साधारणतया प्राचीनकाल में दो वस्त्रों का व्यवहार होता था-वासस् (अधोवस्त्र) और 'अधिवास' (ऊपरी भाग को ढकने वाला वस्त्र)। अधिवास को 'अधीवास' भी कहते थे।[६] ऊपर से डाले जाने वाले दुपट्टा या चादर को 'अधिवस्त्र' कहते थे।[७] यह अधिवस्त्र बहुएँ आदि अपने वस्त्रों के ऊपर से डालती थीं। ओढ़ने के काम आने वाली हल्की चादर के लिए 'पर्याणहन' शब्द है।[८] 'नीविं करोति' जैसे वाक्य नीवि शब्द से अन्तर्वस्त्र (या पेटीकोट) का भाव प्रकट करते हैं। स्त्रियाँ ऐसे अन्तर्वस्त्र पहनती थीं। शरीर के ऊपरी भाग को ढकने के लिए दो प्रकार थे-१. ढीला चोगे जैसा कपड़ा (रैपर) पहनना। इसके लिए 'पर्याणहन, अधिवास और उपवासन' शब्द थे। २. दूसरा प्रकार था-शरीर से चिपकने वाला कुर्ते आदि के तुल्य वस्त्र पहनना। इसके लिए 'प्रतिधि' और 'अत्क' शब्द मिलते हैं। ये सिले हुए वस्त्र होते थे। 'द्रापि' शब्द चोगे के लिए आया है। इस पर सोने के तार का काम भी होता था, अतः उसे 'हिरण्यद्रापि' कहते थे।[९] बेल-बूटे कढ़े हुए परिधान को 'पेशस्' कहते थे। ऋग्वेद और अथर्ववेद में इसका उल्लेख है। ऋग्वेद में 'हिरण्यपेशस्' शब्द का प्रयोग है। इन वस्त्रों पर सोने के तार का काम होता था। ऐसे वस्त्रों को दम्पती पहनते थे।[१०] यजुर्वेद में सोने के तार का काम करने वाली और बेल-बूटे काढ़ने वाली स्त्रियों को 'पेशस्कारी' कहा गया है।[११]

ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञ आदि के अवसर पर यजमान को मृगचर्म और कुशा से

---

१. वाससः। अ० १४.१.२७
२. वसानस्तार्प्यं चर। अ० १८.४.३१
३. सूर्यकान्त, वैदिक कोश, पृ० १७२
४. इमम् ऊर्णायुम् ०। यजु० १३.५०
५. ऊर्णम्रदाः०। ऋग्० ५.५.४। ऊर्णम्रदसम्। यजु० २.२
६. अधीवासं परि मातू०। ऋग्० १.१४०.९
७. अधिवस्त्रा वधूरिव। ऋग्० ८.२६.१३
८. पर्याणद्धं विश्वरूपम्। अथर्व० १४.२.१२
९. हिरण्यद्रापये०। अथर्व० ५.७.१०
१०. उभा हिरण्यपेशसा। ऋग्० ८.३१.८
११. पेशस्कारीम्०। यजु० ३०.९

बने वस्त्र पहनने का विधान है।[१] सिर पर पगड़ी बाँधने की प्रथा थी। पगड़ी के लिए 'उष्णीष' शब्द है।[२] तैत्तिरीय संहिता और शतपथ ब्राह्मण में जूते के लिए 'उपानह्' शब्द आया है।[३]

१०. आभूषण

वेदों में अनेक आभूषणों का वर्णन है। आभूषणों के दो भेद थे- १. मणिजटित, २. मणिरहित। वेदों में अनेक मणियों का वर्णन प्राप्त होता है। मणिबन्धन का बहुत महत्त्व वर्णन किया गया है।[४] मणि के लिए मणि और रत्न दोनों शब्दों का प्रयोग मिलता है। रत्न धारण करने वाले को 'रत्नधा' और 'रत्निन्' कहते थे।[५]

सुवर्ण (सोने) आदि के बने आभूषणों में ये मुख्य थे-

१. निष्क- यह सोने का आभूषण था और गले में पहना जाता था। इसे पहनने वाले को 'निष्कग्रीव' कहते थे। क्षत्ता (दूत) आदि इसे पहनते थे।[६]

२. रुक्म-यह छाती पर लटकने वाला सोने का आभूषण था। इसको पहनने वाले को 'रुक्मवक्षस्' या 'रुक्मिन्' कहते थे।[७] यह गोलाकार होता था। मरुतों को 'रुक्मवक्षसः' कहा गया है।

३. हिरण्य-अथर्ववेद में 'हिरण्यहस्तः' प्रयोग है।[८] यह हाथ में पहना जाने वाला सोने का कंकण (कंगन) आदि है।

४. प्रवर्त-यह कान में पहना जाने वाला कर्णाभरण है।[९] यह दोनों कानों में पहना जाता था। श्रौतसूत्रों में इसे कर्णाभरण कहा गया है। तैत्तिरीय संहिता में इसे कान का 'बूंदा' बताया है। ऋग्वेद में सोने के बने कर्णाभरण को 'कर्णशोभन' नाम दिया गया है।[१०]

५. मणिमाला-पुरुष और स्त्री रत्नजटित सोने की माला गले में पहनते थे। उन्हें 'मणिग्रीव' कहा जाता था।[११]

६. कार्शर्न-कृशन (मणि) जटित सोने के आभूषण को कार्शन कहते थे।[१२]

---

१. कौशं वासः परिधापयति। शत० ५.२.१.८
२. उष्णीषम्०। अथर्व० १५.२.१३
३. तैत्ति० सं० ५.४.४.४। शत० ५.४.३.१९
४. फालमणि, अथर्व० १०.६। अस्तृतमणि, अ० १९.४६
५. रत्नधाम्, अ० ७.१४.१। रत्निन्, तैत्ति० सं० १.८.९.१
६. क्षत्ता निष्कग्रीवः। अ० ५.१७.१४
७. मरुतो रुक्मवक्षसः। अ० ६.२२.२। ऋग् १.६६.६। यजु० १३.४०
८. हिरण्यहस्तः। अ० ७.११५.२
९. हरितौ प्रवर्तौ। अ० १५.२.५
१०. ऋग्० ८.७८.३
११. हिरण्येन मणिना शुम्भमानाः। ऋग्० १.३३.८। मणिग्रीवम्। ऋग्० २.१२२.१४
१२. हिरण्यजाः शंखः कृशनः०। कार्शनः। अथर्व० ४.१०.१ से ७

६. काशर्न-कृशन (मणि) जटित सोने के आभूषण को कार्शन कहते थे।[१२]

७. खादि- ऋग्वेद में यह पैर में पहना जाने वाला एक आभूषण बताया गया है। मरुत् देव इसे पैर में पहनते थे।[१]

अथर्ववेद का कथन है कि सोने और चाँदी के आभूषणों को धारण करने से मनुष्य दीर्घायु होता है और अकालमृत्यु से बचकर वृद्धावस्था तक जीवित रहता है।[२]

११. गृह-निर्माण

वेदों में गृह के अर्थ में गृह, आयतन, वास्तु, पस्त्या, हर्म्य, दुरोण आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं। ये गृह की विभिन्न विशेषताओं को बताते हैं। अथर्ववेद के दो सूक्तों (३.१२ और ९.३) में गृहनिर्माण की प्रक्रिया का बड़े विस्तार से वर्णन किया गया है। इसमें दो कमरे से लेकर १० कमरे वाले मकान के निर्माण का वर्णन है। इसमें 'उपमित' शब्द से निर्देश है कि मकान नक्शे के अनुसार हो। 'प्रतिमित' शब्द से निर्देश है कि मकान का नापतोल सर्वथा ठीक हो और 'परिमित' शब्द द्वार आदि के यथास्थान विन्यास का सूचक है।[३]

कमरे आवश्यकतानुसार दो से १० तक बनाए जाएँ।[४] मंत्र में निर्देश है कि ये कमरे अवश्य बनवाए जाएँ[५]-१. **हविर्धान** (राशन का कमरा), २. **अग्निशाला** (यज्ञशाला और रसोई), ३. **पत्नी-सदन** (पत्नी-कक्ष), ४. **सदस्** (ड्राइंग रूम), ५. **देवसदन** (अतिथि-कक्ष)।

वरुण का स्वर्ण-प्रासाद- ऋग्वेद और अथर्ववेद में वरुण के स्वर्णनिर्मित महल का उल्लेख है। यह तालाब के मध्य में बना है।[६] इसमें 'सहस्रद्वार' अर्थात् हजार दरवाजे हैं।[७] मित्र-वरुण के सभागृह में 'सहस्रस्थूण' हजार खंभे लगे थे।[८] इससे इनके प्रासाद की विशालता का अनुमान लगाया जा सकता है।

वातानुकूलित भवन- अथर्ववेद और यजुर्वेद में वातानुकूलित भवन के निर्माण का उल्लेख है। इसके लिए बताया गया है कि ऐसा भवन तालाब के बीच में बनाया जाय। भवन के चारों ओर बर्फ की पतली परत लगाई जाय। मकान के अन्दर ठंड से बचाव के लिए अग्नि की व्यवस्था की जाय।

---

१. पत्सु खादयः। ऋग्० ५.५४.११
२. अथर्व० १९.२६.१ से ३.
३. उपमितां प्रतिमितामथो परिमितामुत।
शालाया विश्ववारायाः०। अथर्व० ९.३.१
४. या द्विपक्षा, चतुष्पक्षा, अष्टापक्षां दशपक्षां शालाम्०। अथर्व० ९.३.२१
५. हविर्धानम् अग्निशालं, पत्नीनां सदनं सदः।
सदो देवानामसि देवि शाले। अथर्व० ९.३.७
६. अप्सु ते राजन् गृहो हिरण्ययः। अथर्व० ७.८३.१
७. बृहन्तं मानं वरुण स्वधावः, सहस्रद्वारं जगमा गृहं ते। ऋग्० ७.८८.५
८. राजानौ ...ध्रुवे सदस्युत्तमे। सहस्रस्थूण आसाते। ऋग्० २.४१.५

हिमस्य त्वा जरायुणा शाले परि व्ययामसि।

शीतह्रदा हि नो भुवोऽग्निष्कृणोतु भेषजम्।। अथर्व० ६.१०६.१ से ३

यजुर्वेद (१७.५ और १७.७) में भी इसी प्रकार के वातानुकूलित भवन के निर्माण का उल्लेख है। ऋग्वेद के दो मंत्रों में तीनों ऋतुओं (गर्मी, सर्दी, वर्षा) में सुखद त्रिधातु (तिमंजिले) भवन का उल्लेख मिलता है।[1] सायण ने इन मंत्रों में त्रिधातु का अर्थ 'त्रिभूमिकम्' तिमंजिला लिया है।

१२. नगर और ग्राम

वैदिक साहित्य में नगर के अर्थ में 'पुर्' और 'पुर' शब्द मिलते हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने पुर् शब्द का अर्थ दुर्ग या किला लिया है। तैत्तिरीय संहिता आदि में 'त्रिपुर' और 'महापुर' शब्द मिलते हैं।[2] त्रिपुर में संभवतः तिहरी सुरक्षा की दीवारें होती थीं। महापुर विशाल नगर के लिए है। अथर्ववेद में पुरों के निर्माता देवगण बताए गए हैं।[3] इसका अभिप्राय यह है कि देवों में भी कुछ उच्चकोटि के शिल्पी होते थे। ऋग्वेद में वर्णन है कि असुरों के किले (पुर्) पत्थर के बने होते थे। ऐसे सौ किलों को इन्द्र ने नष्ट किया।[4] अन्यत्र वर्णन है कि ऐसे ९९ पुरों को नष्ट करके इन्द्र ने वृत्र और नमुचि राक्षसों को मारा।[5]

अथर्ववेद में उल्लेख है कि लोहे के किले (पुर्) बनाए जाएँ, जिससे वे अभेद्य हों।[6] असुरों के भी लोहे के बने किले थे। इन्द्र ने असुरों के ऐसे किलों को नष्ट किया।[7] देवों के भी सोने के पुर का उल्लेख है।[8] असुरों के पास भी सोने के किले थे। इन्द्र ने उन्हें जीता था।[9] लोहे और सोने के किले से ज्ञात होता है कि उनके मुख्य द्वार लोहे और सोने के बने होते थे। उक्त वर्णनों से ज्ञात होता है कि असुर भी वास्तुविद्या में बहुत दक्ष थे।

राजाओं के महल को हर्म्य कहा जाता था। राजा वरुण और मित्र के प्रासाद का उल्लेख किया जा चुका है कि उसके राजद्वार में सौ खंभे लगे थे और उस प्रासाद में 'सहस्रद्वार' थे।

ग्राम- अनेक मंत्रों में ग्राम का उल्लेख है। ग्रामों में भी सभा और समितियाँ

---

१. (क) यद् भद्रं यदनातुरम्। त्रिधातु यद् वरूथ्यम्। ऋग्० ८.४७.५
(ख) इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत्। ऋग्० ६.४६.९

२. त्रिस्रः पुरः, तैत्ति० सं० ६.२.३.१। शत० ६.३.३.२५। ऐत० २.११
महापुरम्, तैत्ति० सं० ६.२.३.१। ऐत० १.२३.२

३. यस्याः पुरो देवकृताः। अथर्व० १२.१.४३

४. शतम् अश्मन्मयीनां पुरामिन्द्रो व्यास्यत्। ऋग्० ४.३०.२०

५. नव यत् पुरो नवतिं च सद्यः। ......वृत्रं नमुचिमुताहन्। अथर्व० २०.३७.५

६. पुरः कृणुध्वम् आयसीरधृष्टाः। अथर्व० १९.५८.४

७. हत्वी दस्यून् पुर आयसीर्नि तारीत्। ऋग्० २.२०.८

८. पुरं देवानाममृतं हिरण्यम्०। अथर्व० ५.२८.११

९. पुरोऽजयद् दानवानां हिरण्ययीः। अ० १०.६.१०

होती थीं। ग्राम-प्रधान को 'ग्रामणी' कहते थे। उसका विधिवत् अभिषेक होता था।[1] वह राजकृत् अर्थात् राजा के निर्वाचकों में एक होता था।[2] ग्रामणी का पद संमाननीय होता था। वैदिक ग्रामों में गृहशिल्पों का प्रचलन था। तक्षा (बढ़ई), कुलाल (कुम्हार), कर्मार (मिस्त्री), वप्ता (नाई), सुनार, लोहार, भिषज् (वैद्य), वासोवाय (जुलाहा), मलग (धोबी) आदि सभी ग्रामों में होते थे। स्त्रियाँ ऊन कातना, सूत कातना, वस्त्र बनाना, वस्त्रों को रँगना, वस्त्रों पर बेल-बूटे का काम आदि करती थीं। ग्रामों की आजीविका का मुख्य साधन कृषिकर्म तथा दुग्ध-व्यवसाय था।

१३. शयनासन (फर्नीचर), और पात्र[3]

शयनोपकरण- फर्नीचर के लिए प्राचीन शब्द शयनासन और गृहोपस्कर हैं। शयनासन में सोने और बैठने के उपयोग में आने वाला सामान है। गृहोपस्कर में घरेलू उपकरण या सामान आता है। शयनोपयोगी इन वस्तुओं का उल्लेख मिलता है-१. **शयन-** यह शय्या के लिए है। २. **प्रोष्ठ-** यह तख्त या बेंच के लिए है। ३. **तल्प-**यह बहुमूल्य पलंग के लिए है। ४. **वह्य-**यह पालकी या झूला है। स्त्रियाँ इस पर सोती भी थीं। ५. **कशिपु-** यह सोफा के लिए है। हिरण्यकशिपु सुवर्णजटित सोफा के लिए प्रयुक्त होता था। ६. **आसन्दी-** कुर्सी के लिए है। ब्राह्मण ग्रन्थों में इसका प्रयोग राजासन या सिंहासन के लिए हुआ है। ७. **आसन-** बैठने के लिए प्रयुक्त चटाई आदि।

पात्र- वैदिक साहित्य में इन पात्रों (बर्तनों) और घरेलू सामान का उल्लेख मिलता है। १. **कुम्भ-** मिट्टी का घड़ा। २. **कुम्भी-** मिट्टी का छोटा घड़ा। ३. **कलश-** धातु-निर्मित घड़ा, कलश। ४. **गर्गर-** धातु या मिट्टी का बना घड़ा। गगरा या गगरी। ५. **आमपात्र-** मिट्टी से बने कच्चे बर्तन। मिट्टी के पके बर्तनों को नीललोहित कहते थे। ६. **अमत्र-** यह पत्थर या लकड़ी की बनी कुंडी (कूंड़ी) है। यह कटोरे का काम देता था। ७. **कंस-** गिलास या जार जैसा बर्तन। ८. **स्थाली-** पतीली या बटलोई के लिए है। ९. **अंसद्री अंसध्री-** यह पतीली या भगोना है। १०. **उखा-** यह मिट्टी की बनी हाँडी या कड़ाही के तुल्य बर्तन है। ११. **चमस-** बड़ा चमचा। १२. **दर्वि, दर्वी-** छोटी चम्मच। १३. **रजतपात्र-** चाँदी के बर्तन। १४. **अयस्पात्र-** लोहे के बर्तन। १५. **स्थिवि-** मिट्टी का बहुत बंड़ा घड़ा, कुठला या कुंडा। १६. **उलूखल-** ओखली। १७. **शूर्प-** सूप। १८. **दृति-** चमड़े की बनी मशक। १९. **चषक-** प्याला। २०. **तितउ-** चलनी। २१. **शिक्य-** छींका। २२. **मुसल-** मूसल। २३. **ऊर्दर-** अनाज नापने का बर्तन। २४. **स्रुवा, स्रुचा-** लकड़ी की चम्मच, यज्ञ में घी डालने की। २५. **बभ्रि-** छोटी पतीली या कटोरी।

---

१. ग्रामणीरसि....अभिषिक्तः० । अ० १९.३१.१२

२. ये राजानो राजकृतः सूता ग्रामण्यश्च ये । अ० ३.५.७

३. सन्दर्भ के लिए देखें, लेखक-कृत अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १०७ से १२०

१४. यातायात के साधन

यातायात के साधनों में रथ मुख्य था। यह यातायात, क्रीडा और युद्ध तीनों में प्रयुक्त होता था। रथ में दो, तीन या चार घोड़े तक जोते जाते थे। अथर्ववेद (२०.१२७) में राजा परीक्षित् के रथ में २० ऊँटों के जोतने का वर्णन है। रथ में अश्वतरी (खच्चर) के जोतने का भी वर्णन है (अ० ८.८.२२)। वेदों में रथ के प्रत्येक अंग (पहिया, नाभि आदि) का विस्तृत वर्णन मिलता है।

रथ के अतिरिक्त 'अनस्' (बैलगाड़ी, शकट, सग्गड़) भी यातायात का साधन था। कृषि का अन्न, इक्षु (ईख), कुश आदि अनस् से ढोया जाता था। वेदों में जलयान (पोत, जहाज) का भी व्यापार आदि के लिए बहुत उपयोग होता था। अनेक मंत्रों में बड़े जलयानों का उल्लेख है।

अध्याय ८

आर्थिक और राजनीतिक जीवन

(क) वैदिक अर्थ-व्यवस्था

कृषि का महत्त्व–मानव–जीवन का आधार अन्न है। अन्नों की प्राप्ति कृषि से होती है। कृषि के लिए भूमि और पर्जन्य (वर्षा) की आवश्यकता है। अतएव अथर्ववेद में भूमि और पर्जन्य को नमस्कार किया गया है।[१] कृषि-कार्य गौरव का कार्य माना जाता था, अतएव इन्द्र और पूषा देवों को कृषि-कार्य में लगाया गया है।[२] ऋग्वेद में कहा गया है कि द्यूत आदि दुर्गुणों को छोड़कर सुख के लिए कृषि करो।[३] यजुर्वेद में राजा के चार प्रमुख कर्तव्य बताए गए हैं – १. कृषि की उन्नति, २. जन-कल्याण, ३. राष्ट्र की श्रीवृद्धि और ४. राष्ट्र को पुष्ट बनाना।[४] इनमें कृषि को सबसे अधिक प्रमुखता दी गई है।

शतपथब्राह्मण में पूरे कृषि-कर्म को चार शब्दों में वर्णन किया गया है - १. **कर्षण**-खेत की जुताई करना। २. **वपन**-बीज बोना। ३. **लवन**-पके खेत की कटाई करना। ४. **मर्दन**–मड़ाई करके स्वच्छ अन्न प्राप्त करना।[५]

कृषि का आविष्कारक राजा पृथी (पृथु)–ऋग्वेद और अथर्ववेद में राजा वेन के पुत्र राजा पृथी (पृथु) को कृषि-विद्या का आविष्कारक बताया गया है। उसने कृषि-विद्या के द्वारा अनेक प्रकार के अन्न उत्पन्न किए।[६] इस बात का समर्थन महाभारत शान्तिपर्व और भागवतपुराण में किया गया है।[७] ऋग्, यजुः और अथर्व वेदों में कृषि-कर्म से सम्बद्ध अनेक सूक्त हैं।[८] इनमें कृषि-सम्बन्धी मुख्य बातें ये दी गई हैं – १. बीज बोने से पहले खेत को ठीक ढंग से स्वच्छ करें। २. कृषि-हेतु बैल, हल आदि उत्तम हों। ३. उत्तम कोटि के

---

१. भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे। अथर्व० १२.१.४२

२. अथर्व० ३.१७.४

३. अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व। ऋग्० १०.३४.७

४. कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा। यजु० ९.२२

५. कृषन्तः, वपन्तः, लुनन्तः, मृणन्तः। शत० १.६.१.३

६. तां पृथी वैन्योऽधोक्, तां कृषिं सस्यं चाधोक्। अ० ८.१०(४).११
पृथी यद् वां वैन्यः। ऋग्० ८.९.१०

७. महाभारत शान्तिपर्व ५९.११३.११५। भागवत पु० स्कन्ध ४.१६ से २३

८. ऋग्० १०.१०१; ४.५७। यजु० १२.६७-७१ अथर्व० ३.१७.१-९

बीज बोए जाएँ। ४. अनुकूल ऋतु में बीज बोवें। ५. यथासमय सिंचाई-निराई करें। ६. खेती तैयार होने पर कटाई-मड़ाई करें।[१]

भूमि के भेद-अथर्ववेद, यजुर्वेद और तैत्तिरीय संहिता में भूमि के कई भेदों का उल्लेख है।[२] तीन मुख्य भेद ये हैं - उर्वरा (उपजाऊ), इरिण (ऊषर), शष्य्य (चरागाह के योग्य)।

मिट्टी के भेद-यजुर्वेद, तैत्तिरीय संहिता और अथर्ववेद में मिट्टी के कतिपय भेदों का उल्लेख है।[३] ये हैं - मृद्, मृत्तिका (चिकनी मिट्टी), रजस् भूमि (सामान्य मिट्टी), अश्मा, अश्मन्वती (पत्थर वाली), किंशिल (छोटे कंकड़ वाली), इरिण्य (ऊषर वाली, खेती के लिए अनुपयुक्त), उर्वरा, उर्वर्य (उपजाऊ, खेती के योग्य), सिकता, सिकत्य (बालू वाली मिट्टी)।

कृषि के भेद-कृषि के दो भेदों का उल्लेख है।[४] ये हैं - १. **वर्ष्य**-वर्षा पर निर्भर रहने वाली कृषि। २. **अवर्ष्य**-वर्षा पर निर्भर न रहने वाली, अर्थात् कूप, तालाब, नहर आदि सिंचाई के अन्य साधनों पर निर्भर। कृषि के अन्य दो भेदों का भी उल्लेख मिलता है। ये हैं - १. **कृष्ट पच्य**-जुते खेत में कृषि द्वारा उत्पन्न अन्न। २. **अकृष्टपच्य**-बिना जुती भूमि में उत्पन्न अन्न। जैसे-जंगली धान, फल-फूल।[५]

सिंचाई के साधन-वेदों में सिंचाई के इन साधनों का उल्लेख मिलता है - १. वर्षा, २. कुल्या, नहरों से सिंचाई, ३. नदियों से, ४. तालाबों आदि से, ५. कुएँ के जल से।

सस्य या फसलें-तैत्तिरीय संहिता में दो फसलों का उल्लेख है।[६] इन्हें शारदीय (खरीफ) और वासन्ती (रबी) कहते हैं। तैत्तिरीय संहिता में ही अन्य चार फसलों का कटने की ऋतु के नाम से उल्लेख किया है।[७] ये हैं - १. ग्रीष्म, २. वर्षा, ३. शरद्, ४. हेमन्त-शिशिर में कटने वाली फसलें। इनके अन्नों का भी क्रमशः निर्देश है - जौ, ओषधियाँ, चावल (व्रीहि) तथा माष-तिल (उड़द और तिल)।

अन्नों के नाम-यजुर्वेद और तैत्तिरीय संहिता में १२ अन्नों के नाम दिए है।[८] ये हैं - १. व्रीहि (धान), २. यव (जौ), ३. माष (उड़द), ४. तिल, ५. मुद्ग (मूंग), ६. खल्व

---

१. इस अध्याय के सन्दर्भों के लिए देखें-लेखककृत (क) वेदों में विज्ञान, पृष्ठ १४२ से १६१। (ख) अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ १२५ से १९३

२. उर्वर्याय०, शष्प्याय०, इरिण्याय। यजु० १६.३३, ४२, ४३। तैत्ति० ४.५.६ से ९

३. मृत्तिका (यजु० १८.१३), रजस्याय (यजु० १६.४५) अश्मा (अ० १२.१.२६)। किंशिलाय (यजु० १६.४३), इरिण्याय (यजु० १६.४३), उर्वर्याय (यजु० १६.३३), सिकत्याय (यजु० १६.४३)

४. वर्ष्याय चावर्ष्याय च। यजु० १६.३८

५. कृष्टपच्याश्च मेऽकृष्टपच्याश्च मे। यजु० १८.१४

६. द्विः संवत्सरस्य सस्यं पच्यते। तैत्ति० सं० ५.१.७.३

७. यवं ग्रीष्माय, व्रीहीन् शरदे०। तैत्ति सं० ७.२.१०.२

८. व्रीहयश्च मे यवाश्च मे०। यजु० १८.१२। तैत्ति० सं० ४.७.४.२

(चना), ७. प्रियंगु (कंगुनी), ८. अणु (पतला चावल), ९. श्यामाक (सावाँ), १० नीवार (कोदों, तिन्नी धान), ११. गोधूम (गेहूँ), १२. मसूर।

खाद (उर्वरक)–उर्वरक के लिए ऋग्वेद में 'क्षेत्रसाधस्' (खेत की शक्ति बढ़ाने वाला) शब्द है।[1] वेदों में खाद के लिए ये शब्द हैं - करीष, शकन्, शकृत् (गोबर)।[2] यह खाद गाय, बैल, भैंस आदि की होती थी। वेदों में खाद के लिए गोमय (गोबर) शब्द का उल्लेख नहीं है।

कृषिनाशक तत्त्व (ईति)–कृषिनाशक तत्त्वों को 'ईति' कहते हैं। अथर्ववेद में कृषिनाशक इन तत्त्वों का उल्लेख है - १. **अतिवृष्टि और अनावृष्टि**–विद्युत् और सूर्य की कड़ी धूप कृषि को नष्ट न करे।[3] अतिवृष्टि में बिजली गिरना और अनावृष्टि में तीव्र धूप का होना। २. **तीव्र धूप और हिमपात**–ये दोनों कृषि को नष्ट न करें।[4] ३. **आखु (चूहा)**- कृषिनाशकों में चूहे का नाम मुख्य रूप से लिया जाता है और इसे मारने का निर्देश है।[5] ४. **तर्द, पतंग, जभ्य और उपक्वस**–ये भी कृषि-नाशक हैं।[6] तर्द (कफफोड़वा), पतंग (टिड्डी), जभ्य और उपक्वस कृषि को नष्ट करने वाले कीट-पतंग हैं। छान्दोग्य उपनिषद् में टिड्डी के लिए 'मटची' शब्द आया है। एक बार पूरे कुरु जनपद की खेती टिड्डियाँ खा गई थीं।[7]

कृषि से संबद्ध शब्द–१. **कीनाश**-किसान, कृषक। २. **हल**–हल के लिए लांगल और सीर शब्द हैं। ३. **सीता, फाल**–हल के अगले नुकीले भाग के लिए सीता और फाल शब्द हैं। हल की नोक से बनी रेखा या लकीर को भी सीता कहते हैं। ४. **शुनासीर**–हल का डंडा और फाल (नोक, सीर)। ५. **ईषा**–हल की लम्बी लकड़ी। ६. **युग**–जूआ, बैल के कंधे पर रखा जाने वाला। ७. **वरत्रा**–हल और जूए को बाँधने की रस्सी। ८. **अष्ट्रा**–चाबुक या छड़ी, जिससे किसान हाँकता है। ९. **वाह**–बैल। अथर्ववेद (६.९१.१) और काठक संहिता (१५.२) में ६,८,१२ जूओं वाले हलों का वर्णन है। एक जूए में दो बैल लगते थे, अतः १२, १६ और २४ बैलों वाले हल भी काम में आते थे। १०. **दात्र, सृणि**–दराँती (हँसिया)।

पशुपालन

ऋग्वेद और अथर्ववेद में पशुपालन और पशुसंवर्धन से संबद्ध कई सूक्त हैं।[8] प्राचीन काल में भारवर्ष ही नहीं, अपितु विश्व भर में पशु-संपदा वैभव का प्रतीक था। पशु-संपदा दैनिक जीवन का अभिन्न अंग था। घी, दूध, दही, मक्खन आदि दैनिक

---

१. क्षेत्रसाधसः। ऋग्० ३.८.७
२. करीषिणीः, अथर्व० ३.१४.३। शकमयम्० ऋग्० १.१६४.४३। शकृत्, ऋग् १.१६१.१०
३. मा नो वधीर्विद्युता देव सस्यं, मोत वधीः सूर्यस्य रश्मिभिः। अ० ७.११.१
४. न घ्रन् तताप न हिमो जघान। अ० ७.१८.२
५. हतं तर्दं.... आखुम्। अ० ६.५०.१
६. तर्द, पतंग, जभ्य, उपक्वस। अ० ६.५०.२
७. मटचीहतेषु कुरुषु। छा० उप० १.१०.१
८. अथर्व० २.२६ और ३.१४। ऋग्० १०.१०१.४

आवश्यकताएँ थीं। कृषिकर्म, यातायात और भारवाहन के लिए बैल, अश्व आदि की आवश्यकता थी। यज्ञ आदि धार्मिक अनुष्ठानों के लिए गायों की आवश्यकता थी, अतएव पशुपालन और पशुसंवर्धन सामाजिक और राष्ट्रीय महत्त्व के विषय थे। प्राचीन आर्यों ने इन्हीं विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए गोष्ठ, गोशाला, व्रज आदि की स्थापना की थी। व्रज एक प्रकार से प्राचीन Dairy Farm थे।

ऋग्वेद में अतएव निर्देश दिया गया है कि 'व्रजं कृणुध्वम्' अर्थात् व्रज (बाड़ा) बनाओ, क्योंकि यह 'नृपाणः' (दुग्धादि का दाता) है।[१] यह मनुष्यों की पेय और खाद्य वस्तुओं की आवश्यकता की पूर्ति करता है। व्रज गोशाला के रूप में होते थे, अतः इन्हें 'गोष्ठ' कहते थे।[२] यजुर्वेद में गोशाला के लिए 'गोष्ठान' शब्द भी आया है।[३] व्रज घिरे हुए बाड़े के रूप में होते थे। इनमें गाय, बैल, भैंस, अश्व, भेड़, बकरी आदि सभी रहते थे।

गोशाला–अथर्ववेद में गोशाला के विषय में मुख्य रूप से ये बातें कही गई हैं[४] – १. गायों आदि के बैठने के लिए पर्याप्त स्थान हो। अन्न–जल (दाना–पानी) की ठीक व्यवस्था हो। प्रकाश की व्यवस्था हो। दिन वाली सुविधाएँ रात्रि में भी रहें। २. वे इकट्ठे घूम सकें। किसी प्रकार का कोई भय न हो। पशुओं को रोगमुक्त रखा जाय। ३. नई गायें आदि भी आती रहें। सभी पशु हृष्ट–पुष्ट हों। वे बच्चों को जन्म दें। ४. गोशाला में पशुओं के पालन–पोषण की पूर्ण व्यवस्था हो, जिससे उनकी वृद्धि हो। ५. वे नीरोग और दीर्घायु हों।

पशु-संवर्धन–अथर्ववेद के अन्य कुछ मंत्रों में पशु–संवर्धन से संबद्ध ये बातें कही गई हैं[५] – १. पशुओं के लिए चारे की सुन्दर व्यवस्था हो, जिससे वे हृष्ट–पुष्ट रहें। वे घास खावें, शुद्ध जल पीवें, घुमने के लिए बाहर जावें। २. गायों के सुन्दर बछड़े हों। हौज में शुद्ध जल पीवें। उन्हें चोरों का भय न हो। ३. पशुओं को शुद्ध वायु मिले। सूर्य का प्रकाश उन्हें शक्ति दे। ४. पशु इकट्ठे होकर चलें, घूमें और रहें। ५. पशु–संरक्षण के द्वारा दूध और घी प्राप्त हो। पशुधन की वृद्धि हो। ६. जहाँ गाय आदि पशुओं का संरक्षण होता है, वहाँ धन–धान्य और श्री की वृद्धि होती है।

गो–महिमा–वेदों में गाय का बहुत महत्त्व बताया गया है। गाय को विराट् ब्रह्म का रूप माना गया है। उसमें सभी देवों का निवास है।[६] 'गावो भगः' गाय सौभाग्य का चिह्न है। गाय इन्द्र (परमात्मा) की प्रतिनिधि है। गाय सोम की पहली घूंट है।[७] एक अन्य मंत्र में कहा है कि–गायें आईं और हमारा कल्याण हुआ। ये गोशाला में आनन्द से रहें।[८] गायों

---

१. व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणः। ऋग्० १०.१०१.४
२. गोष्ठः, अथर्व० ३.१४.५
३. गोष्ठानम्, यजु० १.२५
४. अथर्व० ३.१४.१ से ६।
५. अथर्व० ७.७३.१२। ७.७५.१ और २। २.२६.१ से ४। अ० ४.२१.१
६. अथर्व० ९.७.१ से २६। एवद् वै विश्वरूपं सर्वरूपं गोरूपम्। अ० ९.७.२५
७. गावो भगो गाव इन्द्रो...गावो सोमस्य प्रथमस्य भक्षः। ऋग्० ६.२८.५
८. आ गावो अग्मन् उत भद्रमक्रन्०। ऋग्० ६.२८.१

की प्रशंसा में अथर्ववेद में कहा गया है कि ये कृश को हृष्ट-पुष्ट बनाती हैं और निस्तेज को तेजस्वी बना देती हैं, अतः सभाओं में इनका गुणगान होता है।[१] गाय को 'अघ्न्या' (अवध्य) बताते हुए उसे सौभाग्य का चिह्न बताया है।[२] गाय में इन गुणों का समावेश बताया गया है—वर्चस् (कान्ति), तेज, भग (ऐश्वर्य), यश, पयस् (दूध) और (सरसता)।[३]

ऋग्वेद और अथर्ववेद से ज्ञात होता है कि गायों आदि के कान पर पहचान के लिए कुछ अंक आदि लिख दिए जाते थे। ऋग्वेद में वर्णन है कि गाय के दोनों कानों पर ताँबे की शलाका से मिथुन (२ अंक या दो लकीर) बना दो। इससे गाय की प्रसव की योग्यता और दुग्ध की वृद्धि होती है।

(क) सहस्रं मे ददतो अष्टकर्ण्यः। ऋग्० १०.६२.७

(ख) लोहितेन स्वधितिना मिथुनं कर्णयोः कृधि। अ० ६.१४१.२

पशुहत्या का निषेध—वेदों में पशुहत्या को दंडनीय अपराध माना गया है। यजुर्वेद ने स्पष्ट कहा है—'अभयं नः पशुभ्यः' पशु निर्भय रहें।[४] गाय को 'अघ्न्या' (अवध्य) कहा गया है।[५] ऋग्वेद में गोहत्या करने वाले का सामाजिक बहिष्कार करने का निर्देश है।[६] अथर्ववेद में कहा गया है कि द्विपाद् (दो पैर वाले) और चतुष्पाद् (चार पैर वाले) जीवों की हत्या न करो।[७] गाय, घोड़े और मनुष्य की हत्या न करो। निरपराध की हत्या करना दंडनीय अपराध है।[८] यजुर्वेद में पशुओं का नाम लेते हुए कहा गया है कि - गाय, गवय (नील गाय), द्विपाद पशु, एक शफ वाले पशु, चतुष्पाद पशु, ऊँट और भेड़ आदि को न मारो।[९] यजुर्वेद में ही घोड़े की हत्या को दंडनीय अपराध बताया गया है।[१०]

पशु-संपदा की उपयोगिता—वेदों में पशु-सम्पदा के अनेक लाभों का उल्लेख है। कुछ लाभ ये हैं - १. दूध, दही, घी, मक्खन आदि की प्राप्ति। २. बैलों आदि का कृषि में उपयोग। ३. भारवाहक पशु के रूप में गर्दभ, बैल, ऊँट, खच्चर आदि का उपयोग। ४. घोड़ों के द्वारा रथ-संचालन और उनका युद्ध में भाग लेना। ५. भेड़ आदि के ऊन से ऊनी वस्त्रों का निर्माण। ६. मृत पशुओं की खाल से चर्म-उद्योग, जूते, दृति (मशक), वर्म (कवच) आदि का निर्माण। ७. पशुओं के गोबर (करीष) का खाद के रूप में उपयोग। ८. हाथी के दाँत का कलाकृतियों में उपयोग। ९. हाथी, घोड़े, ऊँट आदि का सवारी के लिए उपयोग।

---

१. यूयं गावो मेदयथा कृशं चिद्, अश्रीरं चित् कृणुथा सुप्रतीकम्।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो, बृहद् वो वय उच्यते सभासु ।। अ० ४.२१.६

२. अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय। अ० ७.७३.८

३. वर्चो....तेजो···भगो···यशो···गोषु प्रविष्टम्। अ० १४.२.५३ से ५८

४. यजु० ३६.२२

५. अघ्न्या। अथर्व० ७.७३.८

६. आरे ते गोघ्नम्। ऋग्० १.११४.१०

७. अथर्व० ११.२.१

८. अनागोहत्या वै भीमा। अ० १०.१.२९

९. मा हिंसीर्द्विपादं पशुम्। यजु० १३.४७ से ५०

१०. यो अर्वन्तं जिघांसति तमभ्यमीति वरुणः। यजु० २२.५

विभिन्न उद्योग

वेदों में लगभग १४० वृत्तियों (पेशों) का उल्लेख है।[1] इनमें कुछ बहुत महत्वपूर्ण हैं, कुछ साधारण। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि प्राचीन समय में शिल्प और उद्योग को आदर की दृष्टि से देखा जाता था, अतएव रथकार और कर्मार आदि को राजकृत् (राजा का निर्वाचक) में स्थान दिया गया था।

ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि एक ही परिवार के व्यक्ति विभिन्न उद्योग करते थे और वे प्रेम से रहते थे। मंत्र का कथन है कि मैं कारु (कवि, शिल्पी) हूँ, पिता भिषक् (वैद्य) हैं और माता चक्की पीसती है। घर की आय के लिए हम विभिन्न काम करते हैं।

कारुरहं ततो भिषग् उपलप्रक्षिणी नना।
नानाधियो वसूयवोऽनु गा इव तस्थिम ॥ ऋग्० ९.११२.३

अथर्ववेद से ज्ञात होता है प्राचीन समय में कारु लोगों (शिल्पियों, श्रमजीवियों) की आर्थिक स्थिति उत्तम थी। उन्हें 'पुरुदमासः' अर्थात् अनेक भवन या कोठियों वाला कहा गया है।[2]

यहाँ पर कुछ प्रमुख उद्योगों का उल्लेख किया जा रहा है।

१. वस्त्र उद्योग–यह उद्योग सुप्रतिष्ठित था। सूती, ऊनी और रेशमी वस्त्रों का वर्णन है। सूती वस्त्रों को 'वासस्', ऊनी को 'ऊर्णायु' और रेशमी को 'तार्प्य' कहते थे।[3] जुलाहा या बुनकर को 'वासोवाय' कहते थे।[4] अथर्ववेद में एक सुन्दर रूपक के द्वारा बुनाई का वर्णन है। वर्ष-चक्र एक करघा है, दिन और रात्रि दो स्त्रियाँ हैं, ये वर्षरूपी वस्त्र बुनती हैं। ६ ऋतुएँ ६ खूँटियाँ हैं। रात्रि ताना है और दिन बाना।[5] वेदों में बुनाई से संबद्ध कुछ पारिभाषिक शब्द ये हैं :- १. **तन्त्र**–करघा। २. **तन्तु**–ताना। ३. **ओतु**–बाना। ४. **तसर**–बुनने की ढरकी या करघी। ५. **मयूख**–धागा तानने की खूंटियाँ। ६. **प्राचीनातान**–आगे खींचकर बाँधा गया ताना। ७. **प्र वय**–आगे की ओर बुनना ८. **अप वय**–पीछे की ओर बुनना। ९. **तनुते**–फैलता है। १०. **कृणत्ति**–समेटता है।

वस्त्र बुनने का काम अधिकतर स्त्रियाँ (युवति) करती थीं। बुनने वाली स्त्री को वय्या या वयित्री कहते थे।[6] पुरुष भी बुनने का काम करते थे।[7]

२. रथकार, तक्षा (तक्षन्), तष्टा, त्वष्टा–बढ़ई के लिए इन चारों शब्दों का प्रयोग मिलता है।[8] इनका हस्तकौशल प्रशंसनीय माना जाता था, अतः इन्हें 'धीवानः'

---

१. विस्तृत विवरण के लिए देखें - लेखक-कृत 'अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन', पृष्ठ १५८ से १७८
२. पुरुदमासो····कारवः। अ० ७.७३.१
३. वासांसि, अ० ९.५.२६। ऊर्णायुम्, यजु० १३.५०। तार्प्यम्, अ० १८.४.३१
४. वासोवायः। ऋग्० १०.२६.६
५. तन्त्रमेके युवती····वयतः। अथर्व० १०.७.४२
६. ऋग्० २.३.६
७. पुमान् एतद् वयति। अ० १०.७.४३
८. रथकाराः, अ० ३.५.६। तष्टा, अ० २०.३५.४। तक्षा, अ० १०.६.३। त्वष्टा, अ० १२.३.३३

(बुद्धिमान्) कहा गया है। ये रथ, गाड़ी आदि बनाते थे। उन पर नक्काशी करते थे। ये स्वधिति (कुल्हाड़ी), परशु (कुल्हाड़ा), वासी (बसूला) का काटने-छीलने आदि के लिए प्रयोग करते थे।

३. **कर्मार**–लौहकार या लोहार को कर्मार कहते थे। ये लोहे और अन्य धातुओं के बर्तन आदि बनाते थे। इनको 'मनीषिणः' (कुशल कारीगर) कहा गया है।[१] ये लोहे को तपाकर विविध शस्त्र-अस्त्र भी बनाते थे। लोहे को तपाने के कारण इन्हें 'अयस्ताप' भी कहते थे।[२] इससे यह ज्ञात होता है कि लोहा तपाने के लिए बड़ी भट्टियाँ बनाई जाती थीं।

४. **यान्त्रिक**–यजुर्वेद में यान्त्रिक का उल्लेख है।[३] यह कारीगर या मिस्त्री (Mechanic) है। तैत्तिरीय संहिता में कुछ यन्त्रों का उल्लेख है। जैसे - **वातयन्त्र**–वायु-विज्ञान सम्बन्धी यन्त्र, **ऋतुयन्त्र**–ग्रीष्म आदि ऋतुओं का बोधक यन्त्र, **दिग्यन्त्र**–दिशा-बोधक यन्त्र, **तेजोयन्त्र**–प्रकाश का नियन्त्रक यन्त्र, **ओजोयन्त्र**–ऊर्जा नापने का यन्त्र।

वातानां यन्त्राय, ऋतूनां यन्त्राय, दिशां यन्त्राय,
तेजसे यन्त्राय, ओजसे यन्त्राय। तैत्ति० सं० १.६.१.२

५. **स्थपति**–राजा या मिस्त्री।[४] ये उच्च कोटि के भवन आदि बनाते थे।

६. **हिरण्यकार**–सुनार।[५] यह सोना चाँदी आदि धातुओं को गलाकर विविध आभूषण बनाता था। सोने के आभूषणों को 'हिरण्यय' कहते थे। सोने की जंजीर को 'हिरण्यस्रज्' और सुवर्णाभूषण-धारक को 'हिरण्यनिर्णिज्' कहते थे। यह चाँदी के आभूषणों पर सोने का पानी (पालिश) भी चढ़ाता था।[६]

७. **मणिकार**–यह सुवर्ण आदि के आभूषणों में मणि या रत्न जड़ता था।[७]

८. **चर्मकार, चर्मम्न**–यह चमड़े का सामाना बनाता था।[८] वेदों में चमड़े के जूते (उपानह्), मशक (दृति), ढोल (दुन्दुभि), चाबुक (कशा), धनुर्ज्या (धनुष की डोरी), चमड़े के कवच (वर्म) आदि का उल्लेख है। चमड़े से बने सामान के लिए 'चर्मण्य' शब्द है।[९]

९. **पेशिता**–नक्काशी या कढ़ाई (Carving) का काम करने वाला।[१०] ये वस्त्रों पर बेल-बूटे या कसीदा काढ़ने का काम करते थे।

---

१. कर्मारा ये मनीषिणः, अ० ३.५.६। कर्मारम्, यजु० ३०.७
२. अयस्तापम्, यजु० ३०.१४
३. यन्तुर्यन्त्रेण, यजु० १८.३७
४. स्थपतये, यजु० १६.१९
५. हिरण्यकारम्, यजु० ३०.१७
६. चन्द्रे अधि यद् हिरण्यम्, अ० १९.२७.१०
७. मणिकारम्, यजु० ३०.७
८. चर्मम्नाः, ऋग्० ८.५.३८
९. चर्मण्यः, ऐत० ब्रा० ५.३२
१०. पेशितारम्, यजु० ३०.१२

१०. सूचीकर्म, सौचिक–सिलाई (Tailoring) का काम करने वाला।[१]

११. रजयित्री–वस्त्रों की रंगाई का काम करने वाली।[२] यह काम प्रायः स्त्रियाँ करती थीं। वृक्षों की छाल आदि से रंग तैयार किया जाता होगा।

१२. आंजनीकारी–आँख के लिए अंजन या सुरमा बनाने वाली।[३]

१३. मधु-निर्माण–मधु-निर्माण (Apiary) अच्छा व्यवसाय था। शहद की मक्खी के लिए सरघा शब्द है। उनसे प्राप्त शहद को 'सारघ मधु' कहते थे।[४]

१४. चीनी उद्योग–चीनी उद्योग (Sugar Industry) प्रारम्भिक अवस्था में था। अथर्ववेद में 'इक्षु' का उल्लेख है।[५] मैत्रायणी संहिता में 'इक्षुकाण्ड' (गन्ना) का उल्लेख है।[६] अन्य विवरण अप्राप्य है। अपूप (पूआ), स्थालीपाक (हलुआ आदि) आदि के उल्लेख से स्पष्ट है कि गुड़, शक्कर आदि का प्रचलन था।

१५. सुराकार–सुरा-निर्माण (Distillery) बड़ा व्यवसाय था।[७] विभिन्न वस्तुओं का यान्त्रिक विधि से अर्क निकाला जाता था। यजुर्वेद अध्याय १९ मंत्र १ से २५ में सुरा के विभिन्न प्रकारों-मासर, नग्रहु आदि के निर्माण का वर्णन है। महीधर ने अपने भाष्य (१९.१४) में मासर आदि सुरा बनाने की विधि विस्तार से दी है।

१६. वप्ता (नाई)–यह उस्तरे (क्षुर) से बाल बनाता था।[८]

१७. मलग (धोबी)–यह वस्त्र धोता था।[९] यजुर्वेद (३०.१२) में धोबी के लिए 'वासःपल्पूली' शब्द है।

१८. भिषक् (भिषज्)–वैद्य या चिकित्सक के लिए है।[१०] यह बहुत बड़ा व्यवसाय था।

१९. नक्षत्रदर्श–यह ज्योतिषी के लिए है।[११] यह प्रसिद्ध व्यवसाय था। इसमें गणित और फलित दोनों ज्योतिष का समन्वय था। यजुर्वेद में 'प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शम्' कहकर इसे विज्ञान की कोटि में रखा गया है।

२०. प्रश्नविवाक–यह न्यायाधीश के लिए है।[१२] न्यायालय (कोर्ट) बहुत व्यापक उद्योग था। इसी मंत्र में वादी के लिए प्रश्निन् (प्रश्नकर्ता) और प्रतिवादी के लिए

---

१. सूच्या०, अ० ७.४८.१
२. रजयित्रीम्, यजु० ३०.१२
३. आंजनीकारीम्, यजु० ३०.१४
४. मधुनः सारघस्य, यजु० ३८.६
५. इक्षुणा, अ० १.३४.५
६. इक्षुकांडम्, मैत्रा॰सं० ३.७.९
७. सुराकारम्, यजु० ३०.११
८. वप्ता वपसि केशश्मश्रु, अ० ८.२.१७
९. मलग इव वस्त्रा, अ० १२.३.२१
१०. भिषजम्, यजु० ३०.१०
११ प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शम्, यजु० ३०.१०
१२. मर्यादायै प्रश्नविवाकम्, यजु० ३०.१०

'अभिप्रश्निन्' (उत्तरदाता) शब्द हैं।

२१. कलात्मक वृत्तियाँ–इसमें नृत्य, गीत और वाद्य आते हैं। वेदों में इन तीनों का वर्णन है। नृत्य और नृत्त दोनों का उल्लेख है।[१] वेदों में गायक, वीणावादक, तूणवध्म (बीन बजाने वाला), शंखध्म (शंखवादक), पाणिघ्न (तबला या ढोलक बजाने वाला), तलव (तबला) आदि का उल्लेख है।[२]

२२. वणिक् (वणिज्)–व्यापारी।[३] व्यापार बहुत व्यापक उद्योग था।

२३. द्यूत (जुआ)–द्यूत बहुत प्रचलित था। जुआरी को 'कितव' कहते थे।[४] द्यूत को भी कुछ लोगों ने आजीविका का साधन बना लिया था। वेदों में इसे दुर्व्यसन माना है और इसे छोड़ने का आदेश दिया है।[५]

४. व्यापार और वाणिज्य

कृषिकर्म एवं विविध उद्योगों से उत्पन्न सम्मान के क्रय-विक्रय के लिए व्यापार ही एकमात्र साधन है। वेदों में व्यापारी के लिए वणिक् (वणिज्) और वाणिज दो शब्द आए हैं।[६] अथर्ववेद में आठ मंत्रों का एक पूरा सूत्र वाणिज्य से संबद्ध है।[७] इस सूत्र में इन्द्र को एक व्यापारी के रूप में प्रस्तुत किया गया है।[८] व्यापार को 'धनदा' अर्थात् श्रीवृद्धि का साधन बताया गया है।[९] क्रय (खरीदना) के लिए पण और प्रपण शब्द हैं तथा विक्रय (बेचने) के लिए विक्रय और प्रतिपण शब्द हैं। व्यापार लाभ के लिए किया जाता है, अतः मंत्र में निर्देश है कि क्रय-विक्रय लाभकारी हो।[१०] मूल्य के लिए 'वस्न' और 'शुल्क' शब्द हैं।[११] खरीदने योग्य वस्तु के लिए 'प्रक्री' शब्द है। खरीदने के लिए क्रय, अपक्रय और परिक्रय शब्दों का प्रयोग है।[१२]

वस्तु-विनिमय और मूल्य-वेदों से ज्ञात होता है कि क्रय-विक्रय का आधार अधिकांशतः वस्तु-विनिमय था। कुछ बहुमूल्य चीजें मूल्य से दी जाती थीं। यजुर्वेद में व्यापार का आधार आदान-प्रदान बताया गया है। मंत्र का कथन है–तुम मुझे दो, मैं तुम्हें देता हूँ। तुम मेरे लिए रखो, मैं तुम्हारे लिए रखता हूँ। तुम विक्रेय वस्तु मुझे दो, मैं तुम्हें मूल्य

---

१. नृत्ताय सूतम्, यजु० ३०.६। नृत्यन्ति, गायन्ति। अ० १२.१.४१
२. यजु० ३०.१९ और २०
३. वणिजम्, अ० ३.१५.१। तुलायै वाणिजम्, यजु० ३०.१७
४. अयेभ्यः कितवम्, यजु० ३०.८
५. अक्षैर्मा दीव्यः, ऋग्० १०.३४.१३
६. वणिजम्, अ० ३.१५.१। वाणिजम्, यजु० ३०.१७
७. अथर्व० ३.१५.१ से ८
८. इन्द्रमहं वणिजम्०, अ० ३.१५.१
९. धनदा अस्तु, अ० ३.१५.१
१०. प्रपणो विक्रयश्च, प्रतिपणः फलिनं मा कृणोतु। अ० ३.१५.४
११. वस्नेन, अ० १२.२.३६। शुल्कम्, अ० ५.१९.३
१२. प्रक्रीरसि त्वमोषधे०, अ० ४.७.६

देता हूँ।[१] मंत्र में मूल्य के लिए 'निहार' शब्द है। तैत्तिरीय संहिता और अथर्ववेद में उल्लेख है कि कुछ ओषधियाँ, सोम आदि पवस्त (चादर), दूर्श (दुशाला), अजिन (मृगचर्म), गाय आदि पशुओं से खरीदी जाती थीं।[२] ऋग्वेद के एक मंत्र में इन्द्र (इन्द्र की प्रतिमा) को दस गायों से खरीदने का उल्लेख है।[३]

मूल्य-निर्धारण–ऋग्वेद के एक मंत्र में सुन्दर बात कही है कि बेचते समय जो मूल्य तय हो जाता है, वही मान्य है। बाद में कम या अधिक नहीं होगा। एक व्यापारी ने मँहगी वस्तु कम दाम में बेच दी। बाद में वह लेने वाले से अधिक दाम माँगता है। ग्राहक अड़ जाता है कि मैंने पूरा मूल्य दिया है। अन्त में निर्णय होता है कि बेचते समय जो मूल्य तय हआ था, वही मान्य है।[४]

व्यापार के कुछ गुर–अथर्ववेद में व्यापार में सफलता के कुछ गुर भी दिए हैं।[५] ये हैं - १. **चरितम्**-चरित्र एवं व्यवहार में शुद्धि। इससे विश्वसनीयता आती है। २. **उत्थितम्**-उत्थान, अध्यव्यवसाय, उत्साह, दृढ़निश्चय (Enterprise)। यदि दृढ़निश्चय और साहस प्रबल है, तो सफलता अवश्यंभावी है। एक अन्य मंत्र में उपोह और समूह गुणों को समृद्धि का साधन बताया है।[६] (क) **उपोह**–समीप लाना अर्थात् दूरस्थ वस्तुओं को क्रय करके अपने यहाँ लाना। (ख) **समूह**–संग्रह करना, इकट्ठा करके रखना। दूरस्थ वस्तुओं को लाकर बेचना अधिक लाभप्रद होता है। संग्रह की हुई वस्तुएँ विशेष परिस्थितिओं में बहुत लाभ देती हैं। ३. **सूझबूझ और अवसरोचित कार्य करना**–वेद में सूझबूझ को सौ गुना लाभ देने वाली देवी कहा है।[७] ४. **अधिक लोभ हेय**–व्यापार में अधिक लोभी होने से निन्दा का पात्र होता है।[८] ५. **मिलावट करना दंडनीय अपराध**–ऋग्वेद और अथर्ववेद में कहा है कि अन्न आदि में मिलावट दंडनीय अपराध है। एक व्यापारी ने अच्छे जौ में सड़े जौ (कुयव) मिलाकर बेच दिए। ज्ञात होने पर राजा ने उसे दंड दिया।[९]

स्थल-व्यापार–विविध उद्योगों से जो वस्तुएँ तैयार होती थीं, उन्हें स्थल-मार्ग, जल-मार्ग और समुद्री मार्ग से भेजा जाता था। स्थल मार्ग से वस्तुओं को भेजने के लिए पशुओं और यानों का उपयोग किया जाता था। इनमें मुख्य थे–यानों में रथ और अनस्

---

१. देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे।
निहारं च हरासि मे, निहारं निहराणि ते ।। यजु० ३.५०

२. पवस्तैः० अथर्व० ४.७.६। पशुना क्रीणामि०, तैत्ति० सं० १.२.७.१

३. क इमं दशभिर्ममेन्द्रं क्रीणाति धेनुभिः। ऋग्० ४.२४.१०

४. भूयसा वस्नमचरत् कनीयः०। ऋग्० ४.२४.९

५. शुनं नो अस्तु चरितमुत्थितं च। अथर्व० ३.१५.४

६. उपोहश्च समूहश्च०।
ताविहा वहतां स्फातिं बहुं भूमानमक्षितम्। अ० ३.२४.७

७. इमां धियं शतसेयाय देवीम्। अ० ३.१५.३

८. अधोवचसः पणयो भवन्तु। अ० ५.११.६

९. कुयवं नि अरन्धयः। ऋग्० ७.१९.२। अ० २०.३७.२

(बैलगाड़ी) मुख्य थे। पशुओं में वृषभ (बैल), वध्रि (बधिया बैल), अश्व, रासभ-गर्दभ (गधा), अश्वतर-अश्वतरी (खच्चर), उष्ट्र (ऊँट), महिष (भैंसा), अज (बकरा), अवि (भेड़), श्वा (कुत्ता)[१]। जलमार्ग से व्यापार के लिए छोटी और बड़ी नौकाएँ प्रयोग में लाई जाती थीं।[२]

समुद्री व्यापार–वैदिक काल में समुद्री-व्यापार बहुत प्रचलित था। ऋग्वेद, अथर्ववेद[३] और बौधायन धर्मसूत्र[४] में समुद्री व्यापार का उल्लेख है। बड़ी समुद्री नौकाओं (पोतों) में सैकड़ों अरित्र (पतवार) लगते थे। इन्हें अथाह समुद्र में चलने वाला बताया गया है, जहाँ कोई सहारा नहीं था।[५] यह भी उल्लेख है कि ये पोत तीन दिन और तीन रात लगातार चलते रहते थे। इनमें ६ घोड़े वाले तीन रथ थे।[६] 'षडश्वैः' से ज्ञात होता है कि इनमें ६ अश्वशक्ति (Horse-power) वाले ३ इंजन होते थे। 'शतपद्‌भिः' से पानी काटने वाले सौ पहिए अर्थ ज्ञात होता है।

आकाशीय मार्ग–ऋग्वेद में वरुण की स्तुति में कहा गया है कि वह आकाश में उड़ने वाले पक्षियों का मार्ग जानता है।[७] आकाश में चलने वाले वायुयानों के लिए ऋग्वेद में 'नौ' (नौका) और रथ शब्दों को प्रयोग है। इन्हें 'अन्तरिक्षप्रुद्' (अन्तरिक्ष में चलने वाला) और 'अपोदक' (जल-स्पर्श-रहित) कहा गया है। मंत्र में इन्हें 'आत्मन्वती' कहा है, इससे सूचित होता है कि इसमें कोई मशीन रखी जाती थी, जिससे ये सजीव-तुल्य होते थे।[८] 'वीडुपत्मभिः' और 'आशुहेमभिः' शब्द इनकी तीव्र उड़ान को सूचित करते हैं।[९] अन्य मंत्र में अश्विनीकुमार के रथ को 'श्येनपत्वा' बाज की तरह उड़ने वाला और मन से भी तीव्र गति वाला बताया गया है।[१०] इसमें तीन सीट, तीन हिस्से (Parts) और तीन पहिए होते थे।[११] यह श्येन (बाज) और गृध्र (गिद्ध) की तरह उड़ता था।[१२]

इससे ज्ञात होता है कि प्राचीन ऋषि आकाशीय मार्ग और आकाशीय यात्रा से परिचित थे। इनका व्यापार के लिए उपयोग होता था, इसका कहीं स्पष्ट उल्लेख नहीं है।

---

१. अश्वेषितं रजेषितं शुनेषितम्, ऋग्० ८.४६.२८। वध्र्यः, ऋग्० ८.४६.३०। अश्वतर्यः, अ० ८.८.२२। उष्ट्राः, २०.१२७.२। महिषः, अ० ५.३.८.
२. नावा, अ० ४.३३.८
३. नावम् आरुक्षः शतारित्राम्। अ० १७.१.२६
४. बौधा० धर्म० १.२.४। २.२.२
५. अनारम्भणे अग्रभणे समुद्रे⋯शतारित्रां नावम्०। ऋग्० १.११६.४
६. तिस्रः क्षपस्त्रिरहातिव्रजद्‌भिः⋯समुद्रस्य पारे, त्रिभी रथैः शतपद्‌भिः षडश्वैः। ऋग्० १.११६.४
७. वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम्। ऋग्० १.२५.७
८. नौभिरात्मन्वतीभिः, अन्तरिक्षप्रुद्‌भिः, अपोदकाभिः। ऋग्० १.११६.३
९. वीडुपत्मभिः, आशुहेमभिः। ऋग्० १.११६.२
१०. रथो अश्विना श्येनपत्वा मनसो जवीयान्। ऋग्० १.११८.१
११. त्रिबन्धुरेण त्रिवृता रथेन त्रिचक्रेण। ऋग्० १.११८.२
१२. श्येनासो वहन्तु। दिव्यासो न गृध्राः। ऋग्० १.११८.४

५. मुद्राएँ (सिक्के)

वेदों से ज्ञात होता है कि व्यापार के लिए कुछ सिक्कों का भी प्रचलन था। वेदों में इन सिक्कों का उल्लेख है –

१. निष्क–ऋग्वेद में निष्क का प्रयोग सुवर्ण के आभूषण के लिए है। इसे गले में पहना जाता था। निष्कधारी पुरुष को 'निष्कग्रीव' कहते थे।[१] अथर्ववेद में सौ निष्क का दो बार उल्लेख है और इन्हें सोने का बताया है।[२] इससे ज्ञात होता है कि निष्क का मुद्रा या सिक्का के रूप में भी प्रचलन था। डा० मैकडानल और कीथ ने माना है कि निष्क एक सिक्का रहा होगा।[३] शतपथ ब्राह्मण में स्पष्ट उल्लेख है कि निष्क सोने का सिक्का था।[४]

२. रुक्म–रुक्म भी सुवर्णालंकार था। यह छाती पर पहना जाता था। पहनने वाले को 'रुक्मवक्षस्' कहते थे।[५] अथर्ववेद में दो बार 'पाँच रुक्म' का उल्लेख हुआ है।[६] इसके साथ ५ वस्त्र गाय आदि का भी उल्लेख है। इससे ज्ञात होता है कि रुक्म भी एक सिक्का था। यह अशर्फी के तुल्य सोने का सिक्का रहा होगा।

३. शतमान, कृष्णल–शतपथ ब्राह्मण में सुवर्ण को शतमान कहा है।[७] सायण ने कहा है कि शतमान सौ रत्ती का सोने का सिक्का था।[८] डॉ०मैकडानल और कीथ ने भी इसे स्वीकार किया है। तैत्तिरीय संहिता में कृष्णल या रत्ती को एक तोल माना है।[९] इससे ज्ञात होता है कि शतमान सिक्के की इकाई कृष्णल (रत्ती) रही होगी। रत्ती या गुंजा को कृष्णल कहते हैं। यह रत्ती लता का लाल बीज है। इसके ऊपर काला चिह्न होता है। शतपथ ब्राह्मण में चाँदी के भी शतमान सिक्के का उल्लेख है।[१०]

४. कार्षापण या पण–कार्षापण को संक्षेप में पण कहते थे।[११] कार्षापण चाँदी का सिक्का था। प्राचीन भारत में इसका प्रचलन था। इसकी तोल ३२ रत्ती थी।[१२]

---

१. निष्कग्रीवः। ऋग्० ५.१९.३। अ० ५.१७.१४
२. शतं निष्कान्, अ० २०.१२७.३। शतं निष्का हिरण्ययाः, अ० २०.१३१.५
३. वैदिक इंडेक्स, भाग १, पृष्ठ ४५५
४. शत० ब्रा० ११.४.१.८
५. रुक्मवक्षसः, अ० ६.२२.२
६. पंच रुक्मा, अ० ९.५.२५ और २६
७. तस्य त्रीणि शतमानानि हिरण्यानि दक्षिणा। शत० ८.२.३.२
८. रक्तिका-शतमानम्, कात्या० श्रौत० १५.६.३० की व्याख्या
९. शतकृष्णलां निर्वपेत्। तैत्ति० सं० २.३.२.१
१०. रजतं हिरण्यं दक्षिणा शतमाने भवति। शत० १३.२.३.२
११. तैत्ति० ब्रा० १.३.७
१२. वासुदेवशरण अग्रवाल, पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० २५६ से २६०

६. ऋणदान और ब्याज (Interest)

अथर्ववेद के तीन सूक्तों में ऋण देने-लेने की चर्चा है ।[१] इसमें ऋण लेने से होने वाली हानियों का उल्लेख है । अनृण (उऋण) रहने को सर्वोत्तम बताया है ।[२] अथर्ववेद में 'अपमित्य' ऋण का उल्लेख है ।[३] अपमित्य ऋण उसे कहते हैं, जो धान्य या द्रव्य इस शर्त पर लिया जाता है कि उसी तरह की वस्तु लौटाकर ऋण चुका दिया जाएगा । कौटिल्य ने ऐसे ऋणों को 'आपमित्यक' कहा है ।[४] उस ऋण को उसी रूप में उतारना ।

अथर्ववेद में ब्याज (सूद) विषय में दो शब्द आए हैं - कला और शफ ।[५] कला का अर्थ है - सोलहवाँ भाग (१/१६) और शफ का अर्थ है - आठवाँ भाग (१/८) । इससे ज्ञात होता है कि सामान्यतया सूद सवा छह प्रतिशत लिया जाता था और अधिक से अधिक साढ़े बारह प्रतिशत ।

ऋग्वेद में धूर्त पणियों (व्यापारियों) को 'बेकनाट' कहा है।[६] यास्क ने बेकनाट उन सूदखोरों को कहा है, जो अपना रुपया दुगुना बनाना चाहते हैं या बनाते हैं ।[७]

(ख) वैदिक राजनीतिक अवस्था

वेदों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वैदिक काल में राजनीतिक अवस्था समुन्नत थी ।[८] उस समय राजा का निर्वाचन, राजा के कर्तव्यों का निर्धारण, मंत्रिमंडल का गठन, सभा-समितियों के कर्तव्यों का निर्देशन, विविध शासन-प्रणाली, अर्थव्यवस्था, कर-निर्धारण, विविध शस्त्रास्त्रों का उल्लेख समुन्नति का परिचायक है । इसकी ही संक्षिप्त रूप-रेखा यहाँ प्रस्तुत की जा रही है ।

१. राष्ट्र और देश

वेदों में राष्ट्र और देश शब्दों का प्रयोग मिलता है । एक मंत्र में राष्ट्र शब्द का बहुवचन में प्रयोग मिलता है, जिससे अनेक राष्ट्रों की सत्ता ज्ञात होती है ।[९] 'देशोपसर्गाः' के द्वारा देश पर आने वाले संकटों या दैवी प्रकोप से देश की रक्षा की प्रार्थना की गई है ।[१०]

---

१. अथर्व० ६ सूक्त ११७ से ११९
२. अनृणा अस्मिन् अनृणा परस्मिन्०. अ० ६.११७.३
३. अपमित्य धान्यम्.....अनृणो भवामि । अ० ६.११७.२
४. तदेव प्रतिदानार्थम् आपमित्यकम् । अर्थशास्त्र २.१५
५. यथा कलां यथा शफं यथर्णं संनयन्ति । अ० ६.४६.३
६. इन्द्रो विश्वान् बेकनाटान्० । ऋग्० ८.६६.१०
७. बेकनाटाः कुसीदिनो भवन्ति । द्विगुणकारिणो वा । निरुक्त ६.२६
८. विस्तृत विवेचन एवं सन्दर्भों के लिए देखें, लेखककृत 'वेदों में राजनीतिशास्त्र' ग्रंथ ।
९. त्वं राष्ट्राणि रक्षसि । अथर्व० १९.३०.३
१०. देशोपसर्गाः शमु नो भवन्तु । अथर्व० १९.९.९

वैदिक आदर्श–यजुर्वेद में राष्ट्र के विषय में वैदिक आदर्श प्रस्तुत किया गया है कि उसमें तीन गुण होने चाहिएँ - १. **स्वराज स्थ**, राष्ट्र स्वतंत्र हो, २. **जनभृत स्थ**, वह जनहितकारी हो, ३. **विश्वभृत स्थ**, वह विश्व के कल्याण के लिए प्रयत्नशील हो। ऐसा राष्ट्र हमें प्राप्त हो।

स्वराज स्थ, जनभृत स्थ, विश्वभृत स्थ, राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त। यजु० १०.४

राष्ट्रोन्नति के साधन–अथर्ववेद के एक महत्वपूर्ण मंत्र में कहा गया है कि राष्ट्र की उन्नति के लिए दो गुण अनिवार्य हैं - १. तप (अनुशासन, Discipline) और २. दीक्षा (समर्पण, Dedication)। इन दो गुणों को अपनाने से ही कोई राष्ट्र उन्नत होता है।

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु।। अ० १९.४१.१

२. ग्राम, विश् और जन

प्राचीन राजनीतिक व्यवस्था की सबसे छोटी इकाई ग्राम थी। ग्राम-प्रधान या ग्रामप्रमुख को 'ग्रामणी' कहा जाता था। इसका विधिवत् निर्वाचन होता था। ग्रामणी को राजा के निर्वाचन में भाग लेने का अधिकार प्राप्त था, अतः वह 'राजकृत्' कहा गया है।[1] यह एक प्रकार से ग्राम-पंचायत का प्रमुख होता था। ग्राम-सम्बन्धी सभी भूमि-विवादों आदि को निबटाना उसका कार्य होता था। यजुर्वेद में 'सेनानी-ग्रामण्यौ' में सेनापति के साथ उसका उल्लेख है।[2] इससे ज्ञात होता है कि वह सेना के लिए सैनिकों को भी तैयार करता था।

अनेक ग्रामों के समूह को 'विश्' कहते थे। इसके सर्वोच्च अधिकारी को 'विश्पति' कहते थे। ऋग्वेद में विश्पति को पुरों का पालक और पिता कहा गया है।[3] इससे ज्ञात होता है कि वह नगराध्यक्ष के तुल्य होता था।

विशों के समूह को 'जन' कहते थे। जन का सर्वोच्च शासक राजा होता था। जनों का निवास जनपदों में होता था। ऋग्वेद और अथर्ववेद में ऐसे २० जनराज्यों का उल्लेख मिलता है।[4] अनेक जनपदों को मिलाकर राष्ट्र बनता था।[5]

३. राजा का निर्वाचन

राजा की आवश्यकता के विषय में ऐतरेय ब्राह्मण (१.१४) में एक रोचक प्रसंग आया है कि देवता और असुर निरन्तर युद्ध करते थे। असुर देवों को हरा देते थे। देवों ने विचार किया कि राजा न होने के कारण हम पराजित होते हैं, अतः उन्होंने इन्द्र को अपना राजा बनाया और वे विजयी हुए।

---

१. ये राजानो राजकृतः सूता ग्रामण्यश्च ये। अ० ३.५.७
२. सेनानी-ग्रामण्यौ। यजु० १५.१५ से १९
३. अत्रा वो विश्पतिः पिता पुराणाम्। ऋग्० १०.१३५.१
४. त्वमेतान् जनराज्ञो द्विर्दश०। अ० २०.२१.९। ऋग्० १.५३.९
५. आ त्वा गन् राष्ट्रं····विशांपतिरेकराट् त्वं वि राज। अ० ३.४.१

ऋग्वेद और अथर्ववेद के कई सूक्तों में प्रजा के द्वारा राजा के निर्वाचन का उल्लेख है ।[१] अथर्ववेद के एक मंत्र में स्पष्ट उल्लेख है कि पाँचों दिशाओं से आई हुई ये प्रजाएँ तुझे राज्य के लिए निर्वाचित करती हैं ।[२] राजा की नियुक्ति का कार्य समिति करती थी ।[३] अथर्ववेद के एक मंत्र से ज्ञात होता है कि राजा का निर्वाचन सर्वसंमति से किया जाता था । इसका आधार होता था – गुणों और वीरता आदि में सर्वोत्कृष्टता । इन्द्र को गुणों में सर्वोत्कृष्ट पाया गया । अतः उसे राजा बनाया गया ।[४] अथर्ववेद में निर्वाचकों के लिए 'वरुण' शब्द आया है और राजा के लिए कहा है कि – 'वरुणैः संविदानः' अर्थात् वह निर्वाचकों से संपर्क करता था ।[५] राजा ही नियुक्ति जीवन भर के लिए होती थी । अतः मंत्र में 'दशमीम्' (अर्थात् दसवें दशक तक के लिए, १०० वर्ष के लिए) कहा गया है ।[६]

४. राज्याभिषेक

राजा के विधिवत् निर्वाचन के बाद उसका राज्याभिषेक होता था । यजुर्वेद के अध्याय ९ और १० में तथा शतपथ ब्राह्मण के कांड ५ में इसका विस्तृत वर्णन है ।

राज्याभिषेक के समय राजसूय और वाजपेय यज्ञ किए जाते थे । शतपथ ब्राह्मण का कथन है कि राजसूय यज्ञ का फल है – राजत्व की प्राप्ति और वाजपेय यज्ञ का फल है – साम्राज्य की प्राप्ति ।

राजा वै राजसूयेनेष्ट्वा भवति । सम्राड् वाजपेयेन । शत० ५.१.१.१३

शपथ-ग्रहण–राज्याभिषेक के समय राजा को यह शपथ लेनी होती थी । मैं सत्यनिष्ठा के साथ शपथ लेता हूँ कि – "जिस रात्रि में मेरा जन्म हुआ और जिस रात्रि में मेरी मृत्यु होगी, उन दोनों के मध्य में मैंने जो भी इष्टापूर्त (पुण्य कर्म) किए हों, वे सब नष्ट हो जाएँ और मैं स्वर्ग, समस्त शुभ कर्म, आयु और संतान से वंचित हो जाऊँ, यदि मैं किसी भी प्रकार से देश और जनता के प्रति द्रोह करूँ ।"[७] इससे ज्ञात होता है कि देशद्रोह और जनता के साथ विश्वासघात राजा के लिए अक्षम्य अपराध है ।

५. राजा के कर्तव्य

राज्याभिषेक के साथ ही राजा के कर्तव्यों का भी निर्देश किया गया है । राजा से कहा गया है कि – तुमको यह राष्ट्र दिया जा रहा है, तुम इसके नियन्ता हो, तुम

---

१. ऋग्० १०.१७३.१ से ६ । अथर्व० ३.४.१ से ७
२. त्वां विशो वृणतां राज्याय, त्वामिमाः प्रदिशः पञ्च देवीः । अ० ३.४.२
३. ध्रुवाय ते समितिः कल्पतामिह । अ० ६.८८.३
४. विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरं, सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे । अ० २०.५४.१
५. वरुणैः संविदानः । अ० ३.४.६
६. दशमीमुग्रः सुमना वशेह। अ० ३.४.७
७. यां च रात्रिमजायेऽहं, यां च प्रेताऽस्मि, तदुभयमन्तरेणेष्टापूर्तं मे लोकं सुकृतमायुः प्रजां वृञ्जीथाः, यदि ते द्रुह्येयम् इति । ऐत० ब्रा० ८.१५

दृढ़तापूर्वक इस उत्तरदायित्व को संभालो। यह राष्ट्र तुम्हें इन कार्यों के लिए दिया जा रहा है– १. कृषि की उन्नति, २. जन–कल्याण, ३. आर्थिक समुन्नति, ४. राष्ट्र की सुदृढ़ता।

इयं ते राड्, यन्ताऽसि यमनो ध्रुवोऽसि धरुणः ।
कृष्यै त्वा, क्षेमाय त्वा, रय्यै त्वा, पोषाय त्वा ।। यजु० ९.२२

संक्षेप में चार शब्दों में राजा के पूरे कर्तव्यों का निर्देश है। १. **कृषि**–कृषि की उन्नति से ही अन्नसमृद्धि होगी। २. **क्षेम**– जन-कल्याण और प्रजा का रंजन राजा को स्थिरता प्रदान करेगा। ३. **रयि**–आर्थिक समुन्नति से ही देश की प्रतिष्ठा बढ़ेगी ४. **पोष**–देश की सुदृढ़ता से राष्ट्रीय गौरव बढ़ेगा।

ये ही भाव अन्य मंत्रों में भी दिए गए हैं। अथर्ववेद का कथन है कि राष्ट्र को सुदृढ़ बनाओ और सौभाग्य की ओर ले जावो।[1] राष्ट्र की सुदृढ़ता से ही आर्थिक अभ्युदय होगा।[2] ऋग्वेद के एक मंत्र में कठोर अनुशासन की शिक्षा दी गई है कि राजा उग्र निदेशक हो।[3] यजुर्वेद में उत्तम शिक्षा दी गई है कि उग्रवादी को कठोर दंड दे, दुर्जनों से कठोर व्यवहार करे और मित्रों को प्रेम से वश में करे।[4] राजा का कर्तव्य है कि वह प्रजा में सुरक्षा की भावना उत्पन्न करे और उन्हें निर्भय करे।[5] राजा और प्रजा अन्योन्यसंबद्ध हैं, अतः राजा का कर्तव्य है कि वह प्रजा की सुरक्षा करे और प्रजा का कर्तव्य है कि वह राजा को अपना पूर्ण समर्थन दे।[6] व्यापार और शिक्षा को संरक्षण दे। व्यापारियों और विद्वानों की रक्षा करे।[7] कठोरता से कर (Tax) वसूल करे, जिससे अर्थव्यवस्था ठीक रहे।[8]

६. राजा और राजकृत् (रत्निन्)

वैदिक संहिताओं और ब्राह्मण ग्रन्थों में राजा के निर्वाचक (King-makers) या राजकार्य में सहायकों को राजकृत् कहा गया है। ये राजा के निर्वाचन में भाग लेते थे। शतपथ ब्राह्मण में इनकी संख्या ११ बताते हुए 'एकादश रत्नानि' कहा है।[9] ये रत्न या राजकीय सम्मान सूचक-पदक आदि धारण करने के कारण इन्हें 'रत्निन्' रत्नधारी कहा गया है। इनका क्रम यह रखा गया है–

१. सेनानी (सेनापति), २. पुरोहित, ३. महिषी (महारानी), ४. सूत (इतिहास-लेखक), ५. ग्रामणी (वैश्य), ६. क्षत्ता (आय-व्ययाधिकारी), ७. संग्रहीता

---

१. इदं राष्ट्रं पिपृहि सौभगाय। अथर्व० ७.३५.१
२. राष्ट्रं च रोह, द्रविणं च रोह। अ० १३.१.३४
३. उग्रं चेत्तारम् अधिराजम् अक्रन्। ऋग्० १०.१२८.९
४. उग्रं लोहितेन, मित्रं सौव्रत्येन, रुद्रं दौर्व्रत्येन। यजु० ३९.९
५. अभयानि कृण्वन्, यजु० ११.१५
६. प्रजास्त्वाऽनुप्राणन्तु, प्रजास्त्वम् अनुप्राणिहि। यजु० ४.२५
७. रक्षा च नो मघोनः, पाहि सूरीन्। ऋग्० १.५४.११
८. विशश्चक्रे बलिहृतः सहोभिः। ऋग्० ७.६.५
९. शत० ब्रा० ५.३.१.१ से १३

(कोषाध्यक्ष), ८. भागदुघ (राजस्व-अधिकारी), ९. अक्षावाप (आय-व्यय-निरीक्षक), १०. गोविकर्त (अरण्यपाल), ११. पालागल (विशिष्ट सन्देशवाहक)।

७. विविध शासन-प्रणालियाँ

ऐतरेय ब्राह्मण की अष्टम पंचिका में विविध शासन-प्रणालियों का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है।[१] साथ ही इनके शासकों के नाम भी दिए गए हैं। यह भी उल्लेख है कि ये प्रणालियाँ कहाँ प्रचलित थीं।[२] ये प्रणालियाँ हैं–

१. साम्राज्य–इस प्रणाली के शासक को 'सम्राट्' कहते थे। यह प्रणाली पूर्व दिशा के राज्यों (मगध, कलिंग, बंग आदि) में प्रचलित थी।[३] सम्राट् एकछत्र अधिकारी होता था।

२. भौज्य–इस प्रणाली के शासक को 'भोज' कहते थे। यह प्रणाली दक्षिण दिशा के सत्वत् (यादव) राज्यों में प्रचलित थी। अन्धक और वृष्णि यादव-गणराज्य इसी श्रेणी में आते हैं। इस शासन-प्रणाली में जनहित और लोक-कल्याण की भावना अधिक रहती थी, अतः यह पद्धति अधिक लोकप्रिय हुई।

३. स्वाराज्य–इस प्रणाली के शासक दो 'स्वराट्' कहते थे। यह प्रणाली पश्चिम दिशा के (सुराष्ट्र, कच्छ, सौवीर आदि) राज्यों में प्रचलित थी। यह स्वराज्य या स्वशासित (Self-ruling) प्रणाली है। राजा स्वतंत्र रूप से शासन करता है।

४. वैराज्य–इस प्रणाली के शासक को 'विराट्' कहते थे। यह प्रणाली हिमालय के उत्तरी भाग उत्तर कुरु, उत्तर मद्र आदि राज्यों में प्रचलित थी। यह शासन-प्रणाली जनतंत्रात्मक या संघ शासन-प्रणाली है। इसमें प्रशासन का उत्तरदायित्व व्यक्ति पर न होकर समूह पर होता है।

५. पारमेष्ठ्य–इस प्रणाली के शासक को 'परमेष्ठी' कहते थे। महाभारत शान्तिपर्व और सभापर्व में इसका विस्तार से वर्णन हुआ है।[४] यह गणतंत्र-पद्धति है। इसकी मुख्य विशेषता है – प्रजा में शान्ति-व्यवस्था की स्थापना। इसमें सभी को समान अधिकार प्राप्त होता है। गणमुख्य योग्यता और गुणों के आधार पर होता है।[५]

६. राज्य–इस प्रणाली में राज्य का उच्चतम शासक 'राजा' होता था। यह प्रणाली मध्यदेश में कुरु, पंचाल, उशीनर आदि राज्यों में प्रचलित थी। राजा की सहायता

---

१. साम्राज्याय, भौज्याय, स्वाराज्याय, वैराज्याय, पारमेष्ठ्याय, राज्याय, माहाराज्याय, आधिपत्याय, स्वावश्याय, आतिष्ठाय······अभिषिञ्चति। ऐत० ब्रा० ८.४.१८

२. प्राच्यां दिशि ये के च प्राच्यानां राजानः साम्राज्यायैव तेऽभिषिच्यन्ते० इत्यादि। ऐत० ब्रा० ८.३.१४

३. विस्तृत विवेचन के लिए देखें, लेखककृत, 'वेदों में राजनीतिशास्त्र', पृष्ठ १५७ से १७४

४. महाभारत शान्तिपर्व १०७.१० से ३२। सभापर्व १४.२ से ६

५. विशेष विवरण के लिए देखें, डॉ० काशीप्रसाद जायसवाल कृत Hindu Polity.

के लिए मंत्रियों की परिषद् होती थी। शासनतंत्र के संचालन के लिए विभिन्न अधिकारियों की नियुक्ति होती थी।[१]

७. माहाराज्य–इस प्रणाली के प्रशासक को 'महाराज' कहते थे। यह राज्य पद्धति का उच्चतर रूप है। किसी प्रबल शत्रु पर विजय प्राप्त करने पर उसे 'महाराज' उपाधि दी जाती थी।

८. आधिपत्य–इस प्रणाली से प्रशासक को 'अधिपति' कहते थे। इस प्रणाली को 'समन्तपर्यायी' कहा गया है। वह पड़ौसी जनपदों को अपने वश में कर लेता था तथा उनसे कर वसूल करता था। छान्दोग्य उपनिषद् में इस प्रणाली को श्रेष्ठ बताया है।[२]

९. सार्वभौम–इस प्रणाली के प्रशासक को 'एकराट्' कहते थे। ऐतरेय ब्राह्मण में इसका उल्लेख है।[३] यह सारी भूमि का राजा होता था। इस प्रणाली को 'सार्वभौम प्रभुत्व' नाम दिया गया है।

वेदों में वर्णित अन्य शासन-प्रणालियाँ

१०. जनराज्य या जानराज्य–यजुर्वेद, तैत्तिरीय संहिता और शतपथ ब्राह्मण आदि में 'महते जानराज्याय' महान् जनराज्य का उल्लेख है।[४] इससे ज्ञात होता है कि राजा का अभिषेक 'जनतंत्रात्मक प्रशासन' के लिए होता था। इसके प्रशासक को 'जनराजा' कहा जाता था। ऋग्वेद में राजा सुदास के साथ १० जनराजाओं के युद्ध का वर्णन है।[५] इस युद्ध में इन्द्र ने राजा सुदास को विजय दिलाई। इस युद्ध को 'दाशराज्ञ युद्ध' कहा जाता है।

११. अधिराज्य–ऋग्वेद और अथर्ववेद में इसका उल्लेख है।[६] इसके प्रशासक को 'अधिराज' कहते थे। इस प्रणाली में 'उग्रं चेत्तारम्' अर्थात् राजा उग्र और कठोर अनुशासन रखता था। राजा निरंकुशता का रूप ले लेता होगा, अतः यह प्रणाली आगे लुप्त हो गई।

१२. विप्रराज्य–ऋग्वेद और अथर्ववेद में विप्रराज्य का वर्णन है।[७] इसमें यज्ञ, कर्मकांड पर विशेष बल था। सम्भवतः एकांगी विचारधारा और पाखंड के विस्तार के कारण यह प्रणाली आगे नहीं चली।

---

१. द्रष्टव्य, डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ३८९-४००

२. स हि ज्येष्ठः श्रेष्ठो राजाऽधिपतिः। छा० उप० ५.२.६

३. सार्वभौमः……एकराट्। ऐत० ८.१५

४. महते जानराज्याय। यजु० ९.४०। तैत्ति० सं० १.८.१.२
महते जनानां राज्याय। शत० ५.३.३.१२

५. त्वमेतान् जनराज्ञो द्विर्दशा०। ऋग्० १.५३.९

६. उग्रं चेत्तारम् अधिराजम् अक्रन्। ऋग्० १०.१२८.९। अ० ५.३.१०

७. शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये। ऋग्० ८.३.४। अ० २०.१०४.२

१३. समर्यराज्य–ऋग्वेद में समर्यराज्य का उल्लेख है ।[१] समर्य का अर्थ है – सम्–श्रेष्ठ या संपन्न, अर्य–वैश्य । यह धनाढ्यों का राज्य था । इसमें व्यापार में उन्नति, धन–धान्य की समृद्धि और सैन्यशक्ति की वृद्धि का उल्लेख है । संभवतः प्रजा–शोषण के कारण यह पद्धति लोकप्रिय नहीं हुई और लुप्त हो गई ।

८. मंत्रिमण्डल

वेदों में मंत्रिमंडल के लिए 'समिति' शब्द का प्रयोग है ।[२] कौटिल्य ने इसके लिए 'मंत्रिपरिषद्' शब्द का प्रयोग किया है और उसमें मंत्रियों की संख्या १२ बताई है ।[३]

राजकृतः, रत्नी–वेदों और ब्राह्मण ग्रन्थों में राज्य–संचालकों या राजा के सहायकों के लिए राजकृत् और रत्नी (रत्निन्) शब्द हैं । शतपथ ब्राह्मण ने इनकी संख्या ११ बताई है, 'एकादश रत्नानि' ।[४] इनको दो भागों में बाँटा गया है–(क) राजानो राजकृतः (राजपरिवार से संबद्ध), (ख) अराजानो राजकृतः (राजपरिवार से असंबद्ध) ।

(क) राजपरिवार से संबद्ध–१. राजन्य (उच्चकुलीन सामन्त आदि) २. महिषी (महारानी)

(ख) राजपरिवार से असंबद्ध–१. ब्रह्मन् या पुरोहित, २. सेनानी (सेनापति), ३. ग्रामणी (वैश्य)। शतपथ का कथन है–वैश्यो वै ग्रामणीः ।[५] साधारणतया ग्रामणी पद पर वैश्य की नियुक्ति होती थी । ४. सूत (राजकीय इतिवृत्त का लेखक), ५. क्षत्ता (आय–व्यय–अधिकारी), ६. संग्रहीता (कोषाध्यक्ष), ७. भागदुघ (राजस्व–अधिकारी), ८. अक्षावाप (आय–व्यय–निरीक्षक), ९. गोविकर्त (अरण्यपाल), १०. पालागल (विशिष्ट सन्देश–वाहक) ।

इनमें पुरोहित ब्राह्मणवर्ग का, राजन्य क्षत्रियवर्ग का, महिषी स्त्रीवर्ग का, ग्रामणी वैश्यवर्ग का, पालागल शूद्र वर्ग का, सेनानी सैनिकों का, संग्रहीता और भागदुघ व्यापारियों का, अक्षावाप वित्तविभाग का, गोविकर्त भूसंरक्षकों का, तक्षा और रथकार शिल्पियों का प्रतिनिधित्व करते थे । इससे ज्ञात होता है कि सभी वर्गों का राज्यसंचालन में प्रतिनिधित्व होता था ।

मंत्रिमंडल में कितने सदस्य हों, इस विषय पर मनु, महाभारत, कौटिलीय अर्थशास्त्र और शुक्रनीति आदि में बहुत विस्तृत विचार किया गया है । मंत्रियों की संख्या ८ से लेकर ३७ तक बताई गई है । कौटिल्य ने अपना मत दिया है कि आवश्यकतानुसार

---

१. अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि, महे समर्यराज्ये । ऋग्० ९.११०.२

२. ध्रुवाय ते समितिः कल्पताम् । अथर्व० ६.८८.३

३. मन्त्रिपरिषदं द्वादशामात्यां कुर्वीत । अर्थशास्त्र पृ० ५७

४. शत० ब्रा० ५.३.१ से १३

५. शत० ब्रा० ५.३.१.६

इनकी संख्या निर्धारित की जाय। महाभारत के अनुसार मंत्रिपरिषद् में चारों वर्णों का प्रतिनिधित्व अनिवार्य है। इनकी संख्या ३७ होने पर इतने मंत्री इस वर्ण से लिए जाएँ– ब्राह्मण ४, क्षत्रिय ८, वैश्य २१, शूद्र ३, सूत (तत्कालीन इतिहास का लेखक)।[१]

इससे स्पष्ट है कि अर्थ-व्यवस्था को ठीक रखने के लिए वित्त-विशेषज्ञ (वैश्य) सबसे अधिक हों। यदि राष्ट्र की अर्थ-व्यवस्था सुदृढ़ है तो उसका सर्वांगीण विकास समुचित ढंग से हो सकेगा।

९. सभा और समिति

सभा का स्वरूप- अथर्ववेद में सभा और समिति को प्रजापति (राजा) की दो पुत्रियाँ कहा गया है। इसका अभिप्राय यह है कि राजा ही सभा और समिति की स्थापना करता है। दोनों के स्वरूप में अन्तर है। सभा छोटी इकाई है, परन्तु इसका स्वरूप व्यापक है। यह ग्राम सभा से लेकर केन्द्रीय सभा तक होती है। मंत्र में 'संविदाने' शब्द का प्रयोग है। इसका अर्थ है–परस्पर संबद्ध, परस्पर संज्ञान वाली। इसका अभिप्राय यह है कि ये दोनों एक-दूसरे की पूरक हैं। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि इन दोनों की स्वतंत्र सत्ता है। दोनों ही लोकहित और नृपहित का कार्य संपादन करती थीं। मंत्र में सभा के सदस्यों को 'पितरः' (पिता) कहा गया है, इससे ज्ञात होता है कि सभा के सदस्य अनुभवी और वृद्ध व्यक्ति होते थे। सभा में वक्तृत्व कला को बहुत महत्त्व दिया जाता था। उत्तम वक्ता सभा को अपने ओजस्वी भाषण से प्रभावित करता था और अपने अनुकूल वातावरण तैयार करता था।

सभा च मा समितिश्चावतां, प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने।
येना संगच्छ उप मा च शिक्षात्, चारु वदानि पितरः संगतेषु॥

अथर्व० ७.१२.१

सभा के सदस्य को सभ्य, सभेय और सभासद् कहते थे। ये तीनों शब्द सभा के सदस्य के लिए प्रचलित थे। सभा के अध्यक्ष के लिए 'सभापति' शब्द है। सभा में अपने विचार व्यक्त करने की पूर्ण स्वतंत्रता थी। अथर्ववेद के 'सवाचस्' शब्द से ज्ञात होता है कि विचार-विनिमय के बाद एकमत या एक राय स्थापित की जाती थी।[२]

सभा का कार्य–सभा का मुख्य कार्य था – न्याय की ठीक व्यवस्था करना। विवादग्रस्त सभी विषयों को निबटाना और उन पर अपना अन्तिम निर्णय देना। सभा का

---

१. चतुरो ब्राह्मणान् वैद्यान्, प्रगल्भान् स्नातकान् शुचीन्।
क्षत्रियांश्च तथा चाष्टौ, बलिनः शस्त्रपाणिनः॥७॥
वैश्यान् वित्तेन संपन्नान्, एकविंशति-संख्यया।
त्रींश्च शूद्रान् विनीतांश्च, शुचीन् कर्मणि पूर्वके॥८॥
अष्टाभिश्च गुणैर्युक्तं, सूतं पौराणिकं तथा॥ शान्ति० ८५.७ से ९

२. ते मे सन्तु सवाचसः। अ० ७.१२.२

निर्णय अन्तिम माना जाता था। इसका कोई उल्लंघन नहीं कर सकता था। अथर्ववेद में सभा को 'नरिष्टा' कहा गया है।[१] सायण ने नरिष्टा की व्याख्या की है– न + रिष्टा, अर्थात् जिसके निर्णय को कोई टाल न सके। इससे ज्ञात होता है कि न्याय के मामले में सभा सर्वोच्च संस्था थी।

समिति का स्वरूप–समिति राष्ट्रीय स्तर की महासभा (National Assembly) थी। इसमें राष्ट्र के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व होता था और इसमें सार्वजनिक जीवन से संबद्ध सभी महत्त्वपूर्ण विषयों पर विचार-विनिमय होता था। इसका कार्यक्षेत्र न्याय-विधान तक ही सीमित न होकर पूरे राष्ट्र की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक आदि सभी व्यवस्थाओं से संबद्ध था। सभी समस्याओं को हल करना और उनपर अपना निर्णय देना समिति का कार्य था। पारस्कर गृह्यसूत्र में समिति के अध्यक्ष के लिए 'ईशान' शब्द दिया गया है और समिति को पर्षद् (परिषद्) कहा गया है।[१]

समिति के कार्य–समिति का कार्यक्षेत्र बहुत व्यापक था। वेदों के अनुसार समिति के कुछ प्रमुख कार्य ये थे– १. राजा को चुनना[२], २. उसके कर्तव्यों का निर्धारण। जैसे–कृषि की उन्नति, जन–कल्याण, आर्थिक विकास और राष्ट्र को सुदृढ़ बनाना।[३] ३. कर्तव्य–निर्वाह न करने पर राजा को पदच्युत करना और राज्य से निर्वासित भी करना।[४] ४. प्रायश्चित्त आदि करने पर राजा को पुनः राजगद्दी पर बैठाना।[५] ५. समिति राष्ट्रीय आय–व्यय और जनता के योगक्षेम के लिए उत्तरदायी होती थी। अतः वह राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर नियंत्रण रखती थी।[६] ६. राज्य में अन्याय, अत्याचार और अराजकता को रोकना।[७] ७. समिति की अध्यक्षता राजा करता था, अतः समिति में राजा की उपस्थिति अनिवार्य होती थी।[८]

१०. अर्थ-व्यवस्था और कर-संग्रह

कोष का महत्त्व–राज्य की समस्त व्यवस्था का आधार वित्त या अर्थ है। अर्थ ही राजशक्ति को स्थिरता प्रदान करता है। यजुर्वेद में श्री और लक्ष्मी को राजा (विराट् पुरुष) की दो पत्नियाँ कहा गया है।[९] जबतक श्री है, तभी तक राजत्व है। अतः वेद, मनुस्मृति, महाभारत, अर्थशास्त्र और शुक्रनीति आदि में कोष पर बहुत बल दिया गया है।

---

१. अस्याः पर्षद ईशानः सहसा दुष्टरो जन इति। पार० गृ० ३.१३.४
२. ध्रुवाय ते समितिः कल्पतामिह। अथर्व० ६.८८.३
३. कृष्यै त्वा, क्षेमाय त्वा, रय्यै त्वा, पोषाय त्वा। यजु० ९.२२
४. मा त्वद् राष्ट्रमधि भ्रशत्। ऋग्० १०.१७३.१
५. अथर्व० ३.३.४-५
६. योगक्षेमं व आदाय०। ऋग्० १०.१६६.५
७. अथर्व० ५.१९.१५
८. राजा न सत्यः समितीरियानः। ऋग्० ९.९२.६
९. श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ०। यजु० ३१.२२

राजा के लिए स्पष्ट निर्देश है कि जैसे भी हो कोष की वृद्धि करे, क्योंकि कोष पर ही सारा राजतंत्र निर्भर है ।[१] राजा के लिए यह भी निर्देश है कि वह कोष का उपयोग सेना, प्रजा-संरक्षण और धार्मिक कार्यों में ही करे, अन्यत्र नहीं ।[२]

कर के दो रूप–राजस्व की वृद्धि के लिए दो प्रकार के करों (Tax) का उल्लेख मिलता है– १. बलि, २. शुल्क। इन दोनों के स्वरूप में अन्तर है ।

१. बलि–ऋग्वेद में राजा को प्रजा से बलि (Tax) लेने का अधिकार दिया गया है ।[३] अथर्ववेद में भी अनेक प्रकार के कर लेने का विधान है । साथ ही यह भी उल्लेख है कि इस कर को उपयोगी कार्यों में ही लगावे ।[४] मंत्र में राजा के लिए 'उग्रः' शब्द का प्रयोग है । इससे ज्ञात होता है कि उग्र और तेजस्वी राजा ही प्रजा से कर सरलता से वसूल कर सकता है, अन्य नहीं। अथर्ववेद से ज्ञात होता है कि प्रारम्भ में कर आय का सोलहवां भाग अर्थात् सवा छह प्रतिशत ही लिया जाता था,[५] परन्तु मनु आदि के समय में यह बढ़कर आय का षष्ठांश अर्थात् सोलह प्रतिशत हो गया ।

२. शुल्क (चुंगी)–अथर्ववेद से ज्ञात होता है कि कर शुल्क (चुंगी) के रूप में भी वसूल किया जाता था ।[६] इसमें कुछ विधाएँ संकेत रूप में ये दी गई हैं– नावों से नदी पार करने पर (तटकर आदि), कृषि-कार्य हेतु नाली आदि के द्वारा जल लेने पर, दूध और घी की बिक्री पर ग्वालों आदि से । इससे ज्ञात होता है कि वस्तुओं की बिक्री, पशुओं आदि की बिक्री पर भी कुछ शुल्क लिया जाता होगा । अथर्ववेद में उल्लेख है कि जो ब्राह्मणों पर किसी प्रकार का कर लगाते हैं, वे पापी होते हैं ।[७] इससे ज्ञात होता है कि तटकर आदि के रूप में लिए जाने वाले शुल्क से ब्राह्मणों (विद्वानों, संन्यासियों आदि) को मुक्त रखा जाता था ।

११. विविध शस्त्रास्त्र

वेदों में दिव्य और मानवीय शस्त्रों एवं अस्त्रों का विस्तृत वर्णन है ।[८] शस्त्र और अस्त्र दोनों के लिए आयुध शब्द का प्रयोग होता था । जो यन्त्र आदि के द्वारा फेंके जाते थे, उन्हें अस्त्र (Missile) कहते थे और जिन्हें हाथ में लेकर लड़ा जाता था, जैसे खड्ग, परशु आदि, उन्हें शस्त्र (Weapon) कहते थे । इनके भी दो भेद थे–दिव्य और मानवीय । दिव्य अस्त्रादि का प्रभाव असाधारण होता था, जैसे ब्रह्मास्त्र, आग्नेय अस्त्र आदि । वेदों में

---

१. कोशश्च सततं रक्ष्यो यत्नमास्थाय राजभिः ।
कोशमूला हि राजानः, कोशो वृद्धिकरोभवेत् ।। महाभारत, शान्ति० ११९.१६

२. बल-प्रजा-रक्षणार्थं, यज्ञार्थं कोश-संग्रहः । शुक्रनीति ४.२.३

३. अग्निर्विशश्चक्रे बलिहृतः सहोभिः । ऋग्० ७.६.५

४. बहुं बलिं प्रति पश्यासा उग्रः। अ० ३.४.३ और ४

५. यद् राजानो विभजन्त इष्टापूर्तस्य षोडशं यमस्यामी सभासदः । अ० ३.२९.१

६. ये नदीनां संस्रवन्ति उत्सासः······तेभिः······धनं सं स्रावयामसि ।
ये सर्पिषः······क्षीरस्य चोदकस्य च। तेभिः······धनं सं स्रावयामसि ।। अ० १.१५.३-४

७. ये वाऽस्मिन् शुल्कमीषिरे० । अ० ५.१९.३

८. इनके विस्तृत विवेचन एवं सन्दर्भों के लिए देखें, लेखककृत–वेदों में राजनीतिशास्त्र ।

प्रक्षेपास्त्रों के लिए हेति और मेनि शब्द है। इनके निर्माण और प्रयोग के विषय में कोई विवरण प्राप्त नहीं होता है।

(क) दिव्य अस्त्र–वेदों में इन दिव्य अस्त्रों का उल्लेख मिलता है। १. **आग्नेय अस्त्र या अग्निबाण**[१]–इसके प्रयोग से आग लग जाती थी। २. **वायव्य अस्त्र**[२]–इसके प्रयोग से आँधी जैसी तेज हवाएँ चलती थीं। ३. **पाशुपत अस्त्र**[३]–यह शिव का अस्त्र है। ४. **ब्रह्मास्त्र**[४]–इसको 'ब्रह्मणो हेतिः' कहा है। यह अमोघ अस्त्र था। ५. **ऐन्द्र अस्त्र या वज्र**[५]–यह इन्द्र का प्रसिद्ध वज्र है। ६. **वारुण अस्त्र**[६]–यह वरुण का नागपाश है, जो सांप की तरह मनुष्य को लिपटकर बाँध लेते थे। ७. **आथर्वण अस्त्र**[७]–इसके प्रयोग से व्याघ्र आदि निश्चेष्ट हो जाते थे। ८. **संमोहन अस्त्र**[८]–इसके प्रयोग से शत्रुसेना बेहोश हो जाती थी। ९. **तामस अस्त्र**[९]–यह अश्रु गैस (Tear Gas) के तुल्य था। इसके प्रयोग से शत्रुसेना का दम घुटने लगता था।

(ख) मानवीय शस्त्र और अस्त्र–१. धनुष, बाण, २. सृक (एक क्षेप्य अस्त्र), ३. हेति, मेनि (क्षेप्य अस्त्र), ४. प्रहेति (उच्च कोटि का घातक प्रक्षेपास्त्र), ५. अशनि (जलता हुआ प्रक्षेपास्त्र), ६. ऋष्टि (एक प्रकार का भाला), ७. रम्भिणी (शक्ति या भाला), ८. सीस (सीसे की गोली), ९. असि (तलवार), १०. परशु, ११. स्वधिति (छोटी तलवार), १२. कृपाण, १३. वाशी (कुल्हाड़ा), १४. शूल (नोकीला शस्त्र), १५. चक्र, १६. धूमाक्षी (धूमास्त्र), १७. उल्का (आग का गोला), १८. कर्त (आरा जैसा शस्त्र)।

शुक्रनीति ने शस्त्रास्त्रों का वर्णन करते हुए तोप के लिए बृहत्नालिक और बन्दूक के लिए लघुनालिक शब्द दिए हैं।[१०] कौटिलीय अर्थशास्त्र ने शस्त्रास्त्रों की लम्बी सूची दी है।[११] इनमें मन्त्रचालित अस्त्रों को दो भागों में बाँटा है–स्थितयन्त्र और चलयन्त्र अर्थात् मशीन एक ही स्थान पर रहे या इधर-उधर ले जाई जा सके। स्थितयंत्र १० और चलयंत्र १६ प्रकार के गिनाए हैं। इनमें सर्वतोभद्र (मशीनगन), पर्जन्यक (दमकल), शतघ्नी (एक साथ सौ मनुष्यों को मारने वाली), पांचालिक (जलसुरंग, Mine), त्रिशूल, चक्र, शक्ति, प्रास, कुन्त, शूल, तोमर आदि का उल्लेख है।

---

१. अथर्व० ३.१.६; ६.६७.२
२. अथर्व० ३.१.५
३. यजु० १६.५०
४. अथर्व० ५.६.९
५. ऋग्० १.८०.१२
६. अथर्व० ४.१६.६
७. अथर्व० ४.३.७
८. अथर्व० ३.१.१
९. अथर्व० ३.२.६
१०. शुक्रनीति ४.७.१८५ से १८८
११. अर्थशास्त्र पृष्ठ २०९ से २१२ (गैरोला-संस्करण)

अध्याय ९

वैदिक देवों का स्वरूप

१. देवता किसे कहते हैं?

देवों के स्वरूप पर विचार करने से पूर्व यह समझ लेना आवश्यक है कि देवता किसे कहते हैं ? देव या देवता का अभिप्राय है–कोई दिव्य शक्ति । वह शक्ति जो मानव-जगत् का कुछ उपकार करती है, उसे किसी रूप में कुछ देती है या जिसमें कुछ दिव्य या असाधारण क्षमता है, उसे देवता कहा जाता है । अतएव यास्क ने देव शब्द का निर्वचन दिया है कि–

देवो दानाद् वा, दीपनाद् वा, द्योतनाद् वा, द्युस्थानो भवतीति वा।

निरुक्त ७.१५

अर्थात् देव वह है जो कुछ देता है, स्वयं प्रकाशमान है या दूसरे को प्रकाशित करता है या द्युलोकस्थ है । इस दृष्टि से पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, मेघ आदि देव हैं, क्योंकि ये संसार का उपकार कर रहे हैं ।

अतएव वैदिक ऋषियों ने कृतज्ञता-स्वरूप इनको देव या देवता कहा है तथा इनके अनुग्रह की कामना की है । जिस देवता को लक्ष्य में रखकर मंत्र की रचना हुई है, वह उस मंत्र का देवता होता है । मंत्रों के ऊपर लिखे गए देवता का अभिप्राय है, मंत्र का वर्ण्य-विषय । उस मंत्र में उस विषय का प्रतिपादन है । मंत्र के द्वारा देवों या दिव्य शक्तियों का आह्वान किया जाता है । यही भाव यास्क ने निरुक्त (७.१) में दिया है ।

२. देवों का स्वरूप

देवों का स्वरूप उनकी प्रकृति पर निर्भर है । कुछ देव मानववत् कार्य करते हैं । जैसे-इन्द्र, वरुण, मरुत् आदि । इनके अंगों आदि का भी वर्णन मिलता है । इनके लिए यास्क ने कहा है कि कुछ देव मनुष्य के तुल्य हैं, उनकी सचेतन के तुल्य स्तुति की जाती है । कुछ मनुष्यों के तुल्य नहीं है । जैसे- अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि । इनकी अचेतन के तुल्य स्तुति की जाती है ।

पुरुषविधाः स्युः, इत्येकम् । चेतनावद् हि स्तुतयो भवन्ति ।
अपुरुषविधाः स्युः, इत्यपरम् ।

निरुक्त ७.६ और ७

यास्क ने निरुक्त में इन्द्र, अग्नि आदि देवों की चार प्रकार की व्याख्या प्रस्तुत की है– १. आध्यात्मिक, २. आधिदैविक, ३. आधिभौतिक और ४. अधियज्ञ । यास्क ने

विभिन्न व्याख्या-पद्धतियों का आश्रय लेकर कहा है कि इन्द्र-वृत्र आदि का अर्थ इतिहासपरक, आख्यानपरक, प्राकृतिक पदार्थ या निर्वचनात्मक किए जाते हैं। यास्क इन्द्र, अग्नि, मरुत्, वरुण, अश्विनी आदि देवों को रूढ शब्द न मानकर यौगिक शब्द मानते हैं, अतः ऐश्वर्य-संपन्नता का सूचक इन्द्र शब्द देवों का राजा, परमात्मा, जीवात्मा, विद्युत्, सूर्य आदि अर्थों का बोधक होता है। इस पद्धति को नैरुक्त प्रक्रिया कहते हैं। स्वामी दयानन्द आदि ने इस पद्धति को अपनाया है।

३. देवों की संख्या

वेदों में देवों की संख्या १ से लेकर ६ हजार तक बताई गई है। ऋग्वेद का स्पष्ट कथन है कि मूलरूप में एक ईश्वर की ही सत्ता है, उसको ही विद्वानों ने इन्द्र मित्र वरुण आदि अनेक नाम दिए हैं।[१] यास्क ने भी निरुक्त में इसी बात का समर्थन किया है और कहा है कि वह एक मूलसत्ता (ईश्वर) महाशक्तियुक्त है। उसकी विभिन्न शक्तियों को ही अनेक नाम दे दिए जाते हैं।[२] शौनक ने भी बृहद् देवता में इसका ही उल्लेख किया है।[३]

तीन देवता-ऋग्वेद ने उल्लेख किया है कि तीन मुख्य देव हैं। पृथ्वी पर अग्नि, अन्तरिक्ष में वायु या इन्द्र तथा द्युलोक में सूर्य। यास्क ने इसी आधार पर तीन देव माने हैं-अग्नि, वायु या इन्द्र तथा सूर्य। ये क्रमशः तीनों लोकों के अधिष्ठाता देवता हैं।[४]

सूर्यो नो दिवस्पातु वातो अन्तरिक्षाद् अग्निर्नः पार्थिवेभ्यः। ऋग्० १०.१५८.१

३३ देवता-ऋग्वेद और अथर्ववेद में ३३ देवों का उल्लेख है-११ पृथ्वी पर, ११ अन्तरिक्ष में और ११ द्युलोक में।[५] शतपथ ब्राह्मण (११.६.३.५) और ऐतरेय ब्राह्मण (१२.११.२२) में इन ३३ देवों के नाम मिलते हैं। ये हैं-८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, द्यौः और पृथिवी (या इन्द्र, प्रजापति)।

३३३९ देवता-यजुर्वेद के एक मंत्र में कहा गया है कि ३३३९ देवता हैं और ये सब अग्नि की पूजा करते हैं।

त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन्। यजु० ३३.७

६ हजार देवता-अथर्ववेद के एक मंत्र में देवों की संक्षिप्त और विस्तृत संख्या इस प्रकार दी गई है-३३ देवता, ३०० देवता और ६ हजार देवता। संक्षिप्त संख्या

---

१. इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुः.....
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः। ऋग्० १.१६४.४६

२. माहाभाग्याद् देवताया एक एवात्मा बहुधा स्तूयते। निरुक्त ७.४

३. बृहद् देवता १.७१ से ७३

४. तिस्र एव देवता इति नैरुक्ताः। अग्निः पृथिवीस्थानः। वायुर्वा इन्द्रो वा अन्तरिक्षस्थानः। सूर्यो द्युस्थानः। निरुक्त ७.५

५. ये देवासो दिवि-एकादश स्थ, पृथिव्यामध्येकादश स्थ।
अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ, ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम्॥ ऋग्० १.१३९.११
दिवि एकादश, अन्तरिक्षे एकादश, पृथिव्याम् एकादश०। अ० १९.२७.११ से १३

३३ है, उससे विस्तृत ३०० है और उससे विस्तृत ६ हजार है। ये देवता अपनी विभूतियों के विस्तार से ६ हजार या उससे भी अधिक हो जाते हैं। जैसा कि यजुर्वेद में वर्णन है कि वह रुद्र एक होता हुआ भी हजारों या असंख्य रूपों में पृथिवी पर है।

(क) देवाः.....त्रयस्त्रिंशत् त्रिशतः षट् सहस्राः। अ० ११.५.२

(ख) असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधि भूम्याम्। यजु० १६.५४

एकेश्वरवाद–ऋग्वेद में 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' द्वारा जो एक देवता या एकेश्वरवाद का समर्थन किया गया है, उसका यजुर्वेद और अथर्ववेद में भी पूर्ण समर्थन हुआ है। विश्व में एक सर्वशक्तियुक्त सत्ता या ऊर्जा (Universal Energy) विद्यमान है, उसको वेदों में वैश्वानर अग्नि कहा गया है। इस मूल सत्ता या ऊर्जा के ही अंग-प्रत्यंग विविध देव हैं। अपने गुण-विशेष के कारण इनके इन्द्र, मित्र, वरुण, यम आदि नाम पड़े हैं। यह है बहुदेवत्व की स्वीकृति के बाद एकदेवत्व की मान्यता का आधार। ऊर्जा का मूल स्रोत एक है। कार्य-वैविध्य के कारण नाना-देवत्व है। अपने गुण-धर्मों के आधार पर देवों के विभिन्न नाम पड़े हैं। अत एव ऋग्वेद का कथन है कि उस एक सुपर्ण को विद्वान् अनेक नामों से निर्दिष्ट करते हैं।[1] यजुर्वेद का कथन है कि उस एक विराट् पुरुष (ईश्वर) को ही अग्नि, सूर्य, वायु, चन्द्रमा, शुक्र (वीर्य), ब्रह्म, जल और प्रजापति कहते हैं।[2] अथर्ववेद का कथन है कि उस एक परमेश्वर के ही अनेक देववाचक नाम हैं।[3] उसको ही इन्द्र, महेन्द्र, विष्णु, प्रजापति आदि कहते हैं।[4]

इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि एकेश्वरवाद का मन्तव्य अर्वाचीन न होकर अतिप्राचीन है और यह वैदिक ऋषियों की सूक्ष्म चिन्तन-शक्ति का परिचायक है।

४. वैदिक देवों का वर्गीकरण

यास्क ने वैदिक देवों को तीन वर्गों में बाँटा है १. पृथिवी-स्थानीय, २. अन्तरिक्ष-स्थानीय, ३. द्युस्थानीय। इनमें प्रमुख देव ये हैं–

१. पृथिवीस्थानीय देवता–अग्नि, सोम, बृहस्पति, त्वष्टा, प्रजापति, विश्वकर्मा, अदिति-दिति आदि देवियाँ, नदियाँ आदि।

२. अन्तरिक्ष-स्थानीय देवता–इन्द्र, मातरिश्वा (मातरिश्वन्), रुद्र, मरुत्, पर्जन्य, आपः (जल), अपांनपात्, त्रित आप्त्य, अहिर्बुध्न्य आदि।

३. द्युस्थानीय देवता–आदित्य, सविता (सवितृ), सूर्य, पूषा (पूषन्), मित्र, वरुण, अर्यमा (अर्यमन्), अश्विनौ आदि।

---

१. सुपर्णं विप्राः कवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति। ऋग्० १०.११४.५

२. तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद् वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः।। यजु० ३२.१

३. यो देवानां नामध एक एव। अ० २.१.३

४. त्वमिन्द्रः, त्वं महेन्द्रः। अ० १७.१.१८

५. प्रमुख देवों का परिचय

(१) अग्नि[1]

वेदों में अग्नि मूर्धन्य देव है। यह भौतिक अग्नि से लेकर परमात्मा तक का बोधक है। अग्नि मुख्यरूप से यज्ञिय अग्नि का बोधक है। सभी यागों का आधार अग्नि है, अतः अग्नि के बिना कोई दैवी कार्य असंभव है। अग्नि देवों का दूत है और उनका मुख है। इसके द्वारा ही देव समस्त द्रव्यों को ग्रहण करते हैं। अग्नि सभी देवों को उनका अंश पहुँचाता है। इन्द्र के तुल्य अग्नि को भी वृत्रहा कहा गया है। इसका अभिप्राय है कि यह पर्यावरण का शोधक है और पापरूपी वृत्र का नाशक है।

अग्नि के विराट् रूप का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वह चार प्रकार का है–भौतिक अग्नि, जलीय अग्नि, सूर्य और विद्युत्।[2] इसका अभिप्राय यह है कि जहाँ भी आग्नेय तत्त्व है, वहाँ अग्निदेव है। अग्नि को द्युलोक, अन्तरिक्ष, पृथिवी, विद्युत्, वायु और दिशाओं में व्याप्त बताया गया है।[3] अथर्ववेद में वर्णन है कि अग्नि विभिन्न रूपों में इन सभी पदार्थों में विद्यमान है[4]: जल में विद्युत् के रूप में, मेघ में बिजली, मनुष्य में स्फूर्ति, पत्थरों में चिनगारी, वनस्पतियों में ऊष्मा, पशु-पक्षियों में स्फूर्ति के रूप में है। प्रो० ग्रिफिथ ने भी इन मंत्रों की व्याख्या में यही भाव प्रकट किया है।[5]

वेदों में तीन अग्नियों का उल्लेख हुआ है–गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि।[6] इनके अतिरिक्त भी कुछ अग्नियों का उल्लेख हुआ है। ये हैं–क्रव्याद्, अक्रव्याद्, संकसुक और विकसुक।[7] अक्रव्याद्- यज्ञ आदि के उपयुक्त, क्रव्याद्- अन्त्येष्टि संस्कार आदि हेतु, संकसुक- पदार्थों को जोड़ने वाली, विकसुक-वियोजन या विघटित करने वाली।

अग्नि का मानवीकृत रूप भी मिलता है। वह घृतपृष्ठ, घृतमुख, घृतकेश, हरितकेश आदि है। उसको वृषभ, अश्व, वत्स, दिव्य पक्षी आदि के रूप में भी प्रस्तुत किया गया है। अग्नि का भोजन काष्ठ और घृत है। उसके सात मुँह या सात जिह्वाएँ हैं।[8] मुंडक उपनिषद् में अग्नि की सात जिह्वाएँ काली, कराली, मनोजवा आदि बताई गई हैं।[9]

---

१. देवों संबन्धी सन्दर्भों के लिए देखें, लेखककृत, अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ३१६-३४३
२. अथर्व० ८.१.११
३. अ० ३.२१.७
४. अ० ३.२१.१-२
५. ग्रिफिथ, अथर्व० भाष्य १, पृ० ११३
६. अ० १८.४.११
७. अ० १२.२.१४
८. अ० ४.३९.१०
९. मुंडक उप० १.२.४

अथर्ववेद में वर्णन है कि इन्द्र और अग्नि एक रथ पर बैठ कर चलते हैं।[१] इसका अभिप्राय यह है कि शरीररूपी रथ पर इन्द्र (परमात्मा) और अग्नि (जीवात्मा) दोनों यात्रा करते हैं। ऋग्वेद में अग्नि को परमात्मा के रूप में प्रस्तुत किया गया है और पिता कहा गया है।[१] वह हमें प्राप्त हो और हमारा कल्याण करे।

श्री अरविन्द ने अग्नि शब्द से मानव में विद्यमान संकल्प शक्ति और विवेक अर्थ लिया है। इस संकल्प शक्ति को जागृत और विकसित करने के लिए ही शरीर में ज्ञानाग्नि को प्रदीप्त किया जाता है।[२]

(२) इन्द्र

वेदों में इन्द्र सबसे प्रतापी देवता है। ऋग्वेद में इन्द्र–विषयक सूक्त २५० हैं और अन्य देवों के साथ लगभग ५० सूक्त हैं। अथर्ववेद में लगभग एक हजार मंत्र इन्द्र-विषयक हैं। इससे इन्द्र का महत्त्व ज्ञात होता है। इन्द्र के स्वरूप के विषय में विद्वानों में बहुत मतभेद है। कोई इसे युद्ध का, कोई वर्षा का देवता मानता है। कोई इन्द्र का अर्थ सूर्य और कोई उसे प्रबुद्ध मन का देवता मानते हैं। इन्द्र प्रकाश का दाता, वृत्र आदि राक्षसों को हन्ता, वृष्टि का कर्ता, योद्धा, शासक, यज्ञ का अधिष्ठाता, सोमरस का प्रेमी और धार्मिक जनों का उद्धर्ता है।

यास्क ने कहा है कि इन्द्र की ये तीन प्रमुख विशेषताएँ हैं–

१. **रसानुप्रदान**–रस देना अर्थात् वृष्टि करना। २. **वृत्रवध**–वृत्र का वध करना। ३. **बलकृति**–शक्तिवाले सभी कार्य।[३] इन्द्र का प्रमुख शत्रु वृत्र है। वह वर्षा को रोके हुए है। इन्द्र वज्र के द्वारा उसका वध करता है और नदियों को प्रवाहित करता है।[४] इस प्रकार वह वृष्टि का देवता और वृत्रासुर का संहर्ता है। वह वृत्र के अतिरिक्त बल, शम्बर और अहि आदि राक्षसों का हन्ता है। इन्द्र ने असुरों के ९९ नगर नष्ट किए।[५] अतएव उसे पुरन्दर, पुरभित् आदि कहा जाता है।

इन्द्र के गुणों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वह सैकड़ों पुरुषार्थ के कार्य करता है, अतः उसे 'शतक्रतु' कहते हैं। वह जनहित कर्ता है, अतः उसे 'नर्य' कहते हैं। वह सोमप्रेमी है, अतः उसे 'सोमपातमः' कहते हैं। वह आर्यों का रक्षक है। वह दासों और अनार्यों को आर्य बना लेता है।[६] वह दस्युओं का संहारक है। वह उत्तम प्रशासक है। प्रजा का संरक्षक है। प्रजा के हित के लिए शत्रुओं का वध करता है। वह बड़े से बड़े शत्रु को परास्त कर देता है। वह सेनापति है और सेना का संचालक है। उसका प्रमुख अस्त्र वज्र

---

१. स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। ऋग्० १.१.९

२. A. Ghosh, Hymns to the Mystic fire. भूमिका, पृ० ३१

३. अथास्य कर्म रसानुप्रदानं वृत्रवधः। या च का च बलकृतिः, इन्द्रकर्मैव तत्। निरुक्त ९.१०

४. ऋग्० १.३२.२

५. अ० २०.७.२

६. अ० २०.३६.१०

है। अतः उसे वज्री, वज्रभृत् आदि कहा जाता है। उसके सैनिकों को गण कहते हैं, अतः वह गणपति है। इन्द्र के प्रमुख सहायक 'मरुत् देवगण' हैं। ये युद्ध में उसके आगे-आगे चलते हैं। इन्द्र ने 'दाशराज्ञ युद्ध' में सुदास की सहायता की और उसे विजयी बनाया।

अध्यात्मपक्ष में इन्द्र जीवात्मा है। पाप की भावनाएँ वृत्र हैं। ये शुद्ध आत्मा के प्रकाश को रोकती हैं। पाप-भावनाओं और कुवृत्तियों को नष्ट करना ही वृत्रवध है। इसी को देवासुर संग्राम भी कहा जाता है। दैवी गुण और आसुरी वृत्तियाँ सदा युद्ध करते रहते हैं। आसुरी वृत्तिओं को नष्ट करना वृत्रवध है तथा दैवी गुणों की विजय इन्द्र की जय है।

(२) विष्णु

ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में विष्णु का अनेक सूक्तों में उल्लेख है। 'वेवेष्टि व्याप्नोति इति विष्णुः' वह सर्वत्र व्याप्त है, अतः उसे विष्णु कहा जाता है। विष्णु का सबसे प्रसिद्ध कार्य है– तीन पग से सारे विश्व को नाप लेना।[१] यजुर्वेद का कथन है कि विष्णु ने तीन पग रखे और उसमें सारा संसार आ गया।[२] अन्य मंत्र में कहा है कि उसने द्युलोक और पृथ्वी को रोका हुआ है। वह अपनी किरणों से पृथ्वी को चारों ओर से रोके हुए हैं।[३] इस मंत्र से स्पष्ट है कि विष्णु सूर्य के लिए है, वह अपनी किरणों के आकर्षण से पृथ्वी को रोके हुए है। विष्णु के तीन पग से अभिप्राय है–प्रातः मध्याह्न और सायं। सूर्योदय से सूर्यास्त तक के ये तीन केन्द्र-बिन्दु हैं। इन तीनों बिन्दुओं पर पहुँचना, पूरे भूलोक को नापना है।

इसकी अन्य व्याख्या यह है कि यह सारा विश्व एक विशाल त्रिभुज (Triangle) है। इसकी एक भुजा पृथ्वी है, दूसरी अन्तरिक्ष और तीसरी द्युलोक। इस विशाल त्रिभुज में सारा संसार आ जाता है। यही भाव यजुर्वेद के इस मंत्र में है–

यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेषु-अधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा। यजु० ५.२०

विष्णु इस त्रिभुज की तीनों भुजाओं में व्याप्त है, अतः उसे त्रिविक्रम, उरुक्रम, उरुगाय, त्रिषधस्थ आदि कहा जाता है। यजुर्वेद के एक अन्य मंत्र से स्पष्ट है कि त्रिविक्रम या त्रिपाद शब्दों से द्यु, भू और अन्तरिक्ष ये तीन पग लिए जाते हैं।

दिवो वा विष्ण उत वा पृथिव्या महो वा विष्ण उरोरन्तरिक्षात्। यजु० ५.१९

इससे ज्ञात होता है कि विष्णु के तीन पग द्यु, भू और अन्तरिक्ष हैं। वह इन तीनों में व्याप्त है। सूर्य के आकर्षण से इन तीनों की स्थिति है।

विष्णु का आध्यात्मिक अर्थ लेते हुए उसे परमात्मा कहा गया है। उसका परम पद सर्वोच्च स्थान है। योगी और विद्वान् ही उस पद को प्राप्त कर पाते हैं।[४] उस परम

---

१. य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित् पदेभिः। ऋग्० १.१५४.३

२. इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्। समूढमस्य पांसुरे। यजु० ५.१५

३. व्यस्कभ्ना रोदसी विष्णवेते, दाधर्थ पृथ्वीमभितो मयूखैः। यजु० ५.१६

४. तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। यजु० ६.५

पद (मोक्ष) में मधु का उत्स (झरना) है, अर्थात् वहाँ ब्रह्मानन्द की स्थिति है। वहाँ आनन्द ही आनन्द है।[१] इसको ही गीता में विष्णु का परम धाम कहा गया है।

तद् धाम परमं मम। गीता ८.२१

यह योग की चरम अवस्था है। इसको धर्ममेघ समाधि की अवस्था कहते हैं। (योगदर्शन ४.२९)

(४) सोम

वेदों में सोम देवता का बहुत महत्त्व वर्णित है। ऋग्वेद का पूरा नवम मंडल 'पवमान सोम' है। इसमें सोम की नाना रूपों में स्तुति है। सोम का अर्थ मुख्य रूप से सोमलता है। परन्तु इसके अन्य अर्थ भी हैं–चन्द्रमा, राजा, परमात्मा आदि। सोमयाग में सोम रस का ही मुख्य रूप से उपयोग होता है।

सोमलता–सोमलता के विषय में ऋग्वेद का कथन है कि यह मूजवत् पर्वत पर होती है, अतः इसे मौजवत कहते हैं।[२] अथर्ववेद में उल्लेख है कि यह अंशुमती नदी के किनारे भी होती है।[३] सुश्रुतसंहिता के चिकित्सास्थान प्रकरण में सोमलता का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है।[४] इसमें २४ प्रकार के सोम का वर्णन है– अंशुमान्, मुंजवान्, चन्द्रमा, रजतप्रभ आदि। सभी सोमों में १५ पत्ते होते हैं। ये शुक्लपक्ष में निकलते हैं और कृष्णपक्ष में झड़ जाते हैं। सोम के उत्पत्तिस्थान ये हैं–हिमालय, अर्बुद, सह्य, महेन्द्र, मलय पर्वत। यह सिन्धु नदी के समीप भी होता है। इसका पौधा एक से डेढ़ फीट ऊँचा होता है और इसकी शाखाएँ प्रायः जड़ से ही निकलती हैं।

अनेक विद्वानों ने सोम के विषय में शोधकार्य किया है। अधिकांश विद्वान् 'एफेड्रा' (Ephedra) को सोम मानते हैं। यह हिन्दूकुश पर्वत, सफेद कोह और सुलेमान पर्वतमाला में प्राप्त होता है। अवेस्ता में सोम के लिए 'हओम' शब्द है। सोमलता को पत्थर से कूटकर उसका रस छाना जाता था। छने हुए रस को पवमान सोम कहते थे। सोमरस में दूध डालकर 'गवाशिर्', दही डालकर 'दध्याशिर्', और जौ का सत्तू डालकर 'यवाशिर्' तैयार किया जाता था। ऋग्वेद में इन तीनों आशिरों का उल्लेख है। तीनों का सामूहिक नाम 'त्र्याशिर्' था। सोमरस को मधु (मधुर), मद (उत्तेजक), पितु (पेय), पीयूष (अमृत), इन्दु (आह्लादक) कहते थे।

सोमरस अतिस्फूर्तिदायक, शक्तिवर्धक, आह्लादक और आनन्ददायक था। यह बौद्धिक शक्ति का वर्धक और रोगनाशक भी था। अतएव ऋग्वेद में कहा है कि हमने

---

१. विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः। ऋग्० १.१५४.५
२. ऋग्० १०.३४.१
३. अथर्व० २०.१३७.८
४. सुश्रुत० चिकित्सा० २९.१ से ३२

सोमपान किया और अमर हो गए। हमें दिव्य ज्योति प्राप्त हुई और हमने देवों को प्राप्त कर लिया।[१] सोम को ओषधियों का राजा कहा जाता है।[२]

सोम का एक अजेय राजा के रूप में भी वर्णन मिलता है। वह युद्धों में अधृष्य है और शत्रु-सेनाओं का नाशक है।[३] सोम का अर्थ परमात्मा भी लिया गया है और उसे वृक्ष-वनस्पतियों का उत्पादक, जल और पशुओं का जनक, प्रकाश द्वारा अन्धकार का नाशक तथा विशाल अन्तरिक्ष का विस्तारक कहा गया है।[४] इसी प्रकार परमात्मा के रूप में उसे द्यावा-पृथ्वी का कर्ता और धर्ता बताया गया है।[५]

(५) वरुण

ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में वरुण का बहुत विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है। अथर्ववेद में वरुण को सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक बताया गया है।[६] वरुण संसार में 'ऋत' (शाश्वत नियमों) का देवता है। वरुण न्याय का देवता है, अतः उसे 'धर्मपति' कहते हैं।[७] वरुण सम्राट् है और सारे संसार में उसका साम्राज्य है। वह जल (पस्त्या) में बैठकर अपने साम्राज्य का संचालन करता है।[८] ऋग्वेद में वर्णन है कि मित्र-वरुण के राजद्वार में हजार खंभे हैं।[९] वरुण के विशाल भवन में एक हजार द्वार हैं।[१०] यह पृथ्वी और आकाश वरुण के शासन में है। वह सारे संसार का राजा है। वह जल के कण-कण में विद्यमान है।[११]

संसार में जो कुछ हो रहा है, वरुण उसे देख रहा है। यहाँ तक कि मनुष्यों के पलक मारने तक का उसके पास रिकार्ड है।[१२] वरुण के दूत (स्पश) बड़े प्रबल हैं। वे सदा चारों ओर घूमते रहते हैं।[१३] वरुण गुप्त से गुप्त वार्ताओं को जानता है। उसे कोई धोखा नहीं दे सकता।[१४]

---

१. अपाम सोमममृता अभूम, अगन्म ज्योतिरविदाम देवान्। ऋग्० ८.४८.३
२. ओषधयः समवदन्त सोमेन सह राज्ञा। यजु० १२.९६
३. अषाढं युत्सु पृतनासु पप्रिम्। यजु० ३४.२०
४. त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः।
त्वमा ततन्थोर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ॥ यजु० ३४.२२
५. विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्याः। ऋग्० ९.८७.२
६. अथर्व० ४.१६.१ से ९
७. वरुणो धर्मपतीनाम्। यजु० ९.३९
८. नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा। साम्राज्याय सुक्रतुः। यजु० १०.३६
९. राजानौ·····सहस्रस्थूण आसाते। ऋग्० २.४१.५
१०. सहस्रद्वारं जगमा गृहं ते। ऋग्० ७.८८.५
११. अ० ४.१६.३
१२. अ० ४.१६.५
१३. अ० ४.१६.४
१४. अ० ४.१६.२

वरुण का घर जल में है। उसका भवन सोने का बना हुआ है।[१] वह न्याय का अधिष्ठाता है। उसके न्याय के नियमों को पाश (बन्धन, बेड़ियाँ) कहा गया है। इन पाशों को कोई तोड़ नहीं सकता है।[२] वरुण के पाश तीन प्रकार के हैं–उत्तम (अति कठोर), मध्यम (कठोर), अधम (सामान्य)।[३] वरुण के पाशों से बचने का उपाय बताया गया है–सत्य भाषण, सत्य व्यवहार और निष्पाप होना।[४] वे असत्य बोलने वाले को अवश्य बन्धन में डालते हैं और सत्यवादी को छोड़ देते हैं।[५]

(६) अश्विनौ

चारों वेदों के सैकड़ों मंत्रों में अश्विनीकुमारों का गुणगान है। अकेले ऋग्वेद में ५० से अधिक सूक्तों में अश्विनौ की स्तुति है। ये युगल देवता क्या हैं? इस विषय में बहुत मतभेद है। यास्क ने अश्विनौ की व्युत्पत्ति-व्यश्नुवाते सर्वम्, अश्वैरश्विनौ (निरुक्त १२.१) की है। अश् (व्याप्त होना) धातु से अश्विन् रूप माना है, अर्थात् ये सर्वत्र व्याप्त हैं। साथ ही चार मतों का उल्लेख किया है कि ये अश्विनौ हैं–१. द्युलोक-पृथ्वी, २. दिन-रात, ३. सूर्य-चन्द्र, ४. दो राजा। यजुर्वेद में अश्विनौ का स्वरूप स्पष्ट किया है कि–'उषासानक्तम् अश्विनौ' (यजु० २०.६१) अर्थात् रात्रि और उषा के समन्वित रूप को अश्विनौ कहते हैं। अश्विनी दो भिन्न गुण-कर्मों वाले तत्त्वों का समन्वित रूप है। इनमें एक प्रकाशरूप है, दूसरा अन्धकाररूप; एक धनात्मक है और दूसरा ऋणात्मक; एक Positive है, दूसरा Negative ; एक शुक्ल है, दूसरा कृष्ण; एक में अग्नितत्त्व प्रधान है, दूसरे में सोमीय तत्त्व। ये दोनों तत्त्व संसार के प्रत्येक पदार्थ में व्याप्त हैं, अतः इन्हें 'नासत्यौ' शाश्वत सत्य कहा है। ये ही कालचक्र में अहोरात्र हैं, त्रिभुवन में द्यु-भू हैं, दिन-रात में शक्ति के स्रोत सूर्य-चन्द्र हैं और मानव–शरीर में प्राण-अपान हैं। धनात्मक और ऋणात्मक तत्त्व प्रत्येक परमाणु में हैं, अतः अश्विनी कण-कण में व्याप्त हैं।

वैदिक ऋषियों ने अश्विनी के इन अद्‌भुत कर्मों का साक्षात्कार किया था, अतः इन्हें 'दस्रौ' (अद्‌भुत, चमत्कारी) कहा है। यजुर्वेद (२०.५५ से ९०) में अश्विनी के साथ 'सरस्वती' का भी उल्लेख है और कहा गया है कि ये इन्द्र (जीवात्मा) को शक्ति देते हैं और उसकी रक्षा करते हैं।[६] अश्विनी तेजस्विता और दर्शनशक्ति देते हैं, सरस्वती प्राणशक्ति और वीर्य।[७] इस प्रकार ये जीवात्मा (इन्द्र) के शक्तिदाता हैं।[७]

---

१. अ० ७.८३.१

२. अ० ४.१६.४

३. यजु० १२.१२

४. अ० ४.१६.६। ७.८३.३

५. अ० ४.२९.१

६. (क) अश्विना सरस्वती·····इन्द्रम् अवर्धयन्। यजु० २०.६८
(ख) अश्विना·····सरस्वती इन्द्रं कर्मस्वावत। यजु० २०.७६

७. अश्विना तेजसा चक्षुः प्राणेन सरस्वती वीर्यम्। यजु० २०.८०

अश्विनी देवों के वैद्य हैं।[१] अद्भुत चिकित्सक हैं। ऋग्वेद के कई सूक्तों में इनके अद्भुत कर्मों का बहुत विस्तार से वर्णन है।[२] ये विपत्ति में सदा सहायता के लिए तत्पर रहते हैं। इन्होंने च्यवन ऋषि को वृद्ध से युवा बनाया। तुग्र के पुत्र भुज्यु को समुद्र में डूबने से बचाया। युद्ध में विश्पला की टांग कटने पर लोहे की कृत्रिम टांग लगाई। दधीचि का सिर काटकर उसके स्थान पर कृत्रिम घोड़े का सिर लगाया और उसके द्वारा अश्विनी कुमारों को मधु-विद्या का उपदेश दिया।[३]

अश्विनी देव सूर्य की पुत्री सूर्या के पति हैं।[४] उनके रथ पर सूर्या भ्रमण करती है। अश्विनी देवों के रथ (विमान) का बड़ा गौरव वर्णित है। वह मन के तुल्य गति से चलता है,[५] पक्षी के तुल्य उड़ता है।[६] द्यु-भू और जल तीनों में चल सकता है।[७] वह समुद्र और पर्वत सभी जगह यात्रा कर सकता है।[८] इससे ज्ञात होता है कि अश्विनी देव वस्तुतः अद्भुत हैं।

(७) रुद्र

ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद के अनेक सूक्तों में रुद्र का वर्णन है। सबसे व्यापक वर्णन यजुर्वेद के १६ वें अध्याय (रुद्राध्याय) में हुआ है। रुद्र को रुद्र कहने का अभिप्राय दिया गया है कि रुद्र ११ हैं– १० इन्द्रियाँ और मन। ये जब शरीर को छोड़कर बाहर निकलते हैं तो ये मृतक के संबन्धियों को रुलाते हैं, अतः इन्हें रुद्र कहा जाता है

तद् यद् रोदयन्ति, तस्माद् रुद्रा इति। बृहदा० उप० ३.९.४

अथर्ववेद में रुद्र के ये पर्यायवाची दिए हैं–भव, शर्व, यम, मृत्यु, बभ्रु, नीलकंठ, पशुपति।[९] यजुर्वेद में रुद्र को गिरिश, नीलग्रीव, सहस्राक्ष, पशुपति, जगत्पति, क्षेत्रपति, वनपति, वृक्षपति, सेनानी, गणपति, शिव, शंकर, शंभु, भव, शर्व, शितिकण्ठ आदि कहा गया है।

यजुर्वेद और अथर्ववेद में रुद्र को एक महान् योद्धा और सेनापति के रूप में प्रस्तुत किया गया है। उन्हें कपर्दी (जटाजूट वाले) और उष्णीषी (पगड़ीधारी) कहा गया है। उनका धनुष 'पिनाक' है।[१०] यह सोने का बना हुआ है, हजारों व्यक्तियों को मार सकता है। सैकड़ों बाणों से युक्त है।[११]

---

१. ता भिषजा सुकर्मणा०। यजु० २०.७५
२. ऋग्० १. सूक्त ११६ से ११९, १८० से १८४।
३. ऋग्० १.११७.२२
४. ऋग्० १०.८५.८
५. ऋग्० ७.६८.३
६. ऋग्० १.४६.३
७. ऋग्० ४.४३.५
८. ऋग्० २.१६.३
९. अथर्व० ६.९३.१-२
१०. पिनाकं बिभ्रत्०। यजु० १६.५१
११. धनुर्बिभर्षि हरितं हिरण्ययं सहस्रघ्नि शतवधम्०। अ० ११.२.१२

रुद्र द्यु-भू और अन्तरिक्ष में सर्वत्र व्याप्त हैं ।[१] 'एक एव रुद्रः' कहकर उसे एक कहा गया है, परन्तु उसकी महिमा के कारण उसे 'असंख्याता सहस्राणि' असंख्य कहा गया है ।[२] यजुर्वेद का कथन है कि वह द्युलोक में वर्षा (जल) के रूप में है, अन्तरिक्ष में वायु और पृथ्वी पर अन्न के रूप में है ।[३] यजुर्वेद में उसको 'प्रथम दैव्य भिषक्' अर्थात् दिव्य चिकित्सक कहा गया है ।[४] अन्यत्र उसको 'जलाषभेषज' अर्थात् जल-चिकित्सा-विशेषज्ञ कहा गया है ।[५] उससे प्रार्थना की गई है कि वह सारे संसार को नीरोग और प्रसन्नचित्त (सुमनस्) रखे ।[६] यजुर्वेद में उसको 'त्र्यम्बक' कहा गया है ।[७] उसकी तीन शक्तियाँ हैं- कर्तृत्व (संसार को जन्म देना), भर्तृत्व (पालन करना) और हर्तृत्व (संहार करना) ।

वृक्ष-वनस्पति शिव के मूर्त रूप-शतपथ ब्राह्मण (६.१.३.१२) में वृक्ष-वनस्पतियों (ओषधियों) को पशुपति (शिव) कहा गया है । यजुर्वेद में रुद्र को वनपति, वृक्षपति, ओषधिपति आदि कहा है ।[८] शिव का शिवत्व यही है कि वे विष पीते हैं और अमृत देते हैं । वृक्ष-वनस्पति कार्बन डाई-आक्साइड (CO_2) रूपी विष पीते हैं और आक्सीजन (O_2) रूपी अमृत (प्राणवायु) देते हैं । वृक्षों का रुद्र रूप यह है कि यदि वृक्ष-वनस्पति नहीं रहेंगे तो आक्सीजन नहीं मिलेगा और मानव जाति का स्वयं विनाश हो जाएगा ।

(८) मरुत्

वेदों में मरुत् देवों का बहुत गुणगान है । ये योद्धा, वीर, सैनिक, और शस्त्रास्त्रों से सदा युक्त रहते हैं । ये इन्द्र के सहायक और साथी हैं। ये रुद्र के पुत्र हैं । ये नित-युवा, समवयस्क और भाई हैं । ये सुवर्ण का द्रापि (चोगा) और सुवर्ण का शिरस्त्राण (टोप) पहनते हैं, स्वर्णाभूषणों से अलंकृत रहते हैं । मरुतों की सेना बहुत प्रबल है । मरुत् वायुदेव हैं । इनका ही उग्ररूप आँधी-तूफान है । ये सदा विजयी होते हैं । इनके गर्जन से द्यावापृथ्वी काँप जाते हैं । मरुत् वृष्टि के देव हैं । इनकी कृपा से ही वृष्टि होती है ।

वेदों में मरुतों का वैज्ञानिक स्वरूप भी वर्णित है । इनकी संख्या 'सप्त-सप्त' ७ × ७ = ४९ बताई गई है । ऋग्वेद का कथन है कि इनमें से एक-एक की सौगुनी शक्ति है ।[९] ये विभिन्न प्रकार के तेज, प्रकाश आदि फैलाते हैं । यजुर्वेद में ४९ मरुतों के कार्यों

---

१. अ० १२.१.२७

२. यजु० १६.५४

३. यजु० १६.६४-६६

४. यजु० १६.५

५. रुद्रं जलाषभेषजम्, ऋग्० १.४३.४

६. यजु० १६.४

७. त्र्यम्बकं यजामहे, यजु० ३.६०

८. यजु० १६.१७ से १९

९. सप्त मे सप्त शाकिन एकमेका शता ददुः । ऋग्० ५.५२.१७

के अनुसार नाम दिए गए हैं। जैसे–शुक्र–ज्योति, चित्र-ज्योति, सत्य-ज्योति, ज्योतिष्मान्, उग्र, भीम, ध्वान्त, विक्षिप् आदि।[१]

ऋग्वेद में मरुतों का जन्म तेजोमय विद्युत् (Electricity) से बताया गया है।[२] अतः इनमें जन्मसिद्ध विद्युत् शक्ति है। अन्य मंत्र में बताया गया है कि इनमें चुम्बकत्व गुण है। ये 'अयोदंष्ट्र' हैं अर्थात् इनकी दाढ़ में अयस् (चुम्बकत्व गुण) है तथा इनसे शक्ति का विकिरण (Radiation) होता है। 'विधावतः' अर्थात् ये चारों ओर दौड़ते हैं, फैलते हैं।[३]

मरुत् विद्युत्–चुम्बकीय क्षेत्र (Electro-magnetic field) उत्पन्न करते हैं। इनमें बहुत शक्ति है (सुमायाः)। ये अपनी शक्ति से चलते हैं, अर्थात् इनके लिए कोई आधार नहीं चाहिए (स्वसृत्)। ये पक्षी के तुल्य अन्तरिक्ष में विचरण करते हैं।[४] विज्ञान के अनुसार विद्युत्-चुम्बकीय विकिरण (Electro-magnetic radiation) में विद्युत् और चुम्बकीय शक्ति का समन्वय होता है। इसके लिए कोई आधार या माध्यम नहीं चाहिए।

विज्ञान की दृष्टि से ऋग्वेद का एक सूक्त 'एवया-मरुत्' (ऋग्० ५.८७) अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमें एवया–अतितीव्रगामी, मरुत्–विद्युत्–तरंगों का विस्तृत वर्णन है। एवया–मरुत् शब्द Electro-magnetic waves के लिए प्रयुक्त हुआ है।[५]

(९) सविता (सवितृ), सूर्य

सविता सूर्य देव के लिए है। यह स्वर्णिम (हिरण्यय) रथ पर बैठ कर संसार को ऊर्जा देता है। सविता का अर्थ है–संसार को जन्म देने वाला और प्रेरणा या स्फूर्ति देने वाला। यही सविता 'गायत्री मन्त्र' का देवता है। यही बुद्धि को प्रेरणा और ज्योति देता है। यह द्यावा–पृथ्वी को प्रकाश देता है और मनुष्य को दीर्घायुष्य देता है। अथर्ववेद में सूर्य को आदित्य, सविता, महेन्द्र, वायु, अर्यमा, वरुण, रुद्र, महादेव, अग्नि, महायम और रोहित कहा गया है।[६] सूर्य को चर और अचर जगत् की आत्मा कहा गया है।[७] वेदों में सूर्य-किरण-चिकित्सा का बहुत विस्तार से वर्णन है।[८] उदय होता हुआ सूर्य हृदय के सभी रोगों को दूर करता है।[९]

---

१. (क) शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च। यजु० १७.८० से ८५
(ख) उग्रश्च भीमश्च ध्वान्तश्च०। यजु० ३९.७
२. हस्कराद् विद्युतस्परि····जाताः, मरुतः। ऋग्० १.२३.१२
३. मरुतः······अयोदंष्ट्रान् विधावतः०। ऋग्० १.८८.५
४. (क) आ विद्युन्मद्भिः मरुतः····वयो न पप्तता सुमायाः। ऋग्० १.८८.१
(ख) स हि स्वसृत् पृषदश्वो युवा गणः। ऋग्० १.८७.४
५. विस्तृत विवरण के लिए देखें, लेखककृत 'वेदों में विज्ञान' पृ० ३२ से ३७
६. अथर्व० १३.४.१ से १३
७. सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च। यजु० ७.४२
८. देखें, लेखककृत 'वेदों में आयुर्वेद' पृ० १३९-१४४
८. उद्यन्नद्य मित्रमह····हृद्रोगं मम सूर्य०। ऋग्० १.५०.११

(१०) उषस् (उषा)

वैदिक वाङ्मय में उषा का जितना मनोरम काव्यात्मक वर्णन हुआ है, उतना अन्य किसी देवता का नहीं। वैदिक ऋषियों ने उषा के वर्णन में अपनी काव्यात्मक प्रतिभा का जो परिचय दिया है, वह प्रशंसनीय ही नहीं, अपितु स्तुत्य है। उषा प्रतिदिन प्रातः पूर्व क्षितिज पर उदय होती है और सारे संसार को नव चेतना, उत्साह, स्फूर्ति और आह्लाद प्रदान करती है। उषा को एक सद्यःस्नाता अलंकृता युवती और एक अति लावण्यमयी नृत्यांगना के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वह अन्धकाररूपी अपने वस्त्र को इधर-उधर फेंकती हुई, हँसती हुई, पूर्व क्षितिज पर प्रकट होती है। प्रेमिका जिस प्रकार अपने प्रियतम से मिलने के लिए व्याकुल रहती है, उसी प्रकार वह अपने पति सूर्य से मिलने के लिए उत्कंठित रहती है और अपनी प्रणय-लालसा प्रकट करती है। वह ऋत के नियमों का पालन करती है, अतः 'ऋतावरी' है और प्रतिदिन ठीक समय पर प्रकट होती है। वह नित-यौवना युवती है। वह पुराणी युवती होते हुए भी नित-नूतना है। वह अजर और अमर है। वह सुभगा (सौभाग्यवती), रेवती (वैभवसंपन्न), प्रचेताः (बुद्धिमती), मघोनी (दानशीला) आदि विशेषणों से मंडित है। वह अमरत्व का प्रतीक है। अतः उसे 'अमृतस्य केतुः' (अमरत्व का चिह्न) कहा गया है।

रात्रि और उषा संबद्ध हैं, अतः दो बहिनों के तुल्य उनका 'उषासानक्ता' और 'नक्तोषासा' के रूप में वेदों में वर्णन है। सूर्य उषा के बाद उदय होता है, अतः सूर्य का एक कामुक के रूप में भी वर्णन किया गया है, जो प्रेमिका के पीछे-पीछे दौड़ता है। उषा विश्व की एक मनोरम, ज्ञानदात्री, प्रकाशदात्री और शिक्षिका देवी है।

(११) पर्जन्य

ऋग्वेद और अथर्ववेद में पर्जन्य-विषयक कई सूक्त हैं। पर्जन्य का अर्थ है- वर्षाकालीन मेघ। मेघों का गरजना, बिजली चमकना, पानी बरसना, वृक्ष-वनस्पतियों का सचेतन होना, अतिवृष्टि और अनावृष्टि आदि का वर्णन अनेक सूक्तों में हुआ है। राष्ट्रीय प्रार्थना 'आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो०' (यजु० २२.२२) मंत्र में पर्जन्य का यथासमय बरसना, वृक्ष-वनस्पतियों का फलयुक्त होना तथा प्रजा को योगक्षेम प्राप्त होने की कामना की गई है।

> **निकामे-निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु, फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां**
> **योगक्षेमो नः कल्पताम्।** यजु० २२.२२

कृषि के लिए, वृक्ष-वनस्पतियों के लिए, अन्न-समृद्धि के लिए और योगक्षेम के लिए पर्जन्य देव की कृपा अत्यावश्यक है। अन्न-सम्पदा देने के कारण पर्जन्य को एक शक्तिशाली पिता (असुरः पिता नः) कहा गया है। जल से परिपूर्ण पर्जन्य की उपमा एक मशक (दृति) से दी गई है।

> **दृतिं सु कर्ष विषितं न्यञ्चम्,** ऋग्० ५.८३.७

पर्जन्य का कभी-कभी मानवीकरण भी हुआ है और उसे एक वृषभ के रूप में प्रस्तुत किया गया है। पर्जन्य के शक्तिशाली विद्युत्रूपी आयुध 'वज्र' को दुष्टों का संहारक बताया गया है। पर्जन्य न केवल वृक्ष-वनस्पतियों को, अपितु पशुजगत् एवं मानवमात्र को लाभ पहुँचाता है, सस्य-संपदा देता है, नदी-तालाबों आदि को प्रपूरित करता है और कृषि को समुन्नत करता है। मरुत् देव पर्जन्य के सहायक हैं। वे पर्जन्य को यथास्थान पहुँचाते हैं और वर्षा कराते हैं। पर्जन्य देव मानव-जगत् के लिए लाभप्रद हैं।

(१२) मित्र

ऋग्वेद में मित्र देवता से संबद्ध स्वतंत्ररूप से एक ही सूक्त (३.५९) है। अन्यत्र वह वरुण से संबद्ध है। मित्र का गुण बताया है कि वह मनुष्यों को उद्यमी बनाता है (यातयति)। उसकी अन्य विशेषता बताई गई है कि वह लोगों को एकता के सूत्र में बाँधता है (यातयज्जनः)। मित्र-वरुण ये संबद्ध शब्द हैं। वेदों में मित्र शब्द सूर्य की धनात्मक शक्ति, प्राणशक्ति (Positive) का बोधक है और वरुण शब्द सूर्य की ऋणात्मक शक्ति (Negative) अपानशक्ति का सूचक है। अतएव उदय होते हुए सूर्य को ऋग्वेद में 'मित्रमहः' अर्थात् मित्रशक्तियुक्त कहा गया है।[१] यजुर्वेद में भी सूर्योदय के समय मित्र और अर्यमा के साथ रहने का उल्लेख है।[२] दिन में सूर्य में प्राणशक्ति है, रात्रि में उसमें ऋणात्मक शक्ति है, अतः वह वरुण है। उसमें रात्रि में सोमीय शक्ति है, अपान शक्ति है। सोमीय शक्ति से युक्त होने के कारण ही वरुण को जल का देवता माना जाता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में इस विषय को और अधिक स्पष्ट किया गया है। वहाँ मित्र को दिन से संबद्ध बताया गया है और वरुण को रात्रि से संबद्ध।[३]

(१३) पूषन् (पूषा)

ऋग्वेद में पूषा से संबद्ध ८ सूक्त हैं। यजुर्वेद से ज्ञात होता है कि पूषा उदय होते हुए सूर्य के लिए है। प्रातरग्निम्० (यजु० ३४.३४ से ३८) आदि प्रातःकालीन प्रार्थना में पूषा का उल्लेख है। पूषा के लिए कहा है कि हम नियमित रूप से प्रातः तेरी स्तुति करें।[४] वह सूर्यपुत्री सूर्या का पति है। वह प्रत्येक मनुष्य की बुद्धि को शुद्ध करता है और सात्त्विक भावना देता है।[५] वह शक्ति, सामर्थ्य और पुष्टि देता है, अतः उसे पूषा कहा गया है। वह भूले-भटकों का रक्षक है। वह पशुओं का रक्षक और पालक है। पशु-जगत् पर उसकी बड़ी कृपा है। पूषा मार्ग का रक्षक है। वह चोर-उचक्कों से रक्षा करता है। उसे तेजोमय (आघृणि) और दर्शनीय वैभव वाला (दस्मवर्चस्) कहा गया है।

---

१. उद्यन् अद्य मित्रमह० । ऋग्० १.५०.११
२. यदद्य सूर उदितेऽनागा मित्रो अर्यमा । सुवाति सविता भगः । यजु० ३३.२०
३. अहर्वै मित्रो रात्रिर्वरुणः । ऐत० ब्रा० ४.१०
४. पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कदाचन । यजु० ३४.४१
५. धियं धियं सीषधाति प्र पूषा । यजु० ३४.४२

(१४) बृहस्पति

ऋग्वेद के ११ सूक्तों में बृहस्पति का वर्णन हुआ है। यह बृह् (वर्धने) के षष्ठी एकवचन बृहः + पति से बना है। इसका अर्थ है–बृह् या बृहत् (बुद्धि, प्रज्ञा) का स्वामी। यह बुद्धि या ज्ञान का देवता है। यह देवों का गुरु एवं पुरोहित है। इसको 'ब्रह्मणस्पति' भी कहते हैं। बृहस्पति योद्धा और युद्ध-विशारद है। वह इन्द्र के साथ युद्ध में जाता है और राक्षसों पर विजय प्राप्त करता है। इन्द्र जीवात्मा है और बृहस्पति बुद्धि है। बुद्धि की सहायता से जीवात्मा आसुरी वृत्तियों पर विजय प्राप्त करता है। बुद्धि ज्ञानेन्द्रियों की संचालक है, अतः उसे ज्ञानेन्द्रियरूपी देवों का गुरु कहा गया है। इन्द्र और बृहस्पति संयुक्तरूप से दुर्धर्ष कार्यों को करते हैं। देवों की विजय में बृहस्पति का बहुत बड़ा योगदान है।

अध्याय १०

वैदिक यज्ञ-मीमांसा

१. यज्ञ का महत्त्व

चारों वेदों में यज्ञ का बहुत अधिक महत्त्व बताया गया है। इसका मुख्य कारण यह है कि यज्ञ वह विधि है जिसके द्वारा प्राकृतिक संतुलन बनाए रखा जा सकता है। यज्ञ के द्वारा पर्यावरण की सुरक्षा, वायु-मंडल की पवित्रता, विविध रोगों का नाश, शारीरिक और मानसिक उन्नति तथा दीर्घायुष्य की प्राप्ति होती है। यज्ञ के द्वारा भू-प्रदूषण, जल-प्रदूषण, वायु-प्रदूषण और ध्वनि-प्रदूषण को दूर किया जा सकता है।

यज्ञ वह वैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा वायुमंडल में आक्सीजन (O) और कार्बन-डाई-आक्साइड (CO_2) का सन्तुलन बना रहता है। प्रकृति में एक नैसर्गिक चक्र (Circle) की व्यवस्था है, जिसके अनुसार प्रत्येक पदार्थ पुनः अपने मूल स्थान पर पहुँचता है। इसी आधार पर अहोरात्रचक्र, ऋतुचक्र, वर्षचक्र, सौरचक्र, चान्द्रचक्र आदि व्यवस्थित हैं। इसी प्राकृतिक चक्र को पारिभाषिक शब्दावली में यज्ञ कहा जाता है। यह प्राकृतिक यज्ञ विश्व में प्रतिक्षण चल रहा है। ऋग्वेद और यजुर्वेद में इस प्राकृतिक यज्ञ का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वर्षचक्ररूपी यज्ञ में वसन्त ऋतु घी है, ग्रीष्म ऋतु समिधा और शरद् ऋतु हव्य। वसन्त के बाद ग्रीष्म, ग्रीष्म के बाद वर्षा, वर्षा के बाद शरद् और शरद् के बाद वसन्त। इस प्रकार वर्षचक्र पूरा होता है।

यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद् हविः॥

ऋग्० १०.९०.६। यजु० ३१.१४

यह प्रक्रिया अणु, परमाणु से लेकर सूर्य, चन्द्र आदि तक सर्वत्र चल रही है, इसका ही नाम यज्ञ-प्रक्रिया है। इसके द्वारा ही सृष्टि के प्रत्येक कण में प्रतिक्षण स्फोट (Explosion) रूपी यज्ञ हो रहा है, अतः नित्य परिवर्तन हो रहा है। इस प्रकार यह सृष्टिचक्र चल रहा है। अतएव यजुर्वेद में कहा गया है कि यह यज्ञ सृष्टिचक्र का नाभि (Nucleus) है।

अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः। यजु० २३.६२

इसी प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए ऋग्वेद में कहा गया है कि यज्ञ के द्वारा द्युलोक को प्रसन्न किया जाता है और द्युलोक वर्षा के द्वारा पृथ्वी को तृप्त करता है। यज्ञ से मेघ बनते हैं और मेघ से वर्षा होती है।

भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति, दिवं जिन्वन्त्यग्नयः। ऋग्० १.१६४.५१

गीता में भी यही भाव दिया गया है कि यज्ञ के द्वारा देवों को प्रसन्न करो और देवता वर्षा के द्वारा तुम्हें प्रसन्न करें। इस प्रकार परस्पर आदान-प्रदान से तुम्हारी श्रीवृद्धि हो।

देवान् भावयतानेन, ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः, श्रेयः परमवाप्स्यथ।। गीता ३.११

(२) यज्ञ का आध्यात्मिक महत्त्व

यज्ञ के बाह्यरूप का वर्णन ऊपर किया गया है। यह पर्यावरण की शुद्धि और वृष्टि का साधन है। ब्राह्मण ग्रन्थों में 'यज्ञो वै विष्णुः' कहा गया है। यज्ञ विष्णु (परमात्मा) का रूप है। यह परमात्मा की प्राप्ति का प्रमुख साधन है। मानव के हृदय में एक आत्मज्योति प्रसुप्त रूप में विद्यमान है, उस यज्ञाग्नि को उद्‌बुद्ध करना यज्ञ का उद्देश्य है। इस आत्मज्योति के उद्‌बुद्ध होने से मानव की सर्वांगीण शुद्धि होती है। उससे देह-शुद्धि, इन्द्रिय-शुद्धि, चित्त-शुद्धि और आत्मा की शुद्धि होती है। यज्ञ के दो कार्य मुख्य हैं-१. स्वाहा और 'इदं न मम' की भावना जागृत करना। स्वाहा का अर्थ है-स्व-स्वार्थ बुद्धि को, आ-पूर्णतया, हा-छोड़ना, अर्थात् स्वार्थ-भावना का पूर्णतया परित्याग। यही भाव 'इदं न मम' (इसमें मेरा कुछ नहीं है) का भी है। निष्काम भाव से कर्म करना और फलाकांक्षा का परित्याग, यह यज्ञ की प्रथम शिक्षा है। २. आत्मसमर्पण-परमात्मा के चरणों में अपने आपको समर्पित करना। कर्मफलासक्ति के परित्याग और आत्मसमर्पण से मानव कर्मफल के बन्धन में नहीं पड़ता।

यज्ञाग्नि का प्रदीप्त होना मानव-हृदय में आत्म-ज्योति के प्रदीप्त होने का संकेत है। आत्म-ज्योति के प्रदीप्त होने पर अज्ञान का आवरण क्षीण होने लगता है और चैतन्य का क्रमशः विकास होता है। इस विकास के पाँच स्तर हैं। इन्हें पंचकोश कहते हैं। ये हैं-अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय। आत्मज्योति के प्रबोध से सर्वप्रथम अन्नमय स्थूल शरीर शुद्ध होता है। इसके पश्चात् प्राणमय कोश शुद्ध होता है। प्राणमय कोश के शुद्ध होने पर मनोभावों और विचारों में शुद्धि आती है। इससे मनोमय कोश शुद्ध होता है। मनोमय कोश के शुद्ध होने पर बुद्धि में शुद्धता आने लगती है। बुद्धि-शुद्धि से विज्ञानमय कोश शुद्ध होता है। बुद्धि-शुद्धि का ही परिणाम होता है कि मनुष्य परमात्मा के साथ आत्मीयता एवं एकात्मता की अनुभूति करने लगता है। यह एकात्मता की अनुभूति ही आनन्दमय कोश की प्राप्ति है। परमात्मा के आनन्द में लीन होना या तल्लीनता की अनुभूति मानव के लक्ष्य की प्राप्ति है। यह यज्ञ-विज्ञान का पारमार्थिक रहस्य है।

३. यज्ञ की उपयोगिता

वेदों में यज्ञ की उपयोगिता पर बहुत प्रकाश डाला गया है। संक्षेप में यज्ञ की उपयोगिता के विषय में यह कहा जा सकता है कि-

१. यज्ञ प्रकृति के संतुलन को बनाए रखने में बहुत सहायक है।

२. यह प्रज्ञापराध के कारण-स्वरूप मानसिक प्रदूषण को रोकता है। यह शिवसंकल्प, विचार-शुद्धि, सद्भाव, शान्ति और नीरोगता प्रदान करके मानसिक और बौद्धिक रोगों को दूर करता है।

३. यज्ञ में सस्वर मंत्रपाठ और सामगान ध्वनि-प्रदूषण को रोकने में कुछ अंश तक सहायक सिद्ध हो सकता है।

४. वैज्ञानिक परीक्षणों से यह सिद्ध हुआ है कि अग्निहोत्र से कुछ ऐसी गैसें निकलती हैं, जो वातावरण को शुद्ध करती हैं और प्रदूषण को नष्ट करती हैं। इनमें कुछ गैसें ये हैं– Ethylene oxide, Propylene.

५. यज्ञ की सामग्री में प्रयुक्त चीनी, शक्कर आदि मिष्ट पदार्थों में वायु को शुद्ध करने की असाधारण शक्ति है। इसके धुएँ से क्षय, चेचक, हैजा आदि बीमारियों के कीटाणु नष्ट होते हैं।

६. भैषज्य-यज्ञ ऋतु-परिवर्तन के समय होने वाले दूषित तत्त्वों को नष्ट करते हैं। गोपथ (२.१.१९) और कौषीतकि ब्राह्मण (५.१) में भैषज्य-यज्ञों का विस्तृत वर्णन है। ये चातुर्मास्य यज्ञ हैं। इनमें विशेष ओषधियाँ गिलोय, गूगल, अपामार्ग (चिरचिटा) आदि डाले जाते हैं।

७. अथर्ववेद (३.११.१) का कथन है कि यज्ञ से इन रोगों की चिकित्सा की जाती है– यक्ष्मा (तपैदिक), ज्वर, गठिया, कण्ठमाला (गंडमाला) आदि। अथर्ववेद (३.११.२) का कथन है कि यज्ञ से मरणासन्न या मृतप्राय व्यक्ति को भी बचाया जा सकता है।

(४) यज्ञ और यज्ञवेदियाँ

ऋग्वेद (५.४.८) और तैत्तिरीय संहिता (४.४.४.३) में अग्नि को 'त्रिषधस्थ' अर्थात् तीन स्थानों पर विद्यमान कहा गया है। अग्नि तीन प्रकार की है– १. गार्हपत्य, २. आहवनीय, ३. दक्षिण-अग्नि। शतपथ ब्राह्मण में इनकी आकृतियों का भी वर्णन है।[1] गार्हपत्य अग्नि की वेदी मण्डलाकार (Circle), आहवनीय की चतुर्भुज (Square) और दक्षिणाग्नि की अर्धवृत्ताकार या अर्धचन्द्राकार (Semi-circle) होती है। इसके लिए यह भी विधान है कि इनका क्षेत्रफल बराबर होना चाहिए। एक वेदी का क्षेत्रफल १ वर्ग व्याम (अर्थात् ४ हाथ या ६ वर्ग फीट) होना चाहिए।

सबसे बड़ी वेदी सोमयाग की होती है। इसको महावेदी या सौमिक वेदी कहते हैं। शतपथब्राह्मण[2] और शुल्बसूत्रों में इसका बहुत विस्तार से वर्णन है। यह समद्विबाहु चतुर्भुज (Isosceles Trapezium) आकार की होती है। इसकी चौड़ाई पूर्व दिशा में- २४

---

१. गार्हपत्यः परिमण्डलम्० । शत० ७.१.१.३७

२. शत० ३.५.१.१ से ६ और १०.२.३.७ से १४

पग (पद), पश्चिम दिशा में चौड़ाई- ३० पग और लंबाई- ३६ पग। एक पग (पद) प्रायः २ फीट का होता है। यह वेदी सामान्य वेदी से १४ गुनी बड़ी होती है। सौत्रामणी याग की वेदी इसकी तिहाई (१/३ भाग) होती है। ब्राह्मण ग्रन्थों में वेदियों के आकार की शुद्धता पर बहुत बल दिया गया है।

(५) यज्ञिय धूम और मेघनिर्माण

गीता (३.१४) में कहा गया है कि 'यज्ञाद् भवति पर्जन्यः' यज्ञ से बादल बनते हैं। इसकी प्रक्रिया यह है। यज्ञ आदि के द्वारा जो धूम ऊपर उठता है, वह सूर्य-किरणों के प्रभाव से ऊपर जाकर विद्युत्-कण के रूप में परिवर्तित होता है और घनीभूत होकर मेघ बनता है।

वैज्ञानिक दृष्टि से किसी भी द्रव्य का कण (Particle) यदि थोड़ी सी तडित्शक्ति (Positive या Negative Electricity) वहन करते हुए घूमे तो वह Charged Particle ही ion (आयन) होता है। किसी भी तरल या वायवीय पदार्थ के कण यदि इसी प्रकार के वाहन बन जायें तो उस तरल या वायवीय पदार्थ को ionised (तडित्-शक्तियुक्त) कहा जाएगा।[१]

यज्ञ में अग्निशिखाओं से जलकर द्रव्य गैस बनकर ऊपर उठता है तो उसके सूक्ष्म कण (ions) तडित्-शक्तियुक्त (Charged) हो जाते हैं। आकाश में यदि धूल के कण मिल जाते हैं तो ये आयन (ion) उनसे मिल जाते हैं। हवन में हुत द्रव्य कुछ अंश में धुआँ बनकर ऊपर उठता है। उस हुत द्रव्य में से कुछ अंश गैस बनकर अग्निशिखा से निकलते हैं। इनमें तीव्र ताप और रासायनिक संयोग विद्यमान हैं। इसका फल यह होता है कि हुत द्रव्य का गैस तडित्-शक्तियुक्त (ionised) हो जाएगा। अग्निशिखा को छोड़कर बहुत दूर जाने पर भी एवं ठंडा हो जाने पर भी यह गैस-कण अपनी तडित्शक्ति को नहीं छोड़ता है। ये ions धूमकणों या धूलिकणों के साथ मिलकर ऊपर जाते हैं। ये सब Charged Particles ऊपर उठकर वायु के जलीय बाष्प को जमाकर मेघ बना देते हैं। धूलिकण आदि भी बाष्प को घनीभूत होने में सहायता करते हैं।

(६) यज्ञों में पशुबलि निषिद्ध

अथर्ववेद में स्पष्ट लिखा है कि यज्ञ में गाय या कुत्ते आदि पशुओं की बलि देना मूर्खता का काम है।[२] यजुर्वेद में भी अनेक मंत्रों में स्पष्ट निर्देश है कि पशुओं को न मारो। गाय (अदिति) को न मारो, दो पैर वाले (द्विपाद्) पशुओं को न मारो, एक खुर वाले (एक शफ) पशुओं को न मारो, भेड़-बकरी आदि (ऊर्णायु) को न मारो।[३] इससे ज्ञात होता है

---

१. स्वामी प्रत्यगात्मानन्द कृत, वेद व विज्ञान, पृ० २१८-२२२
२. मुग्धा देवा उत शुनायजन्तोत गोरङ्गैः०। अथर्व० ७.५.५
३. मा हिंसीर्द्विपादं पशुम्०। मा हिंसीरेकशफं पशुम्। अदितिं⋯मा हिंसीः। ऊर्णायुं⋯मा हिंसीः। यजु० १३.४७ से ५०

कि पशुबलि वेद–विरुद्ध है। ऐसा प्रतीत होता है कि परकाल में कुछ मांसाहारी पंडितों ने विभिन्न यज्ञों में पशुबलि की प्रथा चलाई। यही कारण है कि श्रौतसूत्रों में यत्र-तत्र विभिन्न यज्ञों में पशुबलि का उल्लेख मिलता है। यज्ञों में पशुबलि की कुप्रथा का दुष्परिणाम यह हुआ कि जैन और बौद्ध धर्म के प्रवर्तकों ने यज्ञ-पद्धति को ही अमान्य घोषित कर दिया और अपने धर्मों में इस वैज्ञानिक पद्धति का बहिष्कार ही कर डाला।

(७) विविध यज्ञों का परिचय

अथर्वा ऋषि यज्ञ का प्रवर्तक–अथर्ववेद में उल्लेख है कि सर्वप्रथम अथर्वा ऋषि ने ही यज्ञ-पद्धति का आविष्कार किया और उसका प्रचार किया।[1] अंगिरस् ऋषियों ने यज्ञ की उपयोगिता आदि पर मनन-चिन्तन किया और उसके फल-स्वरूप अन्न आदि प्राप्त किया।[2]

यज्ञों की संख्या–ऐतरेय ब्राह्मण में समस्त श्रौतयज्ञों को पाँच भागों में बाँटा गया है– १. अग्निहोत्र, २. दर्श-पूर्णमास, ३. चातुर्मास्य, ४. पशु, ५. सोम। परन्तु स्मृतियों और कल्पग्रन्थों में स्मार्त और श्रौत यागों को मिलाकर इनकी संख्या २१ मानी गई है। इनको दो भागों में बाँटा गया है– १. गृह्ययाग, २. श्रौतयाग। श्रौतयागों को पुनः दो भागों में बाँटा गया है– १. हविर्याग, अर्थात् जिनमें दूध, घी, पुरोडाश आदि डाला जाता है। २. सोमयाग, जिनमें सोमलता के रस की आहुति दी जाती है। गृह्ययागों को पाकयज्ञ कहते हैं। गृह्यसूत्रों में वर्णित यज्ञ गृह्ययाग हैं। इनके लिए गृह्य अग्नि उपयोग में लाते हैं। इसे आवसथ्य अग्नि भी कहते हैं। श्रौतसूत्रों में वर्णित यागों को श्रौतयाग कहते हैं। हविर्याग और सोमयाग श्रौतयाग हैं।[3]

श्रौत और स्मार्त २१ याग ये हैं–

(क) **पाकयज्ञ**–ये गृह्ययाग हैं। इनकी संख्या ७ है। ये हैं– १. औपासन होम, २. वैश्वदेव, ३. पार्वण, ४. अष्टका, ५. मासिक श्राद्ध, ६. श्रवणा ७. शूलगव।

(ख) **हविर्याग**–ये श्रौतयाग हैं। इनकी संख्या ७ हैं। ये हैं– १. अग्निहोत्र, २. दर्श–पूर्णमास, ३. आग्रयण, ४. चातुर्मास्य, ५. पशुबन्ध, ६. सौत्रामणी, ७. पितृयज्ञ।

(ग) **सोमयाग**– ये श्रौतयज्ञ हैं। ये ७ हैं। इनके नाम हैं– १. अग्निष्टोम, २. अत्यग्निष्टोम, ३. उक्थ, ४. षोडशी, ५. वाजपेय, ६. अतिरात्र, ७. अप्तोर्याम।

अग्नि के दो भेद– १. स्मार्त अग्नि या गृह्य अग्नि। २. श्रौत अग्नि।

गृह्य अग्नि–विवाह के पश्चात् यह अग्नि प्रत्येक गृहस्थ के घर में स्थापित की जाती है। सभी गृह्यकर्म इसी अग्नि में किए जाते हैं। पारिवारिक यज्ञ आदि इसी अग्नि में किए जाते हैं। उपर्युक्त सभी 'पाकयज्ञ' इसी अग्नि में किए जाते हैं।

---

१. यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते। अ० २०.२५.५

२. अंगिरसः·····यज्ञस्य धाम प्रथमं मनन्त। अ० २०.९१.२

३. स एष यज्ञः पञ्चविधः, अग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासौ चातुर्मास्यानि पशुः सोमः। ऐत० ब्रा०

श्रौत अग्नि–हविर्याग और सोमयाग श्रौत अग्नि में किए जाते हैं। श्रौत अग्नि मुख्य रूप से तीन प्रकार की है– १. गार्हपत्य, २. आहवनीय, ३. दक्षिणाग्नि। गार्हपत्य अग्नि सामान्यतया हव्य वस्तुओं के पाक के लिए होती है। आहवनीय अग्नि ही मुख्य अग्नि है। इसमें ही देवताओं के निमित्त आहुति डाली जाती है। दक्षिणाग्नि का उपयोग पितृयज्ञ आदि विशिष्ट कर्मों के लिए होता है। श्रौत अग्नि एक और है। उसे 'सभ्य' अग्नि कहते हैं। इसका उपयोग विशेष यज्ञों के लिए होता है। इस प्रकार ये ४ श्रौत अग्नि तथा एक गृह्य अग्नि मिलकर ५ अग्नियाँ होती हैं। सातों पाकयज्ञ सामान्य यज्ञ हैं। इनके विशेष विवरण की आवश्यकता नहीं है।

हविर्याग

१. अग्निहोत्र–प्रतिदिन प्रातः और सायं किया जाने वाला यज्ञ है। इसमें घृत, सामग्री, चावल, जौ, दुग्ध आदि की आहुति दी जाती है।

२. दर्श-पूर्णमास–ये अमावस्या और पूर्णिमा को किए जाने वाले विशेष यज्ञ हैं। पूर्णिमा को किए जाने वाले यज्ञ में अग्नि और सोम के लिए घी और पुरोडाश (पिसे हुए चावल का पूआ) की आहुति दी जाती है। अमावस्या वाले यज्ञ में अग्नि के लिए पुरोडाश और इन्द्र के लिए दही तथा दूध के बने द्रव्य की आहुतियाँ दी जाती हैं।

३. आग्रयण इष्टि–यह नव-सस्येष्टि यज्ञ है। नई फसल होने पर यह शरद् में धान और वसन्त में यव (जौ-चना) की आहुतियाँ दी जाती हैं। यह यज्ञ करने के बाद ही नया अन्न खाया जाता है। यह वर्ष में दो बार होती है।

४. चातुर्मास्य–यह प्रत्येक चौथे मास में पूर्णिमा को होता है। चार मास पर होने के कारण इसे चातुर्मास्य कहा जाता है। इसके चार पर्व होते हैं। इनके नाम और अनुष्ठान के दिन ये हैं– १. वैश्वदेव पर्व–फाल्गुन पूर्णिमा को, २. वरुण-प्रघास–आषाढ़ की पूर्णिमा को, ३. साकमेध–कार्तिक पूर्णिमा को, ४. शुनासीरीय–फाल्गुण शुक्ल प्रतिपदा को।

५. पशुबन्ध–इसमें यज्ञार्थ घृत-दुग्धादि के लिए पशुओं को बाँधने का विधान है।

६. सौत्रामणी याग–यह याग सुत्रामा (सुत्रामन्) के लिए होता है। सुत्रामा (उच्चकोटि का रक्षक) शब्द इन्द्र के लिए है। 'सुत्राम्णः इयं सौत्रामणी' यह इन्द्र से संबद्ध है, अतः इस इष्टि को सौत्रामणी कहते हैं। राजा राज्याभिषेक के समय अपनी श्रीवृद्धि के लिए यह याग करता है। इन्द्र के साथ ही अश्विनी और सरस्वती भी इस यज्ञ के देवता हैं। उनके लिए सोमरस और शुद्ध जौ के बने पदार्थ की हवि दी जाती है (यजु० १०.३१ से ३४)। अथर्ववेद का कथन है कि राजा सौत्रामणी याग के द्वारा अपनी बिखरी शक्ति को केन्द्रित करे। (अथर्ववेद ३.३.२)

७. पितृयज्ञ–माता-पिता की सुख-समृद्धि एवं उनके दीर्घायुष्य के लिए यह यज्ञ किया जाता है। अथर्ववेद (६.१२०.१) में कहा गया है कि माता-पिता को कोई कष्ट न दें। यदि कोई कष्ट दिया है तो वह दुःखदायी होगा और उसके लिए प्रायश्चित करना होगा।

सोमयाग

वेदों में सोमयाग का बहुत महत्त्व वर्णित है। अथर्ववेद (२०.६७.१) में सोमयाग के ये लाभ कहे गए हैं– धनलाभ, शत्रुनाशन, ईश्वरीय कृपा की प्राप्ति और शक्तिलाभ। सोमयाग में सोमलता के रस की आहुति दी जाती है। विकल्प के रूप में पूतीक और अर्जुन ओषधियों का निर्देश है। महाराष्ट्र में आजकल सोमयाग में 'रांशेर' नामक ओषधि का प्रयोग होता है। सोमयाग लघु और बृहत् दोनों है। यह एक दिन से लेकर हजार वर्ष तक चलता है।

इसमें होता अदि ऋत्विजों के सहायक तीन-तीन व्यक्ति और होते हैं। अतः ऋत्विजों की संख्या १६ हो जाती है। १. **अध्वर्युगण**–अध्वर्यु, प्रतिप्रस्थाता, नेष्टा और उन्नेता। २. **होतृगण**–होता, मैत्रावरुण (प्रशास्ता), अच्छावाक और ग्रावस्तुत्। ३. **उद्‌गातृगण**–उद्‌गाता, प्रस्तोता, प्रतिहर्ता और सुब्रह्मण्य। ४. **ब्रह्मगण**–ब्रह्मा, ब्राह्मणाच्छंसी, आग्नीध्र और पोता।

सोमयाग कालगणना की दृष्टि से तीन प्रकार का है– १. **एकाह**–एक दिन चलने वाला। २. **अहीन**–दो दिन से लेकर १२ दिन तक चलने वाला। ३. **सत्रयाग**–१३ दिन से लेकर एक वर्ष चलने वाला या एक सहस्रवर्ष तक चलने वाला। अहीन याग दो, तीन, चार आदि दिन चलता है, उसी हिसाब से इसके विभिन्न नाम हैं–द्व्यह (२ दिन चलने वाला), त्र्यह (३ दिन), षडह (६ दिन), दशाह (१० दिन), द्वादशाह (१२ दिन चलने वाला)।

१. अग्निष्टोम–'यज्ञायज्ञा वो अग्नये' (ऋग्० ६.४८.१ और सामवेद मंत्र ३५) इस ऋचा पर सामगान 'अग्निष्टोम' कहलाता है। यह सामगान अन्त में होता है, अतः इसे 'अग्निष्टोम-संस्था' कहते हैं। संस्था का अर्थ है–अन्त या समापन। मंत्र में 'अग्नये' (अग्नि) है, अतः यह अग्निष्टोम कहलाता है। स्तोम का अर्थ है–स्तुति, अतः अग्निष्टोम–अग्नि की स्तुति या अग्नि का स्तोत्र है। यह ५ दिन चलता है। यह सोमयागों का प्रकृतियाग (आधारस्वरूप याग) है, अतः सभी सोमयागों में यह अग्निष्टोम रहेगा। इसमें १२ मंत्रों या स्तोत्रों (शस्त्रों) का घुमा-फिराकर प्रयोग होता है। ऋचा या मंत्र का पारिभाषिक नाम 'शस्त्र' है।

२. उक्थ–यह उक्थ नामक सामवेद के मंत्र से समाप्त होता है। इसमें ३ मंत्र या स्तोत्र बढ़ जाते हैं, अतः इसमें मंत्र (शस्त्र) संख्या १५ होती है।

३. षोडशी–इसमें 'षोडशी' नामक एक स्तोत्र और बढ़ जाता है। अतः स्तोत्र (मंत्र) संख्या १६ हो जाती है।

४. अतिरात्र–इसमें षोडशी स्तोत्र के बाद अतिरात्र-संज्ञक सामों (मंत्रों या स्तोत्रों) का गान इस याग के अन्त में होता है, अतः इसे 'अतिरात्र' कहते हैं।

ज्योतिष्टोम–अग्निष्टोम, उक्थ, षोडशी और अतिरात्र इन चारों यागों का सामूहिक नाम 'ज्योतिष्टोम' है। त्रिवृत् (३ बार दुहराना), पंचदश (१५), सप्तदश (१७) और एकविंश (२१ बार दुहराना), इन चारों स्तोमों को 'ज्योतिः' कहते हैं, अतः ये ज्योतिष्टोम हैं। इस प्रकार ज्योतिष्टोम में सोमयाग के सातों भेद आ जाते हैं।

५. अत्यग्निष्टोम–अग्निष्टोम के बाद सीधे षोडशी साम से समापन को अत्यग्निष्टोम कहते हैं।

६. और ७. वाजपेय और अप्तोर्याम–पूर्वोक्त ज्योतिष्टोमों में प्रयुक्त साम मन्त्रों के आवाप-उद्वाप (कुछ लेना-कुछ छोड़ना, उलट-फेर) से ये दोनों याग पूर्ण होते हैं।

इन यागों के अतिरिक्त वाजपेय, राजसूय और अश्वमेध मुख्य हैं।

वाजपेय यज्ञ–सम्राट् बनने की इच्छा वाला राजा वाजपेय यज्ञ करता है। शतपथ ब्राह्मण का कथन है कि राजा राजसूय यज्ञ करे और सम्राट् बनने की इच्छा वाला राजा वाजपेय यज्ञ करे।

राजा वै राजसूयेनेष्ट्वा भवति। सम्राड् वाजपेयेन। शत० ५.१.१.१३

यजुर्वेद तथा शतपथ ब्राह्मण में वाजपेय और राजसूय यज्ञों का विस्तृत वर्णन है।[1]

राजसूय यज्ञ–राजसूय यज्ञ करने के बाद ही राजा राजत्व प्राप्त करता है। राजसूय का अर्थ है–राजत्व या स्वराज्य के लिए सूय (अभिषेक)। इसमें प्रारम्भ में अग्निष्टोम, कतिपय इष्टियाँ और चातुर्मास्य यज्ञ का अनुष्ठान होता है। तदनन्तर १२ रत्नियों के संमानार्थ अनुष्ठान विशेष रूप से होता है। इसमें 'अभिषेचनीय याग' भी महत्त्वपूर्ण है। इसमें सरस्वती नदी के जल के सहित १७ नदियों आदि के जल से राजा को स्नान कराया जाता है। इसमें पुरोहितों और रत्नियों को विशेष उपहार दिए जाते हैं।

अश्वमेध–यह सोमयाग में ही है। अभिषिक्त राजा इसका अनुष्ठान करता है। दिग्विजयार्थ सशस्त्र सैनिकों के संरक्षण में अश्व छोड़ा जाता है। एक वर्ष तक यह अश्व चारों दिशाओं में सभी स्थानों पर जाता है। अश्व का सकुशल लौटना राजा की दिग्विजय मानी जाती है। अन्त में विशिष्ट यज्ञ से इसकी समाप्ति होती है।

व्रात्यस्तोम–तांड्य ब्राह्मण में चार व्रात्य स्तोमों का वर्णन है। व्रात्य वे व्यक्ति हैं–जो पतितसावित्रीक हैं, अर्थात् जिनका यथासमय यज्ञोपवीत नहीं हुआ है। ऐसे व्यक्ति पतित और आचारहीन माने जाते थे। ये कुल-क्रमागत कृषि, व्यापार आदि नहीं करते थे। इस व्रात्य स्तोम (व्रात्य यज्ञ) के द्वारा वे शुद्ध किए जाते थे और अपने ब्राह्मण, क्षत्रिय

१. यजुर्वेद अध्याय ९ और १० । शतपथ ब्राह्मण कांड ५

आदि वर्ण में पुनः स्थान पाते थे। अथर्ववेद और श्रौतसूत्रों में व्रात्यों का बहुत वर्णन है।[१] व्रात्य लोगों में भी कुछ आचार्य और दार्शनिक होते थे। अथर्ववेद में व्रात्य ब्रह्म का वर्णन है। व्रात्य को सभी वेदों और विद्याओं का ज्ञाता कहा गया है। उनके उपास्य देव शिव थे। इनमें अतिथि-सत्कार का भाव बहुत अधिक था।

अभिचार यज्ञ–षड्विंश ब्राह्मण में शत्रु-नाशन के लिए विविध अभिचार यज्ञों का वर्णन है। ये हैं-श्येन, इषु, संदंश और वज्रयाग। इनमें प्रतीकरूप में श्येन (बाज) आदि की मूर्ति बनाकर उनमें विस्फोटक भरकर उसका शत्रु पर प्रहार किया जाता था। इनको अभिचार कृत्य या कृत्या-प्रयोग भी कहते हैं।

अन्य यज्ञ–अथर्ववेद में विश्वजित्, अभिजित्, सद्यःक्री, प्रक्री, अर्धमास, एकरात्र, द्विरात्र आदि यज्ञों का भी वर्णन है।[२] विष्टारी ब्रह्मौदन का भी वर्णन है। इसके लिए कहा गया है कि इस यज्ञ के द्वारा मनुष्य मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेता है।[३]

पंच महायज्ञ–ये गृह्य यज्ञों में हैं। ये प्रत्येक गृहस्थ के लिए अनिवार्य बताए गए हैं। ये हैं–ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, बलिवैश्वदेव यज्ञ और अतिथि यज्ञ। १. **ब्रह्मयज्ञ**–यह प्रातः और सायं ईश्वरोपासना एवं संध्या है। स्वाध्याय भी ब्रह्मयज्ञ है। २. **देवयज्ञ**–यह दैनिक अग्निहोत्र या हवन है। इसमें पति-पत्नी दोनों को बैठना चाहिए। देवयज्ञ में 'स्वाहा' अर्थात् स्व-स्वार्थभावना, आ-पूर्णतया, हा-छोड़ना (स्वार्थ-भावना का पूर्णतया त्याग) करना है। 'इदं न मम' यह मेरा नहीं है, यह स्वार्थत्याग और ममत्व का त्याग है। अथर्ववेद में मानस यज्ञ या आत्मसमर्पणरूपी यज्ञ को सर्वोत्तम माना गया है।[४] इससे मन की दिव्य शक्तियाँ जागृत होती हैं। ३. **पितृयज्ञ**–अपने माता-पिता, गुरुजनों आदि की सेवा-शुश्रूषा करना। ४. **बलिवैश्वदेव यज्ञ**–पकाए हुए भोजन में से कुछ अंश पशु-पक्षियों आदि के लिए निकालना और कुछ अंश अग्नि में डालना। उसके बाद ही भोजन करना। ५. **अतिथि यज्ञ**–यह अतिथि-सत्कार है। अथर्ववेद में अतिथि-सत्कार का बहुत विस्तार से वर्णन है।[५] आवश्यक कामों को छोड़कर अतिथि-सत्कार करे, अन्यथा परिवार की श्री-समृद्धि नष्ट हो जाती है।[६]

यज्ञ के पंचांग–शतपथ ब्राह्मण में यज्ञ के पाँच अंग बताए गए हैं। ये हैं–देवता, हविर्द्रव्य, मंत्र, ऋत्विज्, दक्षिणा। १. **देवता**–मुख्य देवता एक परमात्मा है। उसकी विभूतियाँ ही अन्य देवता हैं। जिस देव के निमित्त यज्ञ किया जाता है, वह उस

---

१. अथर्व० कांड १५। लाट्यायन श्रौत० ८.५ और ८.६। कात्या० श्रौत० २२.३ और ४

२. अथर्व० ११.७.१० से २०

३. तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम्। अथर्व० ४.३५.१ से ७

४. ओजीयो यद् विहव्येनेजिरे। अथर्व० ७.५.३ और ४

५. अथर्व० १५.१० से १५.१३

६. अथर्व० ९.६.३१ से३६

यज्ञ का देवता है। इन देवों में अग्नि, वायु, इन्द्र, मरुत्, सूर्य, चन्द्र, मित्र, वरुण, इन्द्राणी, उषा आदि देवगण हैं। २. **हविर्द्रव्य या हव्य**–यज्ञ में आहुति दिए जाने घी, सामग्री आदि पदार्थों को हव्य या हविर्द्रव्य कहते हैं। 'अग्निमुखा वै देवाः' अग्नि देवों का मुख है। अग्नि के द्वारा हव्य सूक्ष्म रूप होकर विभिन्न देवों को प्राप्त होता है। ३. **मंत्र**–शक्तिसंपन्न शब्दराशि को मन्त्र कहते हैं। मन्त्र स्तुति या स्तोत्र रूप हैं। इन मंत्रों से ही देवों की आराधना की जाती है। ४. **ऋत्विज्**–यज्ञ कराने वाले निष्णात विद्वानों को ऋत्विज् कहते हैं। ये हैं–होता (ऋग्वेद), अध्वर्यु (यजुर्वेद), उद्‌गाता (सामवेद), ब्रह्मा (अथर्ववेद)। ब्रह्मा यज्ञ का निर्देशक होता है। ५. **दक्षिणा**–यह ऋत्विजों का पारिश्रमिक है। दक्षिणा में नया वस्त्र, गाय, सुवर्ण या द्रव्य देने का विधान है।

परिशिष्ट

अध्याय ११

वैदिक व्याकरण, स्वरप्रक्रिया, पदपाठ

१. वैदिक व्याकरण

प्रातिशाख्य ग्रन्थों, सिद्धान्तकौमुदी और A. A. Macdonell कृत A Vedic Grammar for Students में वैदिक व्याकरण का विस्तृत विवेचन हुआ है। यहाँ कुछ प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख किया जा रहा है। अन्य बातें संस्कृत व्याकरण के तुल्य हैं।[1]

(१) संधि-विचार

१. निम्नलिखित स्थानों पर प्रगृह्य संज्ञा होने से प्रकृतिभाव (Hiatus) होता है, अतः यण्, दीर्घ आदि कोई संधि नहीं होती है :

(क) उ निपात प्रगृह्य होता है, अतः संधि नहीं होगी। जैसे– भ उ अंशवे। पद-पाठ में प्रगृह्य उ को 'ऊँ इति' लिखा जाता है। अ या आ + उ = ओ, होगा तो भी वहाँ कोई संधि नहीं होगी। जैसे– अथो इन्द्राय।

(ख) प्रथमा और द्वितीया द्विवचन के ई, ऊ और ए प्रगृह्य होते हैं, अतः संधि नहीं होगी। जैसे– हरी ऋतस्य। साधू अस्मे। रोदसी उभे ऋघायमाणम्।

(ग) युष्मद् और अस्मद् शब्द के त्वे, युष्मे, अस्मे प्रगृह्य होते हैं। जैसे–त्वे इत्। युष्मे इत्था। अस्मे आयुः।

(घ) कुछ स्थानों पर ए या ओ के बाद अ होगा तो पूर्वरूप संधि नहीं होती है। जैसे– उपप्रयन्तो अध्वरम्। सुजाते अश्वसूनृते। नो अव्यात्। अहो अवद्यात्। शतधारो अयम्। प्राणो अंगे-अंगे अदीव्यत्। अयं सो अध्वरः।

२. निपात आ के बाद स्वर होगा तो आ को आँ हो जाता है और संधि नहीं होगी। अभ्र आँ अपः।

३. दीर्घ स्वर के बाद न् को र् हो जाना हैं, बाद में कोई स्वर हो तो। इस र् से पहले अनुनासिक हो जाता है, अतः आन् को आँ, इन् को ईंर्, उन् को ऊँर् होना है। देवान् अच्छा > देवाँ अच्छा। परिधीन् अति > परिधींरति। अभीशून् इव > अभीशूँरिव।

४. स्यः के विसर्ग का लोप होता है, बाद में व्यंजन हो तो। एष स्य भानुः।

५. मंत्र के अन्तिम टि (स्वरसहित अंश) को 'स्वाहा' से पहले 'ओम्' हो जाता है। जिन्वत स्वाहा > जिन्वतों स्वाहा।

---

१. विस्तृत विवेचन के लिए देखें, लेखककृत 'संस्कृत व्याकरण' पृ० ४७९ से ५०४

६. (विसर्ग को स्) कवर्ग, पवर्ग बाद में हो तो इन स्थानों पर विसर्ग को स् होता है । (१) ऋतः + कविः = ऋतस्कविः। विश्वतः + पृथुः = विश्वतस्पृथुः। (२) कः, करत्, करति, कृधि, कृत बाद में हो तो विसर्ग को स् । अपः + कः = अपस्कः । इसी प्रकार वस्यसस्करत् । सुपेशसस्करति । उरु णस्कृधि । नस्कृतम् । (३) पंचमी के विसर्ग को स्, बाद में परि और पातु हो तो दिवस्परि । दिवस्पातु । (४) षष्ठी के विसर्ग को स्, पति, पुत्र, पार, पृष्ठ, पद, पयस् और पोष हों तो । वाचः + पतिम् = वाचस्पतिम् । दिवस्पुत्राय । तमसस्पारम् । इडस्पदे । रायस्पोषम् ।

७. (स् को ष्) (१) इन स्थानों पर स् को ष् होता है, बाद में युष्मद् के रूप (त्वम्, त्वा, ते, तव), तत् और ततक्षु हों तो । त्रिभिः + त्वम् = त्रिभिष्ट्वम् । तेभिष्ट्वा । आभिष्टे । अग्निष्टत् । निष्टतक्षुः । (२) पूर्वपद में इ, उ, ऋ हों तो । दिवि + स्थः = दिवि ष्ठः । ऊ षु णः। अभी षु णः । (३) नि, वि और अभि के बाद स् को ष्, बीच में अट् (अ) हो तो भी । नि + असीदत् = न्यषीदत् । व्यषीदत् । अभि + अस्तौत् = अभ्यष्टौत् ।

८. (न् को ण्) (१) पूर्वपद में ऋ हो तो न् को ण् । पितृ + यानम् = पितृयाणम् । (२) धातुरूप में र्, ष् हो तथा उरु और सु के बाद 'नः' को 'णः' हो जाता है, रक्षा णः । शिक्षा णः । उरु णः । अभी षु णः । मो षु णः ।

९. दो स्वरों के बीच में ड् हो तो ल् और ढ को ल्ह होता है। ईडे > ईले । साढा > साल्हा । यह ल् (ळ) मराठी में मिलता है । इसका उच्चारण ड़ के सदृश होता है ।

२. शब्दरूप-विचार

(सूचना–शब्दरूपों में प्रथमा, द्वितीया,....सप्तमी, संबोधन आदि के लिए १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८ अंक दिए हैं । एकवचन, द्वि०, बहु० के लिए १, २, ३ । जैसे–३.१ का अर्थ है–तृतीया एकवचन ।

(क) अकारान्त पुंलिंग और नपुंसकलिंग–इनमें ५ स्थानों पर अन्तर होता है । कहीं-कहीं पर दो-दो रूप होते हैं । (१) १.२ और २.२ में आ और औ । जैसे-प्रिया, प्रियौ । (२) १.३ में आः, आसः । प्रियाः, प्रियासः । (३) नपुं० १.३ और २.३ में आ, आनि । प्रिया, प्रियाणि । (४) ३.१ में आ, एन । प्रिया, प्रियेण । (५) ३.३ में ऐः, एभिः । ब्राह्मणैः, ब्राह्मणेभिः ।

(ख) आकारान्त स्त्रीलिंग–रमावत् । केवल ३.१ में आ और अया । रमा, रमया ।

(ग) इकारान्त पुंलिंग–हरिवत् । केवल दो स्थानों पर अन्तर होता है । ३.१ में आ, ना । शुच्या, शुचिना । ७.१ में आ, औ । शुचा, शुचौ ।

(घ) उकारान्त पुंलिंग–भानुवत्, केवल तीन स्थानों पर अन्तर होता है । ३.१ में आ, ना । मध्वा, मधुना । ६.१ अः, ओः । मध्वः, मधोः । ७.१ इ, औ । मधवि, मधौ ।

हलन्त शब्द

१. प्रथमा, द्वितीया, सं० के द्विवचन में आ, औ दोनों रूप। हस्तिना, हस्तिनौ।

२. आत्मन्–३.१ में त्मना।

३. अश्मन्–७.१ में दो रूप। अश्मनि, अश्मन्। इसी प्रकार कर्मन् का कर्मणि, कर्मन्।

४. **युष्मद् शब्द**–ये अन्तर होते हैं–१.२. युवम्। ३.१. त्वा, त्वया। ६.२. युवोः, युवयोः। ७.१. त्वे, त्वयि।

५. **अस्मद् शब्द**–ये अन्तर होते हैं–१.२. आवम्, वाम्। ४.१. मह्यम्, मह्य। ५.३. अस्मत्, आवत्। ७.३ अस्मासु, अस्मे।

३. उपसर्ग एवं अव्यय

१. उपसर्गों के विषय में ये बातें ज्ञातव्य हैं–

(क) उपसर्ग क्रिया से पूर्व मिले हुए भी आते हैं, क्रिया से पृथक् भी, क्रिया के बाद भी और कुछ पदों का व्यवधान होने पर भी। जैसे–आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि (आ + याहि)। आ और याहि पृथक्-पृथक् हैं, व्यवधान भी है।

(ख) वेद में यदि उपसर्ग एक बार क्रिया के साथ आ गया है तो बाद में केवल उपसर्ग ही आएगा और वह पूरी क्रिया का बोधक होगा। क्रिया बार-बार नहीं आएगी।

(ग) कभी-कभी केवल उपसर्ग ही आता है और क्रिया लुप्त रहती है। ऐसे स्थानों पर क्रिया का अध्याहार किया जाता है।

(घ) **उपसर्गों को द्वित्व**–पादपूर्ति के लिए कुछ उपसर्गों को द्वित्व होता है। ये हैं–प्र, सम्, उप और उत्। प्र प्रायमग्निः। सं समिद् युवसे। उपोप मे। उदुदु हर्षसे।

२. **उपसर्ग आदि को दीर्घ**–(१) इन निपातों को दीर्घ होता है, तु, नु, घ, मक्षु, त (लोट् म० ३ थ को त), कु, त्र, उरुष्य। जैसे–आ तू न इन्द्र। नू मर्तः। उत वा घा। मक्षू। भरता। कूमना। अत्रा ते। उरुष्या णः। (२) एव आदि निपातों को दीर्घ होता है। एवा हि ते। (३) उपसर्ग के इ, उ को दीर्घ होता है, सु बाद में हो तो। अभि > अभी। अभी षु णः।

४. धातुरूप-विचार

१. लेट् लकार (Subjunctive)–संस्कृत में यह लकार नहीं है। इसमें मुख्य कार्य ये होते हैं– (१) अ या आ विकरण लगना। भवति > भवाति। (२) बीच में स् लगना। तॄ > तारिषत्। (३) तिङ् प्रत्यय के अन्तिम इ का लोप। अतः ति > त्, सि > स, मि > म्, अन्ति > अन्। जैसे– भवति > भवात्। भवसि > भवाः। (४) उत्तमपुरुष के विसर्ग का लोप। वः > व। मः > म। करवाव, करवाम। (५) आताम्, आथाम् के आ को ऐ। मादयेते > मादयैते। (६) तिङ् प्रत्यय के ए को ऐ। ईशे > ईशै। लेट् लकार का प्रयोग आज्ञा और चाहिए अर्थ में होता है।

२. विकरण-व्यत्यय–वेदों में भ्वादि, अदादि आदि के शप् आदि विकरण बदल जाते हैं। अतः अन्य गण की धातु के अन्य गण की धातु के तुल्य रूप बनते हैं। जैसे–भिनत्ति के स्थान पर भेदति, हन्ति का हनति, शेते का शयते, म्रियते का मरते, ददाति का दाति।

३. अन्य कार्य–(१) मः को मसि। एमः > एमसि। (२) लुङ् लकार के रूपों में अन्तर। अगमन् > ग्मन्, अकार्षुः > अक्रन्, (३) द्वित्व का अभाव। ददाति > दाति। (४) हृ और ग्रह् के ह् को भ्। जहार > जभार। गृह्णामि > गृभ्णामि। (५) कुछ धातुओं के हि को धि। शृणु > श्रुधी। कुरु > कृधि। (६) र् का आगम। दुहते > दुह्रे। अदर्शम् > अदृश्रम्। (७) त को तन। धत्त > दधातन, सुनुत > सुनोतन। (८) आसीत् को आः। सर्वम् आ इदम्। (९) अन्तिम स्वर को दीर्घ। भरत > भरता। चक्र > चक्रा। विद्म > विद्मा।

५. समास-विचार

वेदों में समास में कुछ अन्तर होते हैं। कुछ अन्तर ये हैं–

(१) मातापितरौ के स्थान पर मातरापितरा और पितरामातरा। (२) समान को स आदेश–समानगर्भ्यः > सगर्भ्यः। (३) सह को सध–बाद में माद या स्थ होने पर। सहमादे > सधमादे। सधस्थम्। (४) कु को कव और का–कुपथः > कवपथः, कापथः। (५) अष्ट को अष्टा–अष्टापदी। (६) अ को आ–सोम, अश्व के अ को आ, बाद में मतुप् (मत्) हो तो। अश्वावतीम्, सोमावतीम्। (७) कुछ अन्य शब्दों में भी पूर्वपद को दीर्घ होता है। पुरुषः > पूरुषः। दण्डादण्डि।

६. तद्धित प्रत्यय

तद्धित प्रत्ययों में भी संस्कृत से कुछ अन्तर ये हैं–

(१) सभा-सभ्यः और सभेयः। (२) उपसर्गों से वत्। उद्वतः, निवतः। (३) मत्वर्थ में ई। रथीः = रथवान्। सुमंगलीः = सुमंगलवती। (४) इदम् से 'दा'। इदा = इदानीम्। (५) किम् से 'था'। कथा = कथम्। (६) प्रत्न और पूर्व से 'था'। प्रत्नथा, पूर्वथा। (७) हिरण्य + मय, दो रूप बनते हैं–हिरण्मय, हिरण्यय। एक में य लोप, दूसरे में म का लोप। हिरण्मयेन पात्रेण, हिरण्ययेन रथेन।

७. कृत्-प्रत्यय (तुमुन्)

कृत्-प्रत्ययों में सबसे अधिक तुम् (को, के लिए) अर्थ वाले प्रत्यय हैं। डॉ० मेकडॉनल ने अपने Vedic Grammar में तुमर्थक प्रत्ययों (Infinitive) का इस प्रकार वर्गीकरण किया है।

(क) चतुर्थ्यन्त तुमर्थक प्रत्यय– १. **ए प्रत्यय**–यही आकारान्त धातु से मिलकर ऐ हो जाता है। जैसे–परादै (परा + दा + ऐ)। दृशे (दृश्)। भुजे (भुज् + ए)।

२. **असे प्रत्यय**–चक्षसे (चक्ष् + असे), चरसे (चर् + असे)। ३. **अये प्रत्यय**–दृशये (दृश् + अये), सनये (सन् + अये)। ४. **तये प्रत्यय**–इष्टये (इष् + तये), पीतये (पा + तये)। ५. **तवे प्रत्यय**–कर्तवे (कृ + तवे), पातवे (पा + तवे)। ६. **तवै प्रत्यय**–गन्तवै (गम् +तवै), पातवै (पा + तवै)। ७. **त्यै प्रत्यय**–इत्यै (इ + त्यै)। ८. **ध्यै प्रत्यय**–अ विकरण वाली धातुओं में। पिबध्यै (पा + ध्यै), चरध्यै (चर् + ध्यै)। ९. **मने प्रत्यये**–त्रामणे (त्रा + मने), दामने (दा + मने)। १०. **वने प्रत्यय**–दावने (दा + वने)।

(ख) द्वितीयान्त तुमर्थक प्रत्यय– १. **अम् प्रत्यय**–समिधम् (सम् + इध् +अम्), आरभम् (आ + रभ् +अम्)। २. **तुम् प्रत्यय**–कर्तुम्, दातुम्, द्रष्टुम्, खनितुम्।

(ग) पंचम्यन्त या षष्ठ्यन्त तुमर्थक प्रत्यय- १. **अः प्रत्यय**–संपृचः (सम् +पृच् +अ)। २. **तोः प्रत्यय**–एतोः (इ + तोः), गन्तोः (गम् +तोः)।

(घ) सप्तम्यन्त तुमर्थक प्रत्यय–१. **इ प्रत्यय**–दृशि (दृश् +इ)। २. **तरि प्रत्यय**–धर्तरि (धृ + तरि), विधर्तरि। ३. **सनि प्रत्यय**–नेषणि (नी + सनि), शक्षणि (शक् + सनि)।

कृत्य प्रत्यय (तवै, तोः आदि)

चाहिए, के लिए या योग्य अर्थ में कृत्य प्रत्यय होते हैं। जैसे–दातवै या दातोः–देना चाहिए, देने के लिए या देने योग्य। इस अर्थ में ये प्रत्यय होते हैं–

१. **तवै, एन्य, ए और त्व प्रत्यय**–म्लेच्छितवै (म्लेच्छ् + तवै)। दिदृक्षेण्यः (दिदृक्ष् +एन्य)। अवगाहे (अव + गाह् + ए)। कर्त्वम् (कृ + त्व) (करने योग्य)। २. **तोः प्रत्यय**–स्थातोः (स्था + तोः)। कर्तोः (कृ + तोः)। ३. **अः (कसुन्) प्रत्यय**–विसृपः (वि + सृप् +अः)। आतृदः (आ + तृद् + अः)

कृत्-प्रत्यय (क्त्वा, ल्यप् आदि)

१. **त्वा (क्त्वा) प्रत्यय**– १. उपसर्ग पहले होने पर क्त्वा (त्वा) को ल्यप् (य) होता है। परन्तु वेद में उपसर्ग पहले रहने पर भी कुछ स्थानों पर त्वा रहता है। जैसे–परिधापयित्वा। (परि + धा + णिच् + त्वा)। २. **त्वा को त्वी और त्वाय**–जैसे–स्नात्वी = स्नात्वा। पीत्वी = पीत्वा। गत्वाय = गत्वा। ३. **इ प्रत्यय**–कर्म पहले होने पर वन्, सन्, रक्ष् और मथ् से 'इ' प्रत्यय हो जाता है। जैसे–ब्रह्मवनिः, क्षत्रवनिः, गोषणिः, पथिरक्षिः, हविर्मथिः। ४. **विट् प्रत्यय**–जन्, सन्, खन्, क्रम्, गम् से विट् (०) प्रत्यय होता है। न् और म् को आ हो जाएगा जैसे–अब्जाः, गोषाः, विसखाः, दधिक्राः, अग्रेगाः। ५. **मन् और वन् प्रत्यय**–जैसे–सुदामा (सु + दा + मन्)। सुपीवा (सु + पा + वन्)।

८. अ, आ-रहित भूतकाल (Injunctive)

अ (अट्) या आ (आट्) से रहित भूतकाल के तिङन्त रूपों को Injunctive (इन्जंक्टिव) कहते हैं। संस्कृत में साधारणतया 'मा' के साथ धातु से पहले अ या आ नहीं लगता। जैसे– मा गाः, मा कार्षीः। यह साधारणतया इच्छा या 'चाहिए' अर्थ को

प्रकट करता है। ये प्राचीन वैदिक रूप हैं। वेदों में 'मा' के बिना भी इसके रूप मिलते हैं। जैसे—वीर्याणि प्र वोचम् (वच् धातु), जेष्म धनम् (जि धातु), मा तन्तुः छेदि (छिद् धातु), अदितये पुनर्दात् (दा धातु)।

९. संहितापाठ से पदपाठ बनाना

संहितापाठ से पदपाठ बनाने में निम्न बातों का ध्यान रखें—

१. सभी संधियों को तोड़ दें।

२. समासयुक्त पदों को भी तोड़ दें और समस्त पदों के बीच में अवग्रह चिह्न (ऽ) लगा दें। यदि पूर्वपद में कुछ स्वर-परिवर्तन हुआ हो तो पदों को न तोड़े।

३. जहाँ समस्त पदों में दो से अधिक समस्त पद हैं, वहाँ केवल अन्तिम पद को पृथक् करें।

४. शब्दों के अन्त में लगने वाले भ्याम्, भिः, भ्यः, सु, तर, तम, मत्, वत् प्रत्यय शब्द से पृथक् किए जाते हैं और बीच में अवग्रह चिह्न (ऽ) लगाया जाता है, यदि इनके कारण शब्द के स्वर में परिवर्तन हुआ है तो ये प्रत्यय पृथक् नहीं किए जाएंगे।

५. ष्टुत्व आदि में टवर्ग को तवर्ग ही रखेंगे।

६. जो स्वर मूल रूप से दीर्घ नहीं हैं, जैसे—अन्तिम आ और ई स्वर, उन्हें पद-पाठ में ह्रस्व ही रखा जायगा।

७. प्रगृह्य संज्ञा वाले द्विवचन के रूप (ई, ऊ, ए अन्त वाले) तथा अन्य प्रगृह्य संज्ञकों के रूपों के बाद 'इति' लगाया जाएगा। यदि ऐसे शब्द समस्त पद हैं तो 'इति' के बाद समस्त पदों को तोड़कर रखा जाएगा।

८. उक्त कार्यों के बाद प्रत्येक पद में उदात्त को ढूँढ़ें और बाद में अन्य वर्णों पर स्वर चिह्न लगावें।

९. 'इव' उपमान के साथ पद समस्त होकर आता है। उपमान-वाचक 'न' समस्त होकर नहीं आता है। ऐसे इव से पहले अवग्रह चिह्न लगेगा।

१०. यदि संधिजन्य ष और ण है तो उसे स और न लिखा जाएगा।

१०. पदपाठ में अवग्रह-चिह्न लगाना

पदपाठ में निम्न स्थानों पर अवग्रह-चिह्न (ऽ) लगाया जाता है—

१. भ् से प्रारम्भ होने वाले सुप् (भ्याम्, भिः, भ्यः) से पहले यदि ह्रस्व स्वर या व्यंजन होगा तो अवग्रह-चिह्न लगेगा। यदि दीर्घस्वर पहले होगा तो अवग्रह चिह्न नहीं लगेगा। जैसे—हरिऽभ्याम्। हरिऽभिः। किन्तु इन स्थानों पर अवग्रह चिह्न नहीं लगेगा—द्वाभ्याम्, अष्टाभ्याम्, युष्मभ्यम्, तुभ्यम्, देवेभ्यः।

२. पूर्ववत् सप्तमी बहु० के सु से पहले अवग्रह-चिह्न लगेगा। अप्ऽसु। तासु में सु से पहले दीर्घ स्वर है, अतः अवग्रह चिह्न नहीं लगेगा।

३. जहाँ उपसर्गों का किसी शब्द से समास होता है, वहाँ बीच में अवग्रह-चिह्न लगेगा। प्रऽचेताः। विऽभुः।

४. निषेधार्थक अ और अन् को समस्त पदों में अवग्रह-चिह्न से पृथक् नहीं किया जाता है।

५ जहाँ एक से अधिक उपसर्ग इकट्ठे लगे हों, वहाँ केवल प्रथम उपसर्ग के बाद अवग्रह-चिह्न लगाया जाता है। जैसे—सुऽप्रवचनम्।

६. जहाँ पर एक ही पद में एक साथ कई उपसर्ग और हलादि सुप् भी हो, वहाँ पर हलादि सुप् से पहले अवग्रह-चिह्न लगाया जाता है। पद में केवल एक ही अवग्रह चिह्न लगाया जाता है। सुप्रयावऽभिः। यहाँ केवल भिः से पहले अवग्रह चिह्न लगा है।

७. यदि शब्द में उपसर्ग या प्रत्यय है और बाद में 'इव' लगा है तो केवल इव को ही अवग्रह से पृथक् किया जाएगा। जैसे—शक्तस्यऽ इव।

८. शब्द और इव के बीच में अवग्रह चिह्न लगता है। शक्तस्य ऽ इव।

९. शब्दों के साथ विशिष्ट कृत्-प्रत्ययान्त शब्दों का समास होने पर बीच में अवग्रह चिह्न लगता है। जैसे—उरुऽशस्त्रः। वृत्रऽहा। द्रविणोऽदाः।

१०. समस्त पद के विभिन्न पद अवग्रह के द्वारा पृथक् किए जाते हैं।

११. यदि समस्त (समासयुक्त) पद दो से अधिक हैं तो अन्तिम पद को ही अवग्रह-चिह्न से पृथक् करेंगे।

१२. जहाँ प्रत्ययान्त रूपों को द्विरुक्त किया जाता है और उनमें बाद वाला रूप अनुदात्त (निघात) होता है, वहाँ द्विरुक्त के बीच में अवग्रह चिह्न लगता है। जैसे—अगात्ऽअगात्। लोम्नोऽ लोम्नो।

१३. जहाँ पूर्वपद एक स्वर वाला हो और उसे तद्धित-प्रत्यय के कारण वृद्धि हुई हो तो उन दोनों के बीच में अवग्रह-चिह्न नहीं लगता है। जैसे—त्रैष्टुभेन। सौभाग्यम्। वनस्पति में भी अवग्रह-चिह्न नहीं लगता है।

११. पदपाठ में 'इति' का प्रयोग

पदपाठ में निम्न स्थानों पर पद के बाद 'इति' का प्रयोग किया जाता है—

१. सभी प्रगृह्यसंज्ञक पदों के बाद 'इति' लगता है।

२. उ निपात को पदपाठ में 'ऊँ इति' लिखा जाता है। यदि उ मन्त्र के पूर्वार्ध या उत्तरार्ध के अन्त में होगा तो उसे 'ऊम् इति' लिखेंगे, अन्यत्र 'ऊँ इति'।

३. अस्मे, युष्मे और त्वे के बाद 'इति' लगता है।

४. अप्वो, यह्वो, तत्त्वो, अथो, उतो, मो आदि ओ अन्त वाले पद प्रगृह्यसंज्ञक के तुल्य माने जाते हैं। इनके अन्त में 'इति' लगता है।

५. ऐसे विसर्ग (:) जो मूलरूप में र् होते हैं, उनके साथ 'इति' लगता है। जैसे—होतः को होतर् इति। नेतः को नेतर् इति।

६. जिन शब्दों के अन्त में प्रगृह्य–संज्ञा वाले स्वर (ई, ऊ, ए) होते हैं और उनके बाद 'इव' होगा तो 'इव' के बाद 'इति' लगेगा और उस पद–समूह को दो बार लिखा जाएगा। जैसे–हरी इव > हरी इव इति, हरी इव इति।

७. स्युः और इति के बाद प्रायः 'इति' आता है और इनकी द्विरुक्ति होती है। जैसे–स्युः > स्युरिति स्युः।

८. क्रियापद अकः को 'अकर् इति अकः' लिखा जाता है।

१२. पदपाठ से संहितापाठ बनाना

पदपाठ से संहितापाठ बनाने में इन नियमों का ध्यान रखें–

१. पदपाठ के सभी पदों में सन्धि–नियमों का प्रयोग करें।

२. पदपाठ में प्रयुक्त सभी 'इति' शब्दों को हटा दें। अवग्रह–चिह्नों को भी हटा दें।

३. मन्त्र को पूर्वार्ध और उत्तरार्ध दो भागों में बाँट लें।

४. संधि करते समय प्लुत आदि के लिए कुछ संकेत करने की आवश्यकता होती है।

५. स्वर–नियमों का ध्यान रखते हुए पदों पर स्वर–चिह्न लगावें। इसमें जात्य स्वरित का विशेष ध्यान रखना चाहिए। जिससे पहले उदात्त स्वर न हो, उस स्वरित को जात्य स्वरित कहते हैं। यह स्वतंत्र स्वरित है। यदि जात्य स्वरित के बाद कोई उदात्त होता है तो जात्य स्वरित में कम्प होता है। यदि जात्य स्वरित ह्रस्व स्वर पर होगा तो कम्प को १ और यदि दीर्घ स्वर पर होगा तो ३ इस प्रकार संख्या से निर्देश करते हैं। १ और ३ दोनों के ऊपर–नीचे चिह्न रहता है। ऊपर स्वरित का और नीचे अनुदात्त का। १ सूचित करता है कि जात्य स्वरित ह्रस्व स्वर पर है और ३ सूचित करता है कि वह दीर्घ स्वर पर है।

६. पदान्त ए और ओ के बाद अ होगा तो सन्धि–नियम नहीं लगता है। बाद में अन्य स्वर होंगे तो संधि–नियम लगेंगे।

७. जहाँ पदपाठ में 'इति' लगा है। वहाँ संहितापाठ में सन्धि–नियम नहीं लगते हैं। केवल संबोधन के 'ओ' में संधि–नियम लगते हैं।

८. 'आन्' के बाद कोई स्वर होगा तो आन् को 'आँ' हो जाता है।

१३. स्वर-संबन्धी विशिष्ट नियम

१. स्वर तीन हैं–उदात्त, अनुदात्त और स्वरित।

२. तीन स्वरों के चिह्न– १. उदात्त–उदात्त वर्ण पर कोई चिह्न नहीं होता। जैसे–क। २. अनुदात्त–अनुदात्त वर्ण पर नीचे पड़ी लकीर खींची जाती है। जैसे–क॒। ३. स्वरित–स्वरित वर्ण पर ऊपर खड़ी लकीर खींची जाती है। जैसे–क॑, क्व॑।

पाश्चात्य पद्धति में केवल उदात्त वर्ण पर ऊपर टेढ़ी लकीर बाईं ओर झुकी हुई लगाई जाती है। जैसे इंग्लिश् शब्दों पर बलाघात (Accent) के लिए / चिह्न लगाया जाता

है। अनुदात्त और स्वरित पर कोई चिह्न नहीं लगाते। केवल स्वतंत्र स्वरित पर दाहिनी ओर झुकी हुई टेढ़ी लकीर ⸌ ऊपर लगाते हैं। मान लें कि 'क' एक शब्द है। उस पर भारतीय और पाश्चात्य पद्धति से इस प्रकार चिह्न लगेंगे। × का अर्थ है–कोई चिह्न नहीं लगेगा।

पद्धति	उदात्त	अनुदात्त	स्वरित (१)	स्वतंत्र स्वरित (२)
१. भारतीय	× , क	क॒	क॑	क्व॑
२. पाश्चात्य	KÁ	× , KA	× , KA	KVÀ

३. एक उदात्त स्वर–सामान्य नियम यह है कि प्रत्येक शब्द में एक उदात्त स्वर होता है, शेष सभी वर्ण अनुदात्त होते हैं। उदात्त पर उदात्त का चिह्न लगेगा और अनुदात्त पर अनुदात्त का। अनुदात्त को **निघात** भी कहते हैं।

४. उदात्त से पहले अनुदात्त–उदात्त और स्वतंत्र स्वरित से पहले वाला वर्ण अनिवार्य रूप से अनुदात्त होगा।

५. उदात्त के बाद स्वरित–उदात्त के बाद वाले अनुदात्त को स्वरित हो जाता है। **सूचना**–१. यह स्वरित स्वतंत्र (Independent) स्वरित नहीं है, अपितु पराश्रित (Dependent) स्वरित है। २. यदि अनुदात्त के बाद फिर उदात्त है तो वह अनुदात्त अनुदात्त ही रहेगा। उसे स्वरित नहीं होगा।

६. स्वरित के बाद के अनुदात्तों पर चिह्न नहीं–यदि एक उदात्त के बाद कई अनुदात्त हैं तो उदात्त के बाद वाले पहले अनुदात्त को स्वरित करेंगे और उसके बाद वाले अनुदात्तों पर कोई चिह्न नहीं लगाया जाएगा। ऐसे बिना–चिह्न वाले अनुदात्तों को **एकश्रुति या प्रचय** कहते हैं। इसके बाद जहाँ उदात्त वर्ण होगा, उससे पहले वाला अनुदात्त अनुदात्त ही रहेगा।

७. दो उदात्त स्वर–कुछ स्थल ऐसे हैं, जहाँ एक ही पद में दो उदात्त स्वर होते हैं। (क) 'तवै' प्रत्ययान्त शब्दों में प्रथम और अन्तिम वर्ण पर उदात्त के चिह्न लगेंगे। जैसे–एत॒वै, इसमें ए और वै उदात्त हैं। (ख) देवता-वाचक दो शब्दों में समास होने पर दोनों शब्दों में उदात्त चिह्न लगेगा। जैसे–मि॒त्रावरु॑णा, इसमें त्रा और व उदात्त हैं। (ग) वनस्पति, बृहस्पति आदि पति अन्त वाले समस्त पदों में दो उदात्त होंगे। जैसे–बृह॒स्पति॑ः, इसमें बृ और प उदात्त हैं।

८. अन्य उदात्त स्वर वाले स्थान :–

(क) सामान्यतया तत्पुरुष समास में अन्तिम वर्ण उदात्त होता है।

(ख) बहुव्रीहि समास में पूर्व-पद उदात्त होता है।

(ग) द्वन्द्व समास में उत्तर-पद पर उदात्त होता है।

(घ) समास में एक ही शब्द की आवृत्ति होने पर प्रथम पद उदात्त होता है।

(ङ) यदि क्रिया वाक्य या पद के प्रारम्भ में होगी तो उस पर उदात्त होता है।

(च) यदि संबोधन के तुरन्त बाद क्रिया आए तो उस पर उदात्त होता है।

(छ) मुख्य वाक्य में उपसर्ग उदात्त होता है।

(ज) यदि दो उपसर्ग हों और दोनों स्वतंत्र हों तो दोनों उदात्त होते हैं।

(झ) साधारणतया बहुव्रीहि, अव्ययीभाव और द्विरुक्त समास में प्रथमपद पर उदात्त स्वर रहता है तथा तत्पुरुष, कर्मधारय और द्वन्द्व समास में बाद वाले पद पर उदात्त स्वर रहता है।

(ञ) अस् अन्त वाले शब्द यदि नपुंसक लिंग होंगे तो धातु पर उदात्त स्वर रहता है। यदि वे पुंलिंग होंगे तो अस् प्रत्यय उदात्त होता है।

(ट) इष्ठ और ईयस् प्रत्यय लगने पर मूल शब्द पर उदात्त होता है।

(ठ) वाक्य या पद के आदि में तिङन्त पद (धातुरूप) उदात्त होता है। यदि वह लङ् लुङ् का रूप होगा तो अनिवार्य रूप से प्रारम्भ का 'अ' उदात्त होगा।

९. अनुदात्त स्वर–निम्नलिखित स्थानों पर अनुदात्त स्वर ही रहता है–

(क) सर्वनाम त्व (अन्य), सम (कुछ) और एन (एतत् का एन) के सभी रूप अनुदात्त होते हैं।

(ख) युष्मद्, अस्मद् के वैकल्पिक सभी रूप त्वा, मा, ते, मे, वाम्, नौ, वः, नः अनुदात्त होते हैं।

(ग) ये निपात सदा अनुदात्त होते हैं–ईम्, सीम्, च, वा, उ, घ, चिद्, स्म, स्विद्, ह, इव, भल, समह।

(घ) संबोधन (Vocative) यदि वाक्य के प्रारम्भ में नहीं है, तो अनुदात्त होगा।

(ङ) क्रियापद (तिङन्त) यदि वाक्य या पद के प्रारम्भ में नहीं है, तो वह अनुदात्त होगा।

(च) इदम् शब्द के अ वाले रूप अनुदात्त होते हैं, यदि वे पाद के प्रारम्भ में होंगे तो उदात्त होंगे। जैसे–अनेन, अस्य, अस्मिन्, एषाम् आदि।

(छ) ये निपात अनुदात्त होते हैं–यथा, नु कम्, सु कम्, हि कम्।

१०. स्वरित स्वर–इसके तीन भेद हैं–

(क) पराश्रित (Dependent) स्वरित–उदात्त के बाद आने वाला अनुदात्त स्वरित हो जाता है। यह पराश्रित स्वरित है। वेदों में अधिकांश यही स्वरित है।

(ख) स्वाश्रित या स्वतंत्र (Independent) स्वरित–यह पूर्ववर्ती उदात्त पर निर्भर नहीं होता है, अतः इसे स्वतंत्र स्वरित कहते हैं। यह किसी प्रकार की संधि के कारण होता है, अतः दो स्वरों के मिश्रण से जन्य स्वरित संधि है। पूर्ववर्ती उदात्त पर निर्भर न होने के कारण इसे स्वतंत्र स्वरित नाम दिया गया है। इसको ही **जात्य स्वरित** भी कहते हैं।

(ग) संधि-जन्य स्वतंत्र स्वरित–इसकी तीन अवस्थाएँ हैं। ये हैं–

१. **प्रश्लेष (दीर्घ, गुण, वृद्धि सन्धि)**–प्रश्लेष का अर्थ है–दो स्वरों का मिश्रण। दीर्घ, गुण और वृद्धि इन तीनों सन्धियों का समन्वित नाम 'प्रश्लेष सन्धि' है। प्रश्लेष स्वरित केवल उदात्त इ + अनुदात्त इ = ई वाले स्थल पर ही होता है। जैसे– स्रुचि + इव = स्रुचीव। 'ची' स्वरित है। अन्यत्र यदि सन्धि होने वाले दोनों स्वरों में एक पर भी उदात्त है तो एकादेश वाला स्वर उदात्त ही होगा।

२. **क्षैप्र (यण् सन्धि)**–यण् सन्धि का ही वैदिक नाम क्षैप्र सन्धि है। यदि इ और उ उदात्त है तथा परवर्ती स्वर अनुदात्त है तो यण् सन्धि होने पर अगला अनुदात्त स्वरित हो जाएगा। इसको 'क्षैप्र स्वरित' कहते हैं। जैसे– नु + इन्द्र = न्विन्द्र, इसमें इ स्वरित हो गया है।

३. **अभिनिहित (पूर्वरूप सन्धि)**–पूर्वरूप सन्धि को ही 'अभिनिहित सन्धि' कहते हैं। पदान्त ए या ओ के बाद यदि उदात्त अ होता है और उसे पूर्वरूप होता है तो वह पूर्ववर्ती ए या ओ को उदात्त बना देता है। यदि पूर्ववर्ती ए या ओ उदात्त है और परवर्ती अ अनुदात्त है तो पूर्ववर्ती ए या ओ 'अभिनिहित स्वरित' हो जाएगा। जैसे– ते + अवर्धन्त = तेऽवर्धन्त। ते में ए अभिनिहित स्वरित है।

स्वतन्त्र स्वरित या जात्य स्वरित– (क) उदात्त या स्वतंत्र स्वरित के स्थान पर यण् होगा तो बाद के अनुदात्त को स्वरित हो जाता है। जैसे– कु + अ = क्व। वीरि + अम् = वीर्यम्। (ख) उदात्त के बाद अनुदात्त होगा तो सन्धि होने पर स्वरित शेष रहेगा। **सूचना**–स्वतंत्र स्वरित के ठीक बाद यदि उदात्त स्वर होता है तो कम्प होता है। इसके प्रदर्शनार्थ जात्य स्वर यदि ह्रस्व पर हो तो उसके आगे १ संख्या लिखते हैं और उसके ऊपर स्वरित का तथा नीचे अनुदात्त का चिह्न लगाते हैं। यदि जात्य स्वर दीर्घ है तो उसके आगे ३ संख्या लिखते हैं तथा ऊपर नीचे पूर्ववत् चिह्न लगाते हैं। जैसे– अप्सु + अन्तः = अप्स्व १ न्तः। रायो + अवनिः = रायो ३ वनिः।

सन्धि-स्वर– (१) यदि बाद का स्वर उदात्त है तो दोनों को मिलाकर उदात्त स्वर ही होगा। (२) यदि बाद का स्वर अनुदात्त है तो सन्धि होने पर स्वरित होगा।

बाद में उदात्त स्वर (उदात्त)	बाद में अनुदात्त स्वर (स्वरित)
१. उदात्त + उदात्त = उदात्त	१. उदात्त इ + अनुदात्त इ = प्रश्लिष्ट ई
२. अनुदात्त + उदात्त = उदात्त	२. उदात्त इ, उ + अनुदात्त = क्षैप्र स्वरित
३. जात्य स्वरित + उदात्त = उदात्त	३. उदात्त ए, ओ + अनुदात्त अ = अभिनिहित एऽ, ओऽ

१४. पदपाठ में स्वर-चिह्न लगाना

पदपाठ में प्रत्येक पद को स्वतंत्र मानकर स्वर लगाया जाएगा। इसके लिए निम्न बातों पर ध्यान दें–

१. पद में पहले उदात्त ढूँढ़ें। यदि कोई उदात्त है और उदात्त से पहले कोई अक्षर है तो वह अनुदात्त होगा और बाद में कोई अक्षर है तो वह स्वरित होगा।

२. यदि उदात्त के बाद कई अक्षर हैं तो उदात्त के ठीक बाद वाले अक्षर को स्वरित करें और उसके बाद वाले अनुदात्तों पर कोई चिह्न नहीं लगेगा।

३. यदि एक ही अक्षर है और वह उदात्त है तो उस पर कोई चिह्न नहीं लगेगा। जैसे– क।

४. यदि एक या अनेक अक्षर केवल अनुदात्त हैं तो उन सब पर अनुदात्त का चिह्न लगेगा। जैसे– क॒ क॒ क॒ क॒।

५. (क) १ उदात्त– क।   १ अनुदात्त– क॒।

(ख) २ उदात्त– क क।   २ अनुदात्त– क॒ क॒।

(ग) ३ उदात्त– क क क।   ३ अनुदात्त– क॒ क॒ क॒।

(घ) २ में प्रथम उदात्त– क क॑।   २ में प्रथम अनुदात्त– क॒ क।

(ङ) ३ में प्रथम उदात्त– क क॑ क।

३ में द्वितीय उदात्त– क॒ क क॑।

३ में तृतीय उदात्त– क॒ क॒ क।

(च) ४ में प्रथम उदात्त– क क॑ क क।

४ में द्वितीय उदात्त– क॒ क क॑ क।

४ में तृतीय उदात्त– क॒ क॒ क क॑।

४ में चतुर्थ उदात्त– क॒ क॒ क॒ क।

अध्याय १२

वेदों में विज्ञान के सूत्र

वेदों में अनेक विज्ञान के सूत्र प्राप्त होते हैं। ये बिखरे हुए हैं। यहाँ कुछ विशिष्ट सन्दर्भ दिए जा रहे हैं। विस्तारभय से इनकी व्याख्या नहीं दी जा रही है।[1]

१. सूर्य न उदय होता है न अस्त–ऐतरेय ब्राह्मण और गोपथ ब्राह्मण में उल्लेख है कि सूर्य न उदय होता है और न अस्त। सूर्य अपने स्थान पर रुका है, पृथ्वी उसका चक्कर काटती है, इसी आधार पर दिन के अन्त को सूर्यास्त और रात्रि के अन्त को सूर्योदय कहा जाता है।

(क) स वा एष (आदित्यः) न कदाचनास्तमेति, नोदेति। ऐत० ३.४४

(ख) स वा एष (आदित्यः) न कदाचनास्तमयति, नोदयति। गो० २.४.१०

२. पृथ्वी सूर्य की प्रदक्षिणा करती है–ऋग्वेद का कथन है कि पृथ्वी सूर्य की प्रदक्षिणा करती है। पृथ्वी (क्षाः) सूर्य (शुष्ण) के चारो ओर घूमती है। यजुर्वेद का भी कथन है कि यह पृथ्वी (गौः) अन्तरिक्षरूपी माँ के सामने रहती हुई पिता रूपी सूर्य की परिक्रमा करती है।

(क) क्षाः...शुष्णं परि प्रदक्षिणित्। ऋग्० १०.२२.१४

(ख) आयं गौः पृश्निरक्रमीद् असदन् मातरं पुरः।
पितरं च प्रयन् स्वः। यजु० ३.६

३. सूर्य और सारा संसार घूमता है–यजुर्वेद में स्पष्ट उल्लेख है कि पृथ्वी, सूर्य और सारा संसार निरन्तर घूमता है। इसका अभिप्राय यह है कि प्रकृति का प्रत्येक परमाणु निरन्तर चक्कर काट रहा है।

समाववर्ति पृथिवी समुषाः समु सूर्यः।
समु विश्वमिदं जगत्। यजु० २०.२३

४. सूर्य से चन्द्रमा में प्रकाश–यजुर्वेद का कथन है कि सूर्य की सुषुम्ण नामक किरण चन्द्रमा को प्रकाशित करती है। चन्द्रमा में अपना प्रकाश नहीं है। यास्क ने भी निरुक्त में इस बात की पुष्टि की है।

(क) सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः। यजु० १८.४०

(ख) अथाप्यस्यैको रश्मिश्चन्द्रमसं प्रति दीव्यति।
आदित्यतोऽस्य दीप्तिर्भवति। निरुक्त २.६

---

१. विस्तृत विवेचन के लिए देखें, लेखककृत 'वेदों में विज्ञान' ग्रन्थ।

५. सूर्य संसार की आत्मा (Soul)–ऋग्वेद आदि में कहा गया है कि सूर्य चर-अचर जगत् की आत्मा है। इसका अभिप्राय यह है कि सूर्य ही संसार की ऊर्जा का स्रोत है। वही सबको गति दे रहा है।

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च। ऋग्० १.११५.१। यजु० ७.४२

६. सूर्य अनेक हैं–ऋग्वेद में 'नानासूर्याः' और 'सप्त आदित्याः' के द्वारा अनेक सूर्यों का उल्लेख है।

सप्त दिशो नानासूर्याः। देवा आदित्या ये सप्त। ऋग्० ९.११४.३

७. सात महासूर्य (7 Solar Systems)–अथर्ववेद में उल्लेख है कि ब्रह्म में सात सूर्य एक साथ रहते हैं। केन्द्रीय सूर्य को 'कश्यप' कहा है। तैत्तिरीय आरण्यक (१.७.१) में इन सात सूर्यों के नाम–आरोग, भ्राज, पतंग, स्वर्णर, विभास आदि दिए हैं।

कश्यप...यस्मिन् सूर्या अर्पिताः सप्त साकम् अ० १३.३.१०

८. सूर्य में धब्बे (Spots) हैं–ऋग्वेद में वर्णन है कि सूर्य की चक्षु (मंडल, घेरा) रजस् (धूल, Spots) से युक्त है।

सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतम्। ऋग्० १.१६४.१४

९. सूर्य के चारों ओर विशाल गैस–ऋग्वेद में दीर्घतमस् ऋषि का कथन है कि मैंने योगदृष्टि से देखा है कि सूर्य के चारों ओर दूर-दूर तक शक्तिशाली गैस (धूम) फैली हुई है। (शकमयम्-शक्तिशाली)

शकमयं धूमम् आराद् अपश्यम्,
विषूवता पर एनावरेण। ऋग्० १.१६४.४३

१०. सूर्य की किरणें सात रंग की–अथर्ववेद में वर्णन है कि सूर्य की सात रंग की किरणें हैं। ये ही वर्षा के कारण हैं।

अव दिवस्तारयन्ति सप्त सूर्यस्य रश्मयः।
आपः समुद्रिया धाराः। अथर्व० ७.१०७.१

११. सूर्य की किरणें पदार्थों को रंग देती हैं–अथर्ववेद में वर्णन है कि सूर्य की किरणें संसार के सभी पदार्थों को रंग (रूप, Colour) देती हैं। ये ७ × ३ = २१ प्रकार की हैं, अर्थात् ७ किरणें उच्च (गहरा), मध्यम और निम्न (हल्का) होकर २१ प्रकार की हो जाती हैं। इनसे सारे रंग बनते हैं।

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः। अ० १.१.१

१२. सूर्य में सोम (Hydrogen H_2 & Helium, He)–अथर्ववेद में वर्णन है कि सूर्य की ऊर्जा का आधार सोम अर्थात् हाइड्रोजन है। सोम से सूर्य को शक्ति मिलती है। (सोमेन-आदित्या बलिनः, अ० १४.१.२)। यजुर्वेद में इसको दूसरे रूप में प्रस्तुत किया गया है। मंत्र का कथन है कि सूर्य में दो तत्त्व मिलते हैं– १. 'अपां रसम्' जल का सार भाग, जो ऊर्जा के रूप में है। 'उद्वयस्' शब्द जल के ऊर्जा रूप 'हाइड्रोजन' के लिए है। २. 'अपां रसस्य यो रसः' अर्थात् जल के सार भाग का सार भाग। जल का सार

हाइड्रोजन है और उसका सार भाग 'हीलियम' है। हाइड्रोजन के लिए 'अपां रसः' और हीलियम के लिए 'अपां रसस्य यो रसः' इन पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हुआ है। 'सूर्ये सन्तं समाहितम्' से स्पष्ट है कि ये दोनों सूर्य में विद्यमान हैं।

अपां रसम् उद्वयसं, सूर्ये सन्तं समाहितम्।
अपां रसस्य यो रसस्तं वो गृह्णाम्युत्तमम्॥ यजु० ९.३

१३. सूर्य की किरणों से विद्युत्-प्रवाह (Electro-magnetic Radiation)– ऋग्वेद में वर्णन है कि सूर्य की किरणों के साथ मित्र और वरुण एक ही रथ पर बैठकर चलते हैं। मित्र शब्द धनात्मक आवेश (Positive Charge) और वरुण ऋणात्मक आवेश (Negative Charge) के लिए हैं। ये दोनों मिलकर विद्युत्-प्रवाह (Electro-magnetic Radiation) करते हैं। इनसे ही विद्युत्-चुम्बकीय तरंगे (Electro-magnetic waves) प्रवाहित होती हैं। इन तरंगों के द्वारा प्रवाहित शक्ति के लिए 'दूत' शब्द का प्रयोग हुआ है। इस दूत को अति तीव्रगामी कहा गया है। इस मंत्र में 'अजिर' शब्द बहुत सक्रिय अर्थ को बताता है और 'मदेरघु' शब्द अतितीव्रता को बताता है। इस ऊर्जा में चुम्बकत्व के लिए 'अयःशीर्षा' (चुम्बकत्व-शक्तिसंपन्न) शब्द आया है।

(क) मित्रावरुणा...रथर्यतः साकं सूर्यस्य रश्मिभिः।
ऋग्० ८.१०१.१ और २

(ख) यो वां मित्रावरुणाऽजिरो दूतो अद्रवत्।
अयःशीर्षा मदेरघुः। ऋग्० ८.१०१.३

१४. सौर ऊर्जा (Solar Energy)–ऋग्वेद और यजुर्वेद में सौर ऊर्जा के आविष्कार और सफल प्रयोग का श्रेय 'त्रित' को दिया गया है। त्रित में ये तीन देवता हैं–इन्द्र, गन्धर्व और वसु। इन्द्र ने इस विद्या का ज्ञान प्राप्त किया, गन्धर्वों ने इसका परीक्षण किया और वसुओं ने इसका सफल प्रयोग किया। सूरात्–सूर्य से, अश्वम्–अश्वशक्ति, सौर ऊर्जा को, वसवः–विशेषज्ञों ने, निरतष्ट–निकाला।

त्रित एनम् आयुनक्, इन्द्र एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत्।
गन्धर्वो अस्य रशनाम् अगृभ्णात्, सूरादश्वं वसवो निरतष्ट॥
ऋग्० १.१६३.२। यजु० २९.१३

१५. सूर्य में आकर्षण शक्ति–ऋग्वेद के अनेक मंत्रों में उल्लेख है कि सूर्य अपने आकर्षण से पूरे द्युलोक को रोके हुए है।

(क) सूर्येण उत्तभिता द्यौः। ऋग्० १०.८५.१
(ख) अस्कम्भने सविता द्याम् अदृंहत्। ऋग्० १०.१४९.१

१६. सूर्य के आकर्षण से पृथ्वी रुकी है–ऋग्वेद और यजुर्वेद में उल्लेख है कि सूर्य ने अपने किरणरूपी यन्त्रों से पृथ्वी को रोका हुआ है।

(क) सविता यन्त्रैः पृथिवीम्-अरम्णात्। ऋग्० १०.१४९.१
(ख) दाधर्थ पृथिवीम् अभितो मयूखैः। यजु० ५.१६

१७. परमाणुओं में आकर्षणशक्ति–ऋग्वेद में उल्लेख है कि प्रत्येक परमाणु दूसरे परमाणुओं को सदा आकृष्ट करता है।

एको अन्यत्-चकृषे विश्वम् आनुषक्। ऋग्० १.५२.१४

अर्थात्–**एकः**–प्रत्येक परमाणु, **अन्यत् विश्वम्**–अन्य सभी परमाणुओं को, **आनुषक्**–निरन्तर, **चकृषे**–अपनी ओर खींचता है।

१८. द्रव्य और ऊर्जा का रूपान्तरण (Conservation of Mass and Energy)–प्रो० आइनस्टाइन (Einstein) ने सिद्धान्त प्रतिपादित किया है कि द्रव्य (Mass) और ऊर्जा (Energy) में से कोई भी चीज न नष्ट की जा सकती है और न उत्पन्न की जा सकती है। केवल इनका रूपान्तरण होता है। ऊर्जा द्रव्य में परिवर्तित होती है और द्रव्य ऊर्जा में। इसका सूत्र है।

$$E = mc^2$$

इसमें E ऊर्जा (Energy) के लिए है। M = Mass (द्रव्य) के लिए है। C = Speed of light अर्थात् प्रकाश की गति के है।

ऋग्वेद में इसी अभिप्राय का एक मंत्र है कि अदिति (अनश्वर प्रकृति, द्रव्य, Mass, Matter) से दक्ष (ऊर्जा, Energy) उत्पन्न होता है तथा दक्ष (ऊर्जा, Energy) से अदिति (Mass, Matter)। इसका अभिप्राय यह है कि द्रव्य और ऊर्जा परस्पर रूपान्तरित हो सकते हैं, अर्थात् द्रव्य से ऊर्जा और ऊर्जा से द्रव्य।

अदितेर्दक्षो अजायत, दक्षाद् उ-अदितिः परि। ऋग्० १०.७२.४

१९. अग्नि और सोम से विश्व की रचना–बृहत् जाबाल उपनिषद् में वर्णन है कि यह सारी सृष्टि अग्नि और सोम से बनी है। अग्नि धनात्मक तत्त्व (Positive) है। यह प्रेरक, संचालक और गतिदाता है। सोम ऋणात्मक तत्त्व (Negative) है, अतएव सोमीय तत्त्व (Electron) में गतिशीलता आती है। इसी से सृष्टि-प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। सूर्य और अग्नि धनात्मक (Positive) हैं तथा सोम और वायु ऋणात्मक (Negative) हैं। उपनिषद् में धनात्मक को तेज और ऋणात्मक को रस नाम दिया है। इस तेज और रस के मेल से संसार बनता है।

(क) **अग्निषोमात्मकं जगत्।** बृ० जा० उप० २.४

(ख) **तेजोरसविभेदैस्तु वृत्तमेतत् चराचरम्।** बृ० जा० उप० २.३

२०. ऊर्जा (अग्नि) विश्वव्यापी है–वेदों के अनेक मंत्रों में उल्लेख है कि अग्नि (ऊर्जा, Energy) पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्युलोक, विद्युत्, वायु आदि सभी में व्याप्त है। इससे ज्ञात होता है कि विश्व के प्रत्येक कण में ऊर्जा प्रकट या सुप्त रूप में विद्यमान है। इसलिए जहाँ भी घर्षण (Friction) होता है, वहाँ विद्युत् उत्पन्न होती है।

(क) **आ रोदसी भानुना भात्यन्तः।** ऋग्० १०.४५.४

(ख) **दिवं पृथ्वीमनु-अन्तरिक्षं ये विद्युतम् अनुसंचरन्ति।**
ये दिक्ष्वन्तर्ये वाते अन्तस्तेभ्यो अग्निभ्यः०। अथर्व० ३.२१.८

२१. ऊर्जा के विभिन्न रूप–ऋग्वेद में अग्नि (ऊर्जा, Energy) के अनेक रूपों का उल्लेख है। परन्तु इनके नाम नहीं गिनाए हैं। यजुर्वेद में समुद्री अग्नि, जलीय ऊर्जा (Hydel), सौर ऊर्जा, पार्थिव ऊर्जा, आकाशीय ऊर्जा, भूगर्भीय ऊर्जा, वृक्षादि से उत्पन्न ऊर्जा का उल्लेख मिलता है। (यजु० १२.१८ से २५)

(क) **दिवस्परि प्रथमं····द्वितीयं जातवेदाः। तृतीयमप्सु।** यजु० १२.१८
(ख) **समुद्रे त्वा····अप्सु अन्तः, तृतीये रजसि०।** यजु० १२.२०
(ग) **आ रोदसी भानुना भाति-अन्तः।** यजु० १२.२१

२२. ऊर्जा अविनाशी है–यजुर्वेद का कथन है कि अग्नि (ऊर्जा, Energy) अमर और अक्षय है। इसमें 'वयस्' (Potential Energy) है, अतः यह अमर है।

(क) **अग्निरमृतो अभवद् वयोभिः।** यजु० १२.२५
(ख) **मर्तेषुअग्निरमृतो नि धायि।** यजु० १२.२४

२३. ऊर्जा (अग्नि) के विविध स्रोत–वेदों में ऊर्जा के इन स्रोतों का उल्लेख मिलता है– (क) जल, पत्थर, वनस्पति और ओषधियाँ (ऋग्० २.१.१)। (ख) भूगर्भीय अग्नि (ऋग्० ३.२२.४)। (ग) सूर्य, समुद्र और जल (ऋग्० १.९५.३)। (घ) नदियों के भँवर (Whirl-pools) (ऋग्० २.३५.९)। (ङ) नदियों के संगम और प्रवाह (अथर्व० १.१५.३)। (च) सूर्य, समुद्र और वायु (ऋग्० ७.३३.७ और ८)। (छ) खान, भूगर्भ और जल-प्रपात (अथर्व० १६.१.३ और ८)।

२४. अथर्वा (अथर्वन्) ऋषि के तीन आविष्कार–अथर्वा विश्व के प्रथम आविष्कारक हैं, जिन्होंने सर्वप्रथम तीन अविष्कार किए। ये हैं–

(१) अरणि-मन्थन से अग्नि–अरणि नामक वृक्ष की लकड़ियों को रगड़ कर अग्नि उत्पन्न की।

(क) **अथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थद् अग्ने।** यजु० ११.३२
(ख) **अरण्योर्निहितो जातवेदाः।** ऋग्० ३.२९.२

(२) जल-मन्थन से अग्नि (Hydroelectric, Hydel)–ऋग्, यजुः और साम वेदों में उल्लेख है कि अथर्वा ऋषि ने तालाब के जल के मन्थन से जलीय विद्युत् (Hydel) का अविष्कार किया था।

त्वामग्ने पुष्करादधि-अथर्वा निरमन्थत।

ऋग्० ६.१६.१३। यजु० ११.३२। साम० ९। तैत्ति० ३.५.११.३

(३) भूगर्भीय अग्नि (पुरीष्य अग्नि, Oil and Natural Gas)–ऋगवेद और यजुर्वेद में उल्लेख है कि अथर्वा ऋषि ने भूगर्भीय अग्नि (Gas) का पता चलाया और उत्खनन के द्वारा उसे निकाला। भूगर्भीय होने के कारण इसे 'पुरीष्य अग्नि' नाम दिया गया। 'योनिरग्नेः' से ज्ञात होता है कि यह अति प्रज्वलनशील है। पृथ्वी और समुद्र दोनों स्थानों से इसके निकालने का उल्लेख है।

(क) पुरीष्योऽसि विश्वभरा अथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्ने ।

यजु० ११.३२

(ख) अपां पृष्ठमसि योनिरग्नेः समुद्रमभितः पिन्वमानम् ।

यजु० ११.२९

(ग) पृथिव्याः सधस्थाद् अग्निं पुरीष्यम्......खनामः ।

यजु० ११.२८

२५. मरुतों में चुम्बकीय शक्ति (Magnetic Power)–ऋग्वेद में उल्लेख है कि मरुतों में चुम्बकीय शक्ति है और उनसे शक्ति का विकिरण (Radiation) होता है। चुम्बकीय शक्ति के लिए 'अयोदंष्ट्र' शब्द है, जिनकी दाढ़ में अयस् (चुम्बकत्व) है और विकिरण के लिए 'विधावतः' (दौड़ती हुई, फैलती हुई) शब्द है।

मरुतः......अयोदंष्ट्रान् विधावतः०। ऋग्० १.८८.५

२६. एवया-मरुत्– विज्ञान की दृष्टि से ऋग्वेद का 'एवया-मरुत्' सूक्त (५.८७) अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमें विद्युत्-चुम्बकीय तरंगों (Electro-magnetic waves) का विस्तृत वर्णन है। एवया = अतितीव्रगामी, मरुत् = विद्यत्-चुम्बकीय तरंगें। विज्ञान के अनुसार इन तरंगों की ये विशेषताएँ हैं– १. इन विद्युत्-तरंगों का संबन्ध विद्युत् क्षेत्र और चुम्बकीय क्षेत्र से होता है। २. इसके लिए विद्युत्-आवेश (Electric Charge) आवश्यक होता है। ३. इसके लिए किसी माध्यम की आवश्यकता नहीं होती। ४. ये समकोण बनती हुई चलती है। ५. इनकी गति बहुत तीव्र है।

मंत्रों में तीव्रगति के लिए ये शब्द हैं–मनोजुवः (मंत्र ४), रघुपत्वानः, रघुष्यदः (मंत्र ६)। विद्युत् आवेश के लिए शब्द हैं–स्वविद्युतः, स्वरोचिषः (मंत्र ३ और ४)। आत्मनिर्भर के लिए ये शब्द हैं–स्वसृत्, स्वतवसः, स्वयतासः (ऋग्० १.८७.४। १.१६८.२)। चुम्बकत्व के लिए शब्द हैं–अयोदंष्ट्र। (अग्नयो न स्वविद्युतः, मंत्र ३)

२७. ओजोन परत (Ozone-layer)–ऋग्वेद और अथर्ववेद में भूमि के चारों ओर विद्यमान ओजोन की परत का उल्लेख है। ऋग्वेद में ओजोन की परत के लिए 'महत् उल्ब' शब्द आया है और उसे स्थविर अर्थात् मोटी परत कहा है। अथर्ववेद में इसका रंग सुनहरी बताया गया है। गर्भस्थ शिशु की रक्षा के लिए बनी झिल्ली (Membrane) के लिए उल्ब शब्द है। पृथ्वीरूपी गर्भस्थ बालक की रक्षा के लिए यह ओजोन परत है।

(क) महत् तदुल्बं स्थविरं तदासीद् ।
येनाविष्टितः प्रविवेशिथापः ।। ऋग्० १०.५१.१

(ख) तस्योत जायमानस्य-उल्ब आसीद् हिरण्ययः। अथर्व० ४.२.८

२८. जल का सूत्र–ऋग्वेद में जल बनाने का सूत्र दिया है कि मित्र और वरुण के संयोग से जल बनता है। मंत्र में मित्र और वरुण शब्दों से क्रमशः Oxygen और Hydrogen का ग्रहण है। जल का सूत्र है– H_2O, अर्थात् हाईड्रोजन गैस के २ अणु

(Molecule) और ऑक्सीजन का १ अणु एक पात्र में रखकर उसमें विद्युत्-तरंग प्रवाहित करने पर जल बनता है। ऋग्वेद के चार मंत्रों (७.३३.१० से १३) में इस विषय को और स्पष्ट किया गया है।

मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम्।
धियं धृताचीं साधन्ता। ऋग्० १.२.७

२९. वृक्षों में अवितत्त्व (Chlorophyll)–अथर्ववेद के एक मंत्र में स्पष्ट उल्लेख है कि अवितत्त्व (रक्षक-तत्त्व) के कारण वृक्षों में हरियाली रहती है। मंत्र में Chlorophyll के लिए अवि शब्द है। यह रक्षार्थक अव् धातु से बना है। इसका अर्थ है–रक्षक-तत्त्व। मंत्र में कहा है कि यह अवितत्त्व ऋत (Tissues) से घिरा है। इसके कारण वृक्ष-वनस्पतियाँ हरे रहते हैं।

अविर्वै नाम देवता-ऋतेनास्ते परीवृता।
तस्या रूपेणेमे वृक्षा हरिता हरितस्त्रजः।। अ० १०.८.३१

३०. वृक्ष शिव के मूर्त रूप–शतपथ ब्राह्मण (६.१.३.१२) में वृक्ष-वनस्पतियों (ओषधियों) को पशुपति (शिव) कहा गया है। यजुर्वेद अध्याय १६ में शिव को वृक्ष, वनस्पति, वन, ओषधि आदि का स्वामी बताया गया है। शिव विषपान करते हैं और अमृत प्रदान करते हैं। वृक्ष-वनस्पति कार्बन डाई-आक्साइड (CO_2) रूपी विष पीते हैं और ऑक्सीजन (O_2) रूपी अमृत (प्राणवायु) देते हैं। संसार को जीवन-रक्षक प्राणवायु (O_2) देने वाले वृक्ष ही हैं। ये वस्तुतः शिव के मूर्त रूप हैं।

वृक्षाणां पतये नमः। ओषधीनां पतये नमः। यजु० १६.१७ से १९

३१. वृक्षों में चेतन तत्त्व–अथर्ववेद में वर्णन है कि वृक्षों में ब्रह्म (आत्मा) है, अतः वीरुध् (वृक्ष-वनस्पतियाँ) साँस लेते हैं। एक अन्य मंत्र में कहा गया है कि वृक्ष खड़े-खड़े सोते हैं।

(क) महद् ब्रह्म...येन प्राणन्ति वीरुधः। अ० १.३२.१
(ख) अस्थुर्वृक्षा ऊर्ध्वस्वप्नाः। अ० ६.४४.१

३२. पर्यावरण के संघटक तत्त्व–अथर्ववेद में वर्णन है कि पर्यावरण के संघटक तत्त्व तीन हैं–जल, वायु और ओषधियाँ। ये भूमि को घेरे हुए हैं और मनुष्य को प्रसन्नता देते हैं, अतः इन्हें 'छन्दस्' कहा गया है।

त्रीणि छन्दांसि कवयो वि येतिरे, पुरुरूपं दर्शनं विश्वचक्षणम्।
आपो वाता ओषधयः, तान्येकस्मिन् भुवन आर्पितानि।।
अ० १८.१.१७

३३. द्यु, भू और अन्तरिक्ष को क्षति न पहुँचावो–यजुर्वेद में विस्तार से वर्णन है कि द्यु, भू और अन्तरिक्ष को हानि न पहुँचावों और उन्हें पुष्ट करो।

(क) पृथिवीं दृंह, पृथिवीं मा हिंसीः। यजु० १३.१८
(ख) अन्तरिक्षं दृंह, अन्तरिक्षं मा हिंसी। यजु० १४.१२
(ग) दिवं दृंह, दिवं मा हिंसी। यजु० १५.६४

३४. द्यु-भू माता-पिता–द्यु-भू हमारे रक्षक हैं, पालक हैं, अतः ये माता-पिता के तुल्य हैं। इनकी रक्षा करना और इन्हें प्रदूषण–मुक्त रखना हमारा कर्तव्य है।

(क) माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः। अथर्व० १२.१.१२

(ख) पृथिवी माता, द्यौष्पिता। यजु० २.१०-११

३५. वृक्षों को न काटें–ऋग्वेद का कथन है कि वृक्ष प्रदूषण को नष्ट करते हैं, अतः इन्हें न काटो।

मा काकम्बीरम् उद्वृहो वनस्पतिम्
अशस्तीर्वि हि नीनशः। ऋग्० ६.४८.१७

३६. वृक्ष लगावें–ऋग्वेद का कथन है कि वृक्ष लगावो। इनकी सुरक्षा करो। ये जल के स्रोतों की रक्षा करते हैं।

वनस्पतिं वन आस्थापयध्वं
नि षू दधिध्वम् अखनन्त उत्सम्। ऋग्० १०.१०१.११

३७. जल को प्रदूषण से बचावें–यजुर्वेद में निर्देश है कि जल को प्रदूषित न करें और वृक्ष-वनस्पतियों को न काटें। जल को शुद्ध रखें और वनस्पतियों को लगावें तथा उन्हें जलादि से पुष्ट करते रहें।

(क) माऽपो हिंसीः, मा-ओषधीर्हिंसीः। यजु० ६.२२

(ख) अपः पिन्व, ओषधीर्जिन्व। यजु० १४.८

३८. वायु में अमृत–ऋग्वेद का कथन है कि वायु में अमृत का खजाना है। वह हमें जीवनी शक्ति दे। अथर्ववेद का कथन है कि वायु 'विश्वभेषज' अर्थात् सारे रोगों की चिकित्सा है। अतः वायु को प्रदूषित न करें।

(क) यददो वात ते गृहे अमृतस्य निधिर्हितः।
तेन नो देहि जीवसे। ऋग्० १०.१८६.३

(ख) वात.....त्वं हि विश्वभेषज। अ० ४.१३.३

३९. सूर्य-किरणें हृदयरोग-नाशक–ऋग्वेद में उल्लेख है कि उदय होता हुआ सूर्य सभी हृदय रोगों और खून की कमी (Anaemia) को दूर करता है। यदि उदय होते हुए सूर्य की किरणें १५ मिनट छाती पर ली जाएँ तो सभी हृदय रोग, सिरदर्द, रक्ताल्पता, पीलिया आदि रोग दूर होते हैं।

उद्यन् अद्य मित्रमह, आरोहन् उत्तरां दिवम्।
हृद्रोगं मम सूर्य, हरिमाणं च नाशय।। ऋग्० १.५०.११

४०. जल चिकित्सा–ऋग्वेद और अथर्ववेद में शुद्ध जल को 'विश्वभेषजीः' सारे रोगों का इलाज बताया गया है। जल अमृत है, ओषधि है, उत्तम वैद्य है, हृदय रोग और आनुवंशिक रोग की भी चिकित्सा है।

(क) अप्सु.....अन्तर्विश्वानि भेषजा।
आपश्च विश्वभेषजीः। ऋग्० १.२३.२०

(ख) आपः.....भिषजां सुभिषक्तमाः। अ० ६.२४.२

(ग) आपो.....हृद्द्योतभेषजम्। अ० ६.२४.१

४१. हस्तस्पर्श-चिकित्सा–अथर्ववेद के दो मंत्रों में हस्तस्पर्श-चिकित्सा का स्पष्ट वर्णन है कि मंत्रों के साथ हस्तस्पर्श से अनेक रोग दूर होते हैं।

(क) अयं मे हस्तो भगवान्, अयं मे भगवत्तरः ।
अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः ।। अ० ४.१३.६

(ख) हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी ।
अनामयित्नुभ्यां हस्ताभ्यां ताभ्यां त्वाभि मृशामसि ।।
अ० ४.१३.७

४२. शीतगृह–अथर्ववेद और यजुर्वेद (१७.५,७) में वातानुकूलित भवन के तुल्य तालाब के बीच में शीतगृह बनाने का उल्लेख है। इसमें चारों ओर बर्फ की पतली परत लगाई जाए। द्वार आमने-सामने हों। वायु का अबाध प्रवेश हो। ठंड से बचाव के लिए अग्नि की व्यवस्था की जाए।

मध्ये ह्रदस्य नो गृहाः पराचीना मुखा कृधि ।
हिमस्य त्वा जरायुणा शाले परि व्ययामसि ।
शीतह्रदा हि नो भुवोऽग्निष्कृणोतु भेषजम् ।। अ० ६.१०६.१ से ३

४३. विशाल भवन–ऋग्वेद में राजा मित्र और वरुण के विशाल राजद्वार का वर्णन है। इसमें एक हजार खंभे थे।

राजानौ.....ध्रुवे सदस्युत्तमे, सहस्रस्थूण आसाते। ऋग्० २.४१.५

४४. एक हजार द्वार वाला भवन–ऋग्वेद में राजा वरुण के एक हजार द्वार वाले विशाल भवन का उल्लेख है।

बृहन्तं मानं वरुण स्वधावः सहस्रद्वारं जगमा गृहे ते। ऋग्० ७.८८.५

४५. लोहनिर्मित नगर–ऋग्वेद और अथर्ववेद में लोहे के अभेद्य नगर या किले बनाने का उल्लेख है।

(क) पुरः कृणुध्वम् आयसीरधृष्टाः। अथर्व० १९.५८.४

(ख) शतं पूर्भिरायसीभिर्नि पाहि। ऋग्० ७.३.७

४६. विविध यंत्र–तैत्तिरीय संहिता में इन यंत्रों का उल्लेख है– १. **वातयंत्र**–वायु की दिशा जानने का यंत्र। २. ऋतु-यंत्र–मौसम की जानकारी हेतु। ३. **दिग्-यंत्र**–दिशाबोधक यंत्र। ४. तेजो-यंत्र–प्रकाश दूर तक फेंकने का यंत्र। ५. **ओजो-यंत्र**–ऊर्जा उत्पन्न करने और उसे नापने का यंत्र।

वातानां यन्त्राय, ऋतूनां यन्त्राय, दिशां यन्त्राय,
तेजसे यन्त्राय, ओजसे यन्त्राय। तैत्ति० सं० १.६.१.२

४७. विशाल पोत–ऋग्वेद आदि में विशाल समुद्री पोतों का उल्लेख है, जिनमें सौ या उससे अधिक पतवार (अरित्र) लगे होते थे।

शतारित्रां नावम् आतस्थिवांसम्। ऋग्० १.११६.५

४८. समुद्र के अन्दर और अन्तरिक्ष में चलने वाला जहाज (यान)–ऋग्वेद में समुद्र के अन्दर चलने वाली नौका (Submarine) का उल्लेख है। पूषा देव की नौकाएँ समुद्र के अन्दर और अन्तरिक्ष में चलती थीं।

यास्ते पूषन् नावो अन्तः समुद्रे
हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति। ऋग्० ६.५८.३

४९. स्वचालित यान (विमान)–ऋग्वेद में मरुत् देवों के एक स्वचालित अन्तरिक्ष यान का वर्णन है। जिसमें न कोई चालक, न अश्व और न लगाम थे। यह बिना रुके अन्तरिक्ष में घूमता था।

अनेनो वो मरुतो यामो अस्तु, अनश्वश्चिद् यमजत्यरथीः।
अनवसो अनभीशू रजस्तूः, वि रोदसी पथ्या याति साधन्।।
ऋग्० ६.६६.७

५०. द्यु-भू में चलने वाला यान–ऋग्वेद में वर्णन है कि अश्विनीकुमारों का रथ (विमान) द्युलोक और पृथ्वी दोनों जगह भ्रमण करता था।

रथो ह वाम्...परि द्यावा पृथिवी याति सद्यः। ऋग्० ३.५८.८

५१. मनोवेग यान (विमान)–ऋग्वेद के अनेक मंत्रों में मन के तुल्य तीव्र गति वाले अश्विनीकुमारों के रथ का वर्णन है। 'मनसो जवीयान्' मन से भी तीव्र गति वाला, 'श्येनपत्वा' गरुड़ (बाज) की तरह उड़ने वाला आदि विशेषण दिए हैं। (ऋग्० ७.६८.३। १.१८१.३। ६.६३.७। १०.११२.२।)

यो वां रथो अश्विना श्येनपत्वा,.....
यो मर्त्यस्य मनसो जवीयान्। ऋग्० १.११८.१

५२. तीन अंग वाला विमान–अश्विनीकुमारों का तीन हिस्से (Parts) वाला विमान (त्रिधातु) था। यह विमान आकाश में पक्षी की तरह उड़ता था।

तं युञ्जाथां मनसो यो जवीयान्....
त्रिधातुना पतथो विर्न पर्णैः। ऋग्० १.१८३.१

५३. विषुवत् रेखा, उत्तरायण, दक्षिणायन–ऋग्वेद और अथर्ववेद में विषुवत् (मध्यवर्ती रेखा) रेखा का उल्लेख है। इसे 'विषूवत्' भी कहते हैं। इसी आधार पर सूर्य के दक्षिण से उत्तर की जाने को 'उत्तरायण' और उत्तर से दक्षिण की ओर जाने को 'दक्षिणायन' कहते हैं।

विषूवता पर एनावरेण। ऋग्० १.१६४.४३। अ० ९.१०.२५

५४. पृथ्वी की सात परतें (Strata)–ऋग्वेद में वर्णन है कि पृथ्वी की सात परते हैं। विष्णु इनमें विक्रमण करता है। मंत्र में 'धाममिः' के द्वारा परतों का निर्देश है। विक्रमण शब्द पृथ्वी के अन्दर परमाणुओं को गति देना और परिवर्तन को सूचित करता है।

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे।
पृथिव्याः सप्त धामभिः। ऋग्० १.२२.१६

५५. पृथिवी की उत्पत्ति सूर्य से–अथर्ववेद में पृथिवी की उत्पत्ति सूर्य से बताई गई है। हाथ से गिरी हुई वस्तु के तुल्य पृथिवी सूर्य से निकली है।

बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि। अथर्व० १८.३.२५ से ३५

५६. भूगर्भ में अग्नि (Radio-activity)–पृथिवी के अन्दर अग्नि है। यह अग्नि तडित्–रेणु–विकिरण शक्ति (Radio-activity) के रूप में निरन्तर जल रही है। यह पृथिवी के भीतर ताप के उत्पादन का मुख्य कारण है। पृथिवी के विभिन्न स्तरों में रेडियो एक्टिव पदार्थ प्रचुर परिमाण में है। यही पृथिवी के अन्तर्दाह (Plutonic energy) के मुख्य कारण हैं।[१] यजुर्वेद, अथर्ववेद, शतपथ ब्राह्मण आदि में इसका विस्तृत वर्णन है।

(क) अग्निर्भूम्याम् ओषधीषु०। अथर्व० १२.१.१९
(ख) अग्निमन्तर्भरिष्यन्ती ज्योतिष्मन्तम् अजस्रमित्। यजु० ११.३
(ग) अग्निगर्भा पृथिवी। शत० ६.५.१.११
(घ) यथाऽग्निगर्भा पृथिवी, द्यौरिन्द्रेण गर्भिणी। बृहदा० उप० ६.४.२२

५७. भूगर्भीय अग्नि से पृथिवी घूमती है–अथर्ववेद का कथन है कि भूगर्भीय अग्नि के कारण पृथिवी में गति और कंपन है। मंत्र में 'विजमाना' का अर्थ है–हिलना, काँपना, काँपते हुए चलना।

याऽप सर्पं विजमाना विमृग्वरी
यस्यामासन् अग्नयो ये अप्स्वन्तः। अ० १२.१.३७

५८. धन के प्राकृतिक संसाधन–ऋग्वेद के एक महत्त्वपूर्ण मंत्र में कहा गया है कि परमात्मा ने मनुष्य को प्राकृतिक संसाधनरूपी महत्त्वपूर्ण उपहार दिए हैं। ये ईश्वरीय अक्षय धन की रक्षा करते हैं। इनकी सुरक्षा से अक्षय धन प्राप्त किया जा सकता है। ये हैं–सूर्य–चन्द्र आदि (द्युलोक), पृथिवी, वृक्ष–वनस्पतियाँ, जल–नदियाँ आदि, जल के स्रोत (सोते) झरने आदि और वन।

पूर्वीरस्य निष्षिधो मर्त्येषु, पूरू वसूनि पृथिवी बिभर्ति।
इन्द्राय द्याव ओषधीरुतापो, रयिं रक्षन्ति जीरयो वनानि॥

ऋग्० ३.५१.५

५९. पर्वतों में धन–ऋग्वेद का कथन है कि पर्वतों में धन है। उनमें गुप्त खजाना है। पर्वतों में प्राप्त होने वाले खनिज बहुमूल्य संपत्ति हैं।

(क) वसुमन्तं वि पर्वतम्। ऋग्० २.२४.२
(ख) गुहा निधिं.....परिवीतम् अश्मनि-अनन्ते। ऋग्० १.१३०.३

६०. समुद्र में निधि–ऋग्वेद और यजुर्वेद में उल्लेख है कि समुद्र में निधि है। चारों समुद्रों में रत्न आदि धन है। सूर्य से समुद्र को ऊर्जा प्राप्त होती है।

(क) सं सूर्येण दिद्युतद् उदधिर्निधिः। यजु० ३८.२२
(ख) चतुःसमुद्रं धरुणं रयीणाम्। ऋग्० १०.४७.२

---

१. विस्तृत विवरण के लिए देखें, लेखक कृत–वेदों में विज्ञान, पृ० २८४-२८६

अध्याय १३

वेदों में काव्य-सौन्दर्य और ललित कलाएँ

वेदों में जहाँ आचारशिक्षा, नीतिशास्त्र, अध्यात्म, दर्शन, मनोविज्ञान, आयुर्वेद आदि की दृष्टि से अनन्त भण्डार विद्यमान है, वहीं काव्यशास्त्र की दृष्टि से भी विपुल सामग्री उपलब्ध है। वेद वस्तुतः दैवी काव्य हैं। इनमें काव्य के प्रायः सभी तत्त्व प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। अथर्ववेद में स्वयं इसको परमात्मा का अजर और अमर काव्य कहा गया है। यह कभी मरता नहीं है, अतः सनातन होते हुए भी नित-नूतन है।

पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति। अथर्व० १०.८.३२

महामुनि भरत ने भी नाट्यशास्त्र में स्वीकार किया है कि चारों वेदों से नाट्यशास्त्र की उत्पत्ति हुई है। उन्होंने ऋग्वेद से पाठ्य (संवाद, कथोपकथन आदि), सामवेद से संगीत, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस के तत्त्वों को लिया।

नाट्यवेदं ततश्चक्रे, चतुर्वेदाङ्गसंभवम्॥
जग्राह पाठ्यमृग्वेदात्, सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसान् आथर्वणादपि॥ नाट्य० १.१६-१७

वेदों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उनमें उच्चकोटि के काव्य के सभी गुण विद्यमान हैं। वेदों में भाव-सौन्दर्य, अर्थगाम्भीर्य, उच्च कल्पनाएँ, रस, छन्द, अलंकार आदि सभी तत्त्वों का प्रचुर मात्रा में समावेश है।

शब्दालंकार–यहाँ पर उदाहरण के रूप में कुछ विशिष्ट सन्दर्भ उपस्थित किए जा रहे हैं। भाषा-सौष्ठव एवं पद-लालित्य के कुछ उदाहरण ये हैं। इनमें अनुप्रास, यमक आदि का प्रयोग दर्शनीय है–

(क) **धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं योऽस्मान् धूर्वति तं धूर्व।** यजु० १.८

(ख) **मखस्य शिरोऽसि। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे।** यजु० ३७.८

(ग) **त्रिवृदसि त्रिवृते त्वा, प्रवृदसि प्रवृते त्वा, विवृदसि विवृते त्वा, सवृदसि सवृते त्वा।** यजु० १५.९

(घ) **सहस्रदा असि सहस्राय त्वा।** यजु० १३.४०

(ङ) **पूर्णात् पूर्णमुदचति, पूर्णं पूर्णेन सिच्यते।** अथर्व० १०.८.२९

(च) **आनन्दा मोदाः प्रमुदो-अभीमोद-मुदश्च ये।**
हसो नरिष्टा नृत्तानि शरीरमनु प्राविशन्। अथर्व० ११.८.२४

(छ) **कविभिर्निर्मितां मिताम्।** अथर्व० ९.३.१९

(ज) **कुलायेऽधि कुलायं, कोशे कोशः समुब्जितः।** अथर्व० ९.३.२०

अर्थालंकार–वेदों में सैकड़ों मन्त्रों में उपमा अलंकार का प्रयोग है। कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं। पाप की लक्ष्मी मनुष्य को इसी प्रकार सुखा देती है, जैसे हरे-भरे पेड़ को आकाशबेल।

या मा लक्ष्मीः पतयालूरजुष्टा-
अभिचस्कन्द वन्दनेव वृक्षम्। अथर्व० ७.११५.२

ईर्ष्या को दुष्परिणाम बताया गया है कि यह दावाग्नि की तरह मनुष्य को सदा जलाती रहती है। इस दावाग्नि को शान्तिरूपी जल से शान्त करना चाहिए।

अग्नेरिवास्य दहतो, दावस्य दहतः पृथक्।
एतामेतस्येर्ष्याम् उद्नाऽग्निमिव शमय ॥ अ० ७.४५.२

उत्प्रेक्षा का एक उदाहरण। युद्ध में छोड़े हुए बाण इसी प्रकार उड़ रहे हैं, जैसे सिर मुँडाए हुए बालक।

यत्र बाणाः संपतन्ति, कुमारा विशिखा इव। यजु० १७.४८

अतिशयोक्ति का एक उदाहरण। इस संसार को एक पत्थरों वाली नदी बताया गया है। इसको पार करने का उपाय बताया गया है कि दुर्जनों का संग छोड़ो और सज्जनों की संगति करो।

अश्मन्वती रीयते सं रभध्वम्, उत्तिष्ठत प्र तरता सखायः।
अत्रा जहाम ये असन् अशेवाः, शिवान् वयम् उत्तरेमाभि वाजान् ॥
ऋग्० १०.५३.८। यजु० ३५.१०

रस-निरूपण–वेदों में प्रायः सभी रसों का यथास्थान वर्णन हुआ है। शृंगार रस के संभोग और विप्रलम्भ दोनों पक्षों का विस्तार से वर्णन मिलता है। वीररस, हास्य रस, अद्‌भुत रस, भयानक, बीभत्स और वात्सल्य रसों का भी वर्णन मिलता है। यहाँ उदाहरण के रूप में कुछ सन्दर्भ दिए जा रहे हैं। विप्रलंभ शृंगार का बहुत सुन्दर वर्णन पुरूरवा-उर्वशी-संवाद (ऋग्० १०.९५.१ से १८) में मिलता है। चार वर्ष सहवास के बाद उर्वशी (विद्युत्) पुरूरवा (पुरूरवस्, मेघ) को छोड़कर जा रही है। पुरूरवा विक्षिप्तमन है। वह आत्महत्या तक करने को तैयार है। उर्वशी उसे समझाती है कि तुम विलाप न करो, मैं वायु की तरह दुर्लभ हूँ, विद्युत् की तरह उड़ने वाली हूँ। पक्षी जैसे अपना घोंसला छोड़कर उड़ जाते हैं, उसी प्रकार मैं जा रही हूँ। स्त्री का प्रेम स्थायी नहीं होता है। अतः धैर्य रखो और घर जावो।

(क) पुरूरवः पुनरस्तं परेहि, दुरापना वात इवाहमस्मि। ऋग्० १०.९५.२
(ख) विद्युन्न या पतयन्ती दविद्योत्०। ऋग्० १०.९५.१०
(ग) उदपप्ताम वसतेर्वयो यथा०। ऋग्० खिल ३.१९.१
(घ) पुरूरवो मा मृथा ̎ न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति। ऋग्० १०.९५.१५

इसी प्रकार संभोग शृंगार के अनेक सन्दर्भ अथर्ववेद में प्राप्त होते हैं। एक प्रेयसी अपने पति को दुपट्टे में बाँधकर रखना चाहती है, जिससे वह किसी अन्य स्त्री की ओर न देख सके और न उसका नाम ले पावे। केवल उसका ही होकर रहे।

अभि त्वा मनुजातेन, दधामि मम वाससा ।
यथासो मम केवलो, नान्यासां कीर्तयाश्चन ।। अ० ७.३७.१

वेदों में विभिन्न रसों से संबद्ध अनेक सूक्त हैं । यहाँ केवल उनके सन्दर्भ दिए जा रहे हैं ।

(क) **शृंगार रस से संबद्ध सूक्त**–कामः (अथर्व० ९.२ । १९.५२), कामस्य इषुः (अ० ३.२५), कामात्मा (अ० ६.८ और ९), कामिनी-मनोऽभिमुखीकरणम् (अ० २.३०), स्मरः (अ० ६.१३०से १३२) आदि ।

(ख) **वीररस से संबद्ध सूक्त**–शत्रुदमनम् (अ० ७.७०। ८.४), शत्रुनाशनम् (अ० २.१२ । १८.२४), शत्रुनिवारणम् (अ० १.१९ से २१), शत्रुपराजयः (अ० २.२७। ८.८), शत्रुबाधनम् (अ० १.१६), अमित्रदम्भनम् (अ० ६.५४), अमित्र-क्षयणम् (अ० ४.२२), यजु० १७.३३ से ४९ आदि ।

(ग) **हास्य रस**–मण्डूक सूक्त (ऋग्० ७.१०३.१ से १०)

(घ) **अद्भुत रस**–शत्रुसेना-संमोहनम् (अ० ३.१ और २), शत्रुसेना-त्रासनम् (अ० ५.२० और २१), सपत्नक्षयणो मणिः (अ० १०.३) आदि ।

(ङ) **भयानक रस**–असुर-क्षयणम् (अ० ६.७।१९.६६), दस्यु-नाशनम् (अ० २.१४) आदि ।

(च) **रौद्र और बीभत्स रस**–यातुधान-नाशनम् (अ० १.७ और ८), यातुधान-क्षयणम् (अ० ६.३२), रक्षोघ्नम् (अ० १.२८ । ५.२९)

(छ) **वात्सल्य रस**–ऋग्वेद १.९६.५। ३.५५.१२ और १३

अलंकारों का प्रयोग–चारों वेदों के सैकड़ों मन्त्रों में अलंकारों का प्रयोग हुआ है । इनमें प्रमुख रूप से ये अलंकार प्राप्त होते हैं–अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, विरोधाभास, विभावना, विशेषोक्ति आदि ।

छन्दों का प्रयोग–छन्दों के प्रयोग की दृष्टि से ऋग्वेद सबसे अधिक समृद्ध है । इसमें २० छन्दों का प्रयोग हुआ है । इनमें भी ये सात छन्द अधिक प्रयुक्त हुए हैं–१. त्रिष्टुप् (४२५८ मंत्र), २. गायत्री (२४५६ मंत्र), ३. जगती (१३५३ मंत्र), ४. अनुष्टुप् (८६० मंत्र), ५. पंक्ति (४९९ मंत्र), ६. बृहती (४२७ मंत्र), ७. उष्णिक् (३९८ मंत्र) । इनसे ही लौकिक संस्कृत के अनुष्टुप् (श्लोक), इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, वसन्ततिलका आदि छन्दों का विकास हुआ है ।

भाव-सौन्दर्य–यजुर्वेद में विश्व-बन्धुत्व और विश्वप्रेम का कितना सुन्दर वर्णन किया गया है । सब मुझे मित्र की दृष्टि से देखें । मैं सबको मित्र की दृष्टि से देखूँ । सब परस्पर मित्र की दृष्टि से देखें ।

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे । यजु० ३६.१८

काव्य-सौन्दर्य–ऋग्वेद के उषःसूक्तों में काव्य–सौन्दर्य प्रचुर मात्रा में मिलता है। उदय होती हुई उषा एक अनुपम सुन्दरी के तुल्य अपने वस्त्रों को चारों ओर फैलाती है। पृथ्वी से द्युलोक तक सर्वत्र उसका ही सौन्दर्य दिखाई पड़ता है।

अव स्यूमेव चिन्वती मघोन्युषा याति स्वसरस्य पत्नी।
स्वर्जनन्ती सुभगा सुदंसा आन्ताद् दिवः पप्रथ आ पृथिव्याः।।

ऋग्० ३.६१.४

उषा को एक सुन्दरी कन्या का रूप देते हुए सूर्यरूपी पति से मिलने के लिए आतुर प्रेमिका के रूप में उसका वर्णन किया गया है कि वह मुस्कराती हुई और वक्षःस्थल को अनावृत करती हुई सूर्य के संमुख जाती है।

कन्येव तन्वा शाशदानाँ एषि देवि देवमियक्षमाणम्।
संस्मयमाना युवतिः पुरस्ताद् आविर्वक्षांसि कृणुते विभाती।।

ऋग्० १.१२३.१०

ऋग्वेद में वाक्तत्त्व के वर्णन में काव्यसौन्दर्य दर्शनीय है। वाग्देवी दृश्य होते हुए भी अदृश्य है। वह तत्त्वज्ञानी को ही अपना स्वरूप प्रकट करती है। इसमें वाक्तत्त्व की रहस्यात्मकता और उसकी सहृदयता का सुन्दर वर्णन है।

उत त्वः पश्यन् न ददर्श वाचम्, उत त्वः शृण्वन् न शृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं वि सस्त्रे, जायेव पत्य उशती सुवासाः।।

ऋग्० १०.७१.४

भाव-गाम्भीर्य और अर्थगौरव–वेदों में भावगाम्भीर्य और अर्थगौरव के अनेक सन्दर्भ हैं। यहाँ उदाहरण के रूप में कुछ मंत्र प्रस्तुत हैं।

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः।। अथर्व० १०.२.३१
तस्मिन् हिरण्यये कोशे, त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत्, तद् वै ब्रह्मविदो विदुः।। अथर्व० १०.२.३२

इस शरीर को पवित्र अयोध्या नगरी कहा गया है। इसमें ८ चक्र और ९ द्वार हैं। इसमें ज्योतिर्मय सुवर्ण का कोष है। इसमें एक चेतन यक्ष अर्थात् परमात्मा रहता है, उसको ब्रह्मवेत्ता ही जानते हैं। इसमें योगशास्त्र का सारांश दे दिया गया है। इसी भाव को अन्यत्र दूसरे प्रकार से दिया गया है।

पुण्डरीकं नवद्वारं, त्रिभिर्गुणेभिरावृतम्।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत्, तद् वै ब्रह्मविदो विदुः।। अ० १०.८.४३

इसी प्रकार यजुर्वेद में एक अध्यात्मपरक महत्त्वपूर्ण मन्त्र है–

वेनस्तत् पश्यन्-निहितं गुहा सद्, यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्।
तस्मिन्निदं सं च वि चैति सर्वं, स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु।।

यजु० ३२.८

इस शरीर में एक ज्योति (आत्मा) गुप्त रूप से विद्यमान है। उसमें ही सारा संसार निवास करता है। उससे ही सारा संसार प्रकट होता है और उसमें ही लीन होता है।

वह विभु परमात्मा इस संसार में ओत-प्रोत है। इसमें '**यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्**' बहुत प्रसिद्ध सुभाषित है। इस मंत्र में अध्यात्म का निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है।

अथर्ववेद के एक मंत्र में सनातन (प्राचीन) और नवीन की बहुत सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत की गई है। जो कल सनातन था, आज वही नवीन है। इसके लिए दिन-रात का उदाहरण दिया गया है। संस्कृतियाँ और सभ्यताएँ दिन और रात की तरह परिवर्तित होती रहती हैं। केवल उनका स्वरूपान्तरण होता है। जो आज नवीन है, कल वही प्राचीन हो जाएगा। फिर समयान्तर से वही प्राचीन नवीन रूप में आ जाता है।

सनातनमेनमाहुः, उताद्य स्यात् पुनर्णवः।
अहोरात्रे प्र जायेते, अन्यो अन्यस्य रूपयोः॥ अ० १०.८.२३

प्रश्नोत्तर–वेदों में अनेक गूढ अर्थों को प्रश्न-उत्तर के रूप में स्पष्ट किया गया है। वेदों में ऐसे मंत्रों की संख्या १०० के लगभग है। कुछ विशिष्ट संदर्भ ये हैं–(क) **ऋग्वेद**–१.८४.१६ से २०। ४.२३.१ से ६। १०.३१.७-८। १०.८१.२-४। १०.१२९.६-७। १०.१३५.५-६। (ख) **यजुर्वेद**– १७.१७ से २१। १७.२९-३२।२३.९-१२। २३.४५-६२। (ग) **अथर्ववेद**–१०.२.१ से २५। १०.७.१ से ४०। २०.७६.३-४। उदाहरण के रूप में एक प्रश्नोत्तर प्रस्तुत किया जा रहा है। **प्रश्न**–सूर्य के समान ज्योति कौन सी है? समुद्र के तुल्य विशाल सरोवर कौन सा है? कौन पृथ्वी पर वर्षा करता है? किसके गुणों की मात्रा (सीमा) नहीं है? **उत्तर**–ब्रह्म सूर्य के समान ज्योति है। द्युलोक समुद्र के समान विशाल सरोवर है। इन्द्र (मेघ) पृथ्वी पर वर्षा करता है। गाय के गुणों की सीमा नहीं है अर्थात् गाय के गुण अपरिमित हैं।

किं स्वित् सूर्यसमं ज्योतिः, किं समुद्रसमं सरः।
किं स्वित् पृथिव्यै वर्षीयः, कस्य मात्रा न विद्यते॥ यजु० २३.४७
ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिः, द्यौः समुद्रसमं सरः।
इन्द्रः पृथिव्यै वर्षीयान्, गोस्तु मात्रा न विद्यते॥ यजु० २३.४८

ललित कलाएँ

शिल्प–ललित कलाओं के लिए वेदों में तथा परवर्ती साहित्य में शिल्प शब्द का प्रयोग मिलता है। कौषीतकि ब्राह्मण का कथन है कि शिल्प में तीन चीजें आती हैं–नृत्य, संगीत और वाद्य।

त्रिवृद् वै शिल्पं नृत्यं गीतं वादितमिति। कौषी० ब्रा० २९.५

यजुर्वेद, तैत्तिरीय संहिता, काण्व संहिता और काठक संहिता में अनेक स्थानों पर शिल्प का उल्लेख है। यजुर्वेद का कथन है कि ऋग्वेद और सामवेद में शिल्पविद्या है अर्थात् इनमें नृत्य, संगीत और वाद्य का भी वर्णन है।

ऋक्सामयोः शिल्पे स्थः। यजु० ४.९

शिल्प का संबन्ध सभी देवों एवं शास्त्रों से हैं, अतः शिल्प को वैश्वदेव और वैश्वदेवी कहा गया है।

शिल्पो वैश्वदेवः । यजु० २९.५८

शिल्पा वैश्वदेव्यः । यजु० २४.५

आचार्य पाणिनि और पतंजलि ने शिल्प के उदाहरणों में विभिन्न वाद्यों का उल्लेख किया है। जैसे—मृदंग, मड्डुक, झर्झर (झाँझ) आदि।

शिल्पम् । अष्टा० ४.४.५५

शतपथ ब्राह्मण में भी शिल्प में नृत्य, गीत, वाद्य को लिया है।

गीतवाद्यादि-शिल्पैः । शत० ब्रा० ३.२

ऐतरेय ब्राह्मण और गोपथ ब्राह्मण में ललित कलाओं या शिल्प की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उपयोगिता बताई गई है। वह है—आत्म-संस्कृति अर्थात् चारित्रिक एवं नैतिक उत्थान।

आत्मसंस्कृतिर्वाव शिल्पानि, एतैर्यजमान आत्मानं संस्कुरुते ।

ऐत० ब्रा० ६.२७। गोपथ ब्रा० २.६.७

नृत्य और नृत्त

भावाभिनय को नृत्य कहते हैं और केवल अंग-संचालन को नृत्त। वेदों में दोनों प्रकार के नृत्य का उल्लेख है। नर्तक के लिए नृतु शब्द है। नृत्य के समय सुवर्ण आदि आभूषण पहने जाते हैं। नृत्य के साथ हास्य की मुद्रा भी आवश्यक है।

मर्तश्चिद् वो नृतवो रुक्मवक्षसः । ऋग्० ८.२०.२२

प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय० । ऋग्० १०.१८.३

नृत्य में सौन्दर्य-प्रदर्शन, अंगों का निःसंकोच प्रसारण और भावाभिव्यक्ति भी संकलित है। प्रातःकालीन उषा का नर्तकी के रूप में वर्णन है।

अधि पेशांसि वपते नृतूरिव, अपोर्णुते वक्ष उस्रेव बर्जहम्।

ऋग्० १.९२.४

नृत्य में तीव्र वेग से चक्कर काटने की उपमा आँधी के वात्याचक्र (बबूले) से दी गई है। नृत्य में विविध रूप धारण करने की तुलना मोर, गन्धर्व और अप्सराओं से की गई है।

(क) **अत्रा वो नृत्यतामिव तीव्रो रेणुरपायत ।** ऋग्० १०.७२.६

(ख) **अद्रिं वावसानस्य नर्तयन् ।** ऋग्० १.५१.३

(ग) **आ नृत्यतः शिखण्डिनो गन्धर्वस्याप्सरापतेः ।** अथर्व० ४.३७.७

नृत्य के साथ संगीत और वाद्य की भी संगति होती है। ऋग्वेद में वर्णन है कि खुले मैदान में कृष्ण मृगों का नृत्य हुआ और उसमें गरुड़ पक्षियों ने गीत गाया।

सुपर्णा वाचमक्रतोप द्यवि, आ खरे कृष्णा इषिरा अनर्तिषुः ।

ऋग्० १०.९४.५

एक अन्य मंत्र में वर्णन है कि परिवार के व्यक्ति भाई-बहिन आदि सभी आमोद-प्रमोद और हास्य के साथ पद-संचालन करते हुए नृत्य करते हैं।

संरभ्या धीराः स्वसृभिरनर्तिषुः ।
आघोषयन्तः पृथिवीमुपब्दिभिः ।। ऋग्० १०.९४.४

नृत्त सामान्य कोटि के लोगों के लिए है । सूत (सारथि) आदि मनोरंजन के लिए नृत्त करते थे । इसमें ढोलक, तबला आदि का भी उपयोग होता है ।

(क) नृत्ताय सूतम् । यजु० ३०.६
(ख) नृत्ताय-आनन्दाय तलवम् । यजु० ३०.२०

संगीत

सामवेद संगीत-प्रधान है । सामन् का अर्थ है–सस्वर मंत्र आदि का पाठ । अतएव सामवेद का अर्थ होता है–सस्वर पाठ–योग्य मंत्रों का संकलन । पूर्वमीमांसा में गीति या गान को साम कहा गया है । **'गीतिषु सामाख्या'** (पूर्व० २.१.३६) । बृहदारण्यक उपनिषद् का कथन है कि स्वर (गान) ही सामवेद का स्वत्व है ।

तस्य हैतस्य साम्नो यः स्वं वेद.....
तस्य स्वर एव स्वम्। बृह० उ० १.३.२५

तैत्तिरीय संहिता का कथन है कि देवता सामन् (संगीत) में ही निवास करते हैं, न ऋचाओं में और न यजुष् में ।

देवा वै नर्चि, न यजुषि-आश्रयन्ते, ते सामनि-एवाश्रयन्ते । तैत्ति०

यजुर्वेद में श्लोक (काव्य) के साथ स्वर (संगीत) का उल्लेख है । प्रार्थना की गई है कि मुझमें संगीत हो, कवित्व हो, यश और विद्या हो ।

स्वरश्च मे श्लोकश्च मे, श्रवश्च मे श्रुतिश्च मे । यजु० १८.१

यजुर्वेद का ही कथन है कि मह (महोत्सव) के साथ आमोद-प्रमोद भी होना चाहिए ।

महश्च मे, क्रीडा च मे, मोदश्च मे । यजु० १८.५

वाद्य

ऋग्वेद और अथर्ववेद में इन वाद्यों का उल्लेख है ।

१. **वीणा**–सितार के लिए है । शुभ अवसरों पर इसका वादन होता था । वीणा बजाने वाले को वीणावाद, वीणागाथिन्, वीणागणकिन् और वीणागणगिन् कहते थे । वीणा में ३,७ और १०० तारों तक का वर्णन मिलता है । (महसे वीणावादम्, यजु० ३०.१९)

२. **तूणव**–यह मुरली या बाँसुरी के लिए है । मुरली बजाने वाले को 'तूणवध्म' कहते थे । इसकी ध्वनि तीव्र होती थी । (क्रोशाय तूणवध्मम्, यजु० ३०.१९)

३. **शंख**–यह शंख के लिए है । शंखवादक को 'शंखध्म' कहते थे । (अवर-स्पराय शंखध्मम्, यजु० ३०.१९)

४. **तलव**–यह ढोलक या तबला है । तबला बजाने वाले को 'पाणिघ्न' कहते थे । (पाणिघ्नम्, आनन्दाय तलवम्, यजु० ३०.२०)

५. **आडम्बर**–बड़ा डोल। ढोल बजाने वाले को 'आडम्बराघात' कहते थे। (शब्दाय-आडम्बराघातम्, यजु० ३०.१९)

६. **वाणीची**–बाँसुरी के तुल्य मुख से बजाया जाने वाला वाद्य। यह रथ आदि में मनोरंजनार्थ रखा जाता था। (रथे वाणीची-आहिता, ऋग्० ५.७५.४)

७. **सूर्मि, सूर्मी**–यह हारमोनियम के तुल्य वाद्य था। इसमें बीच में छिद्र होते थे। प्रत्येक मनुष्य के तालु में ऐसी ही स्वरतंत्री विद्यमान है, जिससे वह सप्त स्वरों का उच्चारण कर पाता है। (अनु क्षरन्ति काकुदं, सूर्म्यं सुषिरामिव, ऋग्० ८.६९.१२)

८. **कर्करी, कर्करि**–यह बीन है। (वदसि कर्करिर्यथा, ऋग्० २.४३.३)

९. **गर्गर**–घड़े की आकृति का वाद्य। (अव स्वराति गर्गरः, ऋग्० ८.६९.९)

१०. **गोधा**–वीणा के तुल्य वाद्य। (गोधा परि सनिष्वनत्, ऋग्० ८.६९.९)

११. **पिंगा**–ढोलक के तुल्य वाद्य। (पिंगा परि चनिष्कदत्, ऋग्० ८.६९.९)

१२. **वेणु**–वंशी, मुरली। (शतं वेणून्, ऋग्० ८.५५.३)

१३. **नाडी, नाली**–बाँसुरी। (इयमस्य धम्यते नाडीः, ऋग्० १०.१३५.७)

१४. **वाण**–यह वीणा है। (धमन्तो वाणं मरुतः, ऋग्० १.८५.१०)

१५. **आघाट, आघाटी**–यह झाँझ या मँजीरा है। (यत्राघाटाः कर्कर्यः संवदन्ति, अथर्व० ४.३७.५)। तांड्य ब्राह्मण (२.५.४) में भी इसका उल्लेख है।

आचार्य पाणिनि ने अष्टाध्यायी में इन वाद्यों का उल्लेख किया है। तूर्य (तुरही, मृदंग, पा० २.४.२), मृदंग, मार्दंगिक (मृदंग बजाने वाला), पणव (ढोल, नगाड़ा), पाणविक (ढोल बजाने वाला), मड्डुक (हुडुक जैसा छोटा वाद्य), झर्झर (झाँझ, पा० ४.४.५६), वीणा (पा० ३.१.२५), दर्दर-दर्दुर (घड़ा), दार्दुरिक (मिट्टी का घड़ा बजाने वाला)।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

वैदिक संहिताएँ

१. **ऋग्वेद संहिता** - (१) वैदिक संशोधन मंडल पूना, (सायणभाष्य-सहित) १९७२, (२) संपादित - सातवलेकर, पारडी, १९४०, (३) वेंकटमाधवभाष्य - सहित, सं० डा०लक्ष्मण स्वरूप, लाहौर, १९३९, (४) स्कन्दस्वामीभाष्य - सहित, होशियारपुर, १९६५ ।

२. **यजुर्वेदसंहिता** - (१) सातवलेकर, पारडी, १९४६, (२) उवट-महीधरभाष्य - सहित, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १९७८ (३) मूल, आर्यसाहित्य मंडल, अजमेर, १९३२ ।

३. **तैत्तिरीय संहिता** - (१) सं० सातवलेकर,१९५७, (२) सायणभाष्य-सहित, पूना ।

४. **काण्वसंहिता** - सं० सातवलेकर, पारडी ।

५. **काठक संहिता** - सं० सातवलेकर, पारडी, १९४२ ।

६. **मैत्रायणी संहिता** - सं० सातवलेकर , पारडी, १९४२ ।

७. **कपिष्ठल - कठ संहिता** - सं० डा० रघुवीर, लाहौर १९३२ ।

८. **सामवेद संहिता** - (१) सं०- सातवलेकर, पारडी, १९५६, (२) सं० दुर्गादास लाहिड़ी, (३) सं०- सत्यव्रत सामश्रमी ।

९. **अथर्ववेद संहिता** - (१) सं०- सातवलेकर, पारडी, १९४३, (२) सं० सायणभाष्य-सहित, शंकर पडित, बम्बई १८९८, (३) सं० - विश्वबन्धु, सायणभाष्यसहित, होशियारपुर, १९६० ।

१०. **अथर्ववेदीय पैप्पलाद संहिता** - सं० डा० रघुवीर ।

वेदों के अनुवाद-ग्रन्थ

१. **ऋग्वेद-संहिता** - (१) स्वामी दयानन्द एवं आर्यमुनिकृत संस्कृत - हिन्दी भाष्य, (२) सातवलेकरकृत सुबोध-भाष्य (हिन्दी), (३) रामगोविन्द त्रिवेदीकृत हिन्दी अनुवाद, (४) जयदेव विद्यालंकार-कृत हिन्दी अनुवाद, (५) श्रीराम शर्मा- कृत हिन्दी अनुवाद, (६) सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव - मराठी, (७) कोल्हट और पटवर्धन-मराठी, (८) रमेश-चन्द्र दत्त - बंगला ।

२. **यजुर्वेद संहिता** - (१) स्वामी दयानन्द-कृत संस्कृत-हिन्दी भाष्य, (२) सातवलेकर-सुबोध-भाष्य, (३) जयदेव विद्यालंकार - हिन्दी अनुवाद, (४) ज्वालाप्रसाद मिश्र - हिन्दी अनुवाद, (५) श्रीराम शर्मा -हिन्दी अनुवाद, (६) श्रीधर पाठक - मराठी,(७) सत्यव्रत सामश्रमी-बंगला ।

३. **सामवेद-संहिता** - (१) सातवलेकर-हिन्दी अनुवाद, (२) तुलसीराम स्वामी- हिन्दी अनुवाद, (३) जयदेव विद्यालंकार -हिन्दी, (४) श्रीराम शर्मा - हिन्दी, (५) वीरेन्द्र शास्त्री - हिन्दी, (६) डा० रामनाथ वेदालंकार - संस्कृत - हिन्दी, (७) सत्यव्रत सामश्रमी-बंगला ।

४. **अथर्ववेद संहिता** - (१) सातवलेकर-सुबोध भाष्य, (२) क्षेमकरण त्रिवेदी- हिन्दी, (३) जयदेव विद्यालंकार - हिन्दी, (४) श्रीराम शर्मा - हिन्दी ।

ब्राह्मण ग्रन्थ

१. **ऐतरेय ब्राह्मण** - (१) सायण-भाष्य सहित, आनन्दाश्रम पूना, १९३१, (२) सायण-भाष्ययुक्त, सत्यव्रत सामश्रमी, कलकत्ता, (३) षड्गुरुशिष्यभाष्ययुक्त, तिरुअनन्तपुरम्, १९४२, (४) सुधाकर मालवीय - हिन्दी अनुवाद-युक्त, वाराणसी, (५) A.B. Keith - Rigveda Brahmanas, Eng. Tr. Delhi, 1998.

२. **कौषीतकि ब्राह्मण** - (१) आनन्दाश्रम, पूना, १९११, (२) A. B. Keith - Rigveda Brahmanas, Eng. Tr. 1998.

३. **गोपथ ब्राह्मण** - (१) राजेन्द्रलाल मित्र, कलकत्ता, १८७२, (२) डा० विजयपालशास्त्री, रामलाल कपूर ट्रस्ट, (३) क्षेमकरणदास त्रिवेदी - हिन्दी अनुवाद, चौखंबा, दिल्ली, १९९३ ।

४. **जैमिनीय ब्राह्मण** - सं० डा० रघुवीर एवं लोकेशचन्द्र, दिल्ली, १९८६

५. **जैमिनीय आर्षेयब्राह्मण** - (१) मंगलौर १८७८, (२) सं०-बे०रा०शर्मा, तिरुपति, १९६७ ।

६. **जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण** - (१) लाहौर, १९२१, (२) सं० बे० रा० शर्मा, तिरुपति, १९६७ ।

७. **तांड्य महाब्राह्मण** - (१) सायणभाष्य सहित, चिन्नस्वामी शास्त्री, चौखंबा, १९९३, (२) कलकत्ता १८७०, (३) कैलेन्ड - अंग्रेजी अनुवाद, कलकत्ता, १९३१ ।

८. **तैत्तिरीय ब्राह्मण** - (१) सायणभाष्य सहित, राजेन्द्र लाल मित्र, कलकता, १८६२, (२) आनन्दाश्रम पूना, १९३४, (३) भट्ट भास्कर - भाष्य सहित, सं० महादेवशास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली ।

९. **देवताध्याय ब्राह्मण** - (१) कलकत्ता, १८८१, (२) सं० - ए०सी० बर्नेल, १८७३, (३) सायणभाष्यसहित, सं० बे०रा० शर्मा, तिरुपति, १९६५, (४) सत्यव्रत सामश्रमी, बंगला अनुवाद ।

१०. **मंत्र ब्राह्मण** - (१) सं० - सत्यव्रत सामश्रमी, बंगला अनुवाद, (२) दुर्गामोहन भट्टाचार्य, कलकत्ता ।

११. **वंश ब्राह्मण** - (१) सं० - सत्यव्रत सामश्रमी, बंगला अनुवाद, (२) सं० - ए०सी० बर्नेल, मंगलौर, (३) सं० - बे.रा. शर्मा, तिरुपति, १९६५

१२. **शतपथ ब्राह्मण** - (१) अच्युत ग्रन्थमाला, काशी, १९३७, (२) सायणभाष्य सहित, वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई, (३) सायणभाष्य सहित, सत्यव्रत सामश्रमी, कलकत्ता, १९०३ (४) सं० वंशीधर शास्त्री, काशी (५) विज्ञानभाष्य, मोतीलाल शर्मा, जयपुर, (६) गंगाप्रसाद उपाध्याय, हिन्दी अनुवाद (७) Eggeling, Eng. Tr.

१३. **शांखायन ब्राह्मण** - सं० - गुलाबराय, आनन्दाश्रम पूना, १९११

१४. **षड्विंश ब्राह्मण** - सं० जीवानन्द विद्यासागर, सायणभाष्य-सहित, कलकत्ता, १८८१, (२) सं० - सत्यव्रत सामश्रमी, कलकत्ता, १८७३, (३) सं० बे०रा०शर्मा, तिरुपति, १९६७, (४) H.F. Elsingh, Leiden, १९०८, अंग्रेजी अनुवाद ।

१५. **संहितोपनिषद् ब्राह्मण** - सं० बे०रा० शर्मा, सायणभाष्य सहित, तिरुपति, १९६५ ।

१६. **सामविधान ब्राह्मण** - (१) सं० - सत्यव्रत सामश्रमी, सायणभाष्य-सहित, १८९४, (२) सं० बे०रा० शर्मा, तिरुपति, १९६४ ।

आरण्यक एवं उपनिषद् ग्रन्थ

१. **अष्टाविंशति** - उपनिषदः - निर्णयसागर प्रेस, बंबई, १९३०

२. **अष्टोत्तरशत** - उपनिषदः - व्यासप्रकाशन, वाराणसी, १९८३ ।

३. **ईश आदि उपनिषदें** - शांकरभाष्य-सहित, गीता प्रेस, गोरखपुर ।

४. **ईश आदि उपनिषदें** - आनन्दाश्रम पूना ।

५. **ऐतरेय आरण्यक** - (१) सायणभाष्य -सहित, आनन्दाश्रम पूना, १८९८, (२) A.B. Keith - Eng.Tr.

६. **तैत्तिरीय आरण्यक** - (१) आनन्दाश्रम पूना, १८९८, (२) राजेन्द्र लाल मित्र, सायणभाष्य-सहित, कलकत्ता, १८७२ ।

७. **बृहदारण्यक** - 'बृहदारण्यक उपनिषद्' गीता प्रेस, गोरखपुर ।

८. **शांखायन आरण्यक** - आनन्दाश्रम पूना, १९२२ ।

वेदांग (शिक्षा, प्रातिशाख्य, ज्योतिष, निरुक्त)

१. **अथर्ववेदीय प्रातिशाख्य** - (१) डा० सूर्यकान्त, १९३९, (२) विश्वबन्धु, १९२३, (३) भगवद्दत्त - अथर्ववेदीय पंचपटलिका ।

२. **ऋक् प्रातिशाख्य** - (१) डा० मंगलदेवशास्त्री - - उव्वट भाष्यसहित, प्रयाग, १९३१, (२) डा० वी०के० वर्मा, हिन्दी अनुवाद सहित, वाराणसी ।

३. **चरणव्यूह** - चौखंबा, वाराणसी, १९३८ ।

४. **तैत्तिरीय प्रातिशाख्य** - माहिषेय भाष्य-सहित, मद्रास १९३० ।

५. **निरुक्त** - (१) डा० लक्ष्मणस्वरूप, लाहौर, १९२७, (२) सं० - राजाराम, लाहौर, (३) भगवद्दत्त, हिन्दी अनुवाद - सहित, अमृतसर, १९६४, (४) दुर्गाचार्यभाष्य - सहित, आनन्दाश्रम, पूना, (५) निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, (६) बी०के० राजवाडे, पूना, (७) दुर्गाचार्य-भाष्य-सहित, मनसुखराम मोर कलकत्ता, (८) चन्द्रमणि विद्यालंकार, हिन्दी अनुवाद, (९) सत्यव्रत सामश्रमी, निरुक्तालोचन ।

६. **पुष्पसूत्र** (सामप्रातिशाख्य) - अजातशत्रु-भाष्य सहित, चौखंबा, १९२२ ।

७. **पाणिनीय शिक्षा** - (१) स्वामी दयानन्द, (२) चौखम्बा, वाराणसी ।

८. **बृहद्देवता** - (१) राजेन्द्रलाल मित्र, कलकत्ता, (२) चौखंबा, १९६३ ।

९. **वाजसनेयि** - प्रातिशाख्य (शुक्ल यजुःप्रातिशाख्य) -(१) बनारस, १८८८, (२) डा० वीरेन्द्रकुमार वर्मा, हिन्दी अनुवाद-सहित, वाराणसी ।

१०. **वेदांग ज्योतिष** - लगधकृत, (१) सं० के० वी० शर्मा, अंग्रेजी अनुवाद एवं भूमिका, (२) टी०एस० कुप्पन्न शास्त्री, नई दिल्ली, १९८५ ।

वेदांग (कल्पसूत्र, श्रौत, गृह्य, धर्म, शुल्ब)

१. **आश्वलायन श्रौतसूत्र** - (१) कलकत्ता, १८७४, (२) आनन्दाश्रम पूना, १९१७ ।

२. **आपस्तम्ब गृह्यसूत्र** - (१) हरदत्त मिश्र - टीका, चौखम्बा, १९२८, (२) उमेशचन्द्र पाण्डेय, हिन्दी अनुवाद सहित, वाराणसी ।

३. **आपस्तम्ब धर्मसूत्र** - (१) बाम्बे संस्कृत सीरीज, १९३२, (२) उमेशचन्द्र पाण्डेय, हिन्दी अनुवाद-सहित, वाराणसी ।

४. **आपस्तम्ब शुल्बसूत्र** - (१) मैसूर, १९३१, (२) डा० सत्यप्रकाश, इलाहाबाद, १९७९ ।

५. **आपस्तम्ब श्रौतसूत्र** - (१) कलकत्ता, १९०२, (२) धूर्तस्वामी भाष्य, बड़ौदा, १९५५, (३) नरसिंहाचारी, मैसूर, १९४५ ।

६. **आश्वलायन गृह्यकारिका** - निर्णय सागर प्रेस, बम्बई , १८९४ ।

७. **आश्वलायन गृह्यसूत्र** - (१) बम्बई १९०९, (२) त्रिवेन्द्रम, १९२३, (३) आनन्दाश्रम पूना ।

८. **काठक गृह्यसूत्र** - लाहौर १९२५ ।

९. **कात्यायन शुल्बसूत्र** - (१) चौखम्बा, १९०९, (२) डा० सत्यप्रकाश, इलाहाबाद, १९७९ ।

१०. **कात्यायन श्रौतसूत्र** - (१) याज्ञिक देवभाष्यसहित, चौखम्बा १९०८, (२) सं० विद्याधर, बनारस १९०८ ।

११. **कौशिकसूत्र** - (१) मद्रास, १९४४, (२) सं० दिवेकर एवं लिमये, तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ, पूना ।

१२. **कौषीतकि गृह्यसूत्र** - भवत्रात-भाष्यसहित, मद्रास, १९४४ ।

१३. **क्षुद्र कल्पसूत्र** - (१) लाहौर, १९२१, (२) सं० बे०रा० शर्मा, होशियारपुर, १९७४ ।

१४. **खादिर गृह्यसूत्र** - रुद्रस्कन्द - व्याख्या, महादेवशास्त्री, मैसूर, १९१३ ।

१५. **गोभिल गृह्यसूत्र** - सं० - चिन्तामणि एवं भट्टाचार्य, कलकत्ता, १९२६ ।

१६. **गौतमधर्मसूत्र** - (१) मस्करी भाष्य, मैसूर १९१७, (२) सं० वेदमित्र, दिल्ली, १९६९ ।

१७. **जैमिनीय श्रौतसूत्र** - सं० प्रेमनिधि शास्त्री, दिल्ली, १९६६ ।

१८. **द्राह्यायण गृह्यसूत्र** - (१) पुणे, १९१४, (२) हिन्दी अनुवाद सहित, मुजफ्फरपुर, १९३४ ।

१९. **द्राह्यायण श्रौतसूत्र** - (१) धन्विन् भाष्य, लाहौर, (२) सं०बे०रा० शर्मा, इलाहाबाद ।

२०. **पारस्कर गृह्यसूत्र** - (१) चौखम्बा, वाराणसी, (२) पंचभाष्य-सहित, गुजराती प्रेस, बम्बई , (३) हरिहर भाष्य एवं हिन्दी, ओम्प्रकाश पांडेय, चौखंबा, वाराणसी ।

२१. **बैजवाप गृह्यसूत्र** - सं० भगवद्दत्त, लाहौर, १९२८ ।

२२. **बौधायन गृह्यसूत्र** - सं० शामशास्त्री, मैसूर, १९२० ।

२३. **बौधायन धर्मसूत्र** - चौखंबा, वाराणसी, १९९१ ।

२४. **बौधायन शुल्बसूत्र** - सं० डा० सत्यप्रकाश, इलाहाबाद, १९७९ ।

२५. **भारद्वाज श्रौतसूत्र** - डा० रघुवीर, लाहौर, १९३६ ।

२६. **मानव गृह्यसूत्र** -(१) बड़ौदा, १९२६, (२) अष्टावक्र भाष्यसहित, रामकृष्ण हर्षे, १९२६

२७. मानव श्रौतसूत्र - F. Knauer.
२८. लाट्यायन श्रौतसूत्र - कलकत्ता, १९०२ ।
२९. वाधूल श्रौतसूत्र - सं० ब्रजविहारी चौबे, होशियारपुर, १९९३ ।
३०. वाराह गृह्यसूत्र - सं० डा० रघुवीर, लाहौर, १९३२ ।
३१. वासिष्ठ धर्मसूत्र - बम्बई, १९१६ ।
३२. वैखानस गृह्यसूत्र - सं० कैलेन्ड, कलकत्ता, १९२६ ।
३३. वैखानस श्रौतसूत्र - मैसूर ।
३४. वैखानस धर्मसूत्र - कलकत्ता, १९४१ ।
३५. वैतान सूत्र - सोमादित्यभाष्य - सहित, विश्वबन्धु, होशियारपुर, १९६७ ।
३६. शांखायन गृह्यसूत्र - सं० सीताराम सहगल, दिल्ली, १९६० ।
३७. शांखायन श्रौतसूत्र - कलकत्ता, १८८८ ।
३८. सत्याषाढ श्रौतसूत्र - आनन्दाश्रम, पूना ।
३९. हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र - आनन्दाश्रम, पूना, १८८९ ।

हिन्दी ग्रन्थ

१. अथर्ववेद : एक साहित्यिक अध्ययन - डा० मातृदत्त त्रिवेदी
२. अथर्ववेद एवं गोपथ ब्राह्मण - ब्लूमफील्ड, हिन्दी - डा० सूर्यकान्त
३. अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्यन - डा० कपिलदेव द्विवेदी , १९८८
४. आचार्य सायण एवं माधव - पं० बलदेव उपाध्याय
५. आर्यों का आदिदेश - डा० सम्पूर्णानन्द
६. उपनिषद्-दर्शन का रचनात्मक सर्वेक्षण - प्रो० रा०द० रानाडे
७. ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका- स्वामी दयानन्द
८. ऋग्वेदालोचन - आचार्य नरदेव शास्त्री
९. ऋग्वेदेर समालोचना - महेशचन्द्र राय (बंगला)
१०.ऐतरेय ब्राह्मण - डा० मंगलदेव शास्त्री
११. ऐतरेय आरण्यक -पर्यालोचनम् - डा० मंगलदेव शास्त्री
१२.ऐतरेयालोचन - सत्यव्रत सामश्रमी
१३. कौटिलीय अर्थशास्त्र - अनु० वाचस्पति गैरोला, चौखंबा, वाराणसी १९७७
१४. कौषीतकि ब्राह्मण - डा० मंगलदेव शास्त्री
१५. गंगा-वेदांक - सं० रामगोविन्द त्रिवेदी
१६. चतुर्वेद-भाष्य-भूमिका-संग्रह (सायण) - सं० बलदेव उपाध्याय
१७. निरुक्तालोचन - सत्यव्रत सामश्रमी
१८. पाणिनिकालीन भारतवर्ष - डा० वासुदेवशरण अग्रवाल
१९. भारत की संस्कृति तथा कला - के०सी० श्रीवास्तव
२०. वेदत्रयी - परिचय - सत्यव्रत सामश्रमी, हिन्दी अनु० ओमप्रकाश पाण्डेय

२१. वेदरश्मि - डा० वासुदेवशरण अग्रवाल
२२. वेदविद्या - डा० वासुदेवशरण अग्रवाल
२३. वेद्काल-निर्णय - पं० दीनानाथ शास्त्री चुलेट
२४. वेद रहस्य - श्री अरविन्द घोष
२५. वेदों में आयुर्वेद - डा० कपिलदेव द्विवेदी
२६. वेदों में भारतीय संस्कृति - आद्यादत्त ठाकुर
२७. वेदों में राजनीतिशास्त्र - डा० कपिलदेव द्विवेदी
२८. वेदों में विज्ञान - डा० कपिलदेव द्विवेदी
२९. वैज्ञानिक विकास की भारतीय परंपरा - डा० सत्यप्रकाश सरस्वती
३०. वैदिक कोश - डा० सूर्यकान्त , वाराणसी
३१. वैदिक कोश - भगवद्दत्त , हंसराज, लाहौर
३२. वैदिकखिल-सूक्त -परिशीलन - डा० ओम्प्रकाश पाण्डेय
३३. वैदिक वाङ्मय का इतिहास - भगवद्दत्त , लाहौर
३४. वैदिक वाङ्मय का बृहद् इहिास - कुन्दनलाल शर्मा, होशियारपुर
३५. वैदिक व्याकरण - मैकडानल, हिन्दी अनु० डा० सत्यव्रत शास्त्री
३६. वैदिक व्याख्यानमाला - श्री पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर
३७. वैदिक सम्पत्ति - रघुनन्दन शर्मा
३८. वैदिक सम्पदा - वीरसेन वेदश्रमी, गोविन्दराम, दिल्ली, १९७३
३९. वैदिक साहित्य - पं० रामगोविन्द त्रिवेदी
४०. वैदिक साहित्य और संस्कृति - पं० बलदेव उपाध्याय
४१. वैदिक सहित्य और संस्कृति - डा० मुंशीलाल शर्मा
४२. वैदिक सहित्य और संस्कृति का स्वरूप - डा० ओम्प्रकाश पाण्डेय
४३. वैदिक साहित्य का इतिहास - डा० राममूर्ति शर्मा
४४. वैदिक साहित्य का इतिहास - गजानन शास्त्री मुसलगांवकर
४५. वैदिक देवशास्त्र - मैकडानल, हिन्दी अनुवाद, डा० सूर्यकान्त
४६. वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति, गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी
४७. वैदिक व्याकरण - डा० रामगोपाल, दिल्ली
४८. संस्कृत व्याकरण - डा० कपिलदेव द्विवेदी
४९. संस्कृत शास्त्रों का इतिहास - पं० बलदेव उपाध्याय
५०. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास - डा० कपिलदेव द्विवेदी
५१. सामवेदीय ब्राह्मणों का परिशीलन - डा० ओम्प्रकाश पाण्डेय

ENGLISH WORKS

1. Age of the Rigveda - N.N. Law
2. Arctic Home in the Vedas - B.G. Tilak
3. Aspectual Functions of the Rigvedic Present and Aorist - J.Gonda
4. Atharvaveda and the Ayurveda - Karambelkar
5. Bibliographic Vedique (French)- Louis Renou
6. Collection of the Fragments of the lost Brahmanas - B.K. Ghosh.
7. A Cultural Study of the Atharvaveda - Dr. K.D, Dvivedi
8. Epithets in Rigveda - J. Gonda
9. The Essence of the Vedas - Dr. K.D. Dvivedi
10. Founders of Sciences in Ancient India - Dr. Satya Prakash
11. History of the Ancient Sanskrit Literature - F. Max Muller
12. History of Indian Literature - J. Gonda
13. History of Indian Literature - A. Weber
14. History of Indian Literature - M. Winternitz
15. A History of Sanskrit LIterature - A.A. Macdonell.
16. India in Vedic Age. - P.L. Bhargava
17. India of Vedic Kalpasutras- Ram Gopal
18. Lectures on Rigveda - Ghate
19. On the Veda - Aurobindo
20. Orion - B.G. Tilak
21. Positive Science in the Vedas. D.D. Mehta. New Delhi
22. Practical Vedic Dictionary. Dr. Surya Kanta
23. Religion and Philosophy of Vedas and Upanisads - A.B. Keith
24. The Religion of the Veda - Bloomfield
25. Rigvedic Geography of India - P.L. Bhargava
26. Rigvedic India. A.C. Das
27. Stylistic Repetitions in the Veda - J. Gonda
28. Vedic Age - A.D. Dasalkar
29. Vedic Bibliography. Dr. R.N. Daṇdekar
30. Vedic Concordance - Bloomfield
31. The Vedic Gods, as figures of Biology. V.G.Rele, Bombay 1931
32. Vedic grammar for Students - Macdonell
33. Vedic Hymns - Oldenberg
34. Vedic Index - A.B. Keith and Macdonell
35. Vedic Index - Louis Renou.
36. Vedic Lectures - Dr. V.S. Agrawal
37. Vedic Mathematics - Bharati Krishna Tirtha
38. Vedic Metre - E.V. Arnold.
39. Vedic Mythology - A.A. Macdonell
40. Vedic Mysticism - Dr. Raghuvira
41. Vision of the Vedic Poets - J. Gonda
42. Woman in the Rigveda - B.S. Upadhyaya

❁

निर्देशिका (Index)

(सूचना - अंक पृष्ठबोधक हैं)

स्कन्द स्वा

स्तोत्र

स्तोभ

भाषाविद् डॉ. कपिलदेव द्विवेदी
की
अन्य कृतियाँ

- अर्थविज्ञान और व्याकरणदर्शन
- संस्कृत व्याकरण और लघु सिद्धान्तकौमुदी
- भाषा-विज्ञान एवं भाषा-शास्त्र
- प्रौढ रचनानुवादकौमुदी
- रचनानुवादकौमुदी
- प्रारम्भिक रचनानुवादकौमुदी
- संस्कृत-निबन्ध-शतकम्
- राष्ट्र-गीताञ्जलिः
- आत्मविज्ञानम्
- अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन
- वेदों में राजनीतिशास्त्र
- वेदों में आयुर्वेद
- वेदों में विज्ञान
- शर्मण्याः प्राच्यविदः
- भक्ति-कुसुमाञ्जलिः

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

भाषाविद् डॉ. कपिलदेव द्विवेदी
की
अन्य कृतियाँ

- अर्थविज्ञान और व्याकरणदर्शन
- संस्कृत व्याकरण और लघु सिद्धान्तकौमुदी
- भाषा-विज्ञान एवं भाषा-शास्त्र
- प्रौढ रचनानुवादकौमुदी
- रचनानुवादकौमुदी
- प्रारम्भिक रचनानुवादकौमुदी
- संस्कृत-निबन्ध-शतकम्
- राष्ट्र-गीताञ्जलिः
- आत्मविज्ञानम्
- अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन
- वेदों में राजनीतिशास्त्र
- वेदों में आयुर्वेद
- वेदों में विज्ञान
- शर्मण्याः प्राच्यविदः
- भक्ति-कुसुमाञ्जलिः

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी